

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३६
Bauddha Bharati Series-36

सुत्तपिटक
दीघनिकायपालि
(३. पाथिकवग्ग)
[हिन्दीअनुवादसहित]

प्रधानमम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३६
Bauddha Bharati Series-36

सुत्तपिटके
दीघनिकायपालि
(३. पाथिकवग्गो)
[हिन्दीअनुवादसहितो]

प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

The
DĪGHANIKĀYAPĀLI
(3. Pāthik Vagga)

With

[Hindi Translation]

Edited & Translated By
Swāmī Dwārikādās Shāstrī

BAUDDHA BHARATI
VARANASI
1996

सुत्तपिटके

दीघनिकायपालि

(३. पाथिकवग्गो)

[हिन्दिरूपान्तरसहितो]

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी ह्यारिकादासशास्त्री



वाराणसी

© बौद्धभारती

पो० बॉ० नं० १०४९

वाराणसी-२२१००१. (भारत)

© Bauddha Bharaati

P. B. No. 1049

VARANASI-221001 [India]

सहसम्पादक :

धर्मकीर्तिशास्त्री

चन्द्रकीर्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण-१९९६

First Edition-1996

मुद्रक :

साधना प्रेस

काटन मिल कालोनी

वाराणसी-२२१ ००२

फोन :- (0542) 333094

Printed By :

SADHANA PRESS

Cotton Mill Colony

VARANASI- 221 002

Ph. (0542) 333094

प्रकाशकीय वक्तव्य

“अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं” ति

— विनयपिटके, भगवा बुद्धो ।

बौद्धभारती के स्थापनाकाल (सन् १९६८ ई०) से हमारा यह सङ्कल्प था कि समग्र त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ पुनः प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके। परन्तु यह कार्य स्वयं में इतना विशाल, गुरुतर एवं बहुजनसाध्य था कि बौद्धभारती जैसा अल्पसाधन वाला प्रतिष्ठान एकाकी इसके प्रकाशन का साहस नहीं कर पा रहा था।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह वर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से, उ०प्र० शासन के शिक्षा विभाग से, भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों से तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्य हेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, बौद्धभारती के अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का मज्झिमनिकाय (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया। जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

उसी क्रम में, अब हम सुत्तपिटक का दीर्घनिकाय (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) तीन भागों में प्रकाशित कर रहे हैं।

‘मज्झिमनिकाय’ की तरह इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ट सङ्ग्राह्यन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटैक्स्ट सोसाइटी लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५६-६१ में ‘पालि त्रिपिटक प्रकाशन बोर्ड’ नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं-कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे लाभान्वित होंगे।

हमने हिन्दी-अनुवाद आचार्य श्रीबुद्धघोष की अट्ठकथा एवं महापण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी-अनुवाद को प्रमाण मान कर सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठक को पालि एवं उसकी हिन्दी—दोनों ही भाषाएँ अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय—वैशद्य (बात को समझाने) के लिये पालि में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फंस कर पाठक से मूल विषय दूर-दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों

(जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत हो) के लिये '....पे०....' की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में निर्भयता से उपयोग हुआ है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '....पे०....' का अनुवाद हमने '....पूर्ववत्....' करके दिया है, या प्रायः '....' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन इसी पद्धति से करेंगे।

एक कार्य हमने इस प्रसङ्ग में और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है। जिससे पाठक को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

इस तरह हम इस ग्रन्थमाला को पालि-हिन्दी-इंग्लिश तीनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना पाये हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

वसन्तपञ्चमी, २०५२ वि०

वाराणसी



अध्यक्ष

बौद्धभारतीपरिषद्

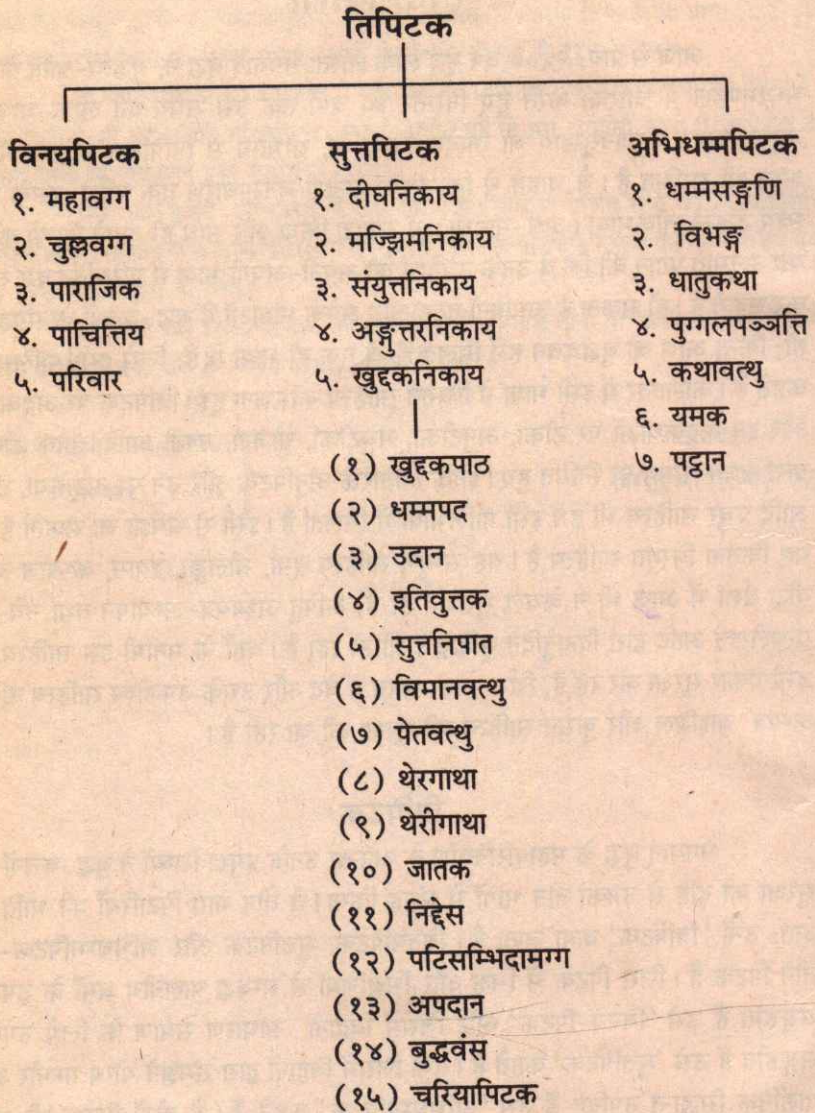
निदानकथा

आज से प्रायः २५०० वर्ष पूर्व लोक शास्ता भगवान् बुद्ध ने, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद मध्यमण्डल में चारिका करते हुए निरन्तर ४५ वर्षों तक उस समय की लोक-भाषा में, बहुजनहिताय बहुजनसुखाय जो उपदेश किया था, सौभाग्य से त्रिपिटक के रूप में वह आज भी सुरक्षित है। वे चाहते थे कि उनका सन्देश जनसाधारण तक पहुँचे, इसके लिये स्वयं उन्होंने लोकभाषा (अर्ध-मागधी) में उपदेश किया और साथ ही अपने शिष्यों को भी यह अनुमति प्रदान की कि वे उनके उपदेशों को अपनी-अपनी भाषा में परिवर्तित कर धारण कर सकते हैं। हो सकता है उन दिनों तत्कालीन अनेक भाषाओं में बुद्ध-वचनों के संग्रह हुए हों; किन्तु आज जो बुद्धवचन हमें मिलते हैं, वे एक ही भाषा में हैं, जिसे हम 'पालिभाषा' कहते हैं। कालान्तर में इसी भाषा में विस्तृत साहित्य की रचना हुई। त्रिपिटक पर अट्टकथायें और इन अट्टकथाओं पर टीका, अनुटीका, मधुटीका, योजना, गण्ठी आदि अनेक टीका-ग्रन्थ समय-समय पर निर्मित हुए। इनके अतिरिक्त अनुपिटक और उन पर अट्टकथा, टीका आदि प्रचुर साहित्य भी हमें इसी पालिभाषा में मिलता है। इसी से समझा जा सकता है कि यह कितना विस्तृत साहित्य है। यह सम्पूर्ण साहित्य बर्मा, श्रीलङ्का, श्याम, कम्बोज आदि बौद्ध देशों में आज भी न केवल सुरक्षित ही है; अपितु अध्ययन-अध्यापन तथा नये-नये ग्रन्थलेखन आदि द्वारा दिनानुदिन वृद्धिज्ञत भी हो रहा है। वहाँ के मनीषी इस साहित्य की उसी प्रकार सुरक्षा कर रहे हैं, जिस प्रकार भारत में वेद और उसके उपजीव्य साहित्य की या अन्यत्र बाइबिल और कुरान साहित्य की सुरक्षा की जा रही है।

त्रिपिटक

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर उनके प्रमुख शिष्यों ने बुद्ध-वचनों की सुरक्षा की दृष्टि से उनका तीन भागों में संग्रह किया। वे तीन भाग पिटरियों की भाँति हैं, अतः उन्हें 'त्रिपिटक' कहा जाता है। विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक—ये तीन पिटक हैं। जिस पिटक में भिक्षु और भिक्षुणियों से सम्बद्ध पालनीय धर्मों के उपदेश सङ्गृहीत हैं उसे 'विनय-पिटक' और जिसमें विद्वानों साधारण समाज के लिये उपदेश सङ्गृहीत हैं उसे 'सुत्तपिटक' कहते हैं। तथा जिसमें विद्वानों द्वारा समझने योग्य गम्भीर और दार्शनिक सिद्धान्त उपदिष्ट हैं उसे 'अभिधम्मपिटक' कहते हैं। ये तीनों पिटक भी आगे चलकर अनेक उपविभागों में बाँटे गये।

‘तिपिटक’ के ग्रन्थों का विभाजन



प्रस्तुत ग्रन्थ : तिपिटक में इसका स्थान

बुद्ध-वचन के जो तीन मुख्य भाग हैं, उन्हीं को 'तिपिटक' (तीन पिटारी) कहते हैं। उनके विषय और शैली एक दूसरे से भिन्न हैं। भिक्षु-सङ्घ के निर्माणसम्बन्धी विवरण तथा अनुशासनसम्बन्धी नियम 'विनयपिटक' में संगृहीत हैं। भगवान् बुद्ध द्वारा भिन्न-भिन्न स्तर के लोगों को दिये गये उपदेशों का सङ्कलन 'सुत्तपिटक' में हैं और पारिभाषिक शब्दों में उपदिष्ट गम्भीर धर्मदर्शन का विवेचन 'अभिधम्मपिटक' में हैं।

'दीघनिकाय' में ३४ लम्बे-लम्बे 'सुत्त' हैं, जो तीन खण्डों में विभक्त हैं—
सीलक्खन्धवग्ग, महावग्ग और पाथिकवग्ग।

प्रस्तुत ग्रन्थ इसी तीसरे खण्ड 'पाथिकवग्ग' का हिन्दी अनुवादसहित है।

यह नामकरण इसमें आये हुये प्रथम 'सुत्त' को ही ध्यान में रख कर किया गया है। इसका यह नाम ग्रन्थ के विषय या शैली के परिचय की ओर सङ्केत नहीं करता। 'पाथिकवग्ग' के स्थान पर यदि इसका नाम 'पाथिकादिवग्ग' होता तो विशेष उपयुक्त होता; क्योंकि इससे यह ज्ञात हो जाता कि इस वर्ग में पाथिक आदि 'सुत्तों' का संग्रह है।

इस खण्ड में आये 'सिगालोवाद' तथा 'आटानाटिय' सुत्त सम्पूर्ण 'तिपिटक' में अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। इनमें पहला गृहस्थधर्म का विधान उपस्थित करता है तथा दूसरे का सम्बन्ध भूत-प्रेतादि के अन्धविश्वासों से है। इसी महत्त्व के कारण बौद्ध देशों में जनसाधारण के व्यवहार के लिये इन्हें स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में पृथक् मुद्रित करके एक महत्त्व प्रदान किया गया है। ऐसे स्थानों में कुछ लोग ऐसे भी मिलेंगे जो इन सुत्तों से विशेष रूप से परिचित होने पर भी यह नहीं जानते कि ये 'तिपिटक' के किस विशेष ग्रन्थ अथवा खण्ड में अन्तर्भूत हैं।



प्रस्तुत ग्रन्थ की विषयवस्तु

(१) पाथिकसुत्त

भगवान् बुद्ध मल्लदेश के 'अनुपिया' नामक स्थान में साधनाहेतु विराजमान थे। एक दिन वे दूसरे सम्प्रदाय के परिव्राजक 'भगव' के यहाँ गये। उसने पूछा—“ भन्ते, क्या यह ठीक है कि आपके धर्म से असन्तुष्ट हो 'सुनक्खत्त' आपको छोड़ कर चला गया है ”? भगवान् बुद्ध ने बताया कि सचमुच ऋद्धियों के चमत्कार न दिखाने तथा 'अव्याकृत' प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर न देने के कारण 'सुनक्खत्त' असन्तुष्ट होकर चला गया है। उन्होंने यह भी बतलाया कि 'सुनक्खत्त' कुक्कुरव्रत धारण करने वाले 'कोरखत्तिय' तथा मदिरा मांस का व्रत पालन करने वाले नग्न परिव्राजक 'कळारमट्टक' के प्रति श्रद्धा करने लगा है।

इसके पश्चात् भगवान् बुद्ध ने वैशाली के 'पाथिक-पुत्त' की कहानी सुनाई। 'पाथिक-पुत्त' वैशाली में इस बात का प्रचार कर रहा था—“ श्रमण गौतम ज्ञानवादी हैं और मैं भी ज्ञानवादी हूँ। ज्ञानवादी को ज्ञानवादी के साथ अलौकिक ऋद्धिबल का प्रदर्शन करना चाहिये। क्या ही अच्छा होता कि हम दोनों सामान्य जनता के बीच एक साथ अपने ऋद्धिबल का प्रदर्शन करते, जिससे सामान्य जन यह समझ पाते कि इस दृष्टि से हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है ”? सौभाग्यवश उस समय भगवान् बुद्ध वैशाली में ही उपस्थित थे। 'पाथिक-पुत्त' की इस चुनौती का समाचार 'सुनक्खत्त' ने आकर उन्हें दिया; क्योंकि वह भी यही चाहता था कि इस प्रकार का प्रदर्शन हो, जिससे बुद्ध के प्रति जनता की अपार श्रद्धा कम हो जाय। उसने 'पाथिक-पुत्त' के निवास-स्थान पर ही जनसाधारण की एक सभा का आयोजन कराया। इसका उसने भलीभाँति प्रचार किया। परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों के लोग इसको देखने के लिये अत्यधिक संख्या में एकत्र हुए; क्योंकि उन्हें दो प्रसिद्ध श्रमणों के ऋद्धि-बल को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। भगवान् बुद्ध ने 'सुनक्खत्त' को इस सभा में अपनी उपस्थिति के विषय में स्वीकृति भी दे दी थी। भोजन के बाद वे वहाँ पहुँचे। जब 'पाथिक-पुत्त' ने भगवान् बुद्ध का आगमन सुना तो भयभीत एवं संविग्न होकर वह अन्यत्र जाकर एक आश्रम में छिप गया। लोगों ने उसे भगवान् बुद्ध के सामने लाने के लिये अनेक चेष्टाएँ कीं, पर वे उसे वहाँ लाने में असमर्थ रहे। 'पाथिक-पुत्त' की इस पराजय से 'सुनक्खत्त' को गहरा धक्का लगा, क्योंकि उसे विश्वास था कि ऋद्धिबल आदि में 'पाथिकपुत्त' भगवान् बुद्ध की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। परन्तु इस पर भी वह अपने विचार नहीं बदल सका और इस प्रकार वह बुद्ध से विमुख होकर चला गया।

'सुनक्खत्त' के विषय में उपर्युक्त कथा सुनाने के पश्चात् भगवान् बुद्ध ने अव्याकृत प्रश्न के विषय में भी 'भगव' को उपदेश दिया और इसे ब्रह्मा और 'मनःप्रदोषिक' देवताओं आदि की कल्पनाओं से समझाया।

(२) उदुम्बरिकसुत्त

भगवान् बुद्ध राजगृह में 'गिञ्झकूट' पर्वत पर साधनारत थे। उस समय 'उदुम्बरिका' के

परिव्राजकाराम में 'निग्रोध' परिव्राजक भी ठहरा हुआ था। बुद्ध-भक्त उपासक 'सन्धान' 'निग्रोध' परिव्राजक के पास गया और धर्म-चर्चा करने लगा। भगवान् बुद्ध के व्यक्तित्व की बात चली। 'निग्रोध' ने अपमानभरे शब्दों में कहा—“शून्यागार में रहते-रहते श्रमण गौतम की बुद्धि कुण्ठित हो गयी है। श्रमण गौतम सभा से मुँह चुराते हैं, संवाद करने में असमर्थ हैं। वे लोगों से पृथक्-पृथक् भागे फिरते हैं, जैसे कानी गाय अकेले पृथक् ही पृथक् भागी फिरती है। इस प्रकार श्रमण गौतम की प्रज्ञा मन्द हो गयी है। यदि श्रमण यहाँ आवें तो उन्हें एक ही प्रश्न में उड़ा दूँ, खाली घड़े के समान इधर से उधर उछाल दूँ”।

भगवान् बुद्ध दिव्यश्रोत्र से 'न्यिग्रोध' के वचन सुन 'गृधकूट' से उतर सुमागधा के तट पर 'मोर-निवाप' में आकर खुले स्थान में चंद्रमण करने लगे। तत्पश्चात् वे 'निग्रोध' के आश्रम में पधारे। अपनी मण्डली के साथ 'निग्रोध' ने उनका स्वागत किया। भगवान् बुद्ध ने तपःसाधना पर उपदेश देना प्रारम्भ किया, जो 'निग्रोध' का अपना धर्म था। उन्होंने वे बातें बतायीं, जिनसे तपः-साधना दूषित हो जाती है। यथा—तपःसाधना से अभिमान हो जाता है, जिससे तपस्वी अपने आपको श्रेष्ठ समझने लगता है। तपस्वी प्रायः लाभ और यश की कामना से पथभ्रष्ट हो जाता है—आदि। ये बातें इतनी सत्य और स्पष्ट थी कि 'निग्रोध' इन्हें अस्वीकार न कर सका।

भगवान् बुद्ध ने क्रमशः उसे शरीरोत्पीड़क तप की निरर्थकता और मनःशुद्धि-साधना की सार्थकता बतलायी, जो आर्य आष्टाङ्गिक मार्ग का पालन करना है और सभी दुःखों के निरोध का मार्ग है। भगवान् बुद्ध के उपदेश को सुनकर 'निग्रोध' को अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ। उसने बुद्ध के व्यक्तित्व का जो अनादर किया था, उसके लिये उसने उनसे क्षमायाचना की।

भगवान् बुद्ध ने उसे क्षमा करते हुये कहा—“ निग्रोध, कोई सच्चा मुमुक्षु आवे। मैं उसका अनुशासन करता हूँ, धर्मोपदेश देता हूँ। यदि वह वैसी साधना करे तो निश्चय ही अविलम्ब परमपद को प्राप्त कर लेगा। 'निग्रोध', शायद तुम समझते होगे कि मैं तुम्हें अपना शिष्य बनाने के लिये ऐसा कहता हूँ; किन्तु यह बात नहीं है। तुम्हारे जो आचार्य हैं, अब भी वही तुम्हारे आचार्य रहें। 'निग्रोध' शायद तुम्हें ऐसा प्रतीत हो रहा होगा कि हमें अपने उद्देश्य से च्युत करने के लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिये। जो तुम्हारा अभी उद्देश्य है, वही उद्देश्य रहे। मेरे उपदेश करने का अभिप्राय तो यही है—सभी मलों का प्रक्षालन और शुद्ध-निर्वाण की प्राप्ति”।

(३) चक्रवर्तिसुत

भगवान् बुद्ध मगध में 'मातुला' नामक स्थान में विहार कर रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा—“भिक्षुओ, अपना प्रदीप आप बनो, अपनी शरण आप बनो; किसी दूसरे को शरण मत करो। धर्म तुम्हारा प्रदीप बने, धर्म तुम्हारी शरण बने; अन्य तुम्हारी शरण न हो”।

तत्पश्चात् भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को धार्मिक राजा 'दव्वहेनेमि' की कहानी सुनायी, जो चारों दिशाओं का विजेता और अधिपति था। उसके चक्ररत्न, हरिश्चरत्न, अश्वरत्न, मणिरत्न, स्त्रीरत्न, गृहपतिरत्न और परिणायकरत्न—ये सात रत्न थे। वृद्धावस्था को प्राप्त कर उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी दे, स्वयं गृहत्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की। नये राजा ने भी चक्रवर्ती के व्रतों का पालन कर उसकी परम्परा सुरक्षित रखी। यों सात पीढ़ियों तक यह चक्रवर्तिपरम्परा चलती रही।

आठवाँ राजा प्रमाद में पड़ गया। उसने राजर्षि के पास जाकर चक्रवर्ती-व्रत नहीं पूछा और अपनी ही बुद्धि से शासन करने लगा। वह प्रजा की आर्थिक अवस्था सुधारने और समुन्नत करने में असमर्थ रहा। फलतः दरिद्रता का प्रकोप बढ़ता गया। दरिद्रता के कारण चोरी-हत्याएँ बढ़ीं। इस प्रकार देश के जीवन में सभी प्रकार की अवनति होती गयी।

भगवान् बुद्ध ने भविष्यवाणी की कि आगे चलकर भविष्य में 'शङ्ख' नामक एक चक्रवर्ती राजा होगा, जो दरिद्रता दूरकर समाज की नैतिक और सामाजिक अवस्थाओं में स्थिरता लायगा।

भगवान् बुद्ध ने पुनः इसी सूत्र में कथित अपने प्रागल्भिक प्रेरणादायक शब्दों में अपना उपदेश समाप्त करते हुए कहा—“भिक्षुओ, अपना प्रदीप स्वयं बनो, अपनी शरण स्वयं बनो; किसी दूसरे की शरण ग्रहण न करो। धर्म तुम्हारा प्रदीप बने, धर्म ही तुम्हारी शरण बने; तुम कभी किसी अन्य की शरण प्राप्त करने की इच्छा न करो”।

(४) अगगञ्जसुत्त

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के पास 'मिगारमाता' के प्रासाद 'पुब्बाराम' में विहार कर रहे थे। वहाँ एक दिन जब वे खुले स्थान में चङ्क्रमण कर रहे थे, तब 'भारद्वाज' और 'वासेट्टु' नामक दो 'सामणे' उनके समीप आये और पीछे-पीछे घूमने लगे। 'वासेट्टु' ने कहा कि ब्राह्मण लोग कहते हैं कि मनुष्य जाति में वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है। भगवान् बुद्ध ने कहा कि यह असत्य है, क्योंकि सभी जानते हैं कि दूसरों की ही भाँति वे भी माता की कोंख से उत्पन्न हुये हैं। मनुष्य की महत्ता उसके अपने गुणों में है। जन्म न तो पापी को शुद्ध कर सकता है और न शुद्ध को पापी। यथार्थ में धर्म ही महान् हैं।

भगवान् बुद्ध ने बताया कि उन्हें कोसलराज प्रसेनजित शाक्यों के अधिपति होते हुये भी धर्म के ही गौरव से अभिवादन करते हैं। धर्म के ही कारण वे उनके प्रति अपनी विनय और श्रद्धा प्रकट करते हैं।

भगवान् बुद्ध ने उन श्रामणेरों को बताया कि उन्हें अपने सभी भेदभाव भुला देने चाहिये और अपने को शाक्यपुत्र ही कहना चाहिये। फिर उन्होंने सृष्टि के क्रम पर विचार प्रकट करते हुए यह बताया कि प्रलय के पश्चात् कुछ प्राणी आभास्वर लोक में उत्पन्न हुए। बहुत समय के बाद, सृष्टि होने लगी और मनोमय 'सत्त्व' उत्पन्न हुये, जो एकाग्रता की प्रीति के आहार पर ही रहते थे, जो स्वयम्प्रभ थे और आकाश में विचरण करते थे.....बहुत दिनों के पश्चात् जल की सतह पर मिट्टी जम गयी, जो स्वाद में घी-मक्खन के समान थी। कुछ-कुछ मधु-समान मीठी भी थी। सत्त्वों ने उसका आस्वादन किया; जिससे उनमें लोभ उत्पन्न हुआ। लोभ के कारण मिट्टी कड़ी हो गयी। अन्त में, होते-होते जङ्गली धान पैदा होने लगा। धीरे-धीरे मानव-समाज बना और कर्म के अनुसार राजा ब्राह्मण, वैश्य आदि की भी व्यवस्था हुई। जिन्होंने संसार से विरक्त हो 'मार्ग' की साधना की, उन्होंने अर्हत्-पद भी प्राप्त किया। यही मनुष्य का श्रेष्ठ आदर्श हैं।

(५) सम्पसादनीयसुत्त

भगवान् बुद्ध नालन्दा के पास 'पावारिक' आम्रवन में ठहरे थे। वहाँ आयुष्मान् 'सारिपुत्त' ने उनके पास जाकर कहा—“भन्ते, 'सम्बोधि' में भगवान् से बढ़कर कोई दूसरा श्रमण अथवा ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है”। भगवान् बुद्ध ने कहा—“सारिपुत्त, तुमने यह बहुत

आर्षभी (वृषभवत् निर्भीक) वाणी कही है। क्या तुमने भूत तथा भविष्य के सभी बुद्धों के ज्ञान का अवगाहन कर लिया है कि जिससे उनके साथ मेरी तुलना कर रहे हो”?

आयुष्मान् ‘सारिपुत्त’ ने विनीत भाव से कहा कि तथागत द्वारा की गयी धर्म की व्याख्या इतनी पूर्ण और स्पष्ट है कि उससे सभी शङ्काओं का समाधान हो जाता है। अतः उनकी अद्वितीयता में शङ्का का कोई स्थान ही नहीं है।

(६) पासादिकसुत्त

भगवान् बुद्ध शाक्यों के देश में विहार कर रहे थे। उस समय ‘निगण्ठ-नाटपुत्त’ की पावा में हाल ही में मृत्यु हुई थी। उनके अनुयायियों में फूट हो गई थी और उनमें आपस में कलह हो रहा था। उस समय ‘चुन्द समणुद्देस’ ‘पावा’ में वर्षावास कर आयुष्मान् आनन्द से मिलने को रामगाम आया था। उसने उनको ‘निगण्ठ-नाटपुत्त’ के निर्वाण की सूचना दी। तब भगवान् के पास जाकर उन दोनों ने उनको इस समाचार से अवगत कराया।

भगवान् बुद्ध ने कहा कि ‘निगण्ठ-नाटपुत्त’ के अनुयायियों में कलह और फूट का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि वह धर्म स्वाख्यात और सु-उपदिष्ट नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि उनके स्वाख्यात धर्म में ऐसा नहीं हो सकता।

फिर भगवान् बुद्ध ने धर्म पर उपदेश दिया और अर्हत्-पद प्राप्त व्यक्ति के लक्षण बताय साथ यह भी बताया कि तथागत का अभिप्राय क्या है।

(७) लक्खणसुत्त

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में ‘अनाथपिण्डिक’ के ‘जेतवन’ आराम में साधनाहेतु उठे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा—“भिक्षुओ, महापुरुष, के बत्तीस महापुरुष-लक्षण हैं, जिनसे युक्त महापुरुषों की दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं—(१) यदि वह घर में रहता है तो धार्मिक, धर्मराजा, चारों ओर विजय पाने वाला, शान्तिस्थापक, सात रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा होता है। उसके ये सात रत्न होते हैं—चक्ररत्न, हस्तिरत्न, अश्वरत्न, मणिरत्न, स्त्रीरत्न, गृहपतिरत्न और सातवाँ परिणायकरत्न। (२) यदि वह गृह त्याग कर प्रव्रजित होता है, तो संसार का आवरण हटाने में समर्थ अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध होता है।

महापुरुष के ३२ ये लक्षण हैं—

(१) वह सुप्रतिष्ठित-पाद होता है।

(२) उसके पैर के तलवे में सर्वाकारपरिपूर्ण नाभि-नेमि युक्त सहस्र अरों वाला चक्र होता है।

(३) उसकी पाँधि (एड़ी) विस्तृत होती है।

(४) वह दीर्घअङ्गुल होता है।

(५) उसके हाथ पैर कोमल और सुन्दर होते हैं।

(६) उसके हाथ पैर जाल के समान होते हैं।

(७) वह ‘उस्सङ्खपाद’ होता है।

(८) वह एणी-जङ्घ होता है।

(९) वह आजानुबाहु होता है।

- (१०) वह कोषाच्छादित वस्तिगुह्य वाला होता है।
 (११) उसका वर्ण स्वर्ण के समान होता है।
 (१२) वह कोमल त्वचा वाला होता है, जिससे शरीर पर मैल या धूल नहीं चिपटती।
 (१३) उसके एक रोमकूप में एक ही रोम होता है।
 (१४) उसके रोम ऊर्ध्वग्राहि होते हैं।
 (१५) उसका शरीर ब्राह्म ऋजु होता है।
 (१६) वह सप्त-उत्सद (सात स्थानों से उठा हुआ) होता है।
 (१७) वह सिंह की तरह पूर्वाद्ध-काय होता है।
 (१८) उसके दोनों कर्णों के बीच का भाग भरा हुआ होता है।
 (१९) उसके शरीर का परिमण्डल न्यग्रोध वृक्ष के समान तथा लम्बाई-चौड़ाई में समानुपात होता है।
 (२०) उसके स्कन्ध समवर्त होते हैं।
 (२१) वह सुन्दर शिराओं वाला होता है।
 (२२) उसकी हनु सिंह के समान होती है।
 (२३) उसके चालीस दाँत होते हैं।
 (२४) वह सम-दन्त होता है।
 (२५) उसके दाँतों के बीच में विवर (रिक्त स्थान) नहीं होते।
 (२६) वह श्वेत दाढ़ वाला होता है।
 (२७) उसकी जिह्वा लम्बी होती है।
 (२८) उसका स्वर करवीक (कोयल) पक्षी के समान स्वाभाविक मधुर होता है।
 (२९) वह अभिनील नेत्र वाला होता है।
 (३०) उसकी पलकें गाय के समान होती हैं।
 (३१) उसकी भौंहों के बीच में श्वेत कोमल कपास की तरह ऊर्णा होती है।
 (३२) उसका सिर राजा की पगड़ी के समान होता है।

(८) सिगालोवादसुत

भगवान् बुद्ध राजगृह के 'वेणुवनाराम' में साधना कर रहे थे। उस समय एक 'सिगाल' नामक तरुण गृहस्थ प्रातःकाल उठकर राजगृह से निकल भीगे-वस्त्र, भीगे-केश, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर और नीचे सभी दिशाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा था।

'सिगाल' को ऐसा करते देख भगवान् बुद्ध ने पूछा— "सिगाल, इस प्रकार तुम दिशाओं को क्यों नमस्कार कर रहे हो"? उसने उत्तर देते हुये कहा— "भन्ते, मृत्यु के समय मरणशय्या पर पड़े हुये मेरे पिता ने मुझसे कहा था कि पुत्र दिशाओं को नमस्कार करना। अतः पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर मैं इस प्रकार दिशाओं को नमस्कार कर रहा हूँ"।

भगवान् बुद्ध ने कहा कि आर्यधर्म में दिशाओं को ऐसे नमस्कार नहीं किया जाता। दिशाओं के नमस्कार करने का अर्थ है समाज के विभिन्न सम्बन्धों के उचित व्रतों का पालन करना। इस विशिष्ट अर्थ के अनुसार माता-पिता पूर्व-दिशा, आचार्य दक्षिण-दिशा, पुत्र और स्त्री पश्चिम-दिशा, मित्र-अमात्य उत्तर-दिशा, नौकर-चाकर नीचे की दिशा और श्रमण तथा ब्राह्मण ऊर्ध्व-दिशा

हैं। इनके प्रति जो मनुष्य के कर्तव्य हैं, उन्हें पूरा करने वाला ही दिशाओं के नमस्कार के फल का लाभ करता है।

(९) आटानाटियसुत्त

भगवान् बुद्ध राजगृह में 'गिञ्झकूट' पर्वत पर साधना हेतु विराजमान थे। वहाँ यक्षों, गन्धर्वों, तथा 'कुम्भण्डों' की एक विशाल सेना के साथ चारों दिक्पालों ने आकर बुद्ध की अर्चना की।

तत्पश्चात् महाराज 'वेस्सवण' ने भगवान् बुद्ध से इस प्रकार कहा— "भन्ते, संयम और धर्माभ्यास में रुचि न रखने वाले यक्ष आपके विरुद्ध हैं। सम्भव है कि वे एकान्त प्रान्तों में निवास करने वाले आपके शिष्यों को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करें। अतः उन्हें चाहिये कि वे अपनी रक्षा के लिये 'आटानाटिय-सुत्त' का पाठ किया करें।

इस सुत्त में सर्वप्रथम 'विपस्सी', 'सिखी', 'वेस्सभू' आदि पूर्व बुद्धों की स्तुति की गयी है और फिर 'कुम्भण्ड', 'नाग', 'विरूपाक्ष', 'आटानाटा', 'कुसिनाटा', 'ततोला', 'तत्तला', 'ओजसी', तथा 'अरिट्ट' आदि भूत-प्रेतों से रक्षा की कामना की गयी है।

(१०) सङ्गीतिसुत्त

पावा नामक मल्ल-क्षत्रियों के नगर में, साधनाहेतु विराजमान भगवान् बुद्ध के सान्निध्य में आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुसङ्घ को निगण्ठों (जैन सम्प्रदाय) के धार्मिक मतभेदों का उदाहरण देते हुए समझाया कि तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा साक्षात्कार के बाद उपदिष्ट धर्म का एकमत हो कर पालन करना चाहिये। उसके विषय में किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये। इस तरह अविवादास्पद रूप से पालन किया हुआ यह धर्म चिर काल तक स्थिर रहेगा। यों, यह अधिक जनों के लिये हितकर एवं सुखकर हो सकेगा।

एतदनन्तर, इस सूत्र में आयुष्मान् सारिपुत्र ने सभी पालनीय अथवा हापनीय (त्याज्य) धर्मों का एकक, द्विक भेद से दशक तक भेद कर प्रत्येक का विशद व्याख्यान किया है।

(११) दसुत्तरसुत्त

इस सूत्र का भी आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् के चम्पानगरी की गगगा नदी तट पर विराजते हुए, उन्हीं के सान्निध्य में दुःखमुक्ति हेतु एवं निर्वाण प्राप्ति हेतु भिक्षुसङ्घ को उपदेश किया था।

इस सूत्र में उन सभी सूत्रों का सङ्ग्रह है जो या तो भावना (अभ्यास) करने योग्य हैं, या जानने योग्य (परिज्ञेय) हैं, या प्रहातव्य (छोड़ने योग्य) हैं, या जो धर्म त्यागानूकूल हैं, या जो साधना के वैशिष्ट्य की तरफ बढ़ाने वाले हैं, या जो समझने में बहुत कठिन (दुष्प्रतिवेध) हैं, या जो धर्म निष्पादनीय (पूर्ण करने योग्य) हैं, या चिन्तन-मनन करने योग्य हैं, अथवा साक्षात्करणीय हैं।

ऐसे एक सौ (१००) धर्मों का इस सूत्र में विशद वर्णन है। इन धर्मों का यह वर्णन ग्रन्थ से ही जानने में सुविधाजनक रहेगा ॥

इस प्रकार दीघनिकाय के इस तृतीयभाग (पाथिक वग्ग) में एकादश (११) सूत्रों का व्याख्यान है ॥

The Present Volume : Its Place in the Tipiṭaka

The three Piṭakas represent the three sections of the Canon. Their subject matter and ways of treatment differ from one another. The five books of the Vinaya Piṭaka deal with the rules and regulations of monastic Discipline; the five Nikayas of the Sutta Piṭaka are collections of the discourses delivered by the Buddha at different places, on different occasions, and addressed to different congregations; and, the seven Pakaraṇas of the Abhidhamma Piṭaka are treatises on the technical psycho-ethical philosophy presented in terms and style suited to it.

The first Nikāya of the Sutta Piṭaka is the Dīgha Nikāya, a collection (Nikāya) of long (Dīgha) sermons. There are as many as 34 long sermons (Suttas) contained in it, divided in three books, called the Silakkhandhavagga, the Mahāvagga and the Pāthikavagga.

The present volume is an edition of the above third book, the Pāthikavagga. This name does not suggest any thing about the nature of the contents or the method of the book. A better name would have been '*Pāthikādi Vagga*'. Meaning 'the collection of Suttas of which Pāthika is the first.' It is in this sense that his name is given to it.

Two Suttas of this Volume, Sigālovāda and Ātānātiya, are undoubtedly pieces of outstanding individuality in the entire Tipiṭaka—the first as a Code for the lay disciples, and the second as a Ward-rune for the superstitious. They have been very often singled out and edited and printed as independent books for the use of the common people all over the Buddhist countries.

It is even possible to come accross such persons who are intimately acquainted with these Suttas, without knowing to which particular section or book of the Tipiṭaka they actually belong.



The Present Volume : Its Importance

It is interesting to note that two Suttas of the present volume— Pāsādika and Saṅgīti— give reference to the state of general confusion and discord that had been reigning amongst the followers of Nigaṇṭha Nātaputta, Lord Mahāvīra, the last Tīrthankara of Jainism, after his death at Pāvā; and to the anxiety that it had aroused in the heart of the Buddha and his chief disciples to be prepared to ward such danger in their own camp, by codifying the cardinal principles of the Dhamma. The Sampasādanīya and the Dasuttara Suttas also, though delivered under different backgrounds, seem to be making the same attempt. This shows that the need for convening a Great Council was felt much earlier than the words uttered by Subhadda in the presence of the Venerable Mahākassapa on the occasion of the Mahāparinibbāna and that the mind of the Sangha had already set working towards that direction.

This also throws a light on the present location of Pāvā, the place of passing away of Mahāvīra. The reference is to the Pava of the Mallas near Kusinārā, (not to the Pāvā of Magadha near Rājagaha). it is definite that there were two places at that time called by the name of Pava and that at both the places there were mango-groves— in Magadha, belonging to Pāvārika, and in the Malla country to Cunda. If a revision of view is thought necessary to determining the exact place where Lord Mahāvīra died, the above reference would deserve an important consideration.

The third Sutta gives a detailed account of the Buddhist mythological conception of a Cakkavatti king, that had been a common heritage of all the traditions of Indian culture; and, it would be fruitful to make a note of it for comparative studies. Similarly, the fourth Sutta, the Aggañña Sutta, is devoted to the Buddhist mythology of the process of dissolution and evolution; and, the seventh Sutta, Lakkhaṇa Sutta, to that of the thirty-two marks of a superman (Mahāpurisa). The best use of these references can be made in making comparative studies in the mythological traditions of India. The significance of the Ātānātiya Sutta, stands on par with the same as above as a mythological spell against the evil influence of hostile spirits, ghosts and demons.

In the mythological narration of the Cakkavatti king, however, a very meaningful principle has been propounded— that, poverty is the root cause of all degeneration, both spiritual and material, and that a regeneration of the nation and country cannot be possible without liquidating poverty. This shows that, side by side with the spiritual aspiration, the tradition was fully conscious of the practical problems of hard life. In the Saṅgīti Sutta, the first cardinal principle has been taught as *sabbe sattā āhāraṭṭhikā* or that all beings live on food.

Just as the earlier two volumes, this one also gives references to the different sects of mendicants and ascetics leading their own outlook of life. The character of Sunakkhatta is interesting to note. He was a follower of the Buddha and did actually believe that the way taught by him leads to Emancipation. Even then, some how or other, he developed an unfriendly attitude towards him and finally deserted his Order. Curiously enough, he gained faith in the ascetic Korakkhattiya who had taken the vow of adopting the behaviour of dog (Kukkuravatika) and in the ascetic Kaḷāra-mattaka who had taken the vow of living on nothing else but wine and flesh. Such Sadhus attracted the attention and veneration of the public, and they had succeeded in forming their own groups of followers. Some of them, like Bhaggava and Nigrodha, did recognise the greatness of the Buddha, and actually listened reverentially to his teachings. There were, on the other hand, recluses, like Pāthikaputta and Sunakkhatta, who were determinedly antagonistic to him, eager to oppose him in the public. All this throw a light on the religious background in which the Buddha had to carry on his mission.

Last but not the least, the importance of the present volume consists in the eighth Sutta, the Sigālovāda Sutta, which has a unique individuality of its own in the entire Pali canon. It is true that the teachings of the Buddha were principally directed to his assembly of homeless followers, who could fulfil more successfully the process of self-training. But, it does not mean that he did not inspire the lay devotees to a particular outlook of philosophy and practical living. At least, this Sutta, the Sigālovāda Sutta, is entirely devoted to the duties of a lay man in society towards different quarters. It is for his reason, that this piece has been singled out for studies and recitation by the Buddhist laity all over the world.



The Present Volume : A Summary

(1) Pāthika Sutta

The Buddha was staying at Anupiyā in the Malla country. One day, while he paid a visit to his hermitage, Bhaggava enquired if it was true that Sunakkhatta had forsaken him and his order, being dissatisfied with his Doctrine. The Buddha acknowledged that Sunakkhatta had gone away from him with a protest that he (the Buddha) did neither exhibit to him feats of superhuman power, nor did definitely tell him about the genesis of the world and the self. He further narrated how Sunakkhatta had developed a perverted appreciation for cynics like Korakkhattiya who behaved like a dog sprawling on the ground; and Kaḷāra-mattaka, a naked ascetic who had taken the vow of living only on spirituous drink and flesh.

The Buddha went on narrating the interesting story of Pāthikaputta, of Vesali, who boasted in the public that he was anxious to have an open spiritual duel with him (Buddha), a competition in exhibiting superhuman powers. Sunakkhatta took the initiative to arrange a public meeting of the Buddha with Pāthikaputta, at the latter's residence itself. He, making a wide announcement of it, had collected a grand audience, consisting of leading personages from all sections of the society. People, anxious to witness feats of superhuman powers to be performed by the two renowned monks, one trying to excell the other, thronged from all sides and filled the yard. The Buddha turned up first of all and took his seat in the front. But, Pāthikaputta got so much frightened to appear that, inspite of the best efforts of the leading persons, he could not be persuaded even to stir from the corner where he was hiding himself.

This dishonourable defeat of Pāthikaputta gave a shock to Sunakkhatta, who was inwardly wishing his superiority over the Buddha; still, he could not change his mind, and did actually break off.

After narrating this much of story of Bhaggava about the desertion of Sunakkhatta, the Buddha turned the topic of his discourse to the problem relating to the genesis of the world and the self, and he explained it according to the conception of Brahma and Manopadosika gods.

(2) Udumbarika Sihanāda Sutta

The Buddha was staying on the Gijjhakūṭa Hill, at Rājagaha. At that time, nigrodha Paribbājaka, a recluse, was sojourning there in Queen Udumbarikā's Park. A lay disciple, the householder sandhāna, happened to Nigrodha Paribbajaka and have a discussion on the personality and doctrine of the Buddha. In indignant words, Nigrodha said :— "Even as a one-eyed cow that, walking in a circle, follows only the outskirts, so is the Samana Gotama. Why forsooth, householder, if the Samana Gotama were to come to this assembly, with a single question only could we settle him; yea, methinks we could roll him over like an empty pot."

The Buddha heard these words of Nigrodha, with his clairsaudience; and, descending from Gijjhakūṭa, he came to Moranivāpa on the bank of the Sumāgadhā, and began to walk to and fro in the open air. Gradually he entered the park and went up to the assembly. Nigrodha greeted him respectfully and offered him an honourable seat. As he himself professed self-mortifying austerities, he requested the Buddha to explain about the fulfilment and non-fulfilment of the same.

The Buddha pointed out the several ways in which the practice of austerities is liable to be blemished, namely— if he begins to feel proud of himself for practising such austerities, and exalt himself and despise others, becomes infatuated and grows careless, gets attached to gains and fame.

It was so true, that Nigrodha gave his ready acceptance :— "Verily, lord, these things are blemishes in the practice of self-mortification."

Through a slow gradual process, the Buddha led him to realise the futility of practising self-mortification, which does not help in purifying the mind, and that the real way to the ultimate goal of man consists in the fulfilment of the Eightfold Noble Path.

The Householder Sandhāna reminded Nigrodha of the indignant statement that he had made in the beginning. He felt ashamed of it, confessed his mistake and requested the Buddha to be kind enough to forgive him for it. The Buddha said :— "Verily, Nigrodha, it was an offence that you had committed in speaking thus of me. And, inasmuch as you maketh its confession I do accept it. But I, Nigrodha, say this to you— Let a man of intelligence come to me, who is honest, candid, straightforward— I will instruct him, I will teach him the Norm. If he practises according as he is taught, he will surely realise the Ultimate in no time.

"May be, Nigrodha, you will think : the Samaṇa Gotama has said this from a desire to get pupils; but you are not thus to explain my words. Let him who is your teacher be your teacher still. May be, Nigrodha, you will think, the Samana Gotama has said this from a desire to make us secede from our rule; but you are not thus to explain my words. Let that which is your rule be your rule still....wherefore, Nigrodha, I speak thus, neither because I wish to gain pupils, nor because I wish to confirm you in bad doctrines, or detach you from good doctrines. But, O Nigrodha, there are bad things not put away, corrupting, entailing birth renewal, bringing suffering, resulting in ill, making for birth, decay and death in the future. And it is for the putting away of these that I teach the Norm."

(3) Cakkavatti Sihanāda Sutta

The Buddha was staying at Mātulā, in the Magadha country. There he addressed the Bhikkhus thus :— "O Bhikkhus, be a lamp unto yourselves, a refuge unto yourselves, depending on no one else as your refuge; let the Dhamma be your lamp, let the Dhamma be your refuge, depend not on any things else as your refuge."

He narrated to them the story of king Dalhanemi, a righteous king ruling in righteousness, lord of the four quarters of the earth, conqueror, the protector of his people. He possessed the seven Ratanas, to wit, the Wheel, the Elephant, the Horse, The Gem, the Woman, the Treasurer, and the Captain. When he became old, he established his eldest son on the throne and renounced the world as a monk. This new king too fulfilled the duties of a Cakkavatti and held the tradition that he had inherited. For seven dynasties the tradition of Cakkāvatti-kingship was maintained. The eighth king did not care to learn his duties. He began to govern his people in his own way. The great short-coming of his was that he failed to provide economic security to the people, due to which poverty became widespread in the country. Poverty begot theft; theft begot murder and all other evils. This led to a general deterioration in the life of the generation in all directions.

The Buddha predicted that in future there would arise a Cakkavatti king, named Saṅkha, who would liquidate poverty and restore the high level of moral and social life of men.

The Buddha summed up his sermon, again, with the arousing words : "O Bhikkhus, be a lamp unto yourselves, a refuge unto yourselves, depending on no one else as your refuge; let the Dhamma be your lamp, let the Dhamma be your refuge, depend not on any thing else as your refuge."

(4) Aggañña Sutta

The Buddha was staying in the mansion of Migāramatā, in Pubbārāma, near Savatthi. There, one day, while he was walking to and from in the open air, Bhāradvāja and Vāsettha, two young novices, came up to him and began to walk behind him, as he was imparting some instructions to them. Vāsettha reported that the Brāhmaṇas assert that they are the best amongst mankind, for they are born from the mouth of Brahmā. The Buddha pointed out that it was utterly untrue; for, every one knows that they are born from the womb of their mothers, just as any other man. He explained that the greatness of a man consists in his own personal worth. Birth itself cannot elevate a sinner or lower the position of a truly meritorious one : thus, it is Dhamma that is great. To elucidate the same, he said :—

"O Vāsettha, following is an illustration for understanding how the Dhamma is the best among this folk both in this life and in the next. King Pasenadi of Kosala is aware that the Samaṇa Gotama has gone forth from the clan of the Sākiyas, who are his vassals. They render him homage and respectful salutation, they rise and do him obeisance, and treat him with ceremony. Now, just as the Sakiyans treat king Pasenadi of Kosala, so does the king treat the Tathāgata. It is because the king honours the Dhamma, reveres the Dhamma, regards the Dhamma, that he renders homage and respectful salutation of the Tathāgata."

The Buddha taught them to identify themselves as sons of the Sākya Muni and forget all their distinctions and differences due to birth.

Then, the Buddha narrated to them how after the dissolution of the universe beings were born in the Ābhassara realm; after a long long time this world began to re-volve; and there existed only mental beings, feeding on rapture, self-luminous, traversing the air....and, after a long time, earth with its savour was spread out in the waters, even as well-made ghee or pure butter, so was its colour, even as the flawless honey of the bee, so sweet was it; then beings tasted it and became greedy; earth became hard; rice grew wild in unploughed field; there arose sexual lust; theft was introduced; appointment of a leader as king was made; those who tried to overcome evils began to be known as Brāhmaṇas; the traders became known as Vessas; those who lived on hunting and such like trifling pursuits began to be known as Suddas; from all these classes those who renounced mundane pursuits and took to the holy life of a monk began to be called as Samanas; and, finally, one who became an Arhant occupied the highest status of all. All is such because of the greatness of the Dhamma.

(5) Sampasādanīya Sutta

The Buddha was staying in the Mango Grove of Pāvārika, at Nālandā. There, Sāriputta said his homage to him and exclaimed :— "Lord, as regards the higher wisdom, there had been none in the past, there will be none in future, and there is none in the present who can be held equal to you."

The Buddha said :— "Grand and bold are these words of thine, Sāriputta; thou hast roared a veritable lion's roar in this that thou hast said!"

Sāriputta humbly submitted that the Dhamma was so well expounded by him that all of his doubts were dispelled and he had realised that it was unsurpassable. He gave reference to the different aspects of the greatness of the teachings and asserted that all these had led to generate in his heart an unflinching faith in the Buddha and his doctrine.

(6) Pasadika Sutta

The Buddha was sojourning in the Sākyan country. At that time, Nigaṇṭha Naṭaputta had just died at Pava and there had arisen a great confusion and discord amongst his followers. Now, Cunda, the Novice, having passed the rainy season at Pava, came to see the venerable Ānanda at Rāmagāma. He gave him the news of the death of Nigaṇṭha Naṭaputta and the subsequent state of confusion that had arisen in his followers. Then, both of them went together to the Buddha and delivered the news to him. The Buddha said that there was no wonder about it; for, such state of affairs is natural to take place in the Order of one who is less than a Supreme Enlightened One. There was no such danger in his own Order; for, his disciples had realised the different stages of sainthood and that he had made a clear enumeration of the chief principles of his teachings, namely—

The Four Ways of Mindfulness, the Four Supreme Efforts, the Four Paths of Efficacy, the Five Powers, the Five Forces, the Seven Factors of Enlightenment, the Noble Eightfold Path.

The Buddha said. :— "These, O Cunda, are the Truths which you must learn and not quarrel over, in order that this pure religion way last long, and be perpetuated, in order that it may be for the good and the happiness of the many.

"A new doctrine, Cunda, do I teach for subduing the mental intoxicants that are generated even in this present life also for extirpating them in the after-life....The Arahant, in whom the intoxicants are destroyed, is incapable of performing nine things :— he is incapable of deliberately depriving a living creature of life; he is incapable of taking what is not given so that it constitutes theft; he is incapable of sexual impurity; he is incapable of deliberately telling lies; he is incapable of laying up treasure for indulgence in worldly pleasure as he used to do in the life of the house; he is incapable of taking a wrong course through partiality; he is incapable of taking a wrong course through hate; he is incapable of taking a wrong course through stupidity; he is incapable of taking a wrong course through fear.

"The Supremely Enlightened. One is called Tathāgata because as he says, so he does; as he does, so he says. He has surpassed all, and has not been surpassed by any, for that is he called Tathāgata."

(7) Lakkhaṇa Sutta

The Buddha was staying in the Jetavana Monastery of Sāvātthi. There he addressed the Bhikkhus and said :— "There are thirty-two special marks of the superman, O Bhikkhus, for whom two careers lie open, and none other. If he lives at home, he becomes a Cakkavatti king, a righteous Lord of the Right, Ruler of the four quarters, conqueror, Guardians of the People, is Owner of the Seven Treasures. His seven treasures are— The Wheel treasure (Cakkaratanam), the Elephant treasure (Hatthi-ratanam), the Horse treasure (Assaratanam), The Gem treasure (Mani-ratanam), the Woman treasure (Itthiratanam), the Treasurer treasure (Gahapati-ratanam), and the captain treasure (Pariñāyaka-ratanam).

"But, if such a one renounces home and adopts the homeless life of a monk, he becomes a Buddha Supreme, dispeller of the veil of darkness from the world."

The thirty two special marks of the Superman are the following :—

1. He hath feet with level tread,
2. Thousand-spoked wheels appear on the soles of his feet,
3. He has projecting heels,
4. He is long in the fingers and toes,
5. His hands and feet are soft and tender,
6. His hands and feet are like a net,
7. His ankles are like rounded shells,
8. His legs are like an antelope's,
9. Standing and without bending he can touch and rub his knees with either hands,

10. His male organs are concealed in a sheath,
11. His complexion is of gold colour,
12. His skin is so delicately smooth that no dust clings to his body,
13. The down on it grows in single hair one to each pore,
14. The down on his body turns upward, every hair of it, blue black in colour like eye-paint, in little curling rings, curling to the right,
15. He has a frame divinely straight,
16. He has the seven convex surfaces,
17. The front half of his body is like a lion's,
18. There is no furrow between his shoulders,
19. His proportions have the symmetry of the banian tree; the length of his body is equal to the compass of his arms,
20. His bust is equally rounded,
21. His taste is supremely acute,
22. His jaws are as a lion's,
23. He has forty teeth,
24. His teeth are regular,
25. His teeth are lustrous.
26. The eye-teeth are very custrons,
27. His tongue is long,
28. He has a divine voice like that of the Karavika bird,
29. His eyes are intensely blue,
30. His eye-lashes are like that of a cow,
31. Between his eyebrows there appears a mole white and soft,
32. His head is like a royal turban.

The Buddha further explained, one by one, how these marks are obtained as a result of the good actions of previous birth.

(8) Sigālovāda Sutta

The Buddha was staying in the Venuvana monastery at Rājagaha. Now, at this time, young Sigāla, a householder's son, rising betimes, went forth from Rājagaha, and with wet hair and wet garments and clasped hands uplifted, paid worship to the several quarters of earth and sky :— to the east, south, west, and north, to the nadir and the zenith.

The Buddha saw him there and enquired why was he worshipping the directions. Young Sigāla said :— "Sir, my father, when he was a-dying, said to me— dear son, you should worship the quarters of earth and sky. So I, sir, honouring my father's word, rise betimes and, leaving Rājagaha, worship on this wise."

The Buddha taught him that the proper way of worshipping the four directions are different from it; and that the following should be looked upon as the six quarters :— parents as the east, teachers as the south, wife and children as the west, friends and companions as the north, servants and work-people as the nadir, religious teachers and Brāhmaṇas as the zenith. And, the

proper way of worshipping these quarters consisted in fulfilling one's duties towards them. The Buddha further preached to him what these duties are and how they are accomplished.

This opened the eyes of Sigala; and he took refuge in the Triple Gem of the Buddha, Dhamma and Saṅgha.

(9) Ātānātiya Sutta

The Buddha was staying on the Gijjhakūṭa Hill, at Rājagaha.

There, the Guradian-gods of the four directions approached him with a great army of Yakkhas, of Gandhabbas, and Kumbhandas; and paid their homage to him.

Then king Vessavana spoke thus to the Buddha :— Lord, there are many evil spirits who are hostile to you, the Dhamma and the brotherhood; for, they are averse to restraint and holy life. It is possible, they might do harm to your disciples dwelling in secluded places for practising meditation. They should learn, therefore, The Ātānātiya ward-rune and recite them daily for their safety and protection against such dangers.

King Vessavana then recited before the Buddha the stanza of Ātānātiya spell, which, first of all, consisted of offering adoration of all the Buddhas— Vipassī, Sikhī, Vessabhū, Kakusandha, Koṇāgamana, Kassapa, Angīrasa and Sākya; and, secondly invoking the protection of the sipirits of different planes and power, such as— Kumbhaṇḍas, Nāgas, Virūpākha, Ātānāṭa, Kusināṭa, Tatolā, Tattalā, Ojasī, Ariṭṭha, etc.

(10) Saṅgīti Sutta

While going on a tour, the Buddha reached Pāvā, the Capital of the Mallas, and put up in the mango-grove of Cunda, the smith. The people offered him an invitation to visit their built mote-hall and to offer his blessings to them.

On arriving at the door, the Buddha washed his feet and entered the hall, and took his seat facing the east, leaning against the central pillar. The Bhikkhus also washed their feet and entered the hall ranging themselves against the western wall and facing the east, behind the Buddha. The Mallas of Pava also washed their feet and entered the hall, ranging themselves against the eastern wall and facing the west with the Buddha before them.

The Buddha delivered a discourse to them till late at night. Then, the meeting was dispersed and the Mallas worshipped the Buddha and left the hall. The Bhikkhus were left behind seated where they were, wrapped in silence. As the Buddha felt tired, he stretched himself on one side, allowing Sāriputta to address the Bhikkhus.

Sāriputta drew the attention of the Bhikkhus to the great confusion and discord that had reigned amongst the followers of Nigaṇṭha Nātaputta who had recently died at Pāvā, and asserted that there was no possibility of that in the Order of the Buddha, that was based on Doctrine well proclaimed by him. He preached that they should remember their cardinal rules and prin-

ciples most definitely and observe them with full unanimity. He gave them an enumeration of the Dhammas, arranged in groups of one, two, three....ten, as:—

What is the single principle ?

All beings live on food,

What are the twin principles ?

Mind and Body.

Patience and gentleness.

Mindfulness and intelligence.

Calm and insight.

Wisdom and Liberation.

What are the fivefold principles?

Five aggregates (*Panca Khandha*).

Five hindrances (*Pacna Nivarana*).

What are the tenfold principles?

Ten circles for meditation (*Kasinani*).

Ten channels of action (*Kammapatha*).

(11) *Dasuttara Sutta*

The Buddha was staying Campā, on the banks of the Lake Gaggarā.

At that time, Sāriputta delivered a discourse on the Dhamma to the assembly of Bhikkhus, enumerating the cardinal principles arranged in groups from one to ten, as under :—

There is one thing, friends, that helpeth much, one thing that is to be developed, one thing that is to be understood, one thing that is to be eliminated.... one thing that is to be realised.

Which one thing helpeth much ? Zeal in things that are good.

Which one thing is to be developed ? Mindfulness.

Which one thing is to be understood? Contact as a condition of intoxicants (*Asavas*) and of grasping.

Which one thing is to be eliminated ? The conceit : 'I am'.

Which one thing is to be thoroughly learnt ? All beings live on food.

Which one thing is to be realised ? Sure and unshakable emancipation of mind.

....Which five things help much? Faith, good health, honesty, energy, insight.

Which five things are to be developed ? Five factors of perfect concentration.

Which five things are to be understood ? five aggregates of grasping (*upādānakkandha*).

Ten that must be developed—the ten discs (*Kasiṇa*).

Ten that must be eliminated—the ten wrong factors, to wit, wrong views, wrong purposes, wrong speech, wrong action, wrong livelihood, wrong effort, wrong mindfulness, wrong concentration, wrong knowledge, wrong emancipation.

THE PĀLI ALPHABET IN DEVNĀGARI AND ROMAN CHARACTERS

VOWELS

अ = a आ = ā इ = i ई = ī उ = u ऊ = ū ए = e ओ = o

CONSONANTS WITH VOWEL "A"

क ka	ख kha	ग ga	घ gha	ङ ṅa
च ca	छ cha	ज ja	झ jha	ञ ña
ट ṭa	ठ ṭha	ड ḍa	ढ ḍha	ण ṇa
त ta	थ tha	द da	ध dha	न na
प pa	फ pha	ब ba	भ bha	म ma
य ya	र ra	ल la	व va	स sa
	ह ha	ळ ḷa	अं am	

VOWELS IN COMBINATION

क ka	का kā	कि ki	की kī	कु ku	कू kū	के ke	को ko
ख kha	खा khā	खि khi	खी khī	खु khu	खू khū	खे khe	खो kho

CONJUNCT-CONSONANTS

क kka	ञ ṅca	द dva	म्ब mba
क्ख kkha	ञ्च ṅcha	ध dhya	म्भ mbha
क्य kya	ञ्ज ṅja	ध्व dhva	म्म mma
क्रि kri	ञ्झ ṅjha	न्त nta	म्य mya
क्ल kla	ट ṭṭa	न्त्वा ntva	म्ह mha
क्व kva	ठ ṭṭha	न्द nda	य्य yya
ख्य khya	ड ḍḍa	न्द्र ndra	य्ह yha
ख्व khva	ढ ḍḍha	न्ध ndha	ल्ल lla
ग gga	ण ṇṭa	न्न nna	ल्य lya
ग्ग ggha	ण्ठ ṇṭha	न्य nya	ल्ह lha
ग्य gya	ण्ड ṇḍa	ह nha	व्ह vha
ग्र gra	ण्ण ṇṇa	प्प ppa	स्त sta
ङ्क ṅka	ण्ह ṇha	प्प प्पा	स्त्र stra
ङ्ख ṅkha	त tta	प्प प्पा	स्न sna
ङ्ग ṅga	त्थ ttha	प्य pya	स्य sya
ङ्घ ṅgha	त्व tva	प्ल pla	स्स ssa
च्च cca	त्या tya	ब्ब bba	स्म sma
च्छ ccha	त्र tra	ब्भ bbha	स्व sva
ज्ज jja	द्द dda	व्य bya	ह्य hma
ज्झ jjha	द्ध ddha	ब्र bra	ह्य hva
ञ्ज ñna	द्य dya	म्प mpa	ल्ल ḷha
ज्ह ṅha	द्र dra	म्फ mpha	

1 = ā 2 = i 3 = ī 4 = u 5 = ū 6 = e 7 = o

1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

दीघनिकायपालि

(३. पाथिकवग्गो)

सुत्तसूची

१. पाथिकसुत्तं	पिट्ठङ्का	५. तपस्सी तेषु ठानेसु परिसुद्धो ह्येति	६१९
१. सुनक्खत्तस्स भगवति अस्सब्बा	५८१	६. तपोजिगुच्छय अग्गज्जं च सारं च	६२१
न मे भगवा इद्धिपाटिहारियं करोति!	५८२	७. सन्धानो गहपति निग्रोधं चोदेसि	६२६
न मे भगवा अग्गज्जं पज्जपेति!	५८३	८. निग्रोधो अच्छयं अच्छयतो	
२. सुनक्खत्तो कोरक्खत्तिये पसन्नो	५८५	पटिजानि	६२७
३. सुनक्खत्तो कळारमट्टके पसन्नो	५८८	३. चक्खवत्तिसुत्तं	
४. अचेलो पाथिकपुत्तो	५९०	१. दळ्हेनेमि चक्खवत्तिराजा	६३१
५. पाथिकपुत्तस्स आरामे परिसा		२. अरियचक्खवत्तिवत्तं	६३३
सन्निपति	५९३	३. चक्करतनं	६३४
६. पराभूतरूपो पाथिकपुत्तो	५९६	४. दालिद्विये वेपुल्लं गते	६३७
लिच्छविमहामत्तो तं आनेतुं गच्छि	५९७	दसवस्सायुकसमयो	६४३
जालियो तं आनेतुं गच्छि	५९९	५. सङ्खो नाम चक्खवत्ती राजा	
जरसिङ्गालूपमो पाथिकपुत्तो	६००	उप्पजिस्सति	६४५
७. भगवा इद्धिपाटिहारियं अकासि	६०३	सङ्खराजउप्पत्ति	६४६
८. अग्गज्जपज्जापनं आरम्भ देसना	६०४	६. मेत्तेय्यो नाम भगवा	
इस्सरकुत्तं ब्रह्मकुत्तं	६०४	उप्पजिस्सति	६४७
(क) ब्रह्मा इस्सरो कत्ता	६०४	७. अत्तदीपा विहरथ धम्मदीपा	६४८
(ख) खिड्ढापदोसिका देवा	६०६	गोचरे चरथ	६४८
(ग) मनोपदोसिका देवा	६०८	४. अग्गज्जसुत्तं	
(घ) अधिच्चसमुप्पन्नं	६०८	१. वासेट्ठभारद्वाजा भगवन्तं	
(ङ) सुभं विमोक्खं	६०९	उपसङ्कमिंसु	६५१
२. उदुम्बरिकसुत्तं		२. धम्मो हि सेट्ठो जनेतस्मि	६५२
१. सन्धानो गहपति परिब्बाजकारामं		धम्मकायो तथागतो	६५४
उपसङ्कमि	६११	३. अयं लोको संवट्ठति विवट्ठति	६५५
२. भगवा पि परिब्बाजकारामं		रसपथविपातुभावो	६५५
उपसङ्कमि	६१३	चन्दिमसुरियादिपातुभावो	६५६
३. निग्रोधो तपोजिगुच्छय पज्जं पुच्छि	६१४	भूमिपप्पटकपातुभावो	६५७
४. तपोजिगुच्छाय उपक्खिलेसा	६१५		

पदालतापातुभावो	६५८	३. एवं हेतं होति स्वाक्खाते	
अकट्टपाकसालिपातुभावो	६५८	धम्मविनये	६८५
इत्थिपुरिसलिङ्गपातुभावो	६५९	४. एवरूपो सत्था अनुतप्पो होति	६८७
मेशुनधम्मसमाचारो	६५९	५. एवरूपो सत्था अननुतप्पो होति	६८७
सालिविभागो	६६१	६. ब्रह्मचरियपारिपूरिअङ्गानि	६८८
आदिब्रादानादि पञ्चायि	६६२	७. सब्बेहि सङ्गायितब्बं न	
महासम्मतराजा सम्मन्नितो	६६२	विवदितब्बं	६९२
ब्राह्मणमण्डलं	६६३	८. सब्बह्यचारिहि धम्मं भासिते	६९२
वेस्समण्डलं	६६४	९. पटिसङ्ख्यो योनिस्सो पच्चयपटिसेवना	६९४
सुहमण्डलं	६६५	१०. चत्तारे अरिया सुखल्लिकानुयोगा	६९५
४. खीणासवो नेसं अगमक्खायति	६६५	११. खीणसवस्स अभब्बानि ठानानि	६९७
बोधिपक्खियभावना	६६६	१२. तस्मा 'तथागतो' ति वुच्चति	६९८
५. सम्पसादनीयसुत्तं		१३. किं अब्बाकतं किं वा ब्याकतं	७००
१. सारिपुत्तस्स सीहनादो	६६८	पुब्बन्तपरन्तसहगतदिट्ठिनिस्सया	७०२
२. एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं		अपरन्तसहगतदिट्ठिनिस्सया	७०३
देसेति	६६९	७. लक्खणसुत्तं	
(१) कुसलेसु धम्मेसु	६६९	१. द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणानि	७०६
(२) आयतनपण्णत्तीसु	६७०	२. इमस्स कम्मस्स कटत्ता इदं	
(३) गब्भावाक्कन्तीसु	६७०	लक्खणं	७०९
(४) आदेसनविधासु	६७१	(१) सुप्पतिट्ठितपादता	७०९
(५) दस्सनसमापत्तीसु	६७२	(२) पादतलचक्रता	७१०
(६) पुगलपञ्चत्तीसु	६७३	(३-५) आयतपण्हितादि	७१२
(७) पधानेसु	६७३	(६) सत्तुस्सदता	७१३
(८) पटिपदासु	६७४	(७-८) करचरणमुदुजालता	७१४
(९) भस्ससमाचारे	६७४	(९-१०) उस्सङ्खपाद-उद्भङ्गलोमता	७१५
(१०) अनुसासनविधासु	६७५	(११) एणिजङ्कता	७१७
(११) परपुगलविमुत्तिजाणे	६७६	(१२) सुखुमच्छविता	७१८
(१२) सस्सतवादेसु	६७६	(१३) सुवण्णवण्णता	७१९
(१३) पुब्बेनिवासानुस्सतिजाणे	६७७	(१४) कोसोहितवत्थगुहता	७२०
(१४) सत्तानं चुतूपपातजाणे	६७८	(१५-१६) निग्रोधपरिमण्डलता	
(१५) इन्द्रिविधासु	६७९	अनोनमन्तजाणु परिमज्जनता च	७२१
३. सत्था अब्भनुमोदि	६८०	(१७-१९) सीहपुब्बद्भकायतादि	७२३
६. पासादिकसुत्तं		(२०) रसगसगिता	७२४
१. निगण्ठो नाटपुत्तो कालङ्कतो	६८३	(२१-२२) अभिनीलनेत्तता गोप-	
२. एवं हेतं होति दुरक्खाते		खुमता च	७२५
धम्मविनये	६८४		

(२३) उण्हीससीसता	७२६	२. आटानाटिया रक्खा	७४९
(२४-२५) एकेकलोमता उण्णाभ- मुकन्तरता च	७२७	३. महासेनापतीनं उण्णापेतब्बं	७५५
(२६-२७) चत्तालीसदन्ता अविरळ- दन्ता च	७२९	४. सत्था अब्भनुमोदि	७५७
(२८-२९) पट्टजिक्ता ब्रह्मस्सता च	७३०	१०. सङ्गीतिसुत्तं	
(३०) सीहहनुता	७३१	१. सारिपुत्तो अनुज्जातो धम्मिया कथाय	७६४
(३१-३२) समदन्ता सुक्कदाठता च	७३२	२. निगण्ठा भिन्ना भण्डनजाता	७६६

८. सिङ्गालसुत्तं

१. सिङ्गालको गहपतिपुत्तो	७३५
२. एवं छ दिसा नमस्सितब्बा	७३५
(१) चत्तारो कम्मकिलेसा पट्टीना ह्येति	७३६
(२) चत्तूहि ठग्वेहि पापकम्मं न करोति	७३६
(३) छ अपायमुखानि न सेवति	७३७
(क) सुरामेरयस्स छ आदीनवा	७३७
(ख) विकालचरियाय छ आदीनवा	७३८
(ग) समजाभिचरणस्स छ आदीनवा	७३८
(घ) जूतप्पमादस्स छ आदीनवा	७३८
(ङ) पापमित्ताय छ आदीनवा	७३८
(च) आलस्स छ आदीनवा	७३९

३. अमिता मित्तपतिरूपक्क वेदितब्बा	७४०
४. मित्ता सुहदा वेदितब्बा	७४२
५. छद्दिसापटिच्छादनं	७४३
(१) पुरत्थिमा दिसा मातापितरो	७४४
(२) दक्खिणा दिसा आचरिया	७४४
(३) पच्छिमा दिसा भरिया	७४५
(४) उत्तरा दिसा मित्तामच्चा	७४५
(५) हेट्ठिमा दिसा दासकम्मकरा	७४५
(६) उपरिमा दिसा समणब्राह्मणा	७४६

९. आटानाटियसुत्तं

१. चत्तारो महाराजा	७४८
--------------------	-----

१०. सङ्गीतिसुत्तं

१. सारिपुत्तो अनुज्जातो धम्मिया कथाय	७६४
२. निगण्ठा भिन्ना भण्डनजाता	७६६
३. तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं	७६६
एको धम्मो सम्मदक्खातो	७६७
द्वे धम्मा सम्मदक्खाता	७६७
तयो धम्मा सम्मदक्खाता	७६८
चत्तारो धम्मा सम्मदक्खाता	७७३
पञ्च धम्मा सम्मदक्खाता	७८४
छ धम्मा सम्मदक्खाता	७९२
सत्त धम्मा सम्मदक्खाता	७९८
अट्ठ धम्मा सम्मदक्खाता	८०२
नव धम्मा सम्मदक्खाता	८०९
दस धम्मा सम्मदक्खाता	८१४

११. दसुत्तरसुत्तं

१. आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि	८२०
एको धम्मो	८२०
द्वे धम्मा	८२१
तयो धम्मा	८२२
चत्तारो धम्मा	८२४
पञ्च धम्मा	८२५
छ धम्मा	८२९
सत्त धम्मा	८३३
अट्ठ धम्मा	८३६
नव धम्मा	८४३
दस धम्मा	८४७
तस्सुद्धानं	८५२

सुत्तपिटके

दीघनिकायपालि

(३. पाथिकवग्गो)

[३]

कठपौरी

श्रीपद्मलनीति

(महाकाशी ५)

[६]

दीघनिकायपालि

३. पाथिकवग्गो

१. पाथिकसुत्तं

१. सुनक्खत्तस्स भगवति अस्सब्बा

१. एवं मे सुत्तं। एकं समयं भगवा मल्लेसु विहरति अनुपियं नाम [N.3, B.1, R.1] मल्लानं निगमो। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय अनुपियं पिण्डाय पाविसि। अथ खो भगवतो एतदहोसि—“अतिप्पगो खो ताव अनुपियायं पिण्डाय चरितुं। यन्नूनाहं येन भग्गवगोत्तस्स परिब्बाजकस्स आरामो येन भग्गवगोत्तो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमेय्यं” ति।

२. अथ खो भगवा येन भग्गवगोत्तस्स परिब्बाजकस्स आरामो येन भग्गवगोत्तो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि। अथ खो भग्गवगोत्तो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—[R.2] “एतु खो, भन्ते, भगवा। स्वागतं, भन्ते, भगवतो। चिरस्सं खो, भन्ते, भगवा इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। निसीदतु, भन्ते, भगवा। इदमासनं पज्जत्तं” ति। निसीदि भगवा पज्जत्ते आसने। भग्गवगोत्तो पि खो परिब्बाजको अज्जतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि।

दीघनिकायपालि

३. पाथिकवर्ग

१. पाथिकसूत्र

१. सुनक्षत्र की भगवान् में अश्रद्धा

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) मल्ल देश में अनूपिया नामक मल्लों के निगम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब भगवान् पूर्वाह्न में तैयार होकर, पात्र—चीवर लेकर, अनूपिया में भिक्षाहेतु प्रविष्ट होने लगे। उस समय उनके मन में यह विचार आया—“अभी तो भिक्षा के लिये अनूपिया में जाने का समय बहुत पहले है। क्यों न मैं (उतने समय के लिये) भार्गवगोत्र परिव्राजक की कुटिया पर, जहाँ भार्गवगोत्र परिव्राजक रहता है, चलूँ।”

२. तब भगवान् भार्गवगोत्र परिव्राजक की कुटिया पर भार्गवगोत्र परिव्राजक के पास पहुँचे। तब वह भार्गवगोत्र परिव्राजक भगवान् से यों बोला—“आइये, पधारिये, भन्ते! भगवन्! आप भगवान् का स्वागत है! भगवान् ने बहुत काल बाद इधर आने का समय निकाला। भन्ते! आप भगवान् विराजें। यह आसन बिछा हुआ है।” भगवान् बिछे आसन पर विराजे। (इधर) भार्गवगोत्र परिव्राजक भी एक नीचा

एकमन्तं निसिन्नो खो भग्गवगोतो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—“पुरिमानि, भन्ते, दिवसानि [B.2] पुरिमतरानि सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं एतदवोच— [N.4] ‘पच्चक्खातो दानि मया, भग्गव, भगवा। न दानाहं भगवन्तं उद्दिस्स विहरामी’ ति। कच्चेतं, भन्ते, तथेव यथा सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो अवचा” ति ?

३. “तथेव खो एतं, भग्गव, यथा सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो अवच। पुरिमानि, भग्गव, दिवसानि पुरिमतरानि सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो मं एतदवोच— ‘पच्चक्खामि दानाहं, भन्ते, भगवन्तं। न दानाहं, भन्ते, भगवन्तं उद्दिस्स विहरिस्सामी’ ति। एवं वुत्ते, अहं, भग्गव, सुनक्खत्तं लिच्छविपुत्तं एतदवोचं—‘अपि नु ताहं, सुनक्खत्त, एवं अवचं—एहि त्वं, सुनक्खत्त, ममं उद्दिस्स विहराही’ ति ?

‘नो हेतं, भन्ते’।

[R.3] ‘त्वं वा पन मं एवं अवच—अहं, भन्ते, भगवन्तं उद्दिस्स विहरिस्सामी’ ति।

‘नो हेतं, भन्ते’।

‘इति किर, सुनक्खत्त, नेवाहं तं वदामि—एहि त्वं, सुनक्खत्त, ममं उद्दिस्स विहराही ति; नपि किर मं त्वं वदेसि—अहं, भन्ते, भगवन्तं उद्दिस्स विहरिस्सामी ति। एवं सन्ते, मोघपुरिस, को सन्तो कं पच्चाचिक्खसि ? पस्स, मोघपुरिस, यावं च ते इदं अपरद्धं’ ति। (१)

न मे भगवा इद्धिपाटिहारियं करोति

४. ‘न हि पन मे, भन्ते, भगवा उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करोती’ ति।

‘अपि नु ताहं, सुनक्खत्त, एवं अवचं—एहि त्वं, सुनक्खत्त, ममं उद्दिस्स विहराहि, अहं ते उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सामी’ ति ?

आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस भार्गवगोत्र परिव्राजक ने भगवान् से यों कहना प्रारम्भ किया— “भन्ते! कुछ दिन पहले सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र मेरे पास आया था। उसने मेरे पास आकर यह कहा— ‘भार्गव! मैंने अब भगवान् (के धर्म) को छोड़ दिया है। अब मैं भगवान् द्वारा बताये धर्म के अनुसार साधना नहीं करता।’ भन्ते! क्या सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र का कहना सत्य है?”

३. “हाँ, भार्गव! सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र ने जो तुम से कहा है सत्य ही कहा है। कुछ दिन हुए, सुनक्षत्र...जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर मेरा अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। तब उसने मुझसे कहा— ‘भन्ते! अब भगवान् (के धर्म) को छोड़ रहा हूँ। अब मैं आपके (द्वारा उपदिष्ट) धर्म को नहीं मानता।’ ऐसा कहने पर मैंने उससे पूछा— ‘सुनक्षत्र! क्या मैंने तुझसे कभी कहा था— सुनक्षत्र! आ, मेरे धर्म को स्वीकार कर।’ “नहीं, भन्ते!”

‘या फिर तुमने ही मुझसे कहा था— ‘भन्ते! मैं भगवान् के धर्म को स्वीकार करता हूँ?’ “

‘नहीं, भन्ते!’

‘सुनक्षत्र! न तो मैंने...न तुमने ही...स्वीकार करता हूँ। तब मूर्ख! तू क्या मानता हुआ किसका त्याग कर रहा है। देख, यह तेरा ही अपराध है। (१)

भगवान् मुझे अपना ऋद्धिबल नहीं दिखाते

४. ‘भन्ते! भगवान् मुझे अपना अलौकिक ऋद्धिबल (चमत्कार) नहीं दिखाते।’

‘नो हेतं, भन्ते’।

‘त्वं च पन मं एवं अवच—अहं, भन्ते, भगवन्तं उद्दिस्स विहरिस्सामि, भगवा मे उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सती’ ति ?

‘नो हेतं, भन्ते’।

‘इति किर, सुनक्खत्त, नेवाहं तं वदामि—एहि त्वं, सुनक्खत्त, ममं उद्दिस्स विहराहि, अहं ते उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सामी ति; न पि किर मं त्वं वदेसि—अहं, भन्ते, भगवन्तं उद्दिस्स विहरिस्सामि, भगवा मे उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं [N.5] करिस्सती ति। एवं सन्ते, मोघपुरिस, को सन्तो कं पच्चाचिक्खसि ? तं किं मज्जसि, [B.3] सुनक्खत्त, कते वा उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारिये अकते वा उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारिये, यस्सत्थाय मया धम्मो देसितो सो निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाया’ ति ?

‘कते वा, भन्ते, उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारिये अकते वा उत्तरिमनुस्स—[R.4] धम्मा इद्धिपाटिहारिये, यस्सत्थाय भगवता धम्मो देसितो सो निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाया’ ति।

‘इति किर, सुनक्खत्त, कते वा उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारिये अकते वा उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारिये, यस्सत्थाय मया धम्मो देसितो सो निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाया। तत्र, सुनक्खत्त, किं उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं कतं करिस्सति ? पस्स, मोघपुरिस, याव च ते इदं अपरद्धं’ ति। (२)

न मे भगवा अगगज्जं पज्जपेति

५. ‘न हि पन मे, भन्ते, भगवा अगगज्जं पज्जपेती ति।

‘अपिनु ताहं, सुनक्खत्त, एवं अवचं—एहि त्वं, सुनक्खत्त, ममं उद्दिस्स विहराहि, अहं ते अगगज्जं पज्जपेस्सामी’ ति ?

‘सुनक्षत्र! क्या मैंने तुझसे ऐसा कहा था— सुनक्षत्र! तू मेरे धर्म को स्वीकार कर ले। मैं तुझे अपना ऋद्धि बल दिखाऊँगा!’

‘नहीं भन्ते!’

‘या फिर तूने मुझसे कभी कहा था कि मैं आपका धर्म स्वीकार करता हूँ, मुझे अपना ऋद्धिबल दिखाइये।’ ‘नहीं, भन्ते!’

‘सुनक्षत्र! न मैंने तुमसे कहा....न तुमने मुझसे कहा....। तो, मूर्ख! किस तरह होता हुआ तू किस का त्याग कर रहा है? तो सुनक्षत्र! तू क्या समझता है कि मेरे अलौकिक ऋद्धिबल दिखाने से या न दिखाने से दुःखों के सर्वथा क्षय के लिये मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म पूर्ण नहीं होगा?

‘हाँ, भन्ते! आपके अलौकिक....पूर्ण होगा।’

‘सुनक्षत्र! जब मेरे द्वारा अलौकिक....पूर्ण हो ही जायगा तो मैं तुझे ऋद्धिबल क्यों दिखाऊँ? मूर्ख! देख यह तेरा ही अपराध है। (२)

भगवान् मुझे आगे रखकर उपदेश नहीं करते

५. ‘भन्ते! भगवान् मुझे लोगों में आगे करके उपदेश नहीं करते।’

‘नो हेतं, भन्ते’।

‘त्वं वा पन मं एवं अवच—अहं, भन्ते, भगवन्तं उद्दिस्स विहरिस्सामि, भगवा मे अग्गज्जं पज्जपेस्सती’ ति ?

‘नो हेतं, भन्ते’।

‘इति किर, सुनक्खत्त, नेवाहं तं वदामि—एहि त्वं, सुनक्खत्त, ममं उद्दिस्स विहराहि, अहं ते अग्गज्जं पज्जपेस्सामी ति; न पि किर मं त्वं वदेसि—अहं, भन्ते, भगवन्तं उद्दिस्स विहरिस्सामि, भगवा मे अग्गज्जं पज्जपेस्सती ति। एवं सन्ते, मोघपुरिस, को सन्तो कं पच्चाचिक्खसि ? तं किं मज्जसि, सुनक्खत्त, पज्जते वा अग्गज्जे अपज्जते वा अग्गज्जे यस्सत्थाय मया धम्मो देसितो सो निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाया’ ति ?

‘पज्जते वा, भन्ते, अग्गज्जे अपज्जते वा अग्गज्जे, यस्सत्थाय भगवता धम्मो देसितो सो निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाया’ ति।

[R.5] ‘इति किर, सुनक्खत्त, पज्जते वा अग्गज्जे अपज्जते वा अग्गज्जे, यस्सत्थाय मया

[N.6] धम्मो देसितो सो निय्याति तक्करस्स दुक्खक्खयाय। तत्र, सुनक्खत्त, किं अग्गज्जं पज्जत्तं करिस्सति ? पस्स, मोघपुरिस, याव च ते इदं अपरद्धं’। (३)

६. ‘अनेकपरियायेन खो ते, सुनक्खत्त, मम वण्णो भासितो वज्जिगामे—इति पि सो [B.4] भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुतरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा ति। इति खो ते, सुनक्खत्त, अनेकपरियायेन मम वण्णो भासितो वज्जिगामे। अनेकपरियायेन खो ते, सुनक्खत्त, धम्मस्स वण्णो भासितो वज्जिगामे—स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनयिको पच्चत्तं वेदितब्बो विज्जूही ति। इति खो ते, सुनक्खत्त, अनेकपरियायेन धम्मस्स वण्णो भासितो वज्जिगामे। अनेकपरियायेन खो ते, सुनक्खत्त, सङ्घस्स वण्णो भासितो वज्जिगामे—सुप्पटिपन्नो भगवतो

‘क्या सुनक्षत्र! (जब तूँ इस धर्म में आया था तो) मैंने तुझसे कहा था कि मैं तुझे आगे करके ही लोगों को उपदेश दूँगा?’

‘नहीं, भन्ते!’

‘फिर क्या तूँने मुझसे कहा था कि मुझे आगे करके ही आप लोगों को उपदेश देंगे?’

‘नहीं भन्ते’।

‘तो फिर न तो मैंने तुमसे कहा....न तूँने ही मुझसे कहा....। तो फिर ऐसा करके तूँ किसका त्याग कर रहा है। फिर तूँ यह बता कि उपदेश करते समय, तुझे आगे किया जाय न किया जाय, क्या इससे दुःखक्षय हेतु मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म पूर्ण नहीं होगा?’

‘भन्ते! मुझे आगे करें या न करें, आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म तो साधना करने पर पूर्ण होगा ही।

‘सुनक्षत्र जब वह धर्म उभयथा पूर्ण हो ही जायगा तो तुझे आगे करने या न करने का क्या लाभ! मूर्ख! देख, यह तेरा ही अपराध है। (३)

६. ‘सुनक्षत्र! (तुमने) पहले कभी नाना प्रकार से वज्जिग्राम में मेरी प्रशंसा की थी— ‘वे भगवान्, ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध हैं....। भगवान् का धर्म....भगवान् का सङ्घ....अनुपम पुण्यक्षेत्र है। इस तरह तुमने सङ्घ की प्रशंसा की थी। सुनक्षत्र! मैं तुम्हें सावधान कर रहा हूँ कि इस तरह तो लोग तुम्हें ही दोष देंगे कि

सावकसङ्घो, उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, जायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचि-
प्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो
सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिण्यो अज्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुज्जक्खेत्तं लोकस्सा
ति। इति खो ते, सुनक्खत्त, अनेकपरियायेन सङ्घस्स वण्णो भासितो वज्जिगामे। आरोचयामि
खो ते, सुनक्खत्त, पटिवेदयामि खो ते, सुनक्खत्त। भविस्सन्ति खो ते, सुनक्खत्त, वत्तारो—नो
विसहि सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो समणे गोतमे ब्रह्मचरियं चरितुं, सो अविसहन्तो सिक्खं
पच्चक्खाय हीनायवत्तो ति। इति खो ते, सुनक्खत्त, भविस्सन्ति वत्तारो' ति।

“एवं खो, भगव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो मया वुच्चमानो अपक्कमेव इमस्मा [R.6]
धम्मविनया यथा तं आपायिको नेरयिको।

२. सुनक्खत्तो कोरक्खत्तिये पसन्नो

७. “एकमिदाहं, भगव, समयं थूलसु विहरामि उत्तरका नाम थूलूनं निगमो। अथ
ख्वाहं, भगव, पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सुनक्खत्तेन लिच्छविपुत्तेन पच्छासमणेन
उत्तरकं पिण्डाय पाविसिं। तेन खो पन समयेन अचेलो कोरक्खत्तियो कुक्कुरवतिको चतुकोण्डिको
छमानिकिण्णं भक्खसं मुखेनेव भुज्जति। अद्दसा खो, भगव, सुनक्खत्तो [N.7, B.5]
लिच्छविपुत्तो अचेलं कोरक्खत्तियं कुक्कुरवतिकं चतुकोण्डिकं छमानिकिण्णं भक्खसं मुखेनेव
खादन्तं मुखेनेव भुज्जन्तं। दिस्वानस्स एतदहोसि—‘साधुरुपो वत, भो, अयं समणो चतुकोण्डिको
छमानिकिण्णं भक्खसं मुखेनेव खादति मुखेनेव भुज्जति’ ति।

“अथ ख्वाहं, भगव, सुनक्खत्तस्स लिच्छविपुत्तस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमज्जाय
सुनक्खत्तं लिच्छविपुत्तं एतदवोचं—‘त्वं पि नाम, मोघपुरिस, समणो सक्क्यपुत्तियो
पटिजानिस्ससी’ ति।

‘किं पन मं, भन्ते, भगवा एवमाह—त्वं पि नाम, मोघपुरिस, समणो सक्क्य-[R.6]
पुत्तियो पटिजानिस्ससी’ ति?

सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र श्रमण गौतम के शासन में...ब्रह्मचर्यपालन में असमर्थ रहा। वह असमर्थ होकर शिक्षा
छोड़कर गृहस्थ बन गया। सुनक्षत्र! इस तरह लोग तुम्हें ही दोष देंगे।

“भार्गव! मेरे यों कहने पर वह सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र आपायिक (दुर्गति), नैरयिक (नारकीय) की
तरह इस मेरे धर्म-विनय को छोड़कर चला गया।

२. सुनक्षत्र की अचेलक कोरक्षत्रिय में श्रद्धा

७. “भार्गव! एक समय मैं थूल प्रदेश के थूलों के उत्तरका नामक कंस्थे में चारिका कर रहा
था। तब कभी मैं प्रातःकाल तैयार होकर, पात्र-चीवर लेकर सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र को पीछे अपने (साथ
ले) कर उत्तरका ग्राम में भिक्षाहेतु गया। उस समय अचेलक कोरक्षत्रिय कुक्कुरवतिक (कुत्ते की तरह)
दोनों घुटनों और हाथों के बल बैठा भूमि पर फेंके गये खाद्य पदार्थों को मुँह से खा-चबा रहा था। उसे
देख, सुनक्षत्र के मन में विचार आया—‘यह तो बहुत पहुँचा हुआ (सिद्ध) श्रमण ज्ञात होता है, जो भूमिपर
फेंके गये खाद्य को ही मुँह से खा-चबा रहा है।

“भार्गव! तब सुनक्षत्र के मनोभावों को मैंने मन में अनुमान कर उससे कहा—‘मूर्ख! क्या तू अब
भी अपने को शाक्यपुत्रीय श्रमण समझेगा?’

‘ननु ते, सनुक्खत्त, इमं अचेलं कोरक्खत्तियं कुक्कुरवतिकं चतुकोण्डिकं छमानिकिण्णं भक्खसं मुखेनेव खादन्तं मुखेनेव भुञ्जन्तं दिस्वान एतदहोसि—साधुरूपो वत्, भो, अयं समणो चतुकोण्डिको छमानिकिण्णं भक्खसं मुखेनेव खादति मुखेनेव भुञ्जती ति ?

‘एवं, भन्ते। किं पन, भन्ते, भगवा अरहत्तस्स मच्छरायती’ ति ?

‘न खो अहं, मोघपुरिस, अरहत्तस्स मच्छरायामि। अपि च, तुय्हेवेतं पापकं दिट्ठिगंतं उप्पन्नं तं पजह, मा ते अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। यं खो पनेतं, सुनक्खत्त, मञ्जसि अचेलं कोरक्खत्तियं—साधुरूपो अयं समणो ति, सो सत्तमं दिवसं अलसकेन कालङ्करिस्सति। कालङ्कतो च कालकञ्चिका नाम असुरा सब्बनिहीनो असुरकायो तत्र उपपज्जिस्सति। कालङ्कतं च नं बीरणत्थम्बके सुसाने छड्डेस्सन्ति। आकङ्खमानो च त्वं, सुनक्खत्त, अचेलं कोरक्खत्तियं उपसङ्कमित्वा पुच्छेय्यासि—जानासि, आवुसो कोरक्खत्तिय, अत्तनो गतिं ति ? ठानं खो पनेतं, सुनक्खत्त, विज्जति यं ते अचेलो कोरक्खत्तियो ब्याकरिस्सति—जानामि, आवुसो सुनक्खत्त, अत्तनो गतिं; कालकञ्चिका नाम असुरा सब्बनिहीनो असुरकायो तत्राम्हि उपपन्नो’ ति।

“अथ खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येन अचेलो कोरक्खत्तियो तेनुपसङ्कमि; [B.6] उपसङ्कमित्वा अचेलं कोरक्खत्तियं एतदवोच—‘ब्याकतो खोसि, आवुसो कोरक्खत्तिय, [N.8, R.8] समणेन गोतमेन—अचेलो कोरक्खत्तियो सत्तमं दिवसं अलसकेन कालङ्करिस्सति, कालङ्कतो च कालकञ्चिका नाम असुरा सब्बनिहीनो असुरकायो तत्र उपपज्जिस्सति, कालङ्कतं च नं बीरणत्थम्बके सुसाने छड्डेस्सन्ती ति। येन त्वं, आवुसो कोरक्खत्तिय, मत्तं मत्तं च भत्तं भुञ्जेय्यासि, मत्तं मत्तं च पानीयं पिवेय्यासि, यथा समणस्स गोतमस्स मिच्छा अस्स वचनं’ ति।

‘भन्ते! भगवान् ने ऐसा क्यों कहा— ‘मूर्ख....श्रमण समझेगा!’

‘सुनक्षत्र! इस अचेलक कोरक्षत्रिय को....देखकर क्या तेरे मन में ऐसा नहीं हुआ— ‘यह बहुत ऊँचा! पहुँचा हुआ श्रमण....चबा रहा है?’

‘हाँ, भन्ते! क्या भगवान् के मन में इस अर्हत् को देखकर ईर्ष्या (डाह) उत्पन्न हो रही है?’

‘अरे मूर्ख! मैं इसके अर्हत्त्व से क्या ईर्ष्या करूँगा! (इसमें अर्हत्त्व है ही कहाँ!) किन्तु (इसे देखकर) तेरी जो मिथ्या (पापमय) धारणा उत्पन्न हुई है, उसे छोड़ दे, यही तेरे लिये दीर्घकाल के लिये हितावह एवं सुखप्रद होगा। और तू जिस अचेलक कोरक्षत्रिय को एक पहुँचा हुआ सिद्ध समझ रहा है, यह आज से सातवें दिन अलसक (अनपच) रोग से आक्रान्त होकर मर जायगा। मरकर कालकञ्चिका नामक सबसे निकृष्ट असुरयोनि में उत्पन्न होगा। इसके मृत शरीर को लोग वीरणस्तम्भक श्मशान में छोड़ आयेँगे। यदि सुनक्षत्र! तुम चाहो तो अचेलक कोरक्षत्रिय से श्मशान में जाकर पूछ सकते हो कि आयुष्मन् अचेल! अपनी परलोकगति तुम्हें ज्ञात है? सम्भव है वह अचेल कोरक्षत्रिय तुम्हें बतलाये—‘जानता हूँ, आयुष्मन् सुनक्षत्र! अपनी परलोकगति को! असुरों की कालकञ्चिका नामक सबसे निकृष्ट असुरयोनि में मेरी उत्पत्ति हुई है।’

“तब, भार्गव! सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र अचेलक कोरक्षत्रिय के पास गया, और उसको बताया— ‘आयुष्मान् कोरक्षत्रिय! श्रमण गौतम कहते हैं— अचेलक कोरक्षत्रिय आज से सातवें दिन पर....श्मशान

८. “अथ खो, भग्गव, सुनक्खत्तो एकद्वीहिक्काय सत्तरत्तिन्दिवानि गणेषि—यथा तं तथागतस्स असद्दहमानो। अथ खो, भग्गव, अचेलो कोरक्खत्तियो सत्तमं दिवसं अलसकेन कालमकासि, कालङ्कतो च कालकञ्चिका नाम असुरा सब्बनिहीनो असुरकायो तत्र उपपज्जि, कालङ्कतं च नं बीरणत्थम्बके सुसाने छड्डेसुं।

९. “अस्सोसि खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो—‘अचेलो किर कोरक्खत्तियो अलसकेन कालङ्कतो बीरणत्थम्बके सुसाने छड्डितो’ ति। अथ खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येन बीरणत्थम्बकं सुसानं येन अच्छो कोरक्खत्तियो तेनुपसङ्गमि; उपसङ्गमित्वा अचेलं कोरक्खत्तियं तिकखत्तुं पाणिना आकोटेसि—‘जानासि, आवुसो कोरक्खत्तिय, अत्तनो गतिं’ ति? अथ खो, भग्गव, अचेलो कोरक्खत्तियो पाणिना पिट्ठिं परिपुञ्छन्तो वुट्ठासि। ‘जानामि, आवुसो सुनक्खत्त, अत्तनो गतिं; कालकञ्चिका नाम असुरा सब्बनिहीनो असुरकायो तत्राम्हि उपपन्नो’ ति वत्वा तत्थेव उत्तानो पपति।

१०. “अथ खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्गमि; उपसङ्गमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अहं, भग्गव, सुनक्खत्तं लिच्छविपुत्तं एतदवोचं—‘तं किं मज्जसि, सुनक्खत्त, यथेव ते अहं अचेलं कोरक्खत्तियं आरब्भ ब्याकासिं तथेव तं विपाकं अज्जथा वा’ ति?

‘यथेव मे, भन्ते, भग्गवा अचेलं कोरक्खत्तियं आरब्भ ब्याकासि तथेव तं विपाकं, नो अज्जथा’ ति।

‘तं किं मज्जसि, सुनक्खत्तं यदि एवं सन्ते, कतं वा होति उत्तरिमनुस्स—[B. 7, R. 9] धम्मा इद्धिपाटिहारियं अकतं वा’ ति?

में छोड़ देंगे। अतः आयुष्मन्! तुम बहुत संयम एवं मात्रा से खाओ, पीओ! जिससे श्रमण गौतम का उक्त कथन असत्य हो जाय।’

८. “भार्गव! तब सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र, तथागत के कथन में अविश्वास प्रकट करता हुआ, एक—एक दिन गिनकर सातवें दिन की प्रतीक्षा करने लगा। तब भार्गव! अचेलक कोरक्षत्रिय सातवें दिन अलसक रोग से मर गया और मरने के बाद कालकञ्चिका नामक निकृष्ट असुरों की हीनयोनि में उत्पन्न हुआ। मरे हुए अचेलक काश्यप को लोग वीरणस्तम्बक (कुशपुत्र) नामक श्मशान में डाल आये।

९. “भार्गव! तब सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र ने सुना— अचेल कोरक्षत्रिय....पूर्ववत्....श्मशान में डाल आये। तब, भार्गव! वह सुनक्षत्र....वीरणस्तम्बक श्मशान, जहाँ अचेलक का शव पड़ा था, गया। जाकर उसने अचेल कोरक्षत्रिय के शव को तीन बार थपथपाया और पूछा— ‘क्या अचेल! तुम अपनी परलोक गति को जानते हो?’। तब अचेल अपनी पीठ पोंछता हुआ बोला— ‘हाँ, आयुष्मन् सुनक्षत्र!....मैं असुरों में सबसे निकृष्ट कालकञ्चिका नामक असुरयोनि में उत्पन्न हुआ हूँ।’— ऐसा कहकर वह अचेल कोरक्षत्रिय पुनः वहीं गिर पड़ा।

१०. “भार्गव! तब वह सुनक्षत्र...जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर मुझे प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। भार्गव! एक ओर बैठे उससे मैंने पूछा— ‘तो क्या मानते हो, सुनक्षत्र....! उस अचेल कोरक्षत्रिय के विषय में जैसा मैंने कहा था वही हुआ न?’

‘हाँ, भन्ते!....वही हुआ।’

‘अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते कतं होति उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं, नो अकतं’
ति।

[N. 9] ‘एवं पि खो मं त्वं, मोघपुरिस, उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करोन्तं एवं वदेसि—
न हि पन मे, भन्ते, भगवा उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करोती ति। पस्स, मोघपुरिस,
याव च ते इदं अपरद्धं’ ति। (४)

“एवं पि खो, भगव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो मया वुच्चमानो अपक्कमेव इमस्मा
धम्मविनया, यथा तं आपायिको नेरयिको।

३. सुनक्खत्तो कळारमट्टके पसत्रो

११. “एकमिदाहं, भगव, समयं वेसालियं विहरामि महावने कूटागारसालायं। तेन
खो पन समयेन अचेलो कळारमट्टको वेसालियं पटिवसति लाभगप्पत्तो चेव यसगगप्पत्तो च
वज्जिगामे। तस्स सत्तवतपदानि समत्तानि समादिन्नानि होन्ति—‘यावजीवं अचेलको अस्सं न
वत्थं परिदहेय्यं, यावजीवं ब्रह्मचारी अस्सं न मेथुनं धम्मं पटिसेवेय्यं, यावजीवं सुरामंसेनेव
यापेय्यं न ओदनकुम्मासं भुञ्जेय्यं, पुरत्थिमेन वेसालिं उदेनं नाम चेतियं तं नातिक्कमेय्यं,
दक्खिणेन वेसालिं गोतमकं नाम चेतियं तं नातिक्कमेय्यं, पच्छिमेन वेसालिं सत्तम्बं नामचेतियं
[R. 10] ते नातिक्कमेय्यं, उत्तरेन वेसालिं बहुपुत्तं नाम चेतियं तं नातिक्कमेय्यं’ ति। सो इमेसं
सत्तत्रं वतपदानं समादानहेतु लाभगगप्पत्तो चेव यसगगप्पत्तो च वज्जिगामे।

१२. “अथ खो, भगव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येन अचेलो कळारमट्टको

‘तो क्या मानते हो, सुनक्षत्र! ऐसा होने पर यह मेरी तरफ से ऋद्धिबल (का प्रदर्शन) हुआ या
नहीं?’

‘भन्ते! ऐसा होने पर तो आप का ऋद्धिबल तो स्वीकार करना ही पड़ेगा।’

‘तो मूर्ख! मेरे द्वारा ऐसा ऋद्धिबल दिखाये जाने पर भी तू कहता है— भन्ते! भगवान् मुझे
ऋद्धिबल नहीं दिखाते। मूर्ख! देख, यह तेरा ही अपराध है। (४)

‘भार्गव! इतना समझाने पर भी, वह सुनक्षत्र....मेरे धर्म को छोड़कर आपायिक (नारकीय) की
तरह चला ही गया।

३. सुनक्षत्र की कडारमट्टक के प्रति श्रद्धा

११. “भार्गव! एक समय मैं वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु ठहरा हुआ था।
उस समय कोई कडारमट्टक नामक अचेल वैशाली के वज्जिग्राम में जनता द्वारा दिये गये लाभ, यश एवं
श्रद्धा का पात्र बना हुआ था। उसकी ये सात प्रतिज्ञा (व्रत) थीं— १. जीवनपर्यन्त नग्न रहूँगा, कोई वस्त्र
नहीं धारण करूँगा। २. जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी रहूँगा, मैथुन धर्म का सेवन नहीं करूँगा। ३. जीवनपर्यन्त
मांस खाकर एवं सुरा पीकर ही रहूँगा, दाल—भात नहीं खाऊँगा। ४. वैशाली में पूर्व की तरफ उदयन चैत्य
के आगे नहीं जाऊँगा। ५. दक्षिण में गौतमक नामक चैत्य के आगे....। ६. पश्चिम में सप्ताप्रक नामक चैत्य
के आगे....। ७. और उत्तर में बहुपुत्रक नामक चैत्य के आगे नहीं जाऊँगा। वह इन सात प्रतिज्ञाओं का
दृढ़तापूर्वक पालन करता था, अतः वह उस वज्जिग्राम में जनता के बीच अत्यधिक लाभ, यश एवं श्रद्धा
का पात्र बना था।

१२. “भार्गव! तब सुनक्षत्र....उस अचेल कडारमट्टक के पास गया और उससे (धर्मविषयक)

तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अचेलं कळारमट्टकं पज्हं अपुच्छि। तस्स अचेलो कलारमट्टको पज्हं पुट्ठो न सम्पायासि। असम्पायन्तो कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पात्वाकासि। अथ खो, भगव, सुनक्खत्तस्स लिच्छविपुत्तस्स एतदहोसि—‘साधुरूपं वत, भो, अरहन्तं समणं आसादिम्हसे, मा वत नो अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया’ ति।

१२. ‘अथ खो, भगव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्कमि; [B.8] उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अहं, भगव, सुनक्खत्तं लिच्छविपुत्तं एतदवोच—त्वं पि नाम, मोघपुरिस, समणो सक्कपुत्तियो पटिजानिस्ससी’ ति।

‘किं पन मं, भन्ते, भगवा एवमाह—त्वं पि नाम, मोघपुरिस, समणो सक्कपुत्तियो पटिजानिस्ससी’ ति?

‘ननु त्वं, सुनक्खत्त, अचेलं कळारमट्टकं उपसङ्कमित्वा पज्हं अपुच्छि। [N.10] तस्स ते अचेलो कळारमट्टको पज्हं पुट्ठो न सम्पायासि। असम्पायन्तो कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पात्वाकासि। तस्स ते एतदहोसि—साधुरूपं वत, भो, अरहन्तं समणं आसादिम्हसे, मा वत नो अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया’ ति।

‘एवं भन्ते। किं पन, भन्ते, भगवा अरहत्तस्स मच्छरायती’ ति?

‘न खो अहं, मोघपुरिस, अरहत्तस्स मच्छरायामि। अपि च तुय्हेवेतं पापकं [R.11] दिट्ठिगतं उप्पन्नं तं पजह, मा ते अहोसि दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया ति। यं खो पनेतं, सुनक्खत्त, मज्झसि अचेलं कळारमट्टकं—साधुरूपो अयं समणो ति, सो नचिरस्सेव परिहितो सानुचारिको विचरन्तो ओदनकुम्पासं भुञ्जमानो सब्बानेव वेसालियानि चेतियानि समतिक्रमित्वा यसा निहीनो कालं करिस्सती’ ति।

प्रश्न पूछने लगा। वह (कडारमट्टक) उसके प्रश्नों का कोई उत्तर न दे सका। अपितु वह ऐसे प्रश्न किये जाने से क्रोध, द्वेष एवं असन्तोष प्रकट करने लगा। तब, भार्गव! सुनक्षत्र....को यह विचार हुआ— ‘ऐसे ऊपरी भूमिका में पहुँचे (सिद्ध) अर्हत् को मैंने अप्रसन्न कर दिया, कहीं यह कर्म मेरे लिये भविष्य में दुःखदायी एवं अहितकर न हो जाय।’

१३. ‘तब, भार्गव! सुनक्षत्र....मेरे पास आया....। एक तरफ बैठे सुनक्षत्र...को मैंने कहा— ‘मूर्ख! क्या तू भी अपने को शाक्यपुत्रीय (भिक्षु) कहेगा?’

‘भन्ते! आप ऐसा क्यों कह रहे हैं— मूर्ख!....कहेगा?’

‘सुनक्षत्र! तुम अचेल कडारमट्ट के पास गये और उससे प्रश्न पूछा। तब उसने तुम्हारे प्रश्न पूछने पर क्रोध एवं असन्तोष प्रकट किया। तो तुमने सोचा— ऐसे पहुँचे हुए....मेरा भविष्य दुःखप्रद एवं अहितकर न हो जाय।’

‘तो क्या, भन्ते! आप अचेल कडारमट्ट के अर्हत्त्व से ईर्ष्या कर रहे हैं?’

‘मूर्ख! मैं उससे क्या ईर्ष्या करूँगा! किन्तु तुझे जो यह उसके अर्हत्त्व के विषय में मिथ्या धारणा बन गयी है उसे छोड़ दे जिससे कि तेरा भविष्य अहितकर या दुःखदायी न हो जाय। सुनक्षत्र! जिस अचेल कडारमट्टक को तुम अर्हत् समझ रहे हो वह शीघ्र ही वस्त्र धारण कर, स्त्रियों को साथ लगाये घूमता हुआ, दाल-भात खाता हुआ, वैशाली के सभी चैत्यों में जाता हुआ, अपने यश को धूमिल करते हुए मर जायगा।’

१४. “अथ खो, भग्गव, अचेलो कळारमट्टको नचिरस्सेव परिहितो सानुचरिको विचरन्तो ओदनकुम्मासं भुञ्जमानो सब्बानेव वेसालियानि चेतियानि समतिक्रमित्वा यसा निहीनो कालमकासि। अस्सोसि खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो—‘अचेलो किर कळारमट्टको परिहितो सानुचारिको विचरन्तो ओदनकुम्मासं भुञ्जमानो सब्बानेव वेसालियानि चेतियानि समतिक्रमित्वा यसा निहीनो कालङ्कतो’ ति। अथ खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्गमि; उपसङ्गमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अहं, भग्गव, सुनक्खत्तं लिच्छविपुत्तं एतदवोचं—‘तं किं मज्जसि, सुनक्खत्तं, यथेव ते अहं अचेलं कळारमट्टकं आरब्धं व्याकासिं तथेव तं विपाकं अज्जथा वा’ ति ?

‘यथेव मे, भन्ते, भगवा अचेलं कळारमट्टकं आरब्धं व्याकासिं तथेव तं विपाकं नो [B. 9] अज्जथा’ ति।

[R.12] ‘तं किं मज्जसि, सुनक्खत्तं, यदि एवं सन्ते, कतं वा होति उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं अकतं वा’ ति ?

‘अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते कतं होति उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं, नो अकतं’ ति।

[N.11] ‘एवं पि खो मं त्वं, मोघपुरिस, उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करोन्तं एवं वदेसि— न हि पन मे, भन्ते, भगवा उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करोती ति। पस्स, मोघपुरिस, याव च ते इदं अपरद्धं’ ति। (५)

“एवं पि खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो मया वुच्चमानो अपक्कमेव इमस्मा धम्मविनया, यथा तं आपायिको नेरयिको।

४. अचेलो पाथिकपुत्तो

१५. “एकमिदाहं, भग्गव, समयं तत्थेव वेसालियं विहरामि महावने कूटागारसालायं।

१४. “भार्गव! तब कुछ ही समय बाद वह अचेल कडारमट्टक अच्छे-अच्छे वस्त्र पहन कर, सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों के साथ रमण करता हुआ, स्वादिष्ट दाल-भात खाता हुआ, वैशाली के सभी चैत्यों में घूमता हुआ, अपनी साधुता की ख्याति को धूल में मिलाता हुआ मर गया। तब, भार्गव! एक ओर बैठे हुए सुनक्षत्र.... को मैंने पूछा—‘तो क्या मानते हो, सुनक्षत्र! अचेल कडारमट्टक के विषय में जो मैंने कहा था वही हुआ कि अन्यथा?’

‘हाँ, भन्ते! अचेल कडारमट्टक के विषय में जो आपने कहा था, वही हुआ।’

‘तो क्या मानते हो, सुनक्षत्र! ऐसा होने पर, मेरे द्वारा ऋद्धिबल दिखाना सिद्ध हुआ कि नहीं?’

‘हाँ, भन्ते!...सिद्ध हो गया।’

‘अरे मूर्ख! तब भी तू मुझ पर आरोप लगाता है— भन्ते, भगवान् मुझे अपना ऋद्धिबल नहीं दिखाते! देख, मोघपुरुष! यह तेरा ही अपराध हुआ।’ (५)

“भार्गव! मेरे द्वारा ऐसा समझाये जाने पर भी वह सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र आपायिक (नारकीय) की भाँति इस धर्म को छोड़कर चला गया।

४. अचेल पाथिकपुत्र

१५. “भार्गव! एक समय मैं उसी वैशाली में महावन की कूटागारशाला में धर्मसाधना कर रहा

तेन खो पन समयेन अचेलो पाथिकपुत्तो वेसालियं पटिवसति लाभगगप्पत्तो चेव यसग्गप्पत्तो च वज्जिगामे। सो च वेसालियं परिसति एवं वाचं भासति—‘समणो गोतमो जाणवादो, अहं पि जाणवादो; जाणवादो खो पन जाणवादेन अरहति उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं दस्सेतुं। समणो गोतमो उपड्डुपथं आगच्छेय्य, अहं पि उपड्डुपथं गच्छेय्यं। ते तत्थ उभो पि उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करेय्याम। एकं चे समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सति, द्वाहं करिस्सामि। द्वे चे समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियानि करिस्सति, चत्ताराहं करिस्सामि। चत्तारि चे समणो गोतमो [R.13] उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियानि करिस्सति, अट्ठाहं करिस्सामि। इति यावतकं समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सति तद्दिगुणं तद्दिगुणाहं करिस्सामी’ ति।

१६. “अथ खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो मं एतदवोच—‘अचेलो, भन्ते, पाथिकपुत्तो वेसालियं पटिवसति लाभगगप्पत्तो चेव यसग्गप्पत्तो च वज्जिगामे। सो वेसालियं परिसति एवं वाचं भासति—समणो गोतमो जाणवादो [B.10] अहं पि जाणवादो, जाणवादो खो पन जाणवादेन अरहति उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं दस्सेतुं; समणो गोतमो उपड्डुपथं आगच्छेय्य अहं पि उपड्डुपथं गच्छेय्यं; ते तत्थ उभो पि उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करेय्याम; एकं चे समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सति, द्वाहं करिस्सामि; द्वे चे समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियानि करिस्सति, चत्ताराहं करिस्सामि; चत्तारि चे समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियानि करिस्सति, अट्ठाहं करिस्सामि; इति यावतकं समणो गोतमो उत्तरि—[N.12] मनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सति तद्दिगुणं तद्दिगुणाहं करिस्सामी’ ति।

“एवं वुत्ते, अहं, भग्गव, सुनक्खत्तं लिच्छविपुत्तं एतदवोच—‘अभब्बो खो, सुनक्खत्त, अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम

था। उस समय अचेल पाथिकपुत्र वैशाली में ही वज्जिग्राम में जनता द्वारा नाना प्रकार का लाभ एवं यश प्राप्त करता हुआ रह रहा था। वह वैशाली की सभाओं (जनसमूहों) में कहता फिरता था—‘श्रमण गौतम अपने आप को ज्ञानवादी कहते हैं, मैं भी ज्ञानवादी हूँ। ऐसे ज्ञानवादी को दूसरे ज्ञानवादी के साथ अपने ऋद्धिबल का प्रदर्शन करना चाहिये। श्रमण गौतम मेरी तरफ आधे मार्ग तक आवे, मैं भी उनकी तरफ आधे मार्ग तक जाऊँ। हम दोनों वहाँ मिल कर अपनी अपनी अलौकिक ऋद्धियाँ दिखावें। यदि श्रमण गौतम एक ऋद्धिबल दिखायेंगे तो मैं दो ऋद्धि दिखाऊँगा। यदि वे दो दिखायेंगे तो मैं चार दिखाऊँगा। यदि वे चार....तो मैं आठ....। इस तरह श्रमण गौतम की अपेक्षा मैं उनसे अपना द्विगुण ऋद्धिबल दिखाऊँगा।’

१६. “तब, भार्गव! सुनक्षत्र....मेरे पास आया, आकर मुझे अभिवादन कर....यों बोला—‘भन्ते! अचेल पाथिकपुत्र....यों कहता है— श्रमण गौतम भी ज्ञानवादी है, मैं भी ज्ञानवादी हूँ।...पूर्ववत्....इस तरह श्रमण गौतम जितना....उनसे मैं अपना द्विगुण ऋद्धिबल दिखाऊँगा।’

“ऐसा कहे जाने पर, भार्गव! उस सुनक्षत्र को मैं यों बोला—‘सुनक्षत्र! अचेल पाथिकपुत्र का

सम्मुखीभावं आगन्तुं। सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या' ति।

१७. 'रक्खतेतं, भन्ते, भगवा वाचं, रक्खतेतं सुगतो वाचं' ति।

[R.14] 'किं पन मं त्वं, सुनक्खत्त, एवं वदेसि—रक्खतेतं, भन्ते, भगवा वाचं, रक्खतेतं सुगतो वाचं' ति ?

'भगवता चस्स, एसा वाचा एकंसेन ओधारिता—अभब्बो अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं, सचेपिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति मुद्धा पि तस्स विपतेय्या ति। अचेलो च, भन्ते, पाथिकपुत्तो विरूपरूपेन भगवतो सम्मुखीभावं आगच्छेय्य तदस्स भगवतो मुसा' ति।

१८. 'अपि नु, सुनक्खत्त, तथागतो तं वाचं भासेय्य या सा वाचा द्वयगामिनी' ति ?

[B.11] 'किं पन, भन्ते, भगवता अचेलो पाथिकपुत्तो चेतसा चेतो परिच्च विदितो—अभब्बो अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या ति ? उदाहु, देवता भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं—अभब्बो, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा भगवतो सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या' ति ?

१९. 'चेतसा चेतो परिच्च विदितो चेव मे, सुनक्खत्त—अभब्बो अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठि अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या' ति;

ऐसा कहना अनुचित है। यदि वह इस बात को बिना छोड़े, बिना इस धारणा को दूर किये, बिना अपना मन शुद्ध किये श्रमण गौतम के सामने आयगा, तो उसका सिर भी ग्रीवा से पृथक् होकर गिर पड़ेगा।

१७. 'भन्ते! भगवान् ऐसी बात न बोलें, सुगत ऐसी बात न बोलें!'

'सुनक्षत्र! तुम मुझसे ऐसा क्यों कह रहे हो— भन्ते! भगवान्....न बोलें?'

'भन्ते! भगवान् ने तो एकान्ततः कह दिया— अचेल पाथिकपुत्र का ऐसा कहना अनुचित है....ग्रीवा से पृथक् होकर गिर जायगा। परन्तु यदि वह अचेल पाथिकपुत्र अपनी बात पर आग्रह रखता हुआ आपके सम्मुख, दूसरे रूप (विरूपरूप=ग्रीवा पर सिर रखे हुए) में ही आ जाय तो आप का वचन असत्य हो जायगा।'

१८. 'सुनक्षत्र! क्या भगवान् ऐसा वचन बोलते हैं, जो भविष्य में अन्यथा (असत्य) हो जाय?'

'भन्ते! क्या आपने अचेल पाथिकपुत्र के चित्त को स्वचित्त से जान लिया है तब आप ऐसा कह रहे हैं— अचेल पाथिकपुत्र का ऐसा कहना अनुचित है....गिर पड़ेगा? या फिर कोई देवपुत्र आकर आप से कह गया है— अचेल पाथिकपुत्र का ऐसा कहना अनुचित है....गिर पड़ेगा?'

‘देवता पि मे एतमत्थं आरोचेसुं—अभब्बो, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो तं [R.15] वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा भगवतो सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या ति;

‘अजितो पि नाम लिच्छवीनं सेनापति अधुना कालङ्कतो तावतिसकायं उपपन्नो, सो पि मं उपसङ्गमित्वा एवमारोचेसि—अलज्जी, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो; मुसावादी, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो; मं पि, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो ब्याकासि वज्जिगामे—अजितो लिच्छवीनं सेनापति महानिरयं उपपन्नो ति : न खो पनाहं, भन्ते, महानिरयं उपपन्नो ति : तावतिसकायमिह उपपन्नो: अलज्जी, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो; मुसावादी, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो; अभब्बो च, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा भगवतो सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं [B.12] अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या ति।

‘इति खो, सुनक्खत्त, चेतसा चेतो परिच्च विदितो चेव मे—अचेलो पाथिकपुत्तो अभब्बो अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या ति : देवता पि मे एतमत्थं आरोचेसुं—अभब्बो, भन्ते, अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा भगवतो सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या ति।

‘सो खो पनाहं, सुनक्खत्त, वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन अचेलस्स पाथिकपुत्तस्स आरामो तेनुपसङ्गमिस्सामि दिवाविहाराय। यस्स दानि त्वं, [N.14] सुनक्खत्त, इच्छसि तस्स आरोचेही’ ति।

५. पाथिकपुत्तस्स आरामे परिसा सन्निपति

२०. “अथ ख्वाहं, भग्गव, पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वेसालिं [R.16]

१९. ‘सुनक्षत्र! मैंने अपने चित्त से उसके चित्त को जान लिया है, तभी मैं कह रहा हूँ—अचेल पाथिक पुत्र का ऐसा कहना अनुचित है....। और देवता ने भी मुझसे आकर कहा है....।

‘अजित नामक लिच्छवियों का सेनापति अभी-अभी अपनी काया त्यागकर त्रायस्त्रिंश लोक में उत्पन्न हुआ है। उसने भी मुझसे आकर कहा है— भन्ते! अचेल पाथिकपुत्र निर्लज्ज एवं मिथ्याभाषी है। उसका यह कहना अनुचित है....उसका शिर ग्रीवा से पृथक् होकर गिर जायगा। यों मैंने सुनक्षत्र! उभयतः जान लिया है।

‘सुनक्षत्र! कल मैं वैशाली में भिक्षाकर्म से निवृत्त होकर जहाँ अचेल पाथिकपुत्र की कुटिया है वहाँ दिवाविहार के लिये आऊँगा। सुनक्षत्र! तूँ जैसा चाहता है वैसा कर ले।’

पिण्डाय पाविसिं । वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन अचेलस्स पाथिकपुत्तस्स आरामो तेनुपसङ्कमिं दिवाविहाराय । अथ खो, भग्गव, सुनक्खतो लिच्छविपुत्तो तरमानरूपो वेसालिं पविसित्वा येन अभिज्जाता अभिज्जाता लिच्छवी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अभिज्जाते अभिज्जाते लिच्छवी एतदवोच — ‘एसावुसो, भग्गवा वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन अचेलस्स पाथिकपुत्तस्स आरामो तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय । अभिक्कमथायस्मन्तो, अभिक्कमथायस्मन्तो । साधुरूपानं समणानं उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं भविस्सती’ ति । अथ खो, भग्गव, अभिज्जातानं अभिज्जातानं लिच्छवीनं [B.13] एतदहोसि—‘साधुरूपानं किर, भो, समणानं उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं भविस्सति; हन्द वत, भो, गच्छामा’ ति । येन च अभिज्जाता अभिज्जाता ब्राह्मणमहासाला गृहपतिनेचयिका नानातित्थिया समणब्राह्मणा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अभिज्जाते अभिज्जाते नानातित्थिये समणब्राह्मणे एतदवोच—‘एसावुसो, भग्गवा वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपात-पटिक्कन्तो येन अचेलस्स पाथिकपुत्तस्स आरामो तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय । अभिक्कमथायस्मन्तो, अभिक्कमथायस्मन्तो । साधुरूपानं समणानं उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं भविस्सती’ ति । अथ खो, भग्गव, अभिज्जातानं अभिज्जातानं नानातित्थियानं समणब्राह्मणानं एतदहोसि — ‘साधुरूपानं किर, भो, समणानं उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं भविस्सति; हन्द वत, भो गच्छामा’ ति ।

[R.17] “अथ खो, भग्गव, अभिज्जाता अभिज्जाता लिच्छवी अभिज्जाता अभिज्जाता च ब्राह्मणमहासाला गृहपतिनेचयिका नानातित्थिया समणब्राह्मणा येन अचेलस्स पाथिकपुत्तस्स आरामो तेनुपसङ्कमिंसु । सा एसा, भग्गव, परिसा महा होति अनेकसता अनेकसहस्सा ।

२१. “अस्सोसि खो, भग्गव, अचेलो पाथिकपुत्तो—‘अभिक्कन्ता किर अभिज्जाता

५. पाथिकपुत्र की कुटिया पर जनता का एकत्र होना

२०. “भार्गव! तब मैं (दूसरे दिन) पूर्वाह्न में, तैयार होकर, पात्र चीवर ले, वैशाली में भिक्षाटन हेतु गया । वैशाली में भिक्षाकर्म से निवृत्त होकर दिवाविहार के लिये अचेल पाथिकपुत्र की कुटिया पर पहुँचा ।

‘भार्गव! तब सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र जल्दी-जल्दी में, घबराया हुआ सा, वैशाली में जाकर जहाँ बड़े-बड़े लिच्छवि थे वहाँ गया । जाकर बोला— ‘आयुष्मानो! भगवान् वैशाली में भिक्षाटन कर पिण्डपात-कर्म से निवृत्त होकर दिवाविहार के लिये अचेल पाथिकपुत्र की कुटिया पर पधारे हैं । आप लोग वहाँ चलिये, आप लोग वहाँ चलिये । आप लोगों को ऊपरी भूमिका तक पहुँचे दो सिद्धों का ऋद्धिबल देखने को मिलेगा ।’ तब उन लिच्छवियों को विचार हुआ— ‘दो सिद्धों का ऋद्धिबल देखने को मिलेगा, अतः हम लोगों को अवश्य चलना चाहिये ।’ और जहाँ बड़े बड़े ब्राह्मण तथा गृहपति थे या जहाँ जहाँ अनेक अन्य सम्प्रदायों वाले तीर्थिक या श्रमण थे वहाँ वहाँ सर्वत्र जाकर सुनक्षत्र ने कहा— ‘आयुष्मानो! भगवान् ऋद्धिबल देखने को मिलेगा ।

‘तब वे बड़े बड़े लिच्छवि, ब्राह्मण महाशाल, गृहपति महाशाल तथा अन्य सम्प्रदायों के श्रमण एवं तीर्थिक अचेल पाथिकपुत्र की कुटिया पर दो उच्च सिद्धों का ऋद्धिबल देखने के लिये एकत्र हो गये । भार्गव! यह दर्शकों की भीड़ सैकड़ों हजारों की सङ्ख्या में थी ।

अभिज्जाता लिच्छवी, अभिक्कन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता च ब्राह्मणमहासाला गृहपतिनेचयिका नानातिथिया समणब्राह्मणा, समणो पि गोतमो मय्हं आरामे दिवाविहारं निसिन्नो' ति। सुत्वानस्स भयं छम्भितत्तं लोमहंसो उदपादि। अथ खो, भग्गव, अचेलो पाथिकपुत्तो भीतो [N.15] संविगो लोमहट्टजातो येन तिन्दुकखाणुपरिब्बाजकारामो तेनुपसङ्कमि।

“अस्सोसि खो, भग्गव, सा परिसा—‘अचेलो किर पाथिकपुत्तो भीतो संविगो लोमहट्टजातो येन तिन्दुकखाणुपरिब्बाजकारामो तेनुपसङ्कन्तो’ ति। अथ खो, भग्गव, [B.14] सा परिसा अज्जतरं पुरिसं आमन्तेसि—‘एहि त्वं, भो पुरिस, येन तिन्दुकखाणुपरिब्बाजकारामो येन अचेलो पाथिकपुत्तो तेनुपसङ्कम, उपसङ्कमित्वा अचेलं पाथिकपुत्तं एवं वदेहि—अभिक्कमावुसो पाथिकपुत्त, अभिक्कन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता लिच्छवी, अभिक्कन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता च ब्राह्मणमहासाला गृहपतिनेचयिका नानातिथिया समणब्राह्मणा, समणो पि गोतमो आयस्मतो आरामे दिवाविहारं निसिन्नो; भासिता खो पन ते एसा, आवुसो पाथिकपुत्त, वेसालियं परिसति वाचा—समणो पि गोतमो जाणवादो अहं पि जाणवादो, जाणवादो खो पन जाणवादेन अरहति उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं दस्सेतुं; [R.18] समणो चे गोतमो उपङ्कपथं आगच्छेय्य अहं पि उपङ्कपथं गच्छेय्यं, ते तत्थ उभो पि उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करेय्याम; एकं चे समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियानि करिस्सति, कर्त्तारहं करिस्सामि; द्वे चे समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियानि करिस्सति, चत्तारहं करिस्सामि; चत्तारि चे समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियानि करिस्सति, अट्ठाहं करिस्सामि; इति यावतकं यावतकं समणो गोतमो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सति, तद्दिगुणं तद्दिगुणाहं करिस्सामी ति; अभिक्कमस्सेव खो, आवुसो पाथिकपुत्त, उपङ्कपथं सब्बपठमंयेव आगन्त्वा समणो गोतमो आयस्मतो आरामे दिवाविहारं निसिन्नो’ ति।

२२. “‘एवं, भो’, ति खो, भग्गव, सो पुरिसो तस्सा परिसाय पटिस्सुत्वा येन तिन्दुकखाणुपरिब्बाजकारामो येन अचेलो पाथिकपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अचेलं

२१. “भार्गव! तब अचेल पाथिकपुत्र ने सुना— ‘बड़े-बड़े लिच्छवि, ब्राह्मणमहाशाल, गृहपति महाशाल एवं नाना सम्प्रदायों के साधु-सन्त उसकी कुटिया पर आये हुए हैं। श्रमण गौतम भी दिवाविहार के लिये यहाँ पधारे हैं।’ तब अचेल पाथिकपुत्र यह सुनकर डरा हुआ, घबराया हुआ रोमाञ्च प्राप्त हुआ तिन्दुकखाणु नामक परिव्राजकाराम में भाग गया।

“भार्गव! तब उस परिषद् ने भी सुना— ‘अचेल पाथिक डरकर घबराकर...तिन्दुकखाणुपरिव्राजकाराम में भाग गया है।’ भार्गव! तब उस परिषद् ने एक सन्देशवाहक से कहा— ‘अरे पुरुष! तुम तिन्दुकखाणु परिव्राजकाराम में, जहाँ अचेल पाथिकपुत्र गया हुआ है, जाओ, जाकर उनसे कहो—आयुष्मन् पाथिकपुत्र! बड़े-बड़े प्रख्यात लिच्छवि, ब्राह्मण, गृहपति, एवं नाना सम्प्रदायों के साधु-सन्त आप की कुटिया पर एकत्र हैं। श्रमण गौतम भी दिवाविहार के लिये आये हुए हैं। पाथिकपुत्र! आपने अनेक बार कई सभाओं में कहा था— श्रमण गौतम भी ज्ञानवादी हैं, मैं भी ज्ञानवादी हूँ...पूर्ववत्...मैं द्विगुण ऋद्धिबल दिखाऊँगा। तो आयुष्मन् पाथिकपुत्र! आज श्रमण गौतम, आपकी कही आधे मार्ग वाली बात छोड़कर, आपकी की कुटिया पर स्वयं दिवाविहार के लिये विराजमान हैं।’

२२. “भार्गव! वह पुरुष उस परिषद् को ‘ठीक है, जा रहा हूँ’— ऐसा वचन देकर तिन्दुकखाणु-

पाथिकपुत्तं एतदवोच—‘अभिक्रमावुसो पाथिकपुत्त, अभिक्रन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता लिच्छवी, अभिक्रन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता च ब्राह्मणमहासाला गहपतिनेचयिका नाना-
तिस्थिया समणब्राह्मणा। समणो पि गोतमो आयस्मतो आरामे दिवाविहारं निसिन्नो। भासिता [N.16, B.15] खो पन ते एसा, आवुसो पाथिकपुत्त, वेसालियं परिसति वाचा—समणो गोतमो जाणवादो अहं पि जाणवादो, जाणवादो खो पन जाणवादेन अरहति उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं दस्सेतुं....पे०.... तद्दिगुणं तद्दिगुणाहं करिस्सामी ति। अभिक्रमस्सेव खो, आवुसो पाथिकपुत्त, उपड्डपथं। सब्बपठमंयेव आगन्त्वा समणो गोतमो आयस्मतो आरामे दिवाविहारं निसिन्नो’ ति।

६. पराभूतरूपो पाथिकपुत्तो

“एवं वुत्ते, भग्गव, अचेलो पाथिकपुत्तो ‘आयामि, आवुसो, आयामि, आवुसो’ [R.19] ति—वत्वा तत्थेव संसम्पति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं। अथ खो सो, भग्गव, पुरिसो अचेलं पाथिकपुत्तं एतदवोच—‘किं सु नाम ते, आवुसो पाथिकपुत्त, पावळा सु नाम ते पीठकस्मिं अल्लीना, पीठकं सु नाम ते पावळासु अल्लीनं? आयामि आवुसो, आयामि आवुसो ति वत्वा तत्थेव संसम्पसि, न सक्कोसि आसना पि वुट्ठातुं’ ति! एवं पि खो, भग्गव, वुच्चमानो अचेलो पाथिकपुत्तो ‘आयामि, आवुसो, आयामि, आवुसो’ ति—वत्वा तत्थेव संसम्पति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं।

२३. “यदा खो सो, भग्गव, पुरिसो अज्जासि—‘पराभूतरूपो अयं अचेलो पाथिकपुत्तो; आयामि, आवुसो, आयामि, आवुसो ति वत्वा तत्थेव संसम्पति न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं’ ति, अथ तं परिसं आगन्त्वा एवमारोचेसि—‘पराभूतरूपो, भो, अचेलो पाथिकपुत्तो; आयामि, आवुसो, आयामि, आवुसो ति वत्वा तत्थेव संसम्पति न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं’ ति। एवं वुत्ते, अहं, भग्गव, तं परिसं एतदवोचं—‘अभब्बो खो, आवुसो, अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं

परिव्राजकाराम में अचेल पाथिकपुत्र के पास गया और यों बोला— ‘आयुष्मन् पाथिकपुत्र! आप चलें। आप की कुटिया पर इस समय बड़े-बड़े प्रख्यात लिच्छवि...पूर्ववत्...स्वयं दिवाविहार के लिये बैठे हैं।’

६. पराजित के समान पाथिकपुत्र

“(उस सन्देशवाहक द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, भार्गव! वह पाथिकपुत्र ‘आयुष्मन्! चलता हूँ, आयुष्मन् चलता हूँ’—कहकर भी वहीं इधर उधर सरकता रहा, आसन से उठ नहीं सका। भार्गव! तब वह (सन्देशवाहक) पाथिकपुत्र से बोला— ‘आयुष्मन्! आप को क्या हो गया है! चलता हूँ, आयुष्मन्!—कहकर भी आप आसन से उठ नहीं पा रहे हैं, मानो वहीं चिपक गये हों। क्या आपकी पीठ आसन में चिपक गयी है, या यह आसन ही आपको नहीं छोड़ रहा कि चल रहा हूँ, आयुष्मन्!—कहकर भी आप वहीं रुक जाते हैं, आसन से उठ भी नहीं पा रहे हैं!’

२३. “भार्गव! जब उस सन्देशवाहक ने निश्चित रूप से जान लिया— ‘यह पाथिकपुत्र पराजित के समान हो गया है, चल रहा हूँ, आयुष्मन्!—कहकर भी वहीं सरकता रहता है, आसन से उठ नहीं पाता।’ तब वह पुरुष सभा में आकर बोला— ‘वह अचेल पाथिकपुत्र तो हारा हुआ सा लगता है। चलता हूँ, चलता हूँ—कहकर भी वह आसन से उठ नहीं पाता।’ भार्गव! उस पुरुष के द्वारा ऐसा कहे जाने पर

अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिसस एवमस्स—‘अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं’ ति, मुद्धापि तस्स विपतेय्या ति।

पठमभागवारो निट्ठितो ।।

लिच्छविमहामत्तो तं आनेतुं गच्छि

२४. “अथ खो, भग्गव, अज्जतरो लिच्छविमहामत्तो उट्ठायासना तं परिसं [B.16] एतदवोच—‘तेन हि, भो, मुहुत्तं ताव आगमेथ यावाहं गच्छामि; अप्पेव नाम अहं पि [R.20] सकुणेय्यं अचेलं पाथिकपुत्तं इमं परिसं आनेतुं’ ति।

“अथ खो सो, भग्गव, लिच्छविमहामत्तो येन तिन्दुकखाणुपरिब्बाजकारामो येन अचेलो पाथिकपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अचेलं पाथिकपुत्तं एतदवोच—‘अभिक्रमावुसो पाथिकपुत्त, अभिक्रन्तं ते सेय्यो। अभिक्रन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता लिच्छवी, [N.17] अभिक्रन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता च ब्राह्मणमहाशाला गहपतिनेचयिका नानातिथिया समणब्राह्मणा। समणो पि गोतमो आयस्मतो आरामे दिवाविहारं निसिन्नो। भासिता खो पन ते एसा, आवुसो पाथिकपुत्त, वेसालियं परिसति वाचा—समणो पि गोतमो जाणवादो पे०.... तद्दिगुणं तद्दिगुणाहं करिस्सामी ति। अभिक्रमस्सेव खो, आवुसो पाथिकपुत्त, उपड्डपथं। सब्बपठमंयेव आगन्त्वा समणो गोतमो आयस्मतो आरामे दिवाविहारं निसिन्नो। भासिता खो पनेसा, आवुसो पाथिकपुत्त, समणेन गोतमेन परिसति वाचा—अभब्बो खो अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिसस एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या ति। अभिक्रमावुसो पाथिकपुत्त, अभिक्रमनेनेव ते जयं करिस्साम समणस्स गोतमस्स पराजयं’ ति।

मैंने उस परिषद् से कहा—‘यह अनुचित ही होगा कि वह अचेल पाथिकपुत्र विना अपनी इस मिथ्यादृष्टि को त्यागे....पूर्ववत्.... उसका शिर ग्रीवा से पृथक् होकर भूमि पर गिर जायगा।

प्रथम भाणवार समाप्त ।।

अचेल पाथिकपुत्र को लाने के लिये लिच्छविमहामात्य का जाना

२४. “भार्गव! तब लिच्छवियों के महामात्य ने आसन से उठकर सभा में कहा— ‘आप लोग कुछ समय और प्रतीक्षा करें। सम्भवतः मैं अचेल पाथिकपुत्र को इस सभा में ला सकूँ।’

“भार्गव! तब वह लिच्छविमहामात्य तिन्दुकखाणुपरिव्राजकाराम में अचेल पाथिकपुत्र के पास गया और बोला— आयुष्मन् पाथिकपुत्र! आप चलें, आपका चलना बहुत उचित होगा। बड़े-बड़े लिच्छवि, ब्राह्मण-महाशाल एवं गृहपतिमहाशाल तथा अच्छे-अच्छे अन्य सम्प्रदायों के तीर्थिक आपकी वहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रमण गौतम भी वहाँ दिवाविहार हेतु विराजमान हैं। आपने भी पहले कहा ही था— श्रमण गौतम ज्ञानवादी है....पूर्ववत्....। आप आधे मार्ग तक ही चलें। वैसे श्रमण गौतम तो आपकी कुटिया पर आ चुके हैं। उन्होंने चेतावनी भी दी है— यदि अचेल पाथिकपुत्र....तो उसका शिर ग्रीवा से पृथक् होकर भूमि पर गिर जायगा।’

“एवं वुत्ते, भग्गव, अचेलो पाथिकपुत्तो ‘आयामि, आवुसो, आयामि, आवुसो’ [R.21] ति—वत्त्वा तत्थेव संसप्पति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं। अथ खो सो, भग्गव, लिच्छविमहामत्तो अचेलं पाथिकपुत्तं एतदवोच—‘किं सु नाम ते, आवुसो पाथिकपुत्त, पावळा सु नाम ते पीठकस्मिं अल्लीना, पीठकं सु नाम ते पावळासु अल्लीनं? आयामि, आवुसो, [B.17] आयामि, आवुसो ति वत्त्वा तत्थेव संसप्पसि, न सक्कोसि आसना पि वुट्ठातुं’ ति। एवं पि खो, भग्गव, वुच्चमानो अचेलो पाथिकपुत्तो ‘आयामि आवुसो, आयामि आवुसो’ ति—वत्त्वा तत्थेव संसप्पति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं।

२५. “यदा खो सो, भग्गव, लिच्छविमहामत्तो अज्जासि—‘पराभूतरूपो अयं अचेलो पाथिकपुत्तो; आयामि आवुसो, आयामि आवुसो ति वत्त्वा तत्थेव संसप्पति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं’ ति, अथ तं परिसं आगन्त्वा एवमारोचेसि—‘पराभूतरूपो, भो, अचेलो पाथिकपुत्तो। आयामि आवुसो, आयामि आवुसो ति वत्त्वा तत्थेव संसप्पति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं’ ति। एवं वुत्ते अहं, भग्गव, तं परिसं एतदवोचं—‘अभब्बो खो, आवुसो [N.18] अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्य। सचे पायस्मन्तानं लिच्छवीनं एवमस्स—मयं अचेलं पाथिकपुत्तं वरत्ताहि बन्धित्वा गोयुगेहि आविज्जेय्यामा ति, ता वरत्ता छिज्जेय्युं पाथिकपुत्तो वा। अभब्बो पन अचेलो पाथिकपुत्तो तं [R.22] वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या’ ति।

“भार्गव! उस महामात्य के ऐसा कहने पर, अचेल पाथिकपुत्र ने ‘चलता हूँ, आयुष्मन्! चलता हूँ’ कहकर भी आसन से उठने का कोई प्रयास नहीं किया। तब उस महामात्य ने अचेल....से कहा—‘आयुष्मन्! आप चलता हूँ—कहकर आसन से नहीं उठ रहे हैं। क्या आसन ही आपको नहीं छोड़ रहा है, या आप की पीठ ही आसन से चिपक गयी है।’ ऐसा कहने पर भी.... अचेल पाथिकपुत्र आसन से उठ नहीं पाया।

२५. “जब भार्गव! वह लिच्छविमहामात्य जान गया कि यह अचेल पाथिकपुत्र पराजित हुआ सा लग रहा है, तभी यह ‘चलता हूँ’ कहकर भी आसन से उठ नहीं पा रहा। तब उस महामात्य ने सभा में आकर कहा—‘यह अचेल पराजित हुआ सा लगता है। वह चलता हूँ, आयुष्मन्—कहकर भी आसन से उठने का भी साहस नहीं कर पा रहा है।’ (महामात्य के) ऐसा कहने पर, भार्गव! मैंने उस परिषद् को फिर बताया—‘यह अनुचित ही होगा कि वह अचेल पाथिकपुत्र उस बात को बिना छोड़े....। यदि आप लिच्छविपुत्रों को यह मन में हो—हम उसे रस्सी से बाँधकर या बैलगाड़ी में डालकर यहाँ से ले आयेंगे—तब या तो रस्सियाँ ही टूट जायगी या फिर वह पाथिकपुत्र ही टूट जायगा। किन्तु वह अपने आसन को नहीं छोड़ पायगा; क्योंकि अचेल पाथिकपुत्र का यह कहना अनुचित है....पूर्ववत्....शिर ग्रीवा से पृथक् हो जायगा।’

जालियो तं आनेतुं गच्छ

२६. “अथ खो, भग्गव, जालियो दारुपत्तिकन्तेवासी उट्टयासना तं परिसं एतदवोच—
'तेन हि, भो, मुहुत्तं ताव आगमेथ, यावाहं गच्छामि; अप्पेव नाम अहं पि सक्कुणेय्यं अचेलं
पाथिकपुत्तं इमं परिसं आनेतुं' ति।

“अथ खो, भग्गव, जालियो दारुपत्तिकन्तेवासी येन तिन्दुक्खाणुपरिब्बाजका-[B.18]
रामो येन अचेलो पाथिकपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अचेलं पाथिकपुत्तं एतदवोच—
'अभिक्रमावुसो पाथिकपुत्त, अभिक्रन्तं ते सेय्यो। अभिक्रन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता लिच्छवी,
अभिक्रन्ता अभिज्जाता अभिज्जाता च ब्राह्मणमहासाला गहपतिनेचयिका नानातिथिया
समणब्राह्मणा। समणो पि गोतमो आयस्मतो आरामे दिवाविहारं निसिन्नो। भासिता खो पन ते
एसा, आवुसो पाथिकपुत्त, वेसालियं परिसति वाचा—समणो पि गोतमो जाणवादो पे०....
तद्दिगुणं-तद्दिगुणाहं करिस्समी ति। अभिक्रमस्सेव, आवुसो पाथिकपुत्त, उपड्डपथं। सब्बपठमंयेव
आगन्त्वा समणो गोतमो आयस्मतो आरामे दिवाविहारं निसिन्नो। भासिता खो पनेसा, आवुसो
पाथिकपुत्त, समणेन गोतमेन परिसति वाचा—अभब्बो अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय
तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—
अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स
सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्य; सचे पायस्मन्तानं लिच्छवीनं एवमस्स—
मयं अचेलं पाथिकपुत्तं वरत्ताहि बन्धित्वा गोयुगेहि आविज्जेय्यामा ति, ता वरत्ता [N.19]
छिज्जेय्यं पाथिकपुत्तो वा; अभब्बो पन अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं
अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं
तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं
आगच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या ति। अभिक्रमावुसो पाथिकपुत्त, अभिक्रमनेनेव ते
जयं करिस्साम समणस्स गोतमस्स पराजयं' ति।

“एवं वुत्ते, भग्गव, अचेलो पाथिकपुत्तो 'आयामि, आवुसो, आयामि, [R.23]
आवुसो' ति—वत्त्वा तत्थेव संसप्पति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं। अथ खो, भग्गव,
जालियो दारुपत्तिकन्तेवासी अचेलं पाथिकपुत्तं एतदवोच—'किं सु नाम ते, आवुसो पाथिकपुत्त,
पावळा सु नाम ते पीठकस्मि अल्लीना, पीठकं सु नाम ते पावळासु अल्लीनं? आयामि [B.19]
आवुसो, आयामि आवुसो ति—वत्त्वा तत्थेव संसप्पसि, न सक्कोसि आसना पि वुट्ठातुं' ति।
एवं पि खो, भग्गव, वुच्चमानो अचेलो पाथिकपुत्तो 'आयामि, आवुसो, आयामि, आवुसो'
ति—वत्त्वा तत्थेव संसप्पति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं ति।

२७. “यदा खो, भग्गव, जालियो दारुपत्तिकन्तेवासी अज्जासि—'पराभूतरूपो अयं

जालिय उसे लाने के लिये गया— २६. “तब, भार्गव! वहाँ उपस्थित दारुपत्तिक का शिष्य आसन से
उठकर यों बोला— 'आप लोग कुछ समय और प्रतीक्षा करें ...पूर्ववत्। (यहाँ भी लिच्छवि महामात्य का
संवाद पुनरावृत्त कर लें)।

अचेलो पाथिकपुत्तो; आयामि, आवुसो, आयामि, आवुसो! ति—वत्वा तत्थेव संसप्पति, न सक्कोति आसना पि वृद्धातुं' ति, अथ नं एतदवोच—

जरसिङ्गालूपमो पाथिकपुत्तो

'भूतपुब्बं, आवुसो पाथिकपुत्त, सीहस्स मिगरज्जो एतदहोसि—यन्नूनाहं अज्जतरं वनसण्डं निस्साय आसयं कप्पेय्यं, तत्रासयं कप्पेत्वा सायण्हसमयं आसया निक्खमित्वा विजम्भेय्यं, विजम्भित्वा समन्ता चतुद्दिशा अनुविलोकेय्यं, समन्ता चतुद्दिशा अनुविलोकेत्वा तिक्खत्तुं सीहनादं नदेय्यं, तिक्खत्तुं सीहनादं नदित्वा गोचराय पक्कमेय्यं; सो वरं वरं मिगसङ्खे वधित्वा मुदुमंसानि मुदुमंसानि भक्खयित्वा तमेव आसयं अज्जुपेय्यं ति। अथ खो, आवुसो, सो सीहो मिगराजा अज्जतरं वनसण्डं निस्साय आसयं कप्पेसि। तत्रासयं कप्पेत्वा सायण्हसमयं [N.20] आसया निक्खमि। आसया निक्खमित्वा विजम्भि। विजम्भित्वा समन्ता चतुद्दिशा अनुविलोकेसि। समन्ता चतुद्दिशा अनुविलोकेत्वा तिक्खत्तुं सीहनादं नदि। तिक्खत्तुं सीहनादं नदित्वा गोचराय पक्कामि। सो वरं वरं मिगसङ्खे वधित्वा मुदुमंसानि मुदुमंसानि भक्खयित्वा तमेव आसयं अज्जुपेसि।

[R.24] २८. 'तस्सेव खो, आवुसो पाथिकपुत्त, सीहस्स मिगरज्जो विघाससंवद्धो जरसिङ्गालो दित्तो चेव बलवा च। अथ खो, आवुसो तस्स जरसिङ्गालस्स एतदहोसि—को चाहं, को सीहो मिगराजा! यन्नूनाहं अज्जतरं वनसण्डं निस्साय आसयं कप्पेय्यं, तत्रासयं कप्पेत्वा [B.20] सायण्हसमयं आसया निक्खमेय्यं, आसया निक्खमित्वा विजम्भेय्यं, विजम्भित्वा समन्ता चतुद्दिशा अनुविलोकेय्यं, समन्ता चतुद्दिशा अनुविलोकेत्वा तिक्खत्तुं सीहनादं नदेय्यं, तिक्खत्तुं सीहनादं नदित्वा गोचराय पक्कमेय्यं; सो वरं वरं मिगसङ्खे वधित्वा मुदुमंसानि मुदुमंसानि भक्खयित्वा तमेव आसयं अज्जुपेय्यं ति। अथ खो सो, आवुसो, जरसिङ्गालो अज्जतरं वनसण्डं निस्साय आसयं कप्पेसि। तत्रासयं कप्पेत्वा सायण्हसमयं आसया निक्खमि।

२७. "भार्गव! दारुपत्तिक के शिष्य जालिय ने समझ लिया कि यह अचेल पाथिकपुत्र तो अभी से पराजित हुआ सा लगता है; क्योंकि यह 'चलता हूँ आयुष्मन्' कहकर भी आसन से उठ नहीं पा रहा। तब उसने उस पाथिकपुत्र से यों कहना प्रारम्भ किया—

पाथिकपुत्र की बूढ़े गीदड़ से उपमा—'आयुष्मन् पाथिकपुत्र! पहले कभी किसी मृगराज सिंह के मन में यह विचार आया— क्यों न मैं किसी वनप्रदेश में एक निश्चित स्थान बनाकर सायङ्काल उस स्थान से निकलूँ, निकलकर जम्हाई लूँ, जम्हाई लेकर चारों तरफ देखूँ। चारों तरफ देखकर तीन बार सिंहनाद (गर्जना) करूँ। तीन बार सिंहनाद करके अपने भोजन (खाद्य) की खोज में चल दूँ। वहाँ बड़े बड़े स्वस्थ पशुओं का मृदु (मुलायम) से मृदुतर मांस खाकर उसी अपने पूर्व निश्चित स्थान पर आ जाऊँ। आयुष्मन्! तब वह मृगराज सिंह किसी वनप्रदेश में निश्चित स्थान पर बनाकर वहाँ से सायङ्काल....पूर्ववत् मृदुतर मांसखाकर अपने उसी स्थान पर आ गया।

२८. "आयुष्मन् पाथिकपुत्र! उस मृगराज सिंह के खाने से बचे उच्छिष्ट मांस को खा खाकर एक वृद्ध शृगाल दीप्तिमान् और बलवान् हो गया। कभी उस वृद्ध शृगाल के मन में यह आया— कहाँ मैं और कहाँ वह सिंह! क्यों न मैं भी किसी वन में जाकर अपना एक आश्रय बना लूँ। आश्रय से निकलकर सायङ्काल.... पूर्ववत्....मांस खाकर पुनः अपने आश्रय पर लौट आऊँ। आयुष्मन्! तब उस वृद्ध शृगाल ने

आसया निक्खमित्वा विजम्भि । विजम्भित्वा समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेसि । समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेत्वा तिक्खत्तुं सीहनादं नदिस्सामी ति सिङ्गालकंयेव अनदि भेरण्डकंयेव अनदि । के च छवे सिङ्गाले, के पन सीहनादे ति !

‘एवमेव खो त्वं, आवुसो पाथिकपुत्त, सुगतापदानेसु जीवमानो सुगतातिरित्तानि भुञ्जमानो तथागते अरहन्ते सम्मासम्बुद्धे आसादेतब्बं मज्जसि । के च छवे पाथिकपुत्ते, का च तथागतानं अरहन्तानं सम्मासम्बुद्धानं आसादना’ ति !

२९. “यतो खो, भगव, जालियो दारुपत्तिकन्तेवासी इमिना ओपम्मेन नेव असक्खि अचेलं पाथिकपुत्तं तम्हा आसना चावेतुं, अथ नं एतदवोच—

‘सीहो ति अत्तानं समेक्खियान, अमज्जि कोत्थु मिगराजाहमस्मि । [R.25]

तथेव सो सिङ्गालकं अनदि, के च छवे सिङ्गाले के पन सीहनादे ति ॥

‘एवमेव खो त्वं, आवुसो पाथिकपुत्त, सुगतापदानेसु जीवमानो सुगतातिरित्तानि [N.21] भुञ्जमानो तथागते अरहन्ते सम्मासम्बुद्धे आसादेतब्बं मज्जसि । के च छवे पाथिकपुत्ते, का च तथागतानं अरहन्तानं सम्मासम्बुद्धानं आसादना’ ति !

३०. “यतो खो, भगव, जालियो दारुपत्तिकन्तेवासी इमिना पि ओपम्मेन नेव असक्खि अचेलं पाथिकपुत्तं तम्हा आसना चावेतुं, अथ नं एतदवोच—

‘अज्जं अनुचङ्कमनं अत्तानं विधासे समेक्खिय,

याव अत्तानं न पस्सति कोत्थु ताव ब्यग्घो ति मज्जति । [B.21]

तथेव सो सिङ्गालकं अनदि, के च छवे सिङ्गाले के पन सीहनादे ति ॥

‘एवमेव खो त्वं, आवुसो पाथिकपुत्त, सुगतापदानेसु जीवमानो सुगतातिरित्तानि भुञ्जमानो

किसी वन में जा कर एक आश्रय बनाया.... ‘तीन बार सिंहनाद करूँगा’— सोचकर अपनी कर्कश ध्वनि से शृगालों का ही शब्द (‘हुआँ, हुआँ’) करने लगा। भला कहाँ सिंहनाद और कहाँ तुच्छ शृगालों की कर्कश हुआँ-हुआँ ध्वनि!

‘इसी तरह आयुष्मन् पाथिकपुत्र! तू उन सुगत की ही शिक्षाओं पर जीवित रहकर और उनका उच्छिष्ट खानेवाला होकर भी उन तथागत की समानता करने का साहस कैसे कर रहा है! कहाँ तुच्छ पाथिकपुत्र, और कहाँ तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध की समानता!

२९. ‘अरे! कोई गीदड़ अपने आप को सिंह मानकर स्वयं को मृगराज कहने लगे और वैसा ही नाद करना चाहे, तो कहाँ उसकी वह तुच्छ हुआँ-हुआँ कर्कश ध्वनि और कहाँ वह (मेघगर्जन के समान) सिंहनाद!

‘उसी तरह आयुष्मन् पाथिकपुत्र! तू भी उन सुगत की शिक्षाओं पर जीवित रहकर...पूर्ववत्...तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध की समानता!’

३०. “भार्गव! वह दारुपत्तिक का अन्तेवासी जालिय इस व्यङ्ग्यात्मक दृष्टान्त से भी उस अचेल पाथिकपुत्र को उद्धोधित कर उसे आसन से हिला न सका। तब वह उसको बोला—

‘जब तक दूसरों का उच्छिष्ट भोजन एकान्त में खाकर मोटा एवं बलवान् गीदड़ अपना स्वरूप नहीं पहचानता, तब तक वह गीदड़ अपने को सिंह समझता है। वह तो गीदड़ की तरह वही तुच्छ हुआँ-हुआँ की कर्कश ध्वनि कर पाता है, सिंहनाद करने की उसकी क्षमता कहाँ!

तथागते अरहन्ते सम्मासम्बुद्धे आसादेतब्बं मज्जसि। के च छवे पाथिकपुत्ते, का च तथागतानं अरहन्तानं सम्मासम्बुद्धानं आसादना' ति।

३१. "यतो खो, भग्गव, जालियो दारुपत्तिकन्तेवासी इमिना पि ओपम्मेन नेव [R.26] असक्खि अचेलं पाथिकपुत्तं तम्हा आसना चावेतुं, अथ नं एतदवोच—

‘भुत्वान भेके खलमूसिकायो, कटसीसु खित्तानि च कोणपानि।

महावने सुज्जवने विवङ्गो, अमज्जि कोत्थु मिगराजाहमस्मि॥

तथेव सो सिङ्गालकं अनदि, के च छवे सिङ्गाले के पन सीहनादे ति।

‘एवमेव खो त्वं, आवुसो पाथिकपुत्त, सुगतापदानेसु जीवमानो सुगतातिरित्तानि भुज्जमानो तथागते अरहन्ते सम्मासम्बुद्धे आसादेतब्बं मज्जसि। के च छवे पाथिकपुत्ते, का च तथागतानं अरहन्तानं सम्मासम्बुद्धानं आसादना' ति।

३२. "यतो खो, भग्गव, जालियो दारुपत्तिकन्तेवासी इमिना पि ओपम्मेन नेव [N.22] असक्खि अचेलं पाथिकपुत्तं तम्हा आसना चावेतुं, अथ तं परिसं आगन्त्वा एवमारोचेसि—‘पराभूतरूपो, भो, अचेलो पाथिकपुत्तो। आयामि आवुसो, आयामि आवुसो ति—वत्वा तत्थेव संसंपत्ति, न सक्कोति आसना पि वुट्ठातुं' ति।

[B.22] ३३. "एवं वुत्ते, अहं, भग्गव, तं परिसं एतदवोचं—‘अभब्बो खो, आवुसो, अचेलो पाथिकपुत्तो तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं; सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्य। सचेपायस्मतानं लिच्छवीनं एवमस्स—मयं अचेलं पाथिकपुत्तं वरत्ताहि बन्धित्वा गोयुगेहि [R.27] आविज्जेय्यामा ति, ता वरत्ता छिज्जेय्युं पाथिकपुत्तो वा। अभब्बो पन अचेलो पाथिकपुत्तो

‘इसी तरह तू भी पाथिकपुत्र! सुगत की शिक्षाओं पर जीवित रहकर....कहाँ सम्यक्सम्बुद्ध की समानता कर पायगा।

३१. "जब भार्गव! वह दारुपत्तिक का शिष्य जालिय इस व्यङ्ग्यात्मक उपमा से भी उस पाथिकपुत्र को उत्साहित न कर सका और न उसको उसके आसन से हिला-डुला ही पाया। तब उसको वह यों बोला—

‘कोई वृद्ध मृगाल मेंडकों, चूहों तथा श्मशान में फेंके मुर्दों का मांस खाकर एकान्त महावन में रहता हुआ अपने को मृगराज सिंह समझ बैठता है। तब भी वह वही अपनी चिरपरिचित हुआँ-हुआँ—ऐसी कर्कश ध्वनि ही करेगा, गम्भीर सिंहनाद करने से तो रहा! क्योंकि कहाँ तुच्छ गीदड़ और कहाँ भीमगर्जन तुल्य सिंहनाद!

‘इसी तरह तू भी, आयुष्मन् पाथिकपुत्र! सुगत की शिक्षाओं पर जीवित रहकर...पूर्ववत्.... सम्यक्सम्बुद्धों से समानता करेगा!

३२. "क्योंकि, भार्गव! वह दारुपत्तिक-अन्तेवासी जालिय इस व्यङ्ग्यवाण से भी उस अचेल पाथिकपुत्र को अपने स्थान से नहीं हिला-डुला पाया, तब वह उस परिषद् में आकर यों बोला—‘श्रीमानो! वह अचेल पाथिकपुत्र तो पहले से ही पराजित हुआ सा लगता है। चलता हूँ, चलता हूँ—कहकर भी वह अपने आसन से हिल-डुल नहीं पाया।’

तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा मम सम्मुखीभावं आगन्तुं। सचे पिस्स एवमस्स—अहं तं वाचं अप्पहाय तं चित्तं अप्पहाय तं दिट्ठिं अप्पटिनिस्सज्जित्वा समणस्स गोतमस्स सम्मुखीभावं गच्छेय्यं ति, मुद्धा पि तस्स विपतेय्या' ति।

७. भगवा इद्धिपाटिहारियं अकासि

३४. “अथ ख्वाहं, भग्गव, तं परिसं धम्मिया कथाय सन्देस्सेसिं समादपेसिं समुत्तेजेसिं सम्पहंसेसिं। तं परिसं धम्मिया कथाय सन्देस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा महाबन्धना मोक्खं करित्वा चतुरासीतिपाणसहस्सानि महाविदुग्गा उद्धरित्वा तेजोधातुं समापज्जित्वा सत्ततालं वेहासं अब्भुगन्त्वा अज्जं सत्ततालं पि अच्चिं अभिनिम्मिनित्वा पज्जित्वा धूमायित्वा महावने कूटागारसालायं पच्चुट्ठासिं।

३५. “अथ खो, भग्गव, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अहं, भग्गव, सुनक्खत्तं लिच्छविपुत्तं एतदवोचं—‘तं किं मज्जसि, सुनक्खत्त, यथेव ते अहं अचेलं पाथिकपुत्तं आरब्भ ब्याकासिं तथेव तं विपाकं अज्जथा वा’ ति?

‘यथेव मे, भन्ते, भगवा अचेलं पाथिकपुत्तं आरब्भ ब्याकासि तथेव तं विपाकं, नो अज्जथा’ ति।

‘तं किं मज्जसि, सुनक्खत्त, यदि एवं सन्ते कतं वा होति उत्तरि मनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं, अकतं वा’ ति?

‘अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते कतं होति उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं, नो अकतं’ ति।

‘एवं पि खो मं त्वं, मोघपुरिस, उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धि—[N.23, B.23, R.28] पाटिहारियं करोन्तं एवं वदेसि—नहि पन मे, भन्ते, भगवा उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करोती ति। पस्स, मोघपुरिस, यावं च ते इदं अपरद्धं’ ति। (६)

३३. “भार्गव! तब मैंने उस परिषद् को यों कहा— आयुष्मानो! यह अनुचित होगा कि अचेल पाथिकपुत्र अपनी मिथ्या धारणा को बिना त्यागे....उसका शिर ग्रीवा से अलग हो जायगा।

७. भगवान् ने ऋद्धिप्रातिहार्य दिखाया

३४. “तब, भार्गव! मैंने उस परिषद् को धार्मिक कथाएँ सुनाकर धर्म के प्रति समुत्तेजित, सम्प्रहृष्ट एवं सन्तुष्ट किया। ...सन्तुष्ट कर संसार के महान् बन्धनों से चौरासी हजार प्राणियों को मुक्त किया। फिर तेजोधातु (अग्नि-तत्त्व) को ध्यान से ग्रहण कर सात ताल ऊँचे ऊपर आकाश में उठकर और सात ताल ऊँचा अपना तेज (अग्नि) फैलाकर स्वयं महावन की कूटागारशाला में ऊपर उठा।

३५. “भार्गव! तब सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था, वहाँ आया। ...एक ओर बैठे उस सुनक्षत्र....को मैं बोला—‘सुक्षत्र! तो अब तू क्या मानता है— अचेल पाथिकपुत्र के विषय में जो मैंने कहा था वैसा ही हुआ या अन्यथा?’

‘भन्ते!...जैसा आपने कहा था, उसका वही परिणाम हुआ, अन्याय नहीं।’

‘सुनक्षत्र! तो तू क्या समझता है कि मैंने ऋद्धिबल दिखाया कि नहीं?’

‘भन्ते! दिखाया।’

“एवं पि खो, भग्गव, सुनक्खतो लिच्छविपुत्तो मया वुच्चमानो अपक्कमेव इमस्मा धम्मविनया, यथा तं आपायिको नेरयिको।

८. अग्गज्जपज्जापनं आरब्ध देसना

३६. “अग्गज्जज्झाहं, भग्गव, पजानामि, तं च पजानामि, ततो च उत्तरितरं पजानामि, तं च पजाननं न परामसामि, अपरामसतो च मे पच्चत्तज्जेव निब्बुति विदिता, यदभिजानं तथागतो नो अनयं आपज्जति।

इस्सरकुत्तं ब्रह्मकुत्तं

३७. “सन्ति, भग्गव, एके समणब्राह्मणा इस्सरकुत्तं ब्रह्मकुत्तं आचरियकं अग्गज्जं पज्जपेन्ति। त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—‘सच्चं किर तुम्हे आयस्मन्तो इस्सरकुत्तं ब्रह्मकुत्तं आचरियकं अग्गज्जं पज्जपेथा’ ति? ते च मे एवं पुट्ठा, ‘आमो’ ति पटिजानन्ति। त्याहं एवं वदामि—‘कथंविहितकं पन तुम्हे आयस्मन्तो इस्सरकुत्तं ब्रह्मकुत्तं आचरियकं अग्गज्जं पज्जपेथा’ ति? ते मया पुट्ठा न सम्पायन्ति। असम्पायन्ता ममज्जेव पटिपुच्छन्ति। तेसाहं पुट्ठो ब्याकरोमि—

(क) ब्रह्मा इस्सरो कत्ता

३८. ‘होति खो सो, आवुसो, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्दुनो अच्चयेन अयं लोको संवट्ठति। संवट्ठमाने लोके, येभ्य्येन सत्ता आभस्सरसंवत्तनिका होन्ति। ते तत्थ होन्ति मनोमया पीतिभक्खा सयम्पभा अन्तलिक्खचरा सुभट्ठायिनो, चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति।

‘मूर्ख! ऐसा ऋद्धिबल दिखाने के बाद, तू कैसे कहता है कि भन्ते! भगवान् मुझे ऋद्धिबल नहीं दिखाते। मूर्ख! देख, यह तेरा ही अपराध है।’ (६)

“भार्गव! मेरे द्वारा इतना समझाने पर भी वह सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र आपायिक (नारकीय) की भाँति इस धर्मविनय को छोड़कर चला ही गया।

८. श्रेष्ठता-प्रज्ञापनविषयक उपदेश

३६. “भार्गव! मैं ‘अग्रता किसे कहते हैं?’— यह जानता हूँ। अपितु यों कहो कि मैं उसे भी जानता हूँ, उससे अधिक भी कुछ जानता हूँ। हाँ, उसे जानकर भी मुझे उसका कोई अभिमान नहीं है। यों अभिमान न करते हुए मैं अपने में आन्तरिक मुक्ति का अनुभव करता हूँ। जिस अनुभव से तथागत फिर कभी दुःख नहीं पाते।

ईश्वरवाद एवं निर्माण (सृष्टि)-वाद ३७. “यहाँ भार्गव! कुछ ऐसे श्रमण-ब्राह्मण हैं जो अपने ‘यह सृष्टि ईश्वर या ब्रह्मा द्वारा रची गयी है’— इस मत (=आचार्यक) को ही श्रेष्ठ मानते हैं। उनके पास जाकर मैं उनसे यों पूछता हूँ— ‘क्या आप लोग वस्तुतः ‘यह सृष्टि ईश्वर या ब्रह्मा द्वारा रची गयी है’— ऐसा मानते हैं। मेरे द्वारा ऐसा पूछा जाने पर वे मेरे प्रश्न का ‘हाँ’ में उत्तर देते हैं। तब फिर मैं उनसे कहता हूँ कि आप अपने इस मत की पुष्टि कैसे करते हैं? तो मुझे वे इसका कोई उचित उत्तर नहीं दे पाते, अपितु, इसके विपरीत वे मुझसे ही प्रश्न कर बैठते हैं। तब मैं उनको इस सृष्टि की वास्तविकता बताता हूँ—

(क) ब्रह्माया ईश्वरज्ञः सृष्टि के रचयिता कैसे? ३८. ‘आयुष्मानो! बहुत काल बीतने पर, जन्म-मरण का लम्बा रास्ता पार कर यह लोक प्रलीन (उच्छिन्न) होता है। इस लोक के उच्छिन्न होने पर भी कुछ आभास्वर योनि में जन्मे प्राणी मनोमय, प्रीतिभोजी, स्वयम्प्रभ, अन्तरिक्षगामी एवं शुभ नामक विमोक्ष में

होति खो सो, आवुसो, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्दुनो अच्चयेन अयं लोको विवट्टति । विवट्टमाने लोके सुज्जं ब्रह्मविमानं पातुभवति । अथ खो अज्जतरो सत्तो [R.29] आयुक्खया वा पुज्जक्खया वा आभस्सरकाया चवित्वा सुज्जं ब्रह्मविमानं उपपज्जति । [B.24] सो तत्थ होति मनोमयो पीतिभक्खो सयम्पभो अन्तलिक्खचरो सुभट्ठायी, चिरं [N.24] दीघमद्धानं तिट्ठति । तस्स तत्थ एककस्स दीघरत्तं निवुसितत्ता अनभिरति परितस्सना उप्पज्जति—अहो वत अज्जे पि सत्ता इत्थत्तं अगच्छेयुं ति । अथ अज्जे पि सत्ता आयुक्खया वा पुज्जक्खया वा आभस्सरकाया चवित्वा सुज्जं ब्रह्मविमानं उपपज्जति तस्स सत्तस्स सहब्ब्यत्तं । ते पि तत्थ होन्ति मनोमया पीतिभक्खा सयम्पभा अन्तलिक्खचरा सुभट्ठायिनो, चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति ।

३९. 'तत्रावुसो, यो सो सत्तो पठमं उपपन्नो तस्स एवं होति—अहमस्मि ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अज्जदत्थुदसो वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्ब्यानं, मया इमे सत्ता निम्मिता; तं किस्स हेतु, ममं हि पुब्बे एतदहोसि—अहो वत अज्जे पि सत्ता इत्थत्तं आगच्छेयुं ति; इति मम च मनोपणिधि, इमे च सत्ता इत्थत्तं आगता ति ।

'ये पि ते सत्ता पच्छा उपपन्ना तेसं पि एवं होति—अयं खो भवं ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अज्जदत्थुदसो वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्ब्यानं; इमिना मयं भोता ब्रह्मना निम्मिता; तं किस्स हेतु, इमं हि मयं अद्दसाम इध पठमं उपपन्नं; मयं पनाम्ह पच्छा उपपन्ना ति ।

४०. 'तत्रावुसो, यो सो सत्तो पठमं उपपन्नो सो दीघायुकतरो च होति वण्ण—[R.30]

स्थित होकर चिरकाल तक रहने वाले होते हैं । आयुष्मानो! बहुत काल बीतने पर लम्बा रास्ता पार कर यह लोक पुनः विवर्तभाव (उत्पाद) को प्राप्त होता है । लोक की इस उत्पत्ति के प्रारम्भ में एक शून्य ब्रह्मविमान उत्पन्न (प्रादुर्भूत) होता है । तब कोई प्राणी आयुःक्षय या पुण्यक्षय के कारण उस आभास्वर योनि से च्युत होकर उस शून्य (रिक्त) ब्रह्मविमान में उत्पन्न होता है । वहाँ भी वह प्राणी मनोमय, प्रीतिभोजी, स्वयम्प्रभ, अन्तरिक्षचारी एवं शुभ नामक विमोक्ष में स्थित होकर चिरकाल तक ठहरता है । वहाँ बहुत समय तक एकाकी रहने के कारण उसके मन में उद्वेग एवं परितर्षणा (चिन्ता) होने लगती है कि क्या ही अच्छा होता कि मेरी ही तरह के कुछ अन्य प्राणी भी यहाँ होते! तब (कुछ) दूसरे प्राणी भी आयु एवं पुण्य के क्षय से....पूर्ववत्....चिरकाल तक ठहरते हैं ।

३९. 'आयुष्मानो! कुछ समय बाद, वहाँ उस प्रथम उत्पन्न प्राणी के मन में यह होता है— मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा, अभिभू (विजेता), अनभिभूत (अपराजित), सर्वज्ञ, स्वयंवशवर्ती (=स्वामी), ईश्वर, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, स्रष्टा, तथा भविष्य में उत्पन्न होने वाले प्राणियों का पिता हूँ, क्योंकि मैंने ही इन प्राणियों की सृष्टि की है । वह किसलिये? क्योंकि मेरे ही मन में पहले यह बात पैदा हुई थी कि अरे! कुछ दूसरे प्राणी भी यहाँ आवें । अतः मेरे मन के सङ्कल्प से उत्पन्न होने के कारण ये प्राणी यहाँ आये हैं ।

'और, जो प्राणी वहाँ बाद में उत्पन्न हुए उनके मन में भी यह होता है— 'यह ब्रह्मा महाब्रह्मा...पिता है; इसीने हमको यहाँ उत्पन्न किया है; वह किस कारण? क्योंकि इसे हम उत्पन्न हुए तभी से देख रहे हैं, हम तो बाद में उत्पन्न हुए हैं ।

४०. 'आयुष्मानो! वह प्राणी जो प्रथम उत्पन्न हुआ था वह अपेक्षाकृत लम्बी आयु वाला, अधिक

वन्ततरो च महेसक्खतरो च, ये पन ते सत्ता पच्छा उपपन्ना ते अप्पायुक्तरा च होन्ति दुब्बण्णतरा च अप्पेसक्खतरा च ।

‘ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं अज्जतरो सत्तो तम्हा काया चवित्वा इत्थत्तं आगच्छति । इत्थत्तं आगतो समानो अगारस्मा अनगारियं पब्बजति । अगारस्मा अनगारियं [B.25] पब्बजितो समानो आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते तं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति; ततो परं नानुस्सरति ।

‘सो एवमाह—यो खो सो भवं ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अज्जदत्थुदसो वसवत्ती कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्बानं, येन मयं भोता ब्रह्मना निम्मिता, सो निच्चो ध्रुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो सस्सतिसमं तथेव ठस्सति; ये पन मयं अहुम्हा, तेन भोता ब्रह्मना निम्मिता, ते मयं अनच्चा अद्भुवा अप्पायुका चवनधम्मा इत्थत्तं आगता ति । [N.25] एवंविहितकं नो तुम्हे आयस्सन्तो इस्सरकुत्तं ब्रह्मकुत्तं आचरियकं अग्गज्जं पज्जपेथा’ ति ।

‘ते एवमाहंसु—एवं खो नो, आवुसो गोतम, सुतं यथेवायस्मा गोतमो आहा’ ति ।

“अग्गज्जञ्चाहं, भग्गव, पजानामि, तं च पजानामि, ततो च उत्तरितरं पजानामि, तं च पजाननं न परामसामि, अपरामसतो च मं पच्चत्तज्जेव निब्बुति विदिता, यदभिजानं तथागतो नो अनयं आपज्जति ।

(ख) खिड्डापदोसिका देवा

४१. “सन्ति, भग्गव, एके समणब्राह्मणा खिड्डापदोसिकं आचरियकं अग्गज्जं पज्जपेन्ति । त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—‘सच्चं किर तुम्हे आयस्सन्तो खिड्डापदोसिकं

रूपवान् तथा अधिक आनुभाव (प्रभाव) वाला था । और, बाद में उत्पन्न होने वाले प्राणी उसकी अपेक्षा आयु एवं रूप में अल्प प्रभाव वाले थे ।

(अब ऐसे समय में) ‘आयुष्मानो! यह सम्भव ही लगता है कि कोई प्राणी (जब) उस काया को छोड़कर इस लोक में आता है, यहाँ आकर वह घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो जाता है ।... प्रव्रजित होकर, संयम, वीर्य, अध्यवसाय, अप्रमाद एवं स्थिरचित्तता से उस प्रकार की चित्त समाधि प्राप्त करता है जिससे कि एकाग्रचित्त होने पर वह उससे एक पूर्वजन्म का स्मरण करता है, परन्तु उससे पहले का स्मरण नहीं कर पाता ।

‘वह ऐसे कहता है— जो ब्रह्मा, महाब्रह्मा... पिता है, जिसने हम सबको उत्पन्न किया है, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार (अविपरिणामधर्मा) और अविनाशी है । और जो हमलोग उस ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गये हैं अनित्य, अध्रुव, अशाश्वत, अल्पायु तथा मरणशील हैं । आयुष्मानो! आप लोग ईश्वरवाद एवं निर्माणवाद की स्थापना इन्हीं युक्तियों (तर्कों) से करते हैं ना?

‘वे कहते हैं— हाँ, आयुष्मन् गौतम! जैसा आप कहते हैं, हमने वैसा ही सुना है ।’

“भार्गव! मैं ‘अग्र’ (ईश्वरवाद) के विषय में भी जानता हूँ और उससे आगे (सर्वज्ञज्ञान) के विषय में भी जानता हूँ; परन्तु यह जान कर भी मुझे इस ज्ञान का कोई अभिमान नहीं है । इस अभिमान के न होने से मुझे आन्तरिक मुक्ति का अनुभव होता है । उस अनुभव से तथागत फिर कभी दुःख नहीं पाते । (ख) क्रीडाप्रदोषिक देव ही सृष्टि के आदि पुरुष—४१. “भार्गव! कुछ श्रमण ब्राह्मण ऐसे भी हैं जो मानते

आचरियकं अगगज्जं पज्जपेथा' ति ? ते च मं एवं पुट्ठा 'आमो' ति पटिजानन्ति । [R.31] त्याहं एवं वदामि—'कथंविहितकं पन तुम्हे आयस्मन्तो खिड्ढापदोसिकं आचरियकं अगगज्जं पज्जपेथा' ति ? ते मया पुट्ठा न सम्पायन्ति । असम्पायन्ता ममयेव पटिपुच्छन्ति । तेसाहं पुट्ठो ब्याकरोमि—

४२. 'सन्तावुसो, खिड्ढापदोसिका नाम देवा । ते अतिवेलं हस्सखिड्ढारतिधम्मसमापन्ना विहरन्ति । तेसं अतिवेलं हस्सखिड्ढारतिधम्मसमापन्नानं विहरतं सति सम्मुस्सति । सतिया [B.26] सम्मोसा ते देवा तम्हा काया चवन्ति । ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं अज्जतरो सत्तो तम्हा काया चवित्वा इत्थत्तं आगच्छति । इत्थत्तं आगतो समानो अगारस्मा अनगारियं पब्बजति । अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो समानो आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते तं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति; ततो परं नानुस्सरति । सो एवमाह—ये खो ते भोन्तो देवा न खिड्ढापदोसिका ते न अतिवेलं हस्सखिड्ढारतिधम्मसमापन्ना विहरन्ति, तेसं नातिवेलं हस्सखिड्ढारतिधम्मसमापन्नानं विहरतं सति न सम्मुस्सति, सतिया असम्मोसा ते देवा तम्हा काया न चवन्ति, निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सन्ति; ये पन मयं अहुम्हा खिड्ढापदोसिका ते मयं अतिवेलं हस्सखिड्ढारतिधम्मसमापन्ना विहरिम्हा, तेसं नो अतिवेलं हस्सखिड्ढारतिधम्मसमापन्नानं विहरतं सति सम्मुस्सति, सतिया सम्मोसा ते [N.26] मयं तम्हा काया चुता अनिच्चा अद्दुवा अप्पायुका चवनधम्मा इत्थत्तं आगता ति । [R.32] एवंविहितकं नो तुम्हे आयस्मन्तो खिड्ढापदोसिकं आचरियकं अगगज्जं पज्जपेथा' ति ।

“ते एवमाहंसु—‘एवं खो नो, आवुसो गोतम, सुतं यथेवायस्मा गोतमो आहा’ ति ।

“अगगज्जञ्चाहं, भगव, पजानामि.... पे०.... यदभिजानं तथागतो नो अनयं आपज्जति ।

हैं कि क्रीड़ाप्रदोषिक देव ही इस सृष्टि के आदि पुरुष हैं । मैंने उनसे भी जाकर पूछा—‘क्या आप लोग क्रीड़ा....आदि पुरुष मानते हैं?’ उनके ऐसा स्वीकार कर लेने पर, मैं उनसे फिर पूछता हूँ—‘ऐसा आप लोग कैसे और क्यों मानते हैं?’ तब वे कुछ भी उत्तर नहीं दे पाते! इसके विपरीत, इसका उत्तर वे मुझसे ही पूछते हैं । तब मैं उनको बताता हूँ—

४२. ‘आयुष्मानो! क्रीड़ाप्रदोषिक नाम के देवता भी होते हैं । वे चिरकाल तक क्रीड़ा, हास्य एवं रतिधर्म में संलग्न रहते हैं । ऐसा करने से उनकी स्मृति नष्ट हो जाती है । ऐसा होने पर, वे देव उस काया से च्युत होने लगते हैं । तब यह सम्भव है कि कोई देवता, उस काया से च्युत होकर इस लोक में आ जाय । आकर....प्रव्रजित हो....एकाग्रचित्त होकर उसे एक पूर्वजन्म का स्मरण हो जाय । उससे पूर्व का स्मरण न हो । वह ऐसे कहता है— जो देवता क्रीड़ाप्रदोषिक नहीं हैं वे अधिक समय तक हास्य, क्रीड़ा एवं रतिधर्म से सम्पृक्त न रहने के कारण उनकी स्मृति नष्ट नहीं होती । ऐसा न होने के कारण वे उस देवकाय से च्युत नहीं होते और वे नित्य, ध्रुव, शाश्वत....रहते हुए चिरकाल तक रहते हैं । तथा हम लोग हास्य, क्रीड़ा एवं रतिधर्म में सम्पृक्त रहने के कारण, स्मृति के नष्ट होने से, उस देवकाय से च्युत हो गये । अतः हम अनित्य, अध्रुव....मरणशील हैं । क्यों आयुष्मानो! आप लोगों के मत का यही निष्कर्ष है, ना!’

‘वे कहते हैं— हाँ आयुष्मन् गौतम! जैसा आप बता रहे हैं वैसा ही हमने अपने पूर्व पुरुषों से भी सुना है ।’

(ग) मनोपदोसिका देवा

४३. “सन्ति, भगव, एके समणब्राह्मणा मनोपदोसिकं आचरियकं अग्गञ्जं पज्जपेन्ति । त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—‘सच्चं किर तुम्हे आयस्मन्तो मनोपदोसिकं आचरियकं अग्गञ्जं पज्जपेथा’ ति ? ते च मे एवं पुट्ठा ‘आमो’ ति पटिजानन्ति । त्याहं एवं वदामि—‘कथंविहितकं पन तुम्हे आयस्मन्तो मनोपदोसिकं आचरियकं अग्गञ्जं पज्जपेथा’ ति ? ते मया पुट्ठा न सम्पायन्ति । असम्पायन्ता ममंयेव पटिपुच्छन्ति । तेसाहं पुट्ठो ब्याकरोमि—

४४. ‘सन्तावुसो, मनोपदोसिका नाम देवा । ते अतिवेलं अज्जमज्जं उपनिज्झायन्ति । [B.27] ते अतिवेलं अज्जमज्जं उपनिज्झायन्ता अज्जमज्जमिह चित्तानि पदूसेन्ति । ते अज्जमज्जं पदुट्ठचित्ता किलन्तकाया किलन्तचित्ता । ते देवा तम्हा काया चवन्ति :

‘ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं अज्जतरो सत्तो तम्हा काया चवित्वा इत्थत्तं आगच्छति । इत्थत्तं आगतो समानो अगारस्मा अनगरियं पब्बजति । अगारस्मा अन्गारियं पब्बजितो समानो आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते तं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, ततो परं नानुस्सरति ।

‘सो एवमाह—ये खो ते भोन्तो देवा न मनोपदोसिका ते नातिवेलं अज्जमज्जं उपनिज्झायन्ति, ते नातिवेलं अज्जमज्जं उपनिज्झायन्ता अज्जमज्जमिह चित्तानि नप्पदूसेन्ति, ते अज्जमज्जं अप्पदुट्ठचित्ता अकिलन्तकाया अकिलन्तचित्ता तम्हा काया न चवन्ति, निच्चा [N.27, R.33] धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सन्ति; ये पन मयं अहुम्हा मनोपदोसिका ते मयं अतिवेलं अज्जमज्जं उपनिज्झायिमिह, ते मयं अतिवेलं अज्जमज्जं उपनिज्झायन्ता अज्जमज्जमिह चित्तानि पदूसिमिह, ते मयं अज्जमज्जं पदुट्ठचित्ता किलन्तकाया किलन्तचित्ता तम्हा काया चुता अनिच्चा अद्भुवा असस्सता अप्पायुका चवनधम्मा इत्थत्तं आगता ति । एवंविहितकं नो तुम्हे आयस्मन्तो मनोपदोसिकं आचरियकं अग्गञ्जं पज्जपेथा’ ति ।

“ते एवमाहं सु—‘एवं खो नो, आवुसो गोतम, सुतं यथेवायस्मा गोतमो आहा’ ति ।

“अग्गञ्जञ्चाहं, भगव, पजानामि....पे०....यदभिजानं तथागतो नो अनयं आपज्जति ।

(घ) अधिच्चसमुप्पन्नं

४५. “सन्ति, भगव, एके समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्नं आचरियकं अग्गञ्जं पज्जपेन्ति । त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—‘सच्चं किर तुम्हं आयस्मन्तो अधिच्चसमुप्पन्नं

“भार्गव! मैं ‘अग्र’ को भी जानता हूँ....पूर्ववत्....तथागत दुःख में नहीं पड़ते ।

(ग) मनःप्रदोषिक देव ही सृष्टि के आदिपुरुष—४३-४४. “भार्गव! कुछ श्रमण-ब्राह्मण मनः प्रदोषिक देवों को ही इस सृष्टि का आदि पुरुष मानते हैं....पूर्ववत्....(पीछे आये क्रीड़ाप्रदोषिक देवों के व्याख्यान का ‘मनःप्रदोषिक’ शब्द के परिवर्तन से यहाँ विस्तार कर लें) जैसा आप गौतम कह रहे हैं....पूर्व पुरुषों से भी सुना है ।

“भार्गव! मैं ‘अग्र’ को भी जानता हूँ....पूर्ववत्....तथागत दुःख में नहीं पड़ते ।

आचरियकं अगगञ्जं पज्जपेथा' ति ? ते च मे एवं पुट्ठा 'आमो' ति पटिजानन्ति । त्याहं एवं वदामि—'कथंविहितकं पन तुम्हे आयस्मन्तो अधिच्चसमुप्पन्नं आचरियकं अगगञ्जं [B.28] पज्जपेथा' ति ? ते च मया पुट्ठा न सम्पायन्ति । असम्पायन्ता ममंयेव पटिपुच्छन्ति । तेसाहं पुट्ठो ब्याकरोमि—

४६. 'सन्तावुसो, असज्जसत्ता नाम देवा । सज्जुप्पादा च पन ते देवा तम्हा काया चवन्ति । ठानं खो पनेतं, आवुसो, विज्जति यं अज्जतरो सत्तो तम्हा काया चवित्वा इत्थत्तं आगच्छति । इत्थत्तं आगतो समानो अगारस्मा अनगारियं पब्बजति । अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो समानो आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकार-मन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते तं सज्जुप्पादं अनुस्सरति, [R.34] ततो परं नानुस्सरति । सो एवमाह—अधिच्चसमुप्पन्नो अत्ता च लोको च; तं किस्स हेतु, अहं हि पुब्बे नाहोसिं सोम्हि एतरहि अहुत्वा सन्तताय परिणतो ति । एवंविहितकं नो तुम्हे [N.28] आयस्मन्तो अधिच्चसमुप्पन्नं आचरियकं अगगञ्जं पज्जपेथा' ति ?

“ते एवमाहं सु—'एवं खो नो, आवुसो गोतम, सुतं यथेवायस्मा गोतमो आहा' ति ।

“अगगज्जञ्चाहं, भगव, पजानामि, तं च पजानामि, ततो च उत्तरितरं पजानामि, तं च पजाननं न परामसामि, अपरामसतो च मे पच्चत्तज्जेव निब्बुति विदिता; यदभिजानं तथागतो नो अनयं आपज्जति ।

(ड) सुभं विमोक्खं

४७. “एवंवादिं खो मं, भगव, एवमक्खायिं एके समणब्राह्मणा असता तुच्छा मुसा अभूतेन अब्भाचिकखन्ति—'विपरीतो समणो गोतमो भिक्खवो च । समणो गोतमो एवमाह—'यस्मिं समये सुभं विमोक्खं उपसम्पज्ज विहरति, सब्बं तस्मिं समयं असुभं त्वेव पजानाती' ति ।

(घ) अधीत्यसमुत्पन्न देवता ही सृष्टि के आदि पुरुष—४५. “भार्गव! कुछ श्रमण—ब्राह्मण अकारण ही इस सृष्टि का उत्पाद मानते हैं । उनके पास जाकर भी....मैं उन्हें यह बताता हूँ—

४६. 'आयुष्मानो! असंजिसत्त्व नामक देवता संज्ञा के उत्पाद से अपनी काया से च्युत हो जाते हैं । आयुष्मानो! यही कारण है जब कोई असंजिसत्त्व देव उस काया से च्युत होकर इस लोक में आता है तो वह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो....चेतःसमाधि से उसी संज्ञा के उत्पन्न होने का स्मरण करता है, उससे पूर्व की संज्ञा का नहीं । अतः वह कहता है— यह लोक और आत्मा अकारण उत्पन्न है । यह किस कारण? वह इसलिये कि जैसे पहले मैं नहीं था, वही मैं अब सत्ता के रूप में हूँ । आयुष्मानो! यही न है तुम्हारा इस सृष्टि के विषय में अकारणवाद?’

“वे कहते हैं— हाँ, भन्ते! हमने भी ऐसा ही सुना है, जैसा आप गौतम कह रहे हैं ।’

“भार्गव! मैं 'अग्र' को जानता हूँ...पूर्ववत्....जिससे तथागत दुःख में नहीं पड़ते ।

(ङ) शुभ विमोक्ष—४७. “भार्गव! ऐसा कहने पर कुछ श्रमण—ब्राह्मण मुझ पर और मेरे भिक्षुओं पर यह मिथ्या आरोप लगाते हैं— 'श्रमण गौतम और उसके धर्मानुयायी अन्यथा (विपरीत) वादी हैं ।' श्रमण गौतम यह कहते—फिरते हैं— 'जिस समय शुभ' विमोक्ष उत्पन्न कर योगी विहार करता है उस समय योगी सभी कुछ को अशुभ ही अशुभ देखता है ।’ ।

“न खो पनाहं, भग्गव, एवं वदामि—‘यस्मिं समये सुभं विमोक्खं उपसम्पज्ज विहरति, सब्बं तस्मिं समयं असुभं त्वेव पजानाती’ ति। एवं च ख्वाहं, भग्गव, वदामि—‘यस्मिं समये सुभं विमोक्खं उपसम्पज्ज विहरति, सुभं त्वेव तस्मिं समये पजानाती’ ” ति। [B.29] “ते च, भन्ते, विपरीता ये भगवन्तं विपरीततो दहन्ति भिक्खवो च। एवंपसन्नो [R.35] अहं, भन्ते, भगवति! प्होति मे भगवा तथा धम्मं देसेतुं यथा अहं सुभं विमोक्खं उपसम्पज्ज विहरेय्यं” ति।

४८. “दुक्करं खो एतं, भग्गव, तथा अज्जदिट्ठिकेन अज्जखन्तिकेन अज्जरुचिकेन अज्जत्रायोगेन अज्जत्राचरियकेन सुभं विमोक्खं उपसम्पज्ज विहरितुं। इद्दु त्वं, भग्गव, यो च ते अयं मयि पसादो तमेव त्वं साधुकमनुरक्खा” ति।

“सचे तं, भन्ते, मया दुक्करं अज्जदिट्ठिकेन अज्जखन्तिकेन अज्जरुचिकेन अज्जत्रायोगेन अज्जत्रायरियकेन सुभं विमोक्खं उपसम्पज्ज विहरितुं, यो च मे अयं, भन्ते, भगवति पसादो तमेवाहं साधुकमनुरक्खिस्सामी” ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमनो भगवगोत्तो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दी ति ॥

पाथिकसुत्तं निट्ठितं पठमं ॥



“भार्गव! किन्तु मैं ऐसा नहीं कहता— ‘जिस समय....अशुभ देखता है’। अपितु मेरा कथन तो यह है— ‘जिस समय योगी शुभ विमोक्ष की साधना करता है, उस समय वह शुभ ही शुभ देखता है’।”

“भन्ते! वे ही अन्यथावादी हैं जो आप पर वैसा आरोप लगाते हैं। भन्ते! मेरी तो आप पर अत्यन्त श्रद्धा है। आप मुझे उस विधि की देशना दें, जिससे शुभ विमोक्ष को उत्पन्न कर साधना कर सकूँ।”

४८. “भार्गव! यह साधना तुम्हारे लिये दुष्कर होगी; क्योंकि तुम भिन्न मतानुयायी, दूसरे विचारों वाले, दूसरी रुचि वाले, दूसरे आयोग वाले, दूसरे मत को मानने वाले हो। अतः भार्गव! जो तुम मुझ पर श्रद्धा रखते हो उसी को निभाते रहो।”

“भन्ते! यदि मैं भिन्नमतानुयायी....होने के कारण शुभ विमोक्ष की साधना पाने का अधिकारी नहीं हूँ तो इसका मुझे कोई खेद नहीं है। मैं तो आप के प्रति जो इतना श्रद्धालु हूँ, उससे भी मेरा हित सम्भव है।”

भगवान् ने यह कहा। इससे सन्तुष्ट होकर भार्गव-गोत्र परिव्राजक ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया ॥

प्रथम पाथिकसूत्र समाप्त ॥



२. उदुम्बरिकसुतं

१. सन्धानो गृहपति परिब्बाजकारामं उपसङ्गमि

१. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा राजगृहे विहरति गिञ्जकूटे [N.29, B.30, R.36] पब्वते । तेन खो पन समयेन निग्रोधो परिब्बाजको उदुम्बरिकाय परिब्बाजकारामे पटिवसति महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं तिसमतेहि परिब्बाजकसतेहि । अथ खो सन्धानो गृहपति दिवा दिवस्स राजगृहा निक्खमि भगवन्तं दस्सनाय । अथ खो सन्धानस्स गृहपतिस्स एतहोसि— “अकालो खो भगवन्तं दस्सनाय । पटिसल्लीनो भगवा । मनोभावनीयानं पि भिक्खूनां असमयो दस्सनाय । पटिसल्लीना मनोभावनीया भिक्खू । यन्नूनाहं येन उदुम्बरिकाय परिब्बाजकारामो येन निग्रोधो परिब्बाजको तेनुपसङ्गमेय्यं” ति । अथ खो सन्धानो गृहपति येन उदुम्बरिकाय परिब्बाजकारामो येन निग्रोधो परिब्बाजको तेनुपसङ्गमि ।

२. तेन खो पन समयेन निग्रोधो परिब्बाजको महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं निसिन्नो होति उन्नादिनया उच्चासद्महासद्दाय अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्तिया, [R.37] सेय्यथिदं—राजकथं चोरकथं महामत्तकथं सेनाकथं भयकथं युद्धकथं अन्नकथं पानकथं वत्थकथं सयनकथं मालाकथं गन्धकथं जातिकथं यानकथं गामकथं निगमकथं नगरकथं जनपदकथं इत्थिकथं सूरकथं विसिखाकथं कुम्भट्टानकथं पुब्बपेतकथं नानत्तकथं लोकक्खायिकं समुद्क्खायिकं इति भवाभवकथं इति वा ।

३. अद्दसा खो निग्रोधो परिब्बाजको सन्धानं गृहपतिं दूरतो व आगच्छन्तं । दिस्वा

२. औदुम्बरिकसूत्र

१. सन्धान गृहपति परिब्राजकाराम गया

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय न्यग्रोध परिब्राजक तीस हजार परिब्राजकों की एक बृहत् मण्डली के साथ उदुम्बरिका नामक परिब्राजकाराम में ठहरा हुआ था। तब सन्धान नामक गृहपति दिन ही दिन (मध्याह्न) में भगवान् के दर्शन के लिये राजगृह के लिये चल पड़ा। तब सन्धान गृहपति के मन में यह विचार उठा— “भगवान् के दर्शन का तो अभी समय नहीं है। वे इस समय ध्यानरत होंगे। अन्य श्रद्धास्पद भिक्षु भी इस समय ध्यान भावना ही कर रहे होंगे। अतः उनके भी दर्शन नहीं हो सकेंगे। तो क्यों न मैं तब तक उदुम्बरिका के परिब्राजकाराम में न्यग्रोध परिब्राजक के पास चलों।” तब वह (सन्धान) उदुम्बरिका के परिब्राजकाराम में न्यग्रोध परिब्राजक के पास पहुँचा।

२. उस समय न्यग्रोध परिब्राजक एक बहुत बड़ी परिब्राजक—मण्डली के बीच बैठा हुआ था, जो कि राजा, चौर, महामात्य, सेना, भयजनक, युद्ध, अन्न, पान, वस्त्र, शयन, गन्ध, माला, ज्ञाति, यान (यात्रा) ग्राम, निगम, नगर, जनपद, शूरवीर, स्त्री—पुरुष, चौराहा (विशिखा), पनघट, पूर्वमृत, नानात्व, लोकाख्यायिका, समुद्रयात्रा, ‘ऐसा हुआ—ऐसा नहीं हुआ’—आदि विषयों की निरर्थक कथाएँ परस्पर कहने—सुनने में व्यस्त थी। यों वह जोर जोर से नाद करती हुई, कोलाहल करती हुई मण्डली मछली—बाजार की तरह लग रही थी।

३. (उस समय) न्यग्रोध परिब्राजक ने सन्धान गृहपति को दूर से आते ही देख लिया। देखकर

सकं परिसं सण्ठापेसि—“अप्पसद्द भोन्तो होन्तु। मा भोन्तो सद्दमकत्थ। अयं समणस्स गोतमस्स सावको आगच्छति सन्धानो गहपति। यावता खो पन समणस्स गोतमस्स सावका गिही ओदातवसना राजगहे पटिवसन्ति अयं तेसं अज्जतरो सन्धानो गहपति। अप्पसद्दकामा खो पेनेते आयस्मन्तो अप्पसद्दविनीता अप्पसद्दस्स वण्णवादिनो; अप्पेव नाम अप्पसद्दं परिसं [N.30, B.31] विदित्वा उपसङ्कमितब्बं मज्जेय्या” ति। एवं वुत्ते, ते परिब्बाजका तुण्ही अहेसुं।

४. अथ खो सन्धानो गहपति येन निग्रोधो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा निग्रोधेन परिब्बाजकेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकन्तं निसिन्नो खो सन्धानो गहपति निग्रोधं परिब्बाजकं एतदवोच—“अज्जथा खो इमे भोन्तो अज्जतित्थिया परिब्बाजका सङ्गम्म समागम्म उन्नादिनो उच्चासद्दमहासद्द [R.38] अनेकविहितं तिरच्छानकथं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं—राजकथं पे०.... इति भवाभवकथं इति वा; अज्जथा खो पन सो भगवा, अरज्जवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवति अप्पसद्दानि अप्पनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि पटिसल्लान-सारुप्पानी” ति।

५. एवं वुत्ते, निग्रोधो परिब्बाजको सन्धानं गहपतिं एतदवोच—“यग्घे गहपति, जानेय्यासि, केन समणो गोतमो सद्धिं सल्लपति, केन साकच्छं समापज्जति, केन पज्जावेय्यत्तियं आपज्जति? सुज्जागारहता समणस्स गोतमस्स पज्जा। अपरिसावचरो समणो गोतमो नालं सल्लापाय। सो अन्तमन्तानेव सेवति। सेय्यथापि नाम गोकाना परियन्तचारिणी अन्तमन्तानेव सेवति, एवमेव सुज्जागारहता समणस्स गोतमस्स पज्जा; अपरिसावचरो समणो गोतमो;

उसने अपनी उस परिषद् को सावधान किया—“आप लोग कोलाहल न करें। आप लोग चुप रहें। यह श्रमण गौतम का उपासक सन्धान गृहपति इधर ही आ रहा है। श्रमण-गौतम के जितने भी श्वेतवस्त्र धारण किये हुए गृहस्थ उपासक राजगृह में रहते हैं, उनमें से यह न्यग्रोध गृहपति भी एक है। ये सभी आयुष्मान् उपासक स्वयं अल्प ही शब्द सुनना चाहते हैं, निःशब्दता के प्रति ये श्रद्धा रखते हैं तथा इसकी प्रशंसा करते हैं। हो सकता है, शान्त भाव से बैठी इस परिषद् को देखकर यह इधर ही चला आवे।” ऐसा कहे जाने पर, वे परिव्राजक चुप हो गये।

४. तब सन्धान गृहपति न्यग्रोध परिव्राजक के पास पहुँचा। पहुँचकर कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने न्यग्रोध परिव्राजक से पूछा—“ये अन्य तीर्थिक (परमतानुयायी) परिव्राजक यहाँ एकत्र होकर राजकथा....आदि निरर्थक बातें करते कोलाहल मचा रहे थे। हमारे भगवान् (बुद्ध) तो समाधि भावना करने योग्य, साधारण मनुष्यों के लिये अगम्य, शान्त, नीरव, निर्जन वनों में वास करते हैं। ये परिव्राजक उनसे सर्वथा विपरीत हैं।”

५. सन्धान गृहपति द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह न्यग्रोध परिव्राजक उससे बोला—“सुनो, गृहपति! जानते हो श्रमण गौतम किसके साथ सँलाप करते हैं? किसके साथ साक्षात्कार करते हैं? या किसको ज्ञानोपदेश करते हैं? शून्यागारों में रहते-रहते श्रमण गौतम की बुद्धि मारी गयी है। श्रमण गौतम सभाओं से मुँह चुराते हैं, वहाँ वे किसी से बात करने का साहस नहीं जुटा पाते। वे लोगों से दूर-दूर भागे फिरते हैं। जैसे कोई कानी गौ सब पशुओं से दूर-दूर अकेली रहना चाहती है; इसी तरह श्रमण गौतम

नालं सल्लापाय; सो अन्तमन्तानेव सेवति। इद्ध, गहपति, समणो गोतमो इमं परिसं आगच्छेय्य, एकपज्जेनेव नं संसादेय्याम, तुच्छकुम्भीव नं मज्जे ओरोधेय्यामा" ति।

२. भगवा पि परिब्बाजकारामं उपसङ्कमि

६. अस्सोसि खो भगवा दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्रन्तमानुसिकाय सन्धानस्स गहपतिस्स निग्रोधेन परिब्बाजकेन सद्धिं इमं कथासल्लापं। अथ खो भगवा गिञ्झकूटा [R.39] पब्बता ओरोहित्वा येन सुमागधाय तीरे मोरनिवापो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा [B.32] सुमागधाय तीरे मोरनिवापे अब्भोकासे चङ्कमि। अद्दसा खो निग्रोधो परिब्बाजको भगवन्तं सुमागधाय तीरे मोरनिवापे अब्भोकासे चङ्कमन्तं। दिस्वान सकं परिसं सण्ठापेसि—“अप्पसद्द भोन्तो होन्तु। मा भोन्तो सदमकत्थ। अयं समणो गोतमो सुमागधाय तीरे मोरनिवापे अब्भोकासे चङ्कमति। अप्पसद्दकामो खो पन सो आयस्सा अप्पसद्दस्स वण्णवादी। अप्पेव नाम अप्पसद्दं परिसं विदित्वा उपसङ्कमितब्बं मज्जेय्य। सचे समणो गोतमो इमं परिसं आगच्छेय्य, [N.31] इमं तं पज्जं पुच्छेय्याम—‘को नाम सो, भन्ते, भगवतो धम्मो येन भगवा सावके विनेति, येन भगवता सावका विनीता अस्सासप्पत्ता पटिजानन्ति अज्झासयं आदिब्रह्मचरियं’ ति? एवं वुत्तं, ते परिब्बाजका तुण्ही अहेसुं।

७. अथ खो भगवा येन निग्रोधो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि। अथ खो निग्रोधो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—“एतु खो, भन्ते भगवा। स्वागतं, भन्ते, भगवतो। चिरस्सं खो, भन्ते, भगवा इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। निसीदतु, भन्ते, भगवा। इदमासनं पज्जत्तं” ति। निसीदि भगवा पज्जते आसने। निग्रोधो पि खो परिब्बाजको अज्जतरं नीचासनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो निग्रोधं परिब्बाजकं भगवा एतदवोच—

की प्रज्ञा भी विनष्ट हो चुकी है। सुनो, गृहपति! यदि श्रमण गौतम इस सभा में आवे तो हम उन्हें एक ही प्रश्न में चकरा दें। खाली घड़े की तरह उसे इधर से उधर घुमा दें।”

२. भगवान् भी परिव्राजकाराम पहुँचे

६. भगवान् ने अलौकिक एवं विशुद्ध दिव्य श्रोत्र से न्यग्रोध परिव्राजक के साथ हो रहा सन्धान गृहपति का यह कथा-सल्लाप सुना। तब भगवान् गृध्रकूट पर्वत से उतरकर जहाँ सुमागधा पुष्करिणी के तीर पर मयूरनिवाप था, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर भगवान् खुले स्थान में टहलने लगे। न्यग्रोध परिव्राजक ने भगवान् को सुमागधा...एकान्त में टहलते देखा। देखकर उसने परिव्राजकमण्डली को सावधान किया—‘आप लोग शान्त रहें!...ये श्रमण गौतम निःशब्दता को अच्छा समझते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं। हो सकता है वे आप लोगों को शान्त देखकर इधर ही चले आवें। यदि वे इस परिषद् में आवेंगे तो हम उनसे यही प्रश्न पूछेंगे—‘भन्ते! भगवान् का वह धर्म कौन सा है जिसका आप अपने शिष्यों को उपदेश करते हैं, उन्हें अनुशासित करते हैं? जिसे पाकर वे श्रावक आपके धर्म के प्रति आश्वस्त होते हैं?’ यह सुनकर वे परिव्राजक चुप हो गये।

७. तब भगवान् न्यग्रोध परिव्राजकाराम के पास पहुँचे। उस समय न्यग्रोध परिव्राजक भगवान् से यों बोला—“आइये, भन्ते भगवन्! भन्ते! आपका स्वागत है। बहुत समय बाद आपने इधर आने का अवसर निकाला। भन्ते! भगवान् आप विराजें। यह आसन बिछा हुआ है। (तब) भगवान् बिछे आसन पर विराजे। न्यग्रोध परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे उस न्यग्रोध

“काय नुत्थ, निग्रोध, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन खो अन्तराकथा विप्पकता” ति ? एवं वुत्ते, निग्रोधो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—“इध मयं, भन्ते, अहसाम भगवन्तं [R.40] सुमागधाय तीरे मोरनिवापे अब्भोकासे चङ्क्रमन्तं। दिस्वान एवं अवोचुम्हा—‘सचे समणो गोतमो इमं परिसं आगच्छेय्य इमं तं पज्जं पुच्छेय्याम—को नाम को, भन्ते, भगवतो धम्मो येन भगवा सावके विनेति, येन भगवता सावका विनीता अस्सासप्पत्ता पटिजानन्ति अज्झासयं आदिब्रह्मचरियं’ ति ? अयं खो नो, भन्ते, अन्तराकथा विप्पकता; अथ भगवा अनुप्पत्तो” ति।

८. “दुज्जानं खो एतं, निग्रोध, तथा अज्जदिट्ठिकेन अज्जखन्तिकेन अज्जरुचिकेन अज्जत्रायोगेन अज्जत्राचरियकेन येनाहं सावके विनेमि येन मया सावका विनीता अस्सासप्पत्ता [B.33] पटिजानन्ति अज्झासयं आदिब्रह्मचरियं। इद्ध त्वं मं, निग्रोध, सके आचरियके अधिजेगुच्छे पज्जं पुच्छ—‘कथं सन्ता नु खो, भन्ते, तपोजिगुच्छा परिपुण्णा होति, कथं अपरिपुण्णा’ ” ति ? एवं वुत्ते, ते परिब्बाजका उन्नादिनो उच्चासदमहासदा अहेसुं—“अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत, भो, समणस्स गोतमस्स महिद्धिकता महानुभावता, यत्र हि नाम सकवादं ठपेस्सति, परवादेन पवारेस्सती” ति।

३. निग्रोधो तपोजिगुच्छाय पज्जं पुच्छि

९. अथ खो निग्रोधो परिब्बाजको ते परिब्बाजके अप्पसद्दे कत्वा भगवन्तं एतदवोच— [N.32] “मयं खो, भन्ते, तपोजिगुच्छावादा तपोजिगुच्छासारा तपोजिगुच्छाअल्लीना विहराम। कथं सन्ता नु खो, भन्ते, तपोजिगुच्छा परिपुण्णा होति, कथं अपरिपुण्णा” ति ?

“इध, निग्रोध तपस्सी अचेलको होति मुत्ताचारो हत्थापलेखनो नएहिभदन्तिको,

परिव्राजक को भगवान् ने पूछा—“न्यग्रोध! इस समय तुम लोगों में क्या बातचीत हो रही थी? और होते-होते कहाँ आकर वह बात रुक गयी?” ऐसा पूछे जाने पर, न्यग्रोध परिव्राजक ने भगवान् से यों निवेदन किया— “यहाँ, भन्ते! हम लोगों ने भगवान् को सुमागधा के तट पर बने मयूरनिवाप में खुले स्थान में टहलते देखा। उस समय हमारे बीच यह बातचीत हो रही थी— ‘यदि भगवान् यहाँ पधारें तो उनसे आज हम यही प्रश्न पूछेंगे— भगवान् का वह धर्म....पूर्ववत्....जिसके प्रति आश्रस्त होते हैं?’ भन्ते! इसी बीच आपका पधारना हो गया।”

८. “न्यग्रोध! अन्यमतानुयायी, अन्य सिद्धान्तों के पालक तुम जैसे लोगों के लिये उस धर्म का समझना अत्यन्त दुष्कर, है जिससे मैं अपने श्रावकों को विनीत एवं आश्रस्त करता हूँ। तुम तो, न्यग्रोध! तपों की निन्दा करने वाले अपने मत (आचार्यक=मान्यता) के विषय में ही पूछो— ‘भन्ते! क्या होने से तपोजुगुप्सा (तप की अशुद्धता) पूर्ण होती है या कैसे पूर्ण नहीं होती?’ ” भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वे परिव्राजक जोर-जोर से बोलने लगे— “अरे कितना आश्चर्य है! कितनी अद्भुत है, इन श्रमण गौतम की यह महर्षिकता एवं महानुभावता! कि ये कितनी सरलता से स्वमत का स्थापन कर रहे हैं और परमत का खण्डन!”

३. न्यग्रोध का तप की अशुद्धि-विषयक प्रश्न

९. तब न्यग्रोध परिव्राजकों ने अपनी मण्डली को चुप रहने का आदेश देकर भगवान् से यों पूछा— “भन्ते! हमलोग तो तप:शुद्धि को मानने वाले तथा मिथ्या तप की निन्दा करने वाले एवं मिथ्या तप

नतिट्टुभदन्तिको, नाभिहटं न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादियति। सो न कुम्भिमुखा [R.41] पटिगण्हाति, न कळोपिमुखा पटिगण्हाति, न एळकमन्तरं न दण्डमन्तरं न मुसलमन्तरं न द्विं भुञ्जमानानं न गम्भिनिया न पायमानाय न पुरिसन्तरगताय न सङ्कित्तीसु, न यत्थ सा उपट्ठितो होति, न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी, न मच्छं न मंसं। न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवति। सो एकागारिको वा होति एकालोपिको, द्वागारिको वा होति द्वालोपिको, सत्तागारिको वा होति सत्तालोपिको, एकिस्सा पि दत्तिया यापेति, द्वीहि पि दत्तीहि यापेति, सत्तहि पि दत्तीहि यापेति; एकाहिकं पि आहारं आहारेति, द्वीहिकं पि आहारं आहारेति, सत्ताहिकं पि आहारं आहारेति। इति एवरूपं अद्धमासिकं परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। सो साकभक्खो वा होति, सामाकभक्खो वा होति, नीवारभक्खो वा होति, दहुलभक्खो वा होति, हटभक्खो वा होति, कणभक्खो वा होति, आचामभक्खो वा होति, पिञ्जाकभक्खो वा होति, तिणभक्खो वा होति, गोमयभक्खो वा होति; वनमूलफलाहारो यापेति [B.34] पवत्तफलभोजी। सो साणानि पि धारेति, मसाणानि पि धारेति, छवदुस्सानि पि धारेति, पंसुकूलानि पि धारेति, तिरीटानि पि धारेति, अजिनानि पि धारेति, अजिनक्खिपं पि धारेति, कुसचीरं पि धारेति, वाकचीरं पि धारेति, फलकचीरं पि धारेति, केसकम्बलं पि [R.42] धारेति, वाळकम्बलं पि धारेति, उलूकपक्खं पि धारेति; केसमस्सुलोचको पि होति केसमस्सुलोचनानुयोगमनुयुत्तो, उब्भट्टको पि होति आसनपटिक्खित्तो, उक्कुटिको पि होति उक्कुटिकप्पधानमनुयुत्तो, कण्टकापस्सयिको पि होति कण्टकापस्सये सेय्यं कप्पेति। फलकसेय्यं पि कप्पेति, थण्डिलसेय्यं पि कप्पेति; एकपस्सयिको पि होति रजोजल्लधरो, अब्भोकासिको पि होति यथासन्थतिको, वेकटिको पि होति विकटभोजनानुयोगमनुयुत्तो, अपानको पि होति अपानकत्तमनुयुत्तो, सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। तं किं [N.33] मज्जसि, निग्रोध, यदि एवं सन्तं तपोजिगुच्छा परिपुण्णा वा होति अपरिपुण्णा वा" ति?

"अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्तं तपोजिगुच्छा परिपुण्णा होति, नो अपरिपुण्णा" ति।

"एवं परिपुण्णाय पि खो अहं, निग्रोध, तपोजिगुच्छाय अनेकविहिते उपक्किलेसे वदामी" ति।

४. तपोजिगुच्छाय उपक्किलेसा

१०. "यथा कथं, पन, भन्ते, भगवा एवं परिपुण्णाय तपोजिगुच्छाय अनेकविहिते उपक्किलेसे वदती" ति?

से दूर रहने वाले हैं; अतः हमें आप यह बतावें कि तपःशुद्धि का क्या उपाय है या तपोजुगुप्सा (तप से ग्लानि) कैसे दूर की जाय? तथा किन कारणों के रहते वह दूर नहीं हो पाती?"

"न्यग्रोध! यहाँ कोई तपस्वी नग्न रहता है, आचार-विचार को छोड़ देता है, वह न आये हुए का स्वागत करता है....पूर्ववत्" दिन में तीन बार स्नान के प्रति आग्रह रखता है। तो क्या मानते हो, न्यग्रोध! यदि कोई ऐसा करे तो क्या इस तपश्चर्या के बल पर उसके पापों का पूर्ण निराकरण हो पाता है या नहीं?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा करने से उसके पापों का पूर्ण निराकरण हो पाता है, अपूर्ण नहीं।"

“इध, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा अत्तमनो होति परिपुण्ण-सङ्कप्पो। यं पि, निग्रोध तपस्सी तपं समादियति सो तेन तपसा अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, अयं पि खो, निग्रोध तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (१)

११. “पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा अत्तानुक्कंसेति परं वम्भेति। यं पि, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति सो तेन तपसा अत्तानुक्कंसेति परं वम्भेति, अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (२)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा मज्जति मुच्छति पमादमापज्जति। यं पि, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति सो तेन तपसा मज्जति मुच्छति [B.35, R.43] पमादमापज्जति, अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (३)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा लाभसक्कारसिलोकं अभिनिब्बत्तेति। सो तेन लाभसक्कारसिलोकेन अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो। यं पि, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति सो तेन तपसा लाभसक्कारसिलोकं अभिनिब्बत्तेति सो तेन लाभसक्कारसिलोकेन अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति (४)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा लाभसक्कारसिलोकं अभिनिब्बत्तेति। सो तेन लाभसक्कारसिलोकेन अत्तानुक्कंसेति परं वम्भेति। यं पि, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति सो तेन तपसा लाभसक्कारसिलोकं अभिनिब्बत्तेति सो तेन लाभसक्कार-[N.34] सिलोकेन अत्तानुक्कंसेति परं वम्भेति, अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (५)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा लाभसक्कारसिलोकं अभिनिब्बत्तेति। यं पि खो, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति सो तेन तपसा लाभसक्कारसिलोकं

“न्यग्रोध! इतना होने पर भी मैं कहता हूँ, इसमें अनेक मल रह ही जाते हैं।”

४. तपोजुगुप्सा के उपक्लेश

१०. “भन्ते! इस तरह उस तपस्या के पूर्ण होने पर भी, भगवान् कैसे कहते हैं कि इसमें अनेक प्रकार के क्लेश (वित्तविकार) रह जाते हैं?”

“न्यग्रोध! यहाँ कोई तपस्वी तप करता है, वह उस तप से स्वयं को सन्तुष्ट एवं परिपूर्णसङ्कल्प मान बैठता है— यह उसका पहला उपक्लेश है।

११. “फिर, न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है, उससे वह स्वयं को उच्च एवं दूसरे को हीन समझता है। यह (उच्च—नीच—भाव का अभिमान) दूसरा उपक्लेश है।

“फिर, न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है, उस तप (के अभिमान) के कारण प्रमाद करने लगता है, गर्व करने लगता है— यह तीसरा उपक्लेश है।

“फिर न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है, वह उस तप के कारण जनता से अर्थलाभ, सत्कार एवं प्रशंसा पाने लगता है। इससे वह स्वयं को कृतसंकल्प मान बैठता है— यह चतुर्थ उपक्लेश है।

“फिर, न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है, उसे उसके कारण प्राप्त हुए लाभ—सत्कार एवं प्रशंसा का अभिमान होने लगता है, वह दूसरों को हीन मानने लगता है— यह उस तप का पञ्चम उपक्लेश है।

अभिनिब्वत्तेति सो तेन लाभसक्कारसिलोकेन मज्जति मुच्छति पमादमापज्जति, अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति । (६)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति भोजनेसु वोदासं आपज्जति—‘इदं मे खमति, इदं मे नक्खमती’ ति । सो यं च ख्वस्स नक्खमति तं सापेक्खो पज्जहति, यं पनस्स खमति तं गधितो मुच्छितो अज्झापन्नो अनादीनवदस्सावी अनिस्सरणपज्जो परिभुज्जति....पे०.... अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति । (७)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति लाभसक्कारसिलोकनिकन्ति—[R.44] हेतु—‘सक्करिस्सन्ति मं राजानो राजमहामत्ता खत्तिया ब्राह्मणा गहपतिका तित्थिया’ ति [B.36] पे०.... अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति । (८)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी अज्जतरं समणं वा ब्राह्मणं वा अपसादेता होति—‘किं पनायं सम्बहुलाजीवो सब्बं सम्भवखेति, सेय्यथिदं—मूलबीजं खन्धबीजं फलबीजं अगगबीजं बीजबीजमेव पञ्चमं, असनिविचक्कं दन्तकूटं, समणप्पवादेना’ ति पे०....अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति । (९)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी पस्सति अज्जतरं समणं वा ब्राह्मणं वा कुलेसु सक्करियमानं गरुकरियमानं मानियमानं पूजियमानं । दिस्वा तस्स एवं होति—‘इमं हि नाम सम्बहुलाजीवं कुलेसु सक्करोन्ति गरं करोन्ति मानेन्ति पूजेनन्ति, मं पन तपस्सि लूखाजीवं कुलेसु न सक्करोन्ति न गरं करोन्ति न मानेन्ति न पूजेन्ती’ ति । इति सो इस्सामच्छरियं कुलेसु उप्पादेता होति....पे०....अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति । (१०)

“फिर न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है, वह उस तप से प्राप्त लाभ—सत्कार आदि का गर्व (मिथ्याभिमान) करने लगता है, प्रमाद करने लगता है, अपना विवेक खो बैठता है— यह तप का षष्ठ उपक्लेश है ।

“और फिर, न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है । तब उसे अपनी नित्य की भिक्षा में भी द्वैधीभाव (=संशय, व्यवदास) होने लगता है कि यह भोजन मेरी तपस्या में विघ्नकारक तो नहीं! ऐसी अवस्था में उसे जो भोजन उचित लगता है, उसे भी वह छोड़ बैठता है और जो अनुचित होता है उसे खाता रहता है । और वहाँ यह भी हो सकता है कि वह जिस भोजन को उचित समझे उसे अधिक मात्रा में खा बैठे— यह उसका सातवाँ उपक्लेश है ।

“फिर, न्यग्रोध! कोई तपस्वी इसलिये भी तपस्या का ढोंग (अभिनय) करता है कि इसे देखकर राजा, राजाओं के महामात्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति, अन्य तीर्थिक आदि उसका अधिक सत्कार—सम्मान—प्रशंसा करें— यह तप का आठवाँ उपक्लेश है ।

“फिर, न्यग्रोध! यह भी हो सकता है कि कोई तपस्वी अपने तप की श्रेष्ठता के अभिमान के कारण आगत अतिथि को अपमानित कर और यह कहकर अपने स्थान से भगा दे कि यह श्रमणों के लिये कलङ्कभूत साधक तो सर्वाहारी है, यह मूलबीज, स्कन्धबीज, फलबीज, अग्रबीज और बीजबीज, पाला या बिजली से दग्ध बीज या दान्तों से खाये बीजों का भी भक्षण करता है— यह इस तप का नौवाँ उपक्लेश है ।

“फिर, न्यग्रोध! तपस्वी किसी दूसरे श्रमण—ब्राह्मण को गृहस्थ कुलों में सम्मानित, सत्कृत एवं

[N.35] “पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी आपाथकनिसादी होति पे०..... अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (११)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी अत्तानं अदस्सयमानो कुल्लेसु चरति—‘इदं पि मे तपस्मि, इदं पि मे तपस्मि’ ति पे०..... अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (१२)

[R.45] “पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी किञ्चिदेव पटिच्छन्नं सेवति। सो ‘खमति ते इदं’ ति—पुट्ठो समानो, अक्खममानं आह—‘खमती’ ति; खममानं आह—‘नक्खमती’ ति। इति सो सम्पजानमुसा भासिता होति पे०..... अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (१३)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तथागतस्स वा तथागतसावकस्स वा धम्मं देसेन्तस्स सन्तं येव परियायं अनुज्जेय्यं नानुजानाति पे०..... अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो, होति। (१४)

[B.37] “पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी कोधनो होति उपनाही। यं पि, निग्रोध, तपस्सी कोधनो होति उपनाही, अयं पि खो, निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (१५)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी मक्खी होति पळासी पे०.....इस्सुकी होति मच्छरी सठो होति मायावी.... थद्धो होति अतिमानी पापिच्छो होति पापिकानं इच्छानं वसं गतो मिच्छादिट्ठिको होति अन्तग्गाहिकाय दिट्ठिया समन्नागतो सन्दिट्ठिपरामासी होति आधानग्गाही दुप्पटिनिस्सग्गी। यं पि, निग्रोध, तपस्सी सन्दिट्ठिपरामासी होति आधानग्गाही दुप्पटिनिस्सग्गी, अयं पि खो निग्रोध, तपस्सिनो उपक्किलेसो होति। (१६-२२)

पूजित होता हुआ देखे। उसे ऐसा देखकर यह विचार हो— ‘ये गृहस्थकुल इसी श्रमण—ब्राह्मण का, जो भोजन में सब कुछ ग्राह्य समझता है, सत्कार—सम्मान—पूजा करते हैं, मुझ रूखा—सूखा खाने वाले तपस्वी का क्यों नहीं करते’। ऐसा ईर्ष्या एवं मात्सर्य पैदा होना इस तप का दशम उपक्लेश है।

“फिर, न्यग्रोध! कोई तपस्वी जनता के आने—जाने के (खुले) स्थान पर बैठकर तपस्या करे....पूर्ववत्....यह इस तप का ग्यारहवाँ उपक्लेश है।

“फिर, न्यग्रोध! कोई तपस्वी लुक—छिपकर गृहस्थकुलों में जाय और यह कहते हुए अपने तप की प्रशंसा करे— ‘मेरा ऐसा तप है, मेरा ऐसा तप है’। यह इस तप का बारहवाँ उपक्लेश है।

“फिर न्यग्रोध! कोई तपस्वी छिपकर कोई कार्य करता है। उसके विषय में ‘आप को क्या यह करना उचित था’— यह पूछे जाने पर जो उचित हो उसे अनुचित कह बैठे और अनुचित को उचित कह दे। यह जानबूझ कर असत्य बोलना हुआ। यह तप का तेरहवाँ उपक्लेश है।

“फिर, न्यग्रोध! कोई तपस्वी तथागत या तथागत के शिष्यों का धर्मोपदेश सुनकर अनुमोदनीय होने पर भी उसका अनुमोदन नहीं करता। यह तप का चौदहवाँ उपक्लेश है।

“फिर, न्यग्रोध! कोई तपस्वी किसी के प्रति क्रोधी या बद्धवैर होता है। यह इस तप का पन्द्रहवाँ उपक्लेश है।

“फिर, न्यग्रोध! कोई तपस्वी, कृतघ्न, डाह करने वाला....ईर्ष्यालु, अभिमानी...शत्रु एवं मायावी....स्तब्ध एवं मिथ्या गर्व करने वाला....पापकर्म का इच्छुक एवं पापकर्मों के फन्दे में पड़ा हुआ....मिथ्या दृष्टि एवं

१२. “तं किं मञ्जसि, निग्रोध, यदिमे तपोजिगुच्छा उपक्विलेसा वा अनुपक्विलेसा वा” ति ?

“अद्धा खो इमे, भन्ते, तपोजिगुच्छा उपक्विलेसा, नो अनुपक्विलेसा। ठानं खो पनेतं, भन्ते, विज्जति यं इधेकच्चो तपस्सी सब्बेहेव इमेहि उपक्विलेसेहि समन्नागतो अस्स; को पन वादो अञ्जतरञ्जतरेना” ति !

५. तपस्सी तेसु ठानेसु परिसुद्धो होति

१३. “इध, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा न अत्तमनो होति न परिपुण्णसङ्कप्पो। यं पि, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति, सो तेन तपसा न [N.36, R.46] अत्तमनो होति न परिपुण्णसङ्कप्पो। एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (१)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा न अत्तानुक्कंसेति न परं वम्भेति पे०....एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (२)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा न मज्जति न मुच्छति न पमादमापज्जति पे०....एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (३)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा लाभसक्कार-[B.38] सिलोकं अभिनिब्बत्तेति। सो तेन लाभसक्कारसिलोकेन न अत्तमनो होति न परिपुण्णसङ्कप्पो पे०.... एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (४)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा लाभसक्कारसिलोकं अभिनिब्बत्तेति। सो तेन लाभसक्कारसिलोकेन न अत्तानुक्कंसेति न परं वम्भेति पे०.... सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (५)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तपं समादियति। सो तेन तपसा लाभसक्कारसिलोकं अभिनिब्बत्तेति। सो तेन लाभसक्कारसिलोकेन न मज्जति न मुच्छति न पमादमापज्जति पे०....एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (६)

उच्छेददृष्टि वाला....अपने मत का अभिमानी, अपने मत का हठी, एवं अपने मत का आग्रही (न त्यागने वाला होता) है। न्यग्रोध! यह अपने मत का आग्रह ही इस तप का (१६ से) बाईसवाँ उपक्लेश है।

१२. “तो क्या मानते हो, न्यग्रोध! इस तरह, तप करना क्लेशसहित है या क्लेशरहित?”

“भन्ते! यों तो तप करना क्लेशसहित ही हुआ; क्लेशरहित कैसे होगा! और भन्ते! यह भी सम्भव है कि तपस्वी इन सभी उपक्लेशों से युक्त हो; किसी एक की तो बात ही क्या!”

५. तपस्वी इन कारणों से परिशुद्ध होता है

१३. “न्यग्रोध! कोई तपस्वी तप करता है, परन्तु वह न तो उससे सन्तोष मानता है, न अपने आप को पूर्ण सङ्कल्प वाला मानता है। तभी वह तप परिशुद्ध माना जाता है। (१)

“....वह उस तप से न तो अपने को उच्च तथा दूसरों को हीन समझे तभी वह तप परिशुद्ध माना जाता है। (२)

“....वह न प्रमाद करता है, न मिथ्या गर्व करता है....। (३)

“....वह लाभ, सत्कार एवं प्रशंसा मिलने से अपने को पूर्ण सङ्कल्प नहीं मानता....। (४)

“....वह लाभ-सत्कार-प्रशंसा का अभिमान नहीं करता, न उनसे प्रमत्त ही होता है।.... (५)

पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी भोजनेसु न वोदासं आपज्जति—‘इदं मे खमति, इदं मे नक्खमती’ ति। सो यं च ख्वस्स नक्खमति तं अनपेक्खो पजहति, यं पनस्स खमति तं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपज्जो परिभुञ्जति पे०..... एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (७)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी न तपं समादियति लाभसक्कारसिलोकनिकन्तिहेतु—‘सक्करिस्सन्ति मं राजानो राजमहामत्ता खत्तिया ब्राह्मणा गहपतिका तित्थिया’ ति पे०..... एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (८)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी अज्जतरं समणं वा ब्राह्मणं वा नापसादेता होति—[R.47] ‘किं पनायं सम्बहुलाजीवो सब्बं सम्भव्वेति, सेय्यथिदं—मूलबीजं खन्धबीजं फलुबीजं अगगबीजं बीजबीजमेव पञ्चमं, असनिविचक्कं दन्तकूटं, समणप्पवादेना’ ति पे०..... एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (९)

[N.37] “पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी पस्सति अज्जतरं समणं वा ब्राह्मणं वा कुलेसु सक्करियमानं [B.39] गरं करियमानं मानियमानं पूजियमानं। तस्स न एवं होति—‘इमज्झि नाम सम्बहुलाजीवं कुलेसु सक्करोन्ति गरं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति, मं पन तपस्सि लूखाजीवं कुलेसु न सक्करोन्ति न गरं करोन्ति न मानेन्ति न पूजेन्ती’ ति। इति सो इस्सामच्छरियं कुलेसु नुप्पादेता होति....पे०..... एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (१०)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी न आपाथकनिसादी होति पे०..... एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (११)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी न अत्तानं अदस्सयमानो कुलेसु चरति—‘इदं पि मे तपस्मि, इदं पि मे तपस्मि’ ति....पे०..... एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (१२)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी न किञ्चिदेव पटिच्छन्नं सेवति। सो—‘खमति ते इदं’

“....वह उस लाभ-सत्कार-प्रशंसा में न मग्न (आसक्त) रहता है, न लिप्त रहता है, न उससे प्रमाद ही करना प्रारम्भ करता है। (६)

“....वह प्राप्त भोजन में भी संशय (द्वैधीभाव) नहीं करता कि यह उसके लिये उचित है या अनुचित....। (७)

“....वह वैसी तपश्चर्या इसलिये नहीं करता कि उसे देखकर राजा, राजमहामात्य, ब्राह्मण या गृहपति उसका अत्यधिक आदर सत्कार करें....। (८)

“....वह किसी अभ्यागत साधक को अभिमानवश यह कहकर दूर नहीं भगाता कि यह सर्वाहारी है....। (९)

“.... वह किसी श्रमण-ब्राह्मण को गृहस्थकुलों में सत्कृत, सम्मानित एवं पूजित होते देखकर न उसके प्रति ईर्ष्या करता है; न उन गृहस्थों को ही, इस कारण भला-बुरा कहता है। (१०)

“....परन्तु वह खुले स्थान में बैठकर इसलिये तपस्या नहीं करता कि लोग उसे देखकर उसका सम्मान करें....। (११)

“....न वह लुक-छिपकर गृहस्थकुलों में जाता है। (१२)

ति पुट्टो समानो अक्खममानं आह—‘नक्खमती’ ति, खममानं आह—‘खमती’ ति। इति सो सम्पजानमुसा न भासिता होति पे०.....एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (१३)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी तथागतस्स वा तथागतसावकस्स वा धम्मं देसेन्तस्स सन्तं येव परियायं अनुज्जेय्यं अनुजानाति....पे०.....एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (१४)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी अक्कोधनो होति अनुपनाही। यं पि, निग्रोध, तपस्सी अक्कोधनो, होति अनुपनाही पे०.....एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (१५)

“पुन च परं, निग्रोध, तपस्सी अमक्खी होति अपळासी पे०..... अनिस्सुकी होति अमच्छरी....असठो होति अमायीवी....अत्थद्धो होति अनतिमानी न पापिच्छो होति [R.48] न पापिकानं इच्छानं वसं गतो न मिच्छादिट्ठिको होति न अन्तग्गाहिकाय दिट्ठिया समन्नागतो न सन्दिट्ठिपरामासी होति न आधानग्गाही सुप्पटिनिस्सग्गी। यं पि, निग्रोध, तपस्सी न सन्दिट्ठिपरामासी होति न आधानग्गाही सुप्पटिनिस्सग्गी, एवं सो तस्मिं ठाने परिसुद्धो होति। (१६-२२)

१४. “तं किं मज्जसि, निग्रोध, यदि एवं सन्ते तपोजिगुच्छा परिसुद्धा वा होति अपरिसुद्धा वा” ति ?

“अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तपोजिगुच्छा परिसुद्धा होति, नो अपरिसुद्धा [N.38,B.40] अगगप्पत्ता च सारप्पत्ता चा” ति।

“न खो, निग्रोध, एत्तावता तपोजिगुच्छा अगगप्पत्ता च होति सारप्पत्ता च; अपि च खो पपटिकप्पत्ता होती” ति।

६. तपोजिगुच्छाय अगगज्जं च सारं च

१५. “कितावता पन, भन्ते, तपोजिगुच्छा अगगप्पत्ता च होति सारप्पत्ता च ? साधु मे, भन्ते, भगवा तपोजिगुच्छाय अगगज्जेव पापेतु सारज्जेव पापेतु” ति।

“इध, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवुतो होति। कथं च, निग्रोध, तपस्सी

“...छिपकर कोई कार्य कर बैठे। तब उस विषय में पूछने पर उचित को अनुचित नहीं बताता और न ही अनुचित को उचित ही बताता है।....। (१३)

“वह तथागत या तथागत शिष्य का उपदेश सुनकर उसका अनुमोदन करता है....। (१४)

“वह दूसरों के प्रति न क्रोध करता है, न वैरभाव....। (१५)

“फिर, न्यग्रोध! वह तपस्वी न कृतघ्न, न डाह करने वाला....न ईर्ष्यालु, न अभिमानी....न शत्रु न मायावी....न स्तब्ध, न मिथ्या गर्व करने वाला....न पाप कर्म का इच्छुक एवं न पापकर्मों के फन्दे में पड़ा हुआ....न मिथ्यादृष्टि एवं न उच्छेददृष्टि वाला....न अपने मत का अभिमानी, न अपने मत का हठी.... एवं न अपने मत का आग्रही (न त्यागने वाला) ही होता है। इस तरह वह तपस्वी इन विषयों में परिशुद्ध होता है। (१६-२२)

१४. “तो क्या मानते हो, न्यग्रोध! इस विधि से की गयी तपस्या परिशुद्ध होगी या अपरिशुद्ध ?”

“तब तो, भन्ते! यह तपस्या परिशुद्ध ही होगी, इसके परिशुद्ध होने का स्थान ही कहाँ है!”

“नहीं, न्यग्रोध! इतने पर भी यह तपस्या प्रशंसनीय या सार्थक नहीं हो पाती। ऊपर कही हुई बातें तो उस तपःपरिशुद्धि की केवल पपड़ी (छाल) ही हैं।

चातुयामसंवरसंवृतो होति ? इध, निग्रोध, तपस्सी न पाणं अतिपातेति, न पाणं अतिपातयति, [R.49] न पाणमतिपातयतो समनुज्जो होति; न अदित्रं आदियति, न अदित्रं आदियापेति, न अदित्रं आदियतो समनुज्जो होति; न मुसा भणति, न मुसा भणापेति, न मुसा भणतो समनुज्जो होति; न भावितमासीसति, न भावितमासीसापेति, न भावितमासीसतो समनुज्जो होति। एवं खो, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवृतो होति।

१६. “यतो खो, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवृतो होति, अदुं चस्स होति तपस्सिताय। सो अभिहरति, नो हीनायावत्तति। सो विवित्तं सेनासनं भजति अरज्जं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिकन्तो निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सति उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति। ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, ब्यापादप्पदोसा चित्तं परिसोधेति। थिनमिद्धं पहाय विगतथिनमिद्धो विहरति आलोकसज्जी सतो सम्पजानो, थिनमिद्धा चित्तं परिसोधेति। उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति, अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति। विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति, अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेषु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति।

[B.41] १७. “सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पज्जाय दुब्बलीकरणे मेत्तासहातेन

६. सारभूत वास्तविक तपस्या

१५. “भन्ते! तो फिर आप वह वास्तविक तपश्चर्या की विधि बताइये जो प्रशंसनीय भी हो और साधक के लिये सार्थक भी?”

“यहाँ न्यग्रोध कोई साधक चार संयमों (चतुर्यामसंवर) से संवृत (सुरक्षित) होकर तपस्या करता है। वह तपस्वी कैसे चतुर्यामसंवर से संवृत होता है? (१) यहाँ, न्यग्रोध! जब कोई तपस्वी जीव-हिंसा न करता है, न करने की प्रेरणा देता है, न वैसा करने-कराने में सहमत होता है। (२) न चोरी करता है, न करवाता है, न वैसा करने-कराने में सहमत होता है। (३) न झूठ बोलता है, न झूठ बोलने की प्रेरणा करता है, न वैसा करने-कराने में सहमत होता है। (४) न स्वयं पाँच कामभोगों का सेवन करता है, न दूसरों को वैसा करने की प्रेरणा करता है, न वैसा करने-कराने का अनुमोदन ही करता है।

१६. “जब कोई तपस्वी चतुर्यामसंवर से संवृत रहता है तो यही उसका तपस्वित्व है। ऐसा करता हुआ वह प्रव्रज्या को निभाता है, धर्मसाधना में विघ्न नहीं आने देता। वह वन, वृक्ष की छाया, पर्वत-कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, खुले स्थान या पुआल के ढेर पर एकान्त में वास करता है। वह भिक्षाटन से भोजन करने के बाद शरीर को सीधा (ऋजु) कर, स्मृति को सामने रखकर, आसन लगाकर बैठता है। वह संसार के प्रति अभिध्या (राग) को छोड़कर वीतराग चित्त से साधना करता है। इस साधना द्वारा वह स्वचित्त को शुद्ध करता है। हिंसाभाव छोड़कर हिंसारहित चित्त से साधना करता हुआ सर्वप्राणियों की हितकामना करता हुआ हिंसा से स्वचित्त को सदा के लिये विरत (शुद्ध) करता है। औद्धत्य-कौकृत्य को त्याग कर अनुद्धत चित्त से साधना करता हुआ आध्यामिक शान्ति द्वारा स्वचित्त को औद्धत्य-कौकृत्य से सदा के लिये विरत करता है। विचिकित्सा (सन्देह) को त्यागकर, उससे रहित होकर साधना करता हुआ कुशल धर्मों के प्रति निश्चङ्क होकर विचिकित्सा से स्वचित्त को सदा के लिये शुद्ध करने का प्रयास करता है।

चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति [N.39] उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावतन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन [R.50] महग्गतेन अप्पमाणेन अवैरेन अब्बापज्जेन फरित्वा विहरति। करुणासहतेन चेतसा पे०.... मुदितासहगतेन चेतसा....पे०....उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावतन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवैरेन अब्बापज्जेन फरित्वा विहरति।

१८. “तं किं मज्जसि, निग्रोध, यदि एवं सन्ते तपोजिगुच्छा परिसुद्धा वा होति अपरिसुद्धा वा” ति ?

“अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तपोजिगुच्छा परिसुद्धा होति, नो अपरिसुद्धा, अग्गप्पत्ता च सारप्पत्ता चा” ति।

“न खो, निग्रोध, एत्तावता तपोजिगुच्छा अग्गप्पत्ता च होति सारप्पत्ता च; अपि च खो तचप्पत्ता होती” ति।

१९. “कित्तावता खो पन, भन्ते, तपोजिगुच्छा अग्गप्पत्ता च होति सारप्पत्ता च ? साधु मे, भन्ते, भगवा तपोजिगुच्छाय अग्गज्जेव पापेतु सारज्जेव पापेतु” ति।

“इध, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवृतो होति। कथं च, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवृतो होति पे०....यतो खो, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवृतो होति, अटुं चस्स होति तपस्सिताय। सो अभिहरति, नो हीनायावत्तति। सो विवित्तं सेनासनं भजति....पे०....सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्खिलेसे पज्जाय दुब्बलीकरणे मेत्तासहगतेन चेतसा पे०....करुणासहगतेन चेतसा पे०....मुदितासहगतेन चेतसा....पे०.... उपेक्खासह-

१७. “वह इन औद्धत्यादि पाँच नीवरणों को छोड़कर चित्त के उपक्लेशों (मलों) को प्रज्ञा द्वारा दुर्बल करने के लिये मैत्रीयुक्त चित्त से एक दिशा की तरफ ध्यान करता है, वैसे ही दूसरी दिशा, तीसरी दिशा, चौथी दिशा....पूर्ववत्....ऊपर, नीचे, तिरछे सभी तरफ से, सभी तरह, समग्र संसार को उपेक्षायुक्त चित्त से विपुल महान् और अप्रमाण (अत्यधिक) अवैर तथा अद्रोह से भावना करता हुआ साधना करता है।

१८. “न्यग्रोध! तो क्या मानते हो— यदि ऐसा हो तो वह तप शुद्ध होता है या अशुद्ध?”

“भन्ते! ऐसा होने से तो तप शुद्ध ही होता है, अशुद्ध नहीं। अपितु वह श्रेष्ठ और सार्थक भी होता है।”

“न्यग्रोध! इतना ही करने से तप, श्रेष्ठ और सार्थक नहीं होता। यह तो वृक्ष की पपड़ी से कुछ अधिक वृक्ष की छाल के समान है।

१९. “कैसे, भन्ते! वह तपश्चर्या सर्वतः श्रेष्ठ एवं सार्थक होती है? अच्छा हो, भन्ते! यदि आप मुझे उस श्रेष्ठ एवं सार्थक तप की विधि बतावें।”

“यहाँ, न्यग्रोध! कोई तपस्वी चतुर्याम (चार संयमों) से संवृत (संरक्षित) होकर तपस्या करता है। न्यंगोध! कैसे वह तपस्वी चातुर्यामसंवर से संवृत होता है?...पूर्ववत्....। जब कोई तपस्वी चतुर्यामसंवर से संवृत होकर साधना करता है तो यही उस की तपस्विता है। ऐसा करता हुआ वह प्रव्रज्या की सार्थकता को निभाता है, धर्म साधना में विघ्न नहीं आने देता।....एकान्तवास करता है। वह इन पाँच नीवरणों को

गतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवैरेन अब्बापज्जेन फरित्वा विहरति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिसं पि [B.42] जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्चासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि [R.51] जातिसतहस्सं पि अनेके पि संवट्ठकप्पे अनेके पि विवट्ठकप्पे अनेके पि संवट्ठिवट्ठ- [N.40] कप्पे—‘अमुत्तासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो ति, इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

२०. “तं किं मज्जसि, निग्रोध, यदि एवं सन्ते तपोजिगुच्छा परिसुद्धा वा होति अपरिसुद्धा वा” ति ?

“अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तपोजिगुच्छा परिसुद्धा होति, नो अपरिसुद्धा, अग्गप्पत्ता च सारप्पत्ता चा” ति।

“नो खो, निग्रोधो, एतावता तपोजिगुच्छा अग्गप्पत्ता च होति सारप्पत्ता च; अपि च खो फेग्गुप्पत्ता होती” ति।

२१. “कितावत्ता पन, भन्ते, तपोजिगुच्छा अग्गप्पत्ता च होति सारप्पत्ता च? साधु मे, भन्ते, भगवा तपोजिगुच्छाय अग्गज्जेव पापेतु सारज्जेव पापेतू” ति।

“इध, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवृतो होति। कथं च, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवृतो होति....पे०....यतो खो, निग्रोध, तपस्सी चातुयामसंवरसंवृतो होति, अटुं चस्स होति तपस्सिताय। सो अभिहरति, नो हीनायावत्तति। सो विवित्तं सेनासनं

छोड़कर....चित्त के उपक्लेशों को प्रज्ञा से दुर्बल करने के लिये मैत्रीयुक्त चित्त से....करुणासहगत चित्त से....मुदितायुक्त चित्त से....उपेक्षायुक्त चित्त से विपुल महान्, अप्रमाण, अवैर तथा अद्रोह से भावना करता हुआ साधना करता है। तब वह अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। जैसे— एक, दो—सौ, हजार, लाख जन्म; अनेक संवर्त, अनेक विवर्त, अनेक संवर्त विवर्त में— वहाँ मैं ऐसा था, मेरा यह नाम था, यह गोत्र था,....पूर्ववत्....यों अपने अनेक पूर्वजन्मों का स्मरण करता है।

२०. “न्यग्रोध! तो क्या समझते हो— यदि ऐसा हो तो वह तपश्चर्या परिशुद्ध होती है या अपरिशुद्ध?”

“भन्ते! ऐसा होने से तो तप परिशुद्ध ही होता है, अपरिशुद्ध नहीं; श्रेष्ठ और सार्थक ही होता है।”

“नहीं, न्यग्रोध! इतना ही तपश्चरण श्रेष्ठ एवं सार्थक नहीं होता, अपितु यह केवल वृक्ष का हीर और छाल के बीच वाले भाग के समान (फेग्गुप्पत्त) ही है।”

२१. “भन्ते! क्या होने से तपश्चरण श्रेष्ठ और अत्यधिक सार्थक होता है? अच्छा हो कि भगवान् मुझे वह श्रेष्ठ और सर्वतोऽधिक सार्थक तपश्चर्याविधि बतावें!”

“यहाँ, न्यग्रोध! कोई तपस्वी चातुर्यामसंवरों से संवृत होकर तपस्या करता है।....पूर्ववत्....एकान्तवास करता है....वह इन पाँचों नीवरणों को त्याग कर....मैत्रीसहगत चित्त से....उपेक्षासहगत चित्त से विपुल....चित्त से दूसरों के अनेक पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। वह प्राणियों को च्युत होते और उत्पन्न होते देखता है।

भजति....पे०....सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्जाय दुब्बलीकरणे मेत्तासहगतेन चेतसा....पे०....उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवरेन अब्बापज्जेन फरित्वा विहरति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो....पे०....इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन [R.52] अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—‘इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता [B.43] वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्टिका मिच्छादिट्टिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना। इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्टिका सम्मादिट्टिकम्मसमादाना, ते कायस्स [N.41] भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपन्ना’ ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

२२. “तं किं मज्जसि, निग्रोध, यदि एवं सन्ते तपोजिगुच्छा परिसुद्धा वा होति अपरिसुद्धा वा” ति ?

“अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तपोजिगुच्छा परिसुद्धा होति, नो अपरिसुद्धा, अग्गप्पत्ता च सारप्पत्ता चा” ति।

२३. “एत्तावता खो, निग्रोध, तपोजिगुच्छा अग्गप्पत्ता च होति सारप्पत्ता च। इति खो, निग्रोध, यं मं त्वं अवचासि—‘को नाम सो, भन्ते, भगवतो धम्मो येन भगवा सावके विनेति, येन भगवता सावका विनीता अस्सासप्पत्ता पटिजाननन्ति अज्झासयं आदिब्रह्मचरियं’ ति, इति खो तं, निग्रोध, ठानं उत्तरितरं च पणीततरं च येनाहं सावके विनेमि, येन मया सावका विनीता अस्सासप्पत्ता पटिजाननन्ति अज्झासयं आदिब्रह्मचरियं” ति।

नीच, उत्तम, सुन्दर, कुरूप, सुगति—दुर्गतिप्राप्त तथा स्वकर्मानुसार उप्त—उप्त योनि को प्राप्त सत्त्वों (प्राणियों) को ठीक—ठीक जान लेता है कि ये सत्त्व कायिक दुराचार से, ये वाचिक दुराचार से, ये मानसिक दुराचार से युक्त होकर; आर्यधर्म के निन्दक रहकर, मिथ्या धारणाओं में विश्वास कर तदनुसार कर्म करते हुए, इस देहपात के बाद, नरक में उत्पन्न होकर अतिदुर्गति को प्राप्त करते हैं। और ये दूसरे सत्त्व कायिक सदाचार से....युक्त होकर....सुगति को प्राप्त करते हैं। यों वह उन उन सत्त्वों को च्युत होते, उत्पन्न होते....स्वकर्मानुसार गति—प्राप्त सत्त्वों को ठीक ठीक जानता है।

२२. “तो क्या मानते हो, न्यग्रोध! ऐसे कर्म से वह तपस्या परिशुद्ध हुई या अपरिशुद्ध?”

“ऐसे कर्मों से तो, भन्ते! वह परिशुद्ध ही होगी। अपितु वह सार्थकतम एवं श्रेष्ठ भी होगी ही।”

२३. “न्यग्रोध! ऐसे कर्मों से ही तपस्वी की तपश्चर्या श्रेष्ठ एवं सार्थक कहलाती है। और फिर, न्यग्रोध! तुमने जो मुझसे प्रश्न किया था—‘भन्ते! भगवान् का वह कौन सा धर्म है जिससे भगवान् अपने श्रावकों को अनुशासित (विनीत) करते हैं और जिससे वे श्रावक अनुशासित होकर आदि ब्रह्मचर्य (बौद्ध

एवं वुत्ते, ते परिब्बाजका उन्नादिनो उच्चासद्महासद्दा अहेसुं—“एत्थ मयं अनस्साम साचरियका, न मयं इतो भिय्यो उत्तरितरं पजानामा” ति ।

७. सन्धानो गृहपति निग्रोधं चोदेसि

[R.53] २४. यदा अज्जासि सन्धानो गृहपति—“अज्जदत्थु खो दानिमे अज्जतित्थिया परिब्बाजका भगवतो भासितं सुस्सूसन्ति सोतं ओदहन्ति अज्जाचित्तं उपट्ठापेन्ती” ति, निग्रोधं [B.44] परिब्बाजकं एतदवोच—“इति खो, भन्ते, निग्रोध, यं मं त्वं अवचासि—‘यग्घे, गृहपति, जानेय्यासि केन समणो गोतमो सद्धिं सल्लपति केन साकच्छं समापज्जति केन पज्जावेय्यत्तियं समापज्जति, सुज्जागारहता समणस्स गोतमस्स पज्जा, अपरिसावचरो समणो गोतमो नालं सल्लापाय, सो अन्तमन्तानेव सेवति; सेय्यथापि नाम गोकाना परियन्तचारिनी [N.42] अन्तमन्तानेव सेवति एवमेव सुज्जागारहता समणस्स गोतमस्स पज्जा, अपरिसावचरो समणो गोतमो, नालं सल्लापाय; सो अन्तमन्तानेव सेवति; इद्धु च, गृहपति, समणो गोतमो इमं परिसं आगच्छेय्य, एकपज्हेनेव नं संसादेय्याम, तुच्छकुम्भीव नं मज्जे ओरोधेय्यामा’ ति, अयं खो सो, भन्ते, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो इधानुप्पत्तो । अपरिसावचरं पन नं करोथ, गोकानं परियन्तचारिनिं करोथ, एकपज्हेनेव नं संसादेथ, तुच्छकुम्भीव नं ओरोधेथा” ति ।

२५. एवं वुत्ते, निग्रोधो परिब्बाजको तुण्हीभूतो मङ्कुभूतो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पट्ठिभानो निसीदि । अथ खो भगवा निग्रोधं परिब्बाजकं तुण्हीभूतं मङ्कुभूतं पत्तक्खन्धं अधोमुखं पज्झायन्तं अप्पट्ठिभानं विदित्वा निग्रोधं परिब्बाजकं एतदवोच—“सच्चं किर, निग्रोध, भासिता ते एसा वाचा” ति ?

धर्म) का पालन करने में आश्वासन प्राप्त करते हैं?’ अतः न्यग्रोध! यही कारण है, या इसे बढ़-चढ़कर और इससे भी प्रणीत कारण है, जिससे मैं अपने शिष्यों को अनुशासित करता हूँ, जिससे वे शिष्य अनुशासित होकर आदिब्रह्मचर्य का पालन करने में आश्वासन पाते हैं ।”

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, वहाँ मण्डली में बैठे परिव्राजक एक साथ चिल्ला उठे—“हाय! हम तो अपने गुरुमत सहित विनष्ट हो गये! हमलोग तो इस विषय में इससे अधिक कुछ नहीं जानते हैं ।”

७. सन्धान गृहपति द्वारा न्यग्रोध को प्रेरणा

२४. जब सन्धान गृहपति ने जान लिया कि अब ये परमतानुयायी परिव्राजक भगवान् का उपदेश सुनने को सावधानतया सन्नद्ध हैं, तब उसने न्यग्रोध परिव्राजक को फटकारा—“भन्ते! न्यग्रोध! आप मुझसे जो कह रहे थे—‘सुनो, गृहपति! श्रमण गौतम किसके साथ सँलाप करते हैं, किसके साथ साक्षात्कार करते हैं? किसको उपदेश करते हैं? शून्यागारों में रहते-रहते उनकी मति मारी गयी है । वे सब से मुँह चुराये फिरते हैं । वे किसी परिषद् का सामना कर ही नहीं सकते! जैसे कोई कानी गौ अकेले ही घूमना उचित समझती है । यदि श्रमण गौतम इस परिषद् में आ जाय तो उनको हग पहले ही प्रश्न में खेँचकरा दें, खाली घड़े की तरह उन्हें सरलतापूर्वक इधर-उधर घुमा दें ।’ भन्ते! अब ये भगवान् स्वयं ही यहाँ पधार गये हैं । उन्हें अब आप सभा से मुँहचोर बनाइये! अब क्यों नहीं आप उन्हें एक ही प्रश्न से खाली घड़े की तरह चकरा देते?”

२५. (सन्धान गृहपति द्वारा) ऐसा कहे जाने पर भी न्यग्रोध परिव्राजक गूँगा सा बनकर चुपचाप

“सच्चं, भन्ते, भासिता मे एसा वाचा, यथाबालेन यथामूळहेन यथा-[R.54] अकुसलेना” ति।

“तं किं मञ्जसि, निग्रोध, किन्ति ते सुतं परिब्बाजकानं वुड्ढानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—‘ये ते अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा एवं सु ते भगवन्तो सङ्गम्म समागम्म उन्नादिनो उच्चासद्महासद्दा अनेकविहितं तिरच्छानकथं अनुयुत्ता विहरिंसु, सेय्यथिदं—राजकथं चोरकथं....पे०.... इति भवाभवकथं इति वा, सेय्यथापि त्वं एतरहि साचरियको? उदाहु, एवं सु ते भगवन्तो अरञ्जवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवन्ति अप्पसद्धानि अप्पनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि पटिसल्लानसारुप्पानि, सेय्यथापाहं एतरही” ति?

“सुतं मेतं, भन्ते, परिब्बाजकानं वुड्ढानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—‘ये ते अहेसु अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, न एवं सु ते भगवन्तो सङ्गम्म [B.45] समागम्म उन्नादिनो उच्चासद्महासद्दा अनेकविहितं तिरच्छानकथं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं—राजकथं चोरकथं....पे०....इति भवाभवकथं इति वा, सेय्यथापाहं एतरहि साचरियको। एवं सु ते भगवन्तो अरञ्जवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवन्ति अप्पसद्धानि अप्पनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि पटिसल्लानसारुप्पानि, सेय्यथापि भगवा एतरही” ति।

“तस्स ते, निग्रोध, विञ्जुस्स सतो महल्लकस्स न एतदहोसि—‘बुद्धो सो [N.43] भगवा बोधाय धम्मं देसेति, दन्तो सो भगवा दमथाय धम्मं देसेति, सन्तो सो भगवा [R.55] समथाय धम्मं देसेति, तिण्णो सो भगवा तरणाय धम्मं देसेति, परिनिब्बुतो सो भगवा परिनिब्बानाय धम्मं देसेती” ति?

८. निग्रोधो अच्चयं अच्चयतो पटिजानि

२६. एवं वुत्ते, निग्रोधो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—“अच्चयो मं, भन्ते, अच्चगमा

उदासीन भाव से कन्धा गिरा कर नीचे मुँह लटका कर, चिन्तामग्न ही बैठा रहा। तब भगवान् ने न्यग्रोध परिब्राजक को....मुँह लटकाये बैठा देखकर पूछा—“क्या, न्यग्रोध! सचमुच तुमने ऐसा कहा था?”

“हाँ, भन्ते! मैंने वस्तुतः ये भ्रान्त बातें अपने बचपन, मूर्खता तथा अव्यावहारिकता के कारण कह डाली थी।”

“तो क्या मानते हो, न्यग्रोध! कि तुमने अपने बड़े-बूढ़ों, आचार्य-प्राचार्यों, परिब्राजकों से कभी सुना है कि अतीत काल में जो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हो गये हैं वे....क्या तुम लोगों की तरह कोलाहल करनेवाले या राजकथा, चौरकथा....आदि निरर्थक कथाएँ कहते फिरते थे....? या वे....भगवान् जंगलों में एकान्तवास....करने वाले थे, जैसा कि आज कल मैं?”

“हाँ, भन्ते! मैंने बड़े-बूढ़े....परिब्राजकों को कहते सुना है....वे हमारी तरह कोलाहल करने वाले नहीं थे; अपितु वे....जङ्गलों में एकान्तवास....करने वाले थे, जैसे कि इस समय आप भगवान्।”

“न्यग्रोध! तब तुम जैसे बुद्धिमान् को यह क्यों नहीं समझ में आया—‘भगवान्, स्वयं बुद्ध हो कर दूसरों को बोध के लिये उपदेश करते हैं; भगवान् स्वयं संयमी बनकर दूसरों को इन्द्रियनिग्रह का उपदेश करते हैं; स्वयं भवसागर पार कर दूसरों को उसे पार करने का उपदेश करते हैं तथा स्वयं परिनिर्वृत्त होकर ही दूसरों को परिनिर्वाण का उपदेश करते हैं?”

यथाबालं यथामूळं यथाअकुसलं, व्याहं एवं भगवन्तं अवचासिं। तस्स मे, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया' ति।

“तग्घ त्वं, निग्रोध, अच्चयो अच्चगमा यथाबालं यथामूळं यथाअकुसलं, यो मं त्वं एवं अवचासि। यतो च खो त्वं, निग्रोध, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोसि तं ते मयं पटिग्गण्हाम। बुद्धि हेसा, निग्रोध, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति, आयतिं संवरं आपज्जति।

“अहं खो, पन, निग्रोध, एवं वदामि—‘एतु विज्जू पुरिसो असठो अमायावी उजुजातिको, अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति सत्तवस्सानि। तिट्ठन्तु, निग्रोध, सत्त वस्सानि। एतु विज्जू पुरिसो असठो अमायावी उजुजातिको, अहमनुसासामि, अहं धम्मं [B.46] देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति छ वस्सानि....पञ्च वस्सानि....चत्तारि वस्सानि....तीणि वस्सानि द्वे वस्सानि एकं वस्सं। तिट्ठन्तु, निग्रोध, एकं वस्सं। एतु विज्जू पुरिसो असठो अमायावी उजुजातिको, अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति सत्त मासानि। तिट्ठन्तु, निग्रोध, सत्त [R.56] मासानि.... छ मासानि पञ्च मासानि....चत्तारि मासानि....तीणि मासानि.....द्वे [N.44] मासानि....एकं मासं....अट्ठमासं। तिट्ठन्तु, निग्रोध, अट्ठमासो। एतु विज्जू पुरिसो

८. न्यग्रोध द्वारा क्षमायाच्चा

२६. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, न्यग्रोध परिव्राजक ने भगवान् से (विनयपूर्वक) निवेदन किया— “भन्ते! मुझ से यह प्रमाद (भूल) बाल, मूढ़ या अज्ञानी की तरह हो गया कि मैंने आप के विषय में ऐसी असभ्य बात कह डाली! भन्ते! भविष्य में मुझ से ऐसा प्रमाद कभी नहीं हो पायगा, अतः मेरे इस अपराध को भगवान् क्षमा करें।”

“न्यग्रोध! सुनो! बाल, मूर्ख एवं अव्यवहारज्ञ की तरह तुमने भारी अपराध किया, जो कि तुमने मेरे विषय में वैसे प्रमादयुक्त वचन कहे; परन्तु जब तुम स्वयं ही अपना अपराध स्वीकार कर धर्मानुकूल प्रतीकार कर रहे हो, तो मैं तुम्हारे उस अपराध को क्षमा करता हूँ। न्यग्रोध! हमारे आर्यविनय में यह बुद्धिमत्ता समझी जाती है कि बुद्धिमान् आदमी भविष्य में संयम के लिये स्वकीय अपराध को स्वयं स्वीकार कर धर्मानुकूल प्रतीकार (क्षमायाच्चा) कर ले।

“न्यग्रोध! मैं तो (दृढ़ता के साथ) यह कहता हूँ— ‘कोई बुद्धिमान् पुरुष छल, प्रपञ्च एवं धूर्तता त्याग कर सीधे सरल स्वभाव से मेरे पास आवे, मैं उसे अपने धर्म की दीक्षा दूँगा, उसका उपदेश करूँगा। वह यदि मेरे किये उपदेश (शिक्षा) के अनुसार उस धर्म का आचरण करे तो, जिसके लिये कुलपुत्र घर से बेघर होकर प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य के अन्तिम लक्ष्य को सात वर्ष में ही स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर धर्मरत रहेगा। न्यग्रोध! सात वर्ष तो जाने दे। यदि वह एकाग्रचित्त होकर छह

असठो अमायावी उजुजातिको, अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिटुं तथा पटिपज्जमानो—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति सत्ताहं।

२७. “सिया खो पनेतं, निग्रोध, एवमस्स—‘अन्तेवासिकम्यता नो समणो गोतमो एवमाहा’ ति। न खो पनेतं, निग्रोध, एवं दट्ठब्बं। यो एव वो आचरियो सो एव वो आचरियो होतु। सिया खो पन ते, निग्रोध, एवमस्स—‘उद्देसा नो चावेतुकामो समणो गोतमो एवमाहा’ ति। न खो पनेतं, निग्रोध, एवं दट्ठब्बं। यो एव वो उद्देसो सो एव वो उद्देसो होतु। सिया खो पन ते, निग्रोध, एवमस्स—‘आजीवा नो चावेतुकामो समणो गोतमो एवमाहा’ ति। न खो पनेतं, निग्रोध, एवं दट्ठब्बं। यो एव वो आजीवो सो एव वो आजीवो होतु। सिया खो पन ते, निग्रोध, एवमस्स—‘ये नो धम्मा अकुसला अकुसलसङ्घाता साचरियकानं तेसु पतिट्ठापेतुकामो समणो गोतमो एवमाहा’ ति। न खो पनेतं, निग्रोध, एवं दट्ठब्बं। अकुसला चैव वो ते [B.47] धम्मा होन्तु अकुसलसङ्घाता च साचरियकानं। सिया खो पन ते, निग्रोध, एवमस्स—‘ये नो धम्मा कुसला कुसलसङ्घाता साचरियकानं तेहि विवेचेतुकामो समणो गोतमो एवमाहा’ ति। न खो पनेतं, निग्रोध, एवं दट्ठब्बं। कुसला चैव वो ते धम्मा होन्तु कुसलसङ्घाता च साचरियकानं।

“इति ख्वाहं, निग्रोध, नेव अन्तेवासिकम्यता एवं वदामि, न पि उद्देसा चावेतुकामो एवं वदामि, न पि आजीवा चावेतुकामो एवं वदामि, न पि ये च वो धम्मा अकुसला [R.57] अकुसलसङ्घाता साचरियकानं तेसु पतिट्ठापेतुकामो एवं वदामि, न पि ये वो धम्मा कुसला कुसलसङ्घाता साचरियकानं तेहि विवेचेतुकामो एवं वदामि। सन्ति च खो, निग्रोध, अकुसला धम्मा अप्पहीना सङ्किलेसिका पो नो भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिा, येसाहं पहानाय धम्मं देसेमि। यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानीया

वर्ष...पाँच....चार....तीन....दो....एक वर्ष में....सात मास में....छह...पाँच....चार....तीन....दो....एक मास में....आधे मास में....एक सप्ताह में ही स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर धर्मरत रहेगा।

२७. “न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मन में ऐसा हो—‘अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाने के लिये श्रमण गौतम ऐसा कह रहे हैं’, तो न्यग्रोध! तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिये। जो तुम्हारा अभी आचार्य है, वही बाद में भी रहे।

“न्यग्रोध!...‘हमें अपने उद्देश्य से च्युत करने के लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं’, तो न्यग्रोध!...। जो तुम्हारा अभी उद्देश्य है, वही बाद में भी रहे। “न्यग्रोध!...‘हमें अपनी जीविका से छुड़ाने के लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं’, तो न्यग्रोध! जो तुम्हारी जीविका अभी है वही बाद में भी बनी रहे। न्यग्रोध!...‘हमारे मताचार्यों के जो अकुशल धर्म (पात्र) हैं, उनमें प्रतिष्ठित करने के लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं’, तो न्यग्रोध!...। आचार्यों के साथ तुम्हारे वे अकुशल धर्म अकुशल धर्म ही रहें। न्यग्रोध!...जो कुशल (पुण्य) धर्म...कुशल ही रहें।

“न्यग्रोध! अतः, न तो मैं अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाने के लिये, न तुम्हें उद्देश्य से च्युत करने के लिये, न तुम्हें आजीविका से छुड़ाने के लिये, न आचार्यों के अकुशल और कुशल धर्मों में प्रतिष्ठित करने के लिये मैं तुम्हें ऐसे कह रहा हूँ। न्यग्रोध! मैं तो अप्रहीण बुराईयों (अकुशल धर्म), क्लेशों को उत्पन्न करने वाली, भव में गमनागमन की कारणभूत, सभी वेदनाओं की उत्पादक, दुःखद परिणामवाली,

धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पज्जापारिपूर्तिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिक्त्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा" ति ।

२८. एवं वुत्ते, ते परिब्बाजका तुण्हीभूता मङ्कुभूता पत्तक्खन्था अधोमुखा पज्झायन्ता [N.45] अप्पटिभाना निसीदिंसु, यथा तं मारेन परियुट्ठितचित्ता । अथ खो भगवतो एतदहोसि— "सब्बे पिमे मोघपुरिसा फुट्ठा पापिमता; यत्र हि नाम एकस्स पि न एवं भविस्सति—'हन्द मयं अज्जाणत्थं पि समणे गोतमे ब्रह्मचरियं चराम, किं करिस्सति सत्ताहो'" ति !

अथ खो भगवा उदुम्बरिकाय परिब्बाजकारामे सीहनादं नदित्वा वेहासं अब्भुग्गन्त्वा गिज्झकूटे पब्बते पच्चुपट्ठासि ।

सन्धानो पन गहपति तावदेव राजगहं पाविसी ति ॥

उदुम्बरिकसुत्तं निद्धितं दुतियं ॥



जाति-जरा और मरण की हेतु हैं, उन्हीं के प्रहाण के लिये तुम्हें उपदेश करता हूँ; जिसमें तुम्हारे क्लेशप्रद धर्म नष्ट हो जाँय और शुद्ध (पुण्यप्रद) धर्म बढ़ें । और तुम प्रज्ञा की पूर्णता एवं विपुलता प्राप्त कर उसे (प्रज्ञा-ज्ञान को) इसी जन्म में जानकर साक्षात् कर साधनारत रहो ।"

२८. (भगवान् के) ऐसा कहने पर भी वे (सभी) परिव्राजक गुँगे....बनकर गुँह लटकाये कन्धे नीचे डाले हुए, बुझे-बुझे से, भौचकें (स्तब्ध) से बैठे रहे । तब भगवान् के मन में यह हुआ— "ये सभी मूर्ख पुरुष मार के बन्धन में बंधे हैं, जिससे इनमें एक के मन में भी यह नहीं आता कि 'मैं ज्ञानप्राप्ति के लिये भगवान् (बुद्ध) के शासन में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करूँ, एक सप्ताह कौन बहुत लम्बा समय है!"

तब भगवान् उस उदुम्बरिकापरिव्राजकाराम में सिंहनाद कर, आकाश मार्ग से उड़कर गृध्रकूट पर्वत पर जा विराजे ।

सन्धान गृहपति भी राजगृह चला गया ॥

द्वितीय औदुम्बरिकसूत्र समाप्त ॥



३. चक्रवर्तिसूतं

१, एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति मातुलायं। [N.46, B.48, R.58]
तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—“भिक्खवो” ति। “भदन्ते” ति ते भिक्खू भगवतो
पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

“अत्तदीपा, भिक्खवे,, विहरथ अत्तसरणा अनञ्जसरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा
अनञ्जसरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्जसरणा। कथं च, पन भिक्खवे, भिक्खु अत्तदीपो
विहरति अत्तसरणो अनञ्जसरणो, धम्मदीपो, धम्मसरणो? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये
कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। वेदनासु
वेदनानुपस्सी पे०.....चित्ते चित्तानुपस्सी.....पे०.....धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी
सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अत्तदीपो
विहरति अत्तसरणो अनञ्जसरणो, धम्मदीपो धम्मसरणो अनञ्जसरणो।

“गोचरे, भिक्खवे, चरथ सके पेतिके विसये। गोचरे, भिक्खवे, चरतं सके पेतिके
विसये न लच्छति मारो ओतारं, न लच्छति मारो आरम्भणं। कुसलानं, भिक्खवे, धम्मानं
समादानहेतु एवमिदं पुज्जं पवड्डति।

१. दळ्हेनेमिचक्रवर्तिराजा

२. “भूतपुब्बं, भिक्खवे, राजा दळ्हेनेमि नाम अहोसि चक्रवर्ती धम्मिको [R.59]

३. चक्रवर्तिसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) मगध देश के मातुला (स्थान) में साधना हेतु
विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया— “भिक्षुओ”। “भदन्त” कहकर भिक्षुओं ने
उत्तर दिया। भगवान् बोले—

आत्मशरण होकर साधना करो—“आत्मद्वीप (आत्मत्राण) एवं आत्मशरण (स्वावलम्बी) बनो,
अन्यशरण नहीं। अर्थात् तुम्हें दूसरे का सहारा खोजने की आवश्यकता नहीं। यदि द्वीप (त्राण-स्थल)
चाहिये तो धर्म को द्वीप बनाओ, धर्म को ही शरण-स्थल बनाओ; किसी अन्य की शरण (सहारा,
आलम्बन) खोजने की क्या आवश्यकता है! भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु जब काया में कायानुपश्यी* होता
हुआ संयमी, सावधान, स्मृतिमान् और संसार के अनुचित लोभ और दौर्मनस्य को त्यागकर चित्त में
चित्तानुपश्यी होकर एवं धर्मा में धर्मानुपश्यी होकर साधना करता है* तभी वह आत्मद्वीप, आत्मशरण,
अनन्यशरण तथा धर्मद्वीप, धर्मशरण एवं अनन्यशरण (साधक) कहलाता है।

“भिक्षुओ! अपने पैतृक विषय गोचर (गुरुप्रदत्त चार स्मृतिप्रस्थानों की शिक्षा) में साधना करो।
पैतृक विषय गोचर में साधनारत रहते हुए तुम पर मार का आक्रमण कभी नहीं होगा; क्योंकि वह ऐसी
स्थिति में तुममें कोई छिद्र (कमी) नहीं पा सकेगा और न कोई अन्तःप्रवेश के लिये आलम्बन। भिक्षुओ!
उत्तम धर्मा का ग्रहण (समादान) करने से साधक का पुण्य वृद्धिज्ञत होता है।

१. दृढनेमि चक्रवर्ती राजा

२. “भिक्षुओ! प्राचीन काल में चारों दिशाओं पर विजय पाने वाला, जनपदों में स्थिरता और

१. कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना आदि के विस्तार के लिये ३०— महास्मृतिप्रस्थान सूत्र (दी० नि०, द्वि० भा०)।

धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सिमानि सत्तरतानि अहेसुं, सेय्यथिदं—चक्ररतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गृहपतिरतनं, परिणाय-रतनमेव, सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता अहेसुं सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पथविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्झावसि।

[B.49] ३. “अथ खो, भिक्खवे, राजा दळ्हेनेमि बहुन्नं वस्सानं बहुन्नं वस्ससतानं बहुन्नं वस्ससहस्सानं अच्चयेन अज्जरं पुरिसं आमन्तेसि—‘यदा त्वं, अम्भो पुरिस, पस्सेय्यासि दिब्बं चक्ररतनं ओसकितं ठाना चुतं, अथ मे आरोचेय्यासी’ ति। ‘एवं, देवा’ ति खो, [N.47] भिक्खवे, सो पुरिसो रज्जो दळ्हेनेमिस्स पच्चस्सोसि। अद्दसा खो, भिक्खवे, सो पुरिसो बहुन्नं वस्सानं बहुन्नं वस्ससतानं बहुन्नं वस्ससहस्सानं अच्चयेन दिब्बं चक्ररतनं ओसकितं ठाना चुतं। दिस्वान येन राजा दळ्हेनेमि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा राजानं दळ्हेनेमि एतदवोच—‘यग्घे, देव, जानेय्यासि, दिब्बं ते चक्ररतनं ओसकितं ठाना चुतं’ ति। अथ खो, भिक्खवे, राजा दळ्हेनेमि जेट्टुपुत्तं कुमारं आमन्तापेत्वा एतदवोच—‘दिब्बं किर मे, तात कुमार, चक्ररतनं ओसकितं ठाना चुतं। सुतं खो पन मेतं—यस्स रज्जो चक्रवत्तिस्स दिब्बं चक्ररतनं ओसकितं ठाना चवति, न दानि तेन रज्जा चिरं जीवितब्बं होति। भुत्ता खो पन मे मानुसका कामा। [R.60] समयो दानि मे दिब्बे कामे परियेसितुं। एहि त्वं, तात कुमार, इमं समुदपरियन्तं पथविं पटिपज्ज। अहं पन केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सामी’ ति।

४. “अथ खो, भिक्खवे, राजा दळ्हेनेमि जेट्टुपुत्तं कुमारं साधुकं रज्जे समनुसासित्वा

शान्ति का व्यवस्थापक, सात रत्नों^१ से युक्त दृढ़नेमि नामक एक चक्रवर्ती धार्मिक धर्मराजा था। उसके सात रत्न थे— १. चक्ररत्न, २. हस्तिरत्न, ३. अश्वरत्न, ४. मणिरत्न, ५. स्त्रीरत्न, ६. गृहपतिरत्न एवं ७. परिणायकरत्न। एक हजार से भी अधिक इसके पुत्र थे, जो सभी शूर, वीर, बलवान् एवं शत्रु-सेना पर विजयध्वज फहराने वाले थे। वह सागरपर्यन्त इस समग्र पृथ्वी को दण्ड और शस्त्र के बिना ही धर्म और शान्तिपूर्वक जीतकर राज्य करता था।

३. “भिक्षुओ! तब वह राजा दृढ़नेमि बहुत वर्ष, कई सौ वर्ष, कई हजार वर्ष बीतने पर, अपने किसी अनुचर से बोला— ‘भो पुरुष! जब तुम इस दिव्य चक्रवर्तिरत्न को अपने स्थान से हटा हुआ या गिरा हुआ देखो तो मुझे इसकी सूचना देना।’ ‘देव! बहुत अच्छा’ कहकर उस पुरुष ने राजा को उत्तर दिया। भिक्षुओ! बहुत से वर्ष...बीतने पर वह दिव्य चक्ररत्न अपने स्थान से हट गया, च्युत हो गया। उसे देखकर वह पुरुष राजा को सूचित करने गया। जाकर राजा दृढ़नेमि से यों बोला— ‘देव! सुनिये और जान लीजिये कि वह दिव्य चक्ररत्न आज अपने स्थान से कुछ हट गया है।’ भिक्षुओ! तब राजा दृढ़नेमि ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर कहा— ‘तात कुमार! आज मेरा दिव्य चक्ररत्न अपने स्थान से च्युत हो गया है। मैंने ऐसा सुना है— जिस चक्रवर्ती राजा का दिव्य चक्ररत्न स्व स्थान से च्युत हो जाता है तो वह राजा आगे बहुत दिन जीवित नहीं रहता। मैंने मनुष्य के भोगने योग्य सभी भोगों को भोग लिया है। अब मेरा दिव्य भोगों के संग्रह का अवसर आ गया। तात कुमार! सुनो। अब इस समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का शासन तुम सन्हालो। मैं शिर-दाढ़ी मुँड़वा कर, काषाय वस्त्र धारण कर, घर से बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।’

१. सात रत्नों के विस्तृत ज्ञान हेतु द्र०—महासुदर्शनसूत्र (दी० नि०, द्वि० भा०)।

केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजि । सत्ताहपब्बजिते खो पन, भिक्खवे, राजिसिम्हि दिब्बं चक्ररतनं अन्तरधायि ।

“अथ खो, भिक्खवे, अञ्जतरो पुरिसो येन राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा राजानं खत्तियं मुद्धाभिसित्तं एतदवोच—‘यग्घे, देव, जानेय्यासि, दिब्बं चक्ररतनं अन्तरहितं’ ति! अथ खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो दिब्बे चक्ररतने अन्तरहिते अनत्तमनो अहोसि, अनत्तमनतं च पटिसंवेदेसि । सो येन राजिसि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा राजिसिं एतदवोच—‘यग्घे, देव, जानेय्यासि, दिब्बं चक्ररतनं अन्तरहितं’ ति! एवं वुत्ते, भिक्खवे, राजिसि राजानं खत्तियं मुद्धाभिसित्तं एतदवोच—‘मा खो त्वं, तात, दिब्बे [B.50] चक्ररतने अन्तरहिते अनत्तमनो अहोसि, मा अनत्तमनतं च पटिसंवेदेसि । न हि ते, तात, दिब्बं चक्ररतनं पेतिकं दायज्जं । इद्धुं त्वं, तात, अरिये चक्रवर्तित्वत्ते वत्ताहि । ठानं खो पनेतं विज्जति यं ते अरिये चक्रवर्तित्वत्ते वत्तमानस्स तदहुपोसथे पन्नरसे सीसंन्हातस्स उपोसथिकस्स [N.48] उपरिपासादवरगतस्स दिब्बं चक्ररतनं पातुभविस्सति सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं’ ति ।

२. अरियचक्रवर्तित्वत्तं

५. ‘कतमं पन तं, देव, अरियं चक्रवर्तित्वत्तं’ ति ? [R.61]

‘तेन हि त्वं, तात, धम्मं येव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं मानेन्तो धम्मं पूजेन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहस्सु अन्तोजनस्मिं बलकायस्मिं खत्तियेसु अनुयन्तेसु ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमजानपदेसु

४. ‘मिक्षुओ! तब वह राजा...अपने ज्येष्ठपुत्र कुमार को राज्य, शासन की परिपाटी भलीभाँति समझाकर, राज्यभार देकर शिर—दाढ़ी मुँडवाकर, काषाय वस्त्र पहनकर, प्रव्रजित हो गया। उस राजर्षि के प्रव्रजित होने के एक सप्ताह बाद ही वह दिव्यरत्न अन्तर्हित हो गया।

‘तब, मिक्षुओ! एक अनुचर उस नव मूर्धाभिषिक्त राजा के पास जाकर बोला— ‘देव! आप जान लीजिये कि वह दिव्य चक्ररत्न आज अन्तर्हित हो गया है।’ तब वह मूर्धाभिषिक्त राजा उस चक्ररत्न के अन्तर्हित होने से अत्यधिक खेद एवं असन्तोष प्रकट करने लगा। अन्त में वह अपने पिता राजर्षि के पास गया और उसको यों बोला— ‘देव! क्या आप जानते हैं— आज दिव्य चक्ररत्न अन्तर्हित हो गया!’ मिक्षुओ! ऐसा कहने पर राजर्षि ने उस मूर्धाभिषिक्त राजा को उत्तर दिया— ‘तात! दिव्य चक्ररत्न के अन्तर्हित होने से तुम इस तरह खेद एवं असन्तोष न प्रकट करो। वह दिव्य चक्ररत्न तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति नहीं था। इस की पुनर्प्राप्ति के लिये तुम्हें आर्य चक्रवर्तिव्रत रखना पड़ेगा। तुम्हारे लिये यह उचित होगा कि जब तुम आर्य चक्रवर्तिव्रत—पालन करना प्रारम्भ करो तो उपोसथ की पूर्णिमा के दिन शिर से स्नान कर, उपोसथव्रत कर जब तुम प्रासाद के सबसे ऊपर वाले तल पर जाओगे तो तुम्हारे सामने सहस्र अरों से युक्त, नेमि—नाभि के साथ सर्व प्रकार से परिपूर्ण दिव्य चक्ररत्न प्रकट होगा।’

२. आर्यचक्रवर्तिव्रत

५. ‘देव! यह आर्य चक्रवर्तिव्रत क्या है?’

‘तात! तो तुम अपने आश्रितों में, सेना, क्षत्रियों, अनुगामियों, ब्राह्मणों, गृहपतियों, नैगमों जानपदों, श्रमण—ब्राह्मणों, पशु—पक्षियों में धर्म ही के लिये धर्म का सत्कार, मान—पूजा, गौरव करते हुए

समणब्राह्मणेसु मिगपक्खीसु। मा च ते, तात, विजिते अधम्मकारो पवत्तिथ। ये च ते, तात, विजिते अधना अस्सु तेसं च धनमनुप्पदेय्यासि। ये च ते, तात, विजिते समणब्राह्मणा मदप्पमादा पटिविरता खन्तिसोरच्चे निविट्ठा एकमत्तानं दमेन्ति एकमत्तानं समेन्ति एकमत्तानं परिनिब्बापेन्ति, ते कालेन कालं उपसङ्कमित्वा परिपुच्छेय्यासि परिपज्जेय्यासि—किं, भन्ते, कुसलं, किं अकुसलं, किं सावज्जं, किं अनवज्जं, किं सेवितब्बं, किं न सेवितब्बं, किं मे करियमानं दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय अस्स, किं वा पन मे करियमानं दीघरत्तं हिताय सुखाय अस्सा ति ? तेसं सुत्वा यं अकुसलं तं अभिनिवज्जेय्यासि, यं कुसलं तं समादाय वत्तेय्यासि। इदं खो, तात, तं अरियं चक्कवत्तिवत्तं' ति।

३. चक्करतनं

६. “‘एवं, देवा’ ति खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो राजिसिस्स पटिस्सुत्वा अरियं चक्कवत्तिवत्ते वत्ति। तस्स अरिये चक्कवत्तिवत्ते वत्तमानस्स तदहुपोसथे पन्नरसे सीसंन्हातस्स [B.51] उपोसथिकस्स उपरिपासादवरगतस्स दिब्बं चक्करतनं पातुरहोसि सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं। दिस्वान रज्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स एतदहोसि—‘सुतं खो पन मेतं—यस्स रज्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स तदहुपोसथे पन्नरसे सीसंन्हातस्स उपोसथिकस्स [R.62] उपरिपासादवरगतस्स दिब्बं चक्करतनं पातुभवति सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं, सो होति राजा चक्कवत्ती ति। अस्सं नु खो अहं राजा चक्कवत्ती’ ति। [N.49] “अथ खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा वामेन हत्थेन भिङ्गारं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन चक्करतनं अब्भुक्किरि—‘पवत्ततु भवं चक्करतनं, अभिविजिनातु भवं चक्करतनं’ ति।

उसके प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए धर्मध्वज, धर्मकेतु, धर्माधिपति होकर सभी धार्मिक बातों की रक्षा की विधि स्वीकार करो। तात! तुम्हारे राज्य में कहीं भी अधर्म न होने पावे। निर्धनों को धन दिया जाय। जो तुम्हारे राज्य में श्रमण—ब्राह्मण मद—प्रमादरहित हों, क्षान्ति (तप) के अभ्यास में रत रहें, केवल आत्मदमन, आत्मशमन एवं आत्मनिर्वापन करने में लगे हों, उनके पास समय—समय पर जाकर तुम्हें पूछना चाहिये— ‘भन्ते! हमारे लिये क्या हित है? क्या अहित है? क्या निर्दोष (अनवद्य) है? क्या सद्दोष (सावद्य) है? क्या सेवनीय है? और क्या असेवनीय ? क्या करने से हमारा भविष्य अहित एवं दुःख से परिपूर्ण होगा? या क्या करने से हमारे वे अहित और दुःख विनष्ट होंगे?’ उनके कथन को सुनकर, जो तुम्हारे लिये अकुशल है, उसका त्याग करो, एवं जो कुशल है, उसका ग्रहण कर यथाविधि पालन करो। तात! यही चक्रवर्तिव्रत है।

३. चक्ररत्न

६. “‘ठीक है, देव! ऐसा ही करूँगा’— यों राजर्षि से कहकर वह मूर्धाभिषिक्त राजा आर्य चक्रवर्तिव्रत के आराधन में लग गया। वह, उस व्रत के सम्पादन में लगने पर, उपोसथ की पूर्णिमा के दिन शीर्ष से स्नान, उपोसथव्रत धारण किये हुए प्रसाद के ऊपरी तल पर गया। तब उसके सम्मुख चक्रवर्तिरत्न प्रादुर्भूत हुआ, जो कि सहस्रअरों वाला, नेमि—नाभि एवं सभी अङ्गों से परिपूर्ण था। उसे देखकर राजा के मन में यह हुआ— ‘मैंने ऐसे सुना है— जिस राजा...के सम्मुख प्रसाद के ऊपरी तल पर जाने पर चक्ररत्न प्रादुर्भूत होता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। अतः मैं भी चक्रवर्ती राजा होऊँगा’।

“अथ खो तं, भिक्खवे, चक्ररतनं पुरत्थिमं दिसं पवत्ति, अन्वदेव राजा चक्रवर्ती सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। यस्मिं खो पन, भिक्खवे, पदेसे चक्ररतनं पतिट्ठासि तत्थ राजा चक्रवर्ती वासं उपगच्छि सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। ये खो पन, भिक्खवे, पुरत्थिमाय दिसाय पटिराजानो ते राजानं चक्रवर्तिं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—‘एहि खो, महाराज। स्वागतं ते, महाराज। सकं ते, महाराज। अनुसास, महाराज’ ति। राजा चक्रवर्ती एवमाह—‘पाणो न हन्तब्बो, अदित्रं नादातब्बं, कामेसुमिच्छा न चरितब्बा, मुसा न भासितब्बा, मज्जं न पातब्बं, यथाभुत्तं च भुज्जथा’ ति। ये खो पन, भिक्खवे, पुरत्थिमाय दिसाय पटिराजानो ते रज्जो चक्रवर्तिस्स अनुयन्ता अहेसुं।

७. “अथ खो तं, भिक्खवे, चक्ररतनं पुरत्थिमं समुदं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा दक्खिणं दिसं पवत्ति....पे०....दक्खिणं समुदं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा पच्छिमं दिसं पवत्ति, अन्वदेव राजा चक्रवर्ती सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। यस्मिं खो पन, भिक्खवे, पदेसे दिब्बं चक्ररतनं पतिट्ठासि, तत्थ राजा चक्रवर्ती वासं उपगच्छि सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। ये खो पन, भिक्खवे, पच्छिमाय दिसाय पटिराजानो ते राजानं चक्रवर्तिं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—‘एहि खो, महाराज। स्वागतं ते, महाराज। सकं ते, महाराज। अनुसास, महाराज’ [B.52] ति। राजा चक्रवर्ती एवमाह—‘पाणो न हन्तब्बो, अदित्रं नादातब्बं, कामेसुमिच्छा न चरितब्बा, मुसा न भासितब्बा, मज्जं न पातब्बं, यथाभुत्तं च भुज्जथा’ ति। ये खो पन, भिक्खवे, पच्छिमाय दिसाय पटिराजानो ते रज्जो चक्रवर्तिस्स अनुयन्ता अहेसुं। [R.63]

८. “अथ खो तं, भिक्खवे, चक्ररतनं पच्छिमं समुदं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा उत्तरं दिसं पवत्ति, अन्वदेव राजा चक्रवर्ती सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। यस्मिं खो [N.50] पन, भिक्खवे, पदेसे दिब्बं चक्ररतनं पतिट्ठासि, तत्थ राजा चक्रवर्ती वासं उपगच्छि सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। ये खो पन, भिक्खवे, उत्तराय दिसाय पटिराजानो ते राजानं चक्रवर्तिं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—‘एहि खो, महाराज। स्वागतं ते, महाराज। सकं ते, महाराज। अनुसास, महाराज’ ति। राजा चक्रवर्ती एवमाह—‘पाणो न हन्तब्बो, अदित्रं नादातब्बं, कामेसुमिच्छा न चरितब्बा, मुसा न भासितब्बा, मज्जं न पातब्बं, यथाभुत्तं च भुज्जथा’ ति। ये खो पन, भिक्खवे, उत्तराय दिसाय पटिराजानो ते रज्जो चक्रवर्तिस्स अनुयन्ता अहेसुं।

“अथ खो तं, भिक्खवे, चक्ररतनं समुदपरियन्तं पथविं अभिविजिनित्वा तमेव राजधानिं

“तब, भिक्षुओ! राजा....ने आसन से उठकर, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, बाँए हाथ में भिङ्गार (जलपात्र) लेकर दाहिने हाथ से उस चक्ररत्न को अभिषिक्त किया। और कहा—‘आप चक्ररत्न! (अपने कार्य में) प्रवृत्त हों। आप चक्ररत्न! विजय कर्म में प्रवृत्त हों’।

“भिक्षुओ! तब वह चक्ररत्न पूर्व दिशा की तरफ....पूर्ववत्’....।

७. “भिक्षुओ! तब वह चक्ररत्न पूर्वसमुद्र को’....।

८. “भिक्षुओ! तब वह चक्ररत्न पश्चिम समुद्र को’....।

१. पीछे आये दीघनिकाय के ‘महासुदर्शनसूत्र’ के अनुसार ही यहाँ पाठ का अर्थ समझ लें।

पच्चागन्त्वा रज्जो चक्कवत्तिस्स अन्तेपुरद्वारे अत्थकरणपमुखे अक्खाहतं मज्जे अट्ठासि, रज्जो चक्कवत्तिस्स अन्तेपुरं उपसोभयमानं ।

९. “दुतियो पि खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती....पे०.....ततियो पि खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती.... चतुत्थो पि खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती....पञ्चमो पि खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती....छट्ठो पि खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती....सत्तमो पि खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती बहुन्नं वस्सानं बहुन्नं वस्ससतानं बहुन्नं वस्ससहस्सानं अच्चयेन अज्जतरं पुरिसं आमन्तेसि— ‘यदा त्वं अम्भो पुरिस, पस्सेय्यासि दिब्बं चक्करतनं ओसकितं ठाना चुतं, अथ मे आरोचेय्यासी’ [B.53] ति। ‘एवं, देवा’ ति खो, भिक्खवे, सो पुरिसो रज्जो चक्कवत्तिस्स पच्चस्सोसि। अद्दसा खो, भिक्खवे, सो पुरिसो बहुन्नं वस्सानं बहुन्नं वस्ससतानं बहुन्नं वस्ससहस्सानं अच्चयेन दिब्बं चक्करतनं ओसकितं ठानं चुतं। दिस्वान येन राजा चक्कवत्ती तेनुपसङ्गमि; [R.64] उपसङ्गमित्वा राजानं चक्कवत्तिं एतदवोच—‘यग्घे, देव जानेय्यासि दिब्बं ते चक्करतनं ओसकितं, ठाना चुतं’ ति ?

१०. “अथ खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती जेट्ठपुत्तं कुमारं आमन्तापेत्वा एतदवोच— ‘दिब्बं किर मे, तात कुमार, चक्करतनं ओसकितं, ठाना चुतं। सुतं खो पन मेतं—यस्स रज्जो चक्कवत्तिस्स दिब्बं चक्करतनं ओसकितं, ठाना चवति, न दानि तेन रज्जा चिरं जीवितब्बं होती ति। भुत्ता खो पन मे मानुसा कामा। समयो दानि मे दिब्बे कामे परियेसितुं। एहि त्वं, तात [N.51] कुमार, इमं समुद्दपरियन्तं पथविं पटिपज्ज। अहं पन केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अंगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सामी’ ति।

“अथ खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती जेट्ठपुत्तं कुमारं साधुकं रज्जे समनुसासित्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अंगारस्मा अनगारियं पब्बजि। सत्ताहपब्बजिते खो पन, भिक्खवे, राजिसिम्हि दिब्बं चक्करतनं अन्तरधायि।

११. “अथ खो, भिक्खवे, अज्जतरो पुरिसो येन राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो तेनुपसङ्गमि; उपसङ्गमित्वा राजानं खत्तियं मुद्धाभिसित्तं एतदवोच—‘यग्घे, देव, जानेय्यासि,

“भिक्षुओ! तब वह चक्ररत्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को जीतकर....अन्तःपुर में न्याय—प्राज्ञण के मुख्य द्वार पर आकर कीले में गड़े हुए (अक्षाहत) की तरह दृढ़तया स्थित हो गया।

९. ‘भिक्षुओ! दूसरा चक्रवर्ती राजा भी....तीसरा....चौथा....पाँचवाँ....छठा....सातवाँ....चक्रवर्ती राजा भी बहुत वर्षों....एक पुरुष को बुलाकर यों बोला—....जब यह चक्रवर्तिरत्न अपने स्थान को छोड़ने....। उस पुरुष ने राजा के पास जाकर सूचित किया— ‘देव! आप जान लें कि चक्रवर्तिरत्न आज अपने स्थान से च्युत हो गया है।’

१०. भिक्षुओ! तब उस चक्रवर्ती राजा ने अपने ज्येष्ठपुत्र कुमार को बुलाकर कहा— ‘तात कुमार! यह दिव्य चक्रवर्तिरत्न स्वस्थान से च्युत हो गया है....अब में....प्रव्रजित होऊँगा।’

“भिक्षुओ! यों वह राजा चक्रवर्ती अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमार को राज्याभिषेक कर प्रव्रजित हो गया। उसके प्रव्रजित होने के कुछ समय बाद, वह दिव्य चक्ररत्न भी अन्तर्भूत हो गया।

११. “तब भिक्षुओ! किसी अनुचर ने आकर राजा को सूचना दी कि वह दिव्य चक्ररत्न अन्तर्भूत

दिब्बं चक्ररतनं अन्तरहितं' ति? अथ खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो दिब्बे चक्ररतने अन्तरहिते अनत्तमनो अहोसि, अनत्तमनत्तं च पटिसंवेदेसि; नो च खो राजिसिं उपसङ्कमित्वा अरियं चक्रवर्तित्वत्तं पुच्छि। सो समतेनेव सुदं जनपदं पसासति। तस्स समतेन जनपदं पसासतो पुब्बेनापरं जनपदा न पब्बन्ति, यथा तं पुब्बकानं राजूनं अरिये चक्रवर्तित्वत्ते वत्तमानानं।

“अथ खो, भिक्खवे, अमच्चा पारिसज्जा गणकमहामत्ता अनीकट्ठा दोवारिका मन्तस्साजीविनो सन्निपतित्वा राजानं खत्तियं मुद्धाभिसित्तं एतदवोचुं—‘न खो [R.65, B.54] ते, देव, समतेन सुदं जनपदं पसासतो पुब्बेनापरं जनपदा पब्बन्ति, यथा तं पुब्बकानं राजूनं अरिये चक्रवर्तित्वत्ते वत्तमानानं। संविज्जन्ति खो ते, देव, विजिते अमच्चा पारिसज्जा गणकमहामत्ता अनीकट्ठा दोवारिका मन्तस्साजीविनो मयञ्चेव अञ्जे च ये मयं अरियं चक्रवर्तित्वत्तं धारेम। इद्धं त्वं, देव, अम्हे अरियं चक्रवर्तित्वत्तं पुच्छ। तस्स ते मयं अरियं चक्रवर्तित्वत्तं पुट्ठा ब्याकरिस्सामा’ ति।

४. दालिदिये वेपुल्लं गते

१२. “अख खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो अमच्चे पारिसज्जे गणकमहामत्ते अनीकट्ठे दोवारिके मन्तस्साजीविनो सन्निपातेत्वा अरियं चक्रवर्तित्वत्तं पुच्छि। तस्स ते अरियं चक्रवर्तित्वत्तं पुट्ठा ब्याकरिस्सु। तेसं सुत्वा धम्मिकं हि खो रक्खावरणगुत्तिं संविदहि, [N.52] नो च खो अधनानं धनमनुप्पदासि। अधनानं धने अननुप्पदीयमाने दालिदियं वेपुल्लमगमासि। दालिदिये वेपुल्लं गते अञ्जतरो पुरिसो परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियि। तमेनं अग्गहेसुं।

हो गया है। यह सुनकर राजा को उस दिव्य चक्ररत्न के अन्तर्धान होने से अत्यधिक खेद एवं असन्तोष हुआ। (परन्तु) उसने इस अन्तर्भाव की कोई सूचना अपने पिता (राजर्षि) को नहीं दी, न उसके पास जाकर उसके निराकरण का कोई उपाय (चक्रवर्तिव्रत) ही पूछा; अपि तु वह अपने राज्यशासन में पूर्ववत् संलग्न रहा। वह अपनी ही मान्यता (मत) से शासन चलाता रहा। उसके यों मनमौजी शासन करने से वहाँ (उसके राज्य में) वह सुख-समृद्धि नहीं रह पायी जो उसके पूर्वजों के शासनकाल में थी और जो चक्रवर्तिव्रत पालन करने में सदा तत्पर रहते थे।

“तब, भिक्षुओ! उस राजा के अमात्य, सभासद, कोषाध्यक्ष, सेनापति, द्वारपाल आदि जो उसके परामर्शदाता थे, वे सभी राजा के सम्मुख एकत्र होकर बोले— ‘देव! आप के द्वारा स्वमति के अनुसार शासन चलाने के कारण आप के राज्य की अब वह उन्नति-अभिवृद्धि नहीं रह गयी है, जो आपके पूर्ववर्ती चक्रवर्ती राजाओं के समय में थी, जो कि चक्रवर्तिव्रत का पूर्णतया पालन करते थे। अच्छा हो, देव! यदि आप हम सब अमात्य आदि के साथ चक्रवर्तिव्रत धारण करें। आप हमसे उस चक्रवर्तिव्रत की विधि पूछें। हम आपको वह विधि, पूछने पर, बतला सकते हैं।’

४. निर्धनता के बढ़ जाने पर

१२. “तब, भिक्षुओ! उस मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा ने यथासमय अमात्य, परिषत्सदस्य, कोषाध्यक्ष, सेनापति, द्वारपाल आदि सभी परामर्श-(मन्त्र-) दाताओं को पुनः एकत्र कर उनसे चक्रवर्तिव्रत पूछा। पूछने पर, उन्होंने राजा को चक्रवर्तिव्रत की पालनविधि बतलायी। उसे सुनकर उसने धार्मिक बातों की रक्षा के सभी प्रबन्ध कर दिये, परन्तु उसने निर्धनों को धन नहीं दिया। निर्धनों को धन न देने से (उसके

गहेत्वा रज्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स दस्सेसुं—‘अयं, देव, पुरिसो परेसं अदित्रं थेय्यसङ्घातं आदियी’ ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो तं पुरिसं एतदवोच—‘सच्चं किर त्वं, अम्भो पुरिस, परेसं अदित्रं थेय्यसङ्घातं आदियी’ ति ?

‘सच्चं, देवा’ ति। ‘किंकारणा’ ति ? ‘न हि, देव, जीवामी’ ति।

[R.66] “अथ खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो तस्स पुरिसस्स धनमनुप्पदासि—‘इमिना त्वं, अम्भो पुरिस, धनेन अत्तना च जीवाहि, मातापितरो च पोसेहि, पुत्तदारं च पोसेहि, कम्मन्ते च पयोजेहि, समणब्राह्मणेसु उद्धगिगकं दक्खिणं पतिट्ठापेहि सोवगिगकं सुखविपाकं सगगसंवत्तनिकं’ ति। ‘एवं, देवा’ ति खो, भिक्खवे, सो पुरिसो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स पच्चस्सोसि।

“अञ्जतरो पि खो, भिक्खवे, पुरिसो परेसं अदित्रं थेय्यसङ्घातं आदियि। तमेनं अग्गहेसुं। गहेत्वा रज्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स दस्सेसुं—‘अयं, देव, पुरिसो परेसं अदित्रं थेय्यसङ्घातं आदियी’ ति एवं वुत्ते, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो तं पुरिसं एतदवोच—[B.55] ‘सच्चं किर त्वं, अम्भो पुरिस, परेसं अदित्रं थेय्यसङ्घातं आदियी’ ति ?

‘सच्चं, देवा’ ति।

‘किंकारणा’ ति ?

‘न हि, देव, जीवामी’ ति।

“अथ खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो तस्स पुरिसस्स धनमनुप्पदासि—‘इमिना त्वं, अम्भो पुरिस, धनेन अत्तना च जीवाहि, मातापितरो च पोसेहि, पुत्तदारं च पोसेहि, कम्मन्ते च पयोजेहि, समणब्राह्मणेसु उद्धगिगकं दक्खिणं पतिट्ठापेहि सोवगिगकं [N.53] सुखविपाकं सगगसंवत्तनिकं’ ति। ‘एवं, देवा’ ति खो, भिक्खवे, सो पुरिसो रज्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स पच्चस्सोसि।

१३. “अस्सोसुं खो, भिक्खवे, मनुस्सा—‘ये किर, भो, परेसं अदित्रं थेय्यसङ्घातं

राज्य में) दरिद्रता (गरीबी) बहुत बढ़ गयी। इस तरह दरिद्रता के बढ़ जाने पर, लोग एक दूसरे की वस्तुएँ चुराने लगे, विना दिये उठाने लगे। नगररक्षक ऐसे लोगों को पकड़ने लगे। पकड़कर उन्हें राजा के सम्मुख यह कहकर प्रस्तुत करने लगे—‘देव! इस पुरुष ने दूसरों की वस्तु चुरायी है।’ राजा उनसे पूछता—‘अरे पुरुष! क्या तुमने सचमुच दूसरों की वस्तु चुरायी है?’

‘हाँ, देव! सचमुच।’ ‘वह किसलिये?’ ‘देव! उसके विना जीविका चलना कठिन हो गया था।’

“भिक्षुओ! तब राजा ने उस (चौर) पुरुष को (अपने कोष से) धन दिलवाया और कहा—‘हे पुरुष! इस धन से तुम अपनी आजीविका चलाओ! अपने माता-पिता, पुत्र-पत्नी का पालन-पोषण करो। अपना व्यापार बढ़ाओ। ऐहिक या पारलौकिक सुखप्राप्ति हेतु श्रमण-ब्राह्मणों को दान करो।’ ‘ऐसा ही करूँगा’— राजा को यों उत्तर देकर वह पुरुष अपने घर जाकर राजाज्ञा के अनुसार आचरण करने लगा।

“भिक्षुओ! फिर किसी दूसरे पुरुष ने चोरी की, उसे भी राजपुरुष पकड़.....पूर्ववत्.....राजाज्ञा के अनुसार आचरण करने लगा।

आदियन्ति तेसं राजा धनमनुष्पदेती' ति। सुत्वान तेसं एतदहोसि—'यन्नून मयं पि परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियेय्यामा' ति। अथ खो, भिक्खवे, अञ्जतरो पुरिसो परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियि। तमेनं अग्गहेसुं। गहेत्वा रञ्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स दस्सेसुं—'अयं, देव, पुरिसो परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियी' ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, राजा [R.67] खत्तियो मुद्धाभिसित्तो तं पुरिसं एतदवोच—'सच्चं किर त्वं, अम्भो पुरिस, परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियी' ति ?

'सच्चं, देवा' ति। 'किंकारणा' ति ? 'न हि, देव, जीवामी' ति।

'अथ खो, भिक्खवे, रञ्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स एतदहोसि—'सचे खो अहं यो यो परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियिस्सति तस्स तस्स धनमनुष्पदस्सामि, एवमिदं अदिन्नादानं पवड्डिस्सति। यन्नूनाहं इमं पुरिसं सुनिसेधं निसेधेय्यं, मूलघच्चं करेय्यं, सीसमस्स छिन्देय्यं' ति। अथ खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो पुरिसे आणापेसि—'तेन हि, भणे, इमं पुरिसं दळ्हाय रञ्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खमित्वा दक्खिणतो नगरस्स सुनिसेधं निसेधेय, मूलघच्चं करोथ, सीसमस्स छिन्दथा' ति। 'एवं, देवा' ति खो, भिक्खवे, ते पुरिसा रञ्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स पटिस्सुत्वा तं पुरिसं दळ्हाय [B.56] रञ्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खमित्वा दक्खिणतो नगरस्स सुनिसेधं निसेधेसुं, मूलघच्चं अकंसु, सीसमस्स छिन्दिसु।

१४. "अस्सोसुं खो, भिक्खवे, मनुस्सा—'ये किर, भो, परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियन्ति ते राजा सुनिसेधं निसेधेति, मूलघच्चं करोति, सीसानि तेसं छिन्दती' ति। [N.54]

१३. 'भिक्षुओ! जब (साधारण) मनुष्यों ने सुना कि जो दूसरों की चौरी करता है, उसे राजा धन देता है। यह सुनकर उनके मन में यह हुआ कि हम भी क्यों न चौरी करें। तब किसी पुरुष ने फिर चौरी की। उसे राजपुरुष पकड़कर राजा के सम्मुख ले गये।...राजा ने उस (चौर) पुरुष से पूछा— 'क्या तुमने चौरी की है?' 'हाँ देव!' 'किस कारण?' 'उसके बिना भूख से तड़प कर मर जाता!'।

'तब, भिक्षुओ! उस राजा को यह विचार हुआ कि— यदि जो भी पुरुष चौरी करता हुआ पकड़ा जायगा, उसे मैं यों धन दे—देकर छोड़ता जाऊँगा तब तो यह चौर्यकर्म बढ़ता ही जायगा। तो क्यों न मैं इस चौर्यकर्म के मूल पर ही कठोर चेतावनी देते हुए कुठाराघात करूँ, जिससे दूसरे लोग भय के मारे चौरी करने का साहस ही न करें। अतः मैं इस चौर का शिर कटवा दूँ तो ठीक रहे। तब भिक्षुओ! उस मूर्धाभिषिक्त राजा ने आज्ञा दी— 'राजपुरुष! इस चौर के दोनों हाथ दृढ़ रज्जुओं से पीछे की तरफ से बाँध कर, इसका शिर मुँड़वा कर, डोंडी पिटवाते हुए, गली—गली घुमाते हुए, चौराहे—चौराहे पर इसका प्रदर्शन करते हुए, नगर के दक्षिण द्वार से निकाल कर नगर के दक्षिण की तरफ ले जाकर, इसको कारावास में डालकर इसका मूलघात ही कर दो, तथा इसका शिर भी काट डालो।' 'ठीक है देव'— कहकर उन राजपुरुषों ने उसको....नगर के दक्षिण द्वार पर....उसका शिर काट डाला।

१४. "तब, भिक्षुओ! यह बात भी जब मनुष्यों ने सुनी कि 'जो लोग दूसरों की चौरी करते हैं, उन्हें राजा कारावास (बन्धन) में डालकर वहाँ उनका शिर कटवा डालता है।' यह सुनकर मनुष्यों के मन

सुत्वान तेसं एतदहोसि—‘यन्नून मयं पि तिण्हानि सत्थानि कारापेस्साम, तिण्हानि सत्थानि [R.68] कारापेत्वा येसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियिस्साम ते सुनिसेधं निसेधेस्साम, मूलघच्चं करिस्साम सीसानि तेसं छिन्दिस्सामा’ ति। ते तिण्हानि सत्थानि कारापेसुं, तिण्हानि सत्थानि कारापेत्वा गामघातं पि उपक्कमिंसु कातुं, निगमघातं पि उपक्कमिंसु कातुं, नगरघातं पि उपक्कमिंसु कातुं, पन्थदूहनं पि उपक्कमिंसु कातुं। येसं ते अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियन्ति ते सुनिसेधं निसेधेन्ति, मूलघच्चं करोन्ति, सीसानि तेसं छिन्दन्ति।

१५. “इति खो, भिक्खवे, अधनानं धने अननुप्पदीयमाने दालिद्वियं वेपुल्लमगमासि, दालिद्विये वेपुल्लं गते अदिन्नादानं वेपुल्लमगमासि, अदिन्नादाने वेपुल्लं गते सत्थं वेपुल्लमगमासि, सत्थे वेपुल्लं गते पाणातिपातो वेपुल्लमगमासि, पाणातिपाते वेपुल्लं गते तेसं सत्तानं आयु पि परिहायि वण्णो पि परिहायि। तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं असीतिवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं चत्तारीसवस्ससहस्सायुका पुत्ता अहेसुं।

“चत्तारीसवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु अज्जतरो पुरिसो परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियि। तमेनं अग्गहेसुं। गहेत्वा रज्जो खत्तिवस्स मुद्धाभिसित्तस्स दस्सेसुं—‘अयं, देव, पुरिसो परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदयी’ ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धाभिसित्तो तं पुरिसं एतदवोच—‘सच्चं किर त्वं, अम्भो पुरिस, परेसं अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदयी’ ति? ‘न हि, देवा’ ति सम्पजानमुसा अभासि।

[B.57] १६. “इति खो, भिक्खवे, अधनानं धने अननुप्पदीयमाने दालिद्वियं वेपुल्लमगमासि, दालिद्विये वेपुल्लं गते अदिन्नादानं वेपुल्लमगमासि, अदिन्नादाने वेपुल्लं गते सत्थं वेपुल्लमगमासि, [R.69] सत्थे वेपुल्लं गते पाणातिपातो वेपुल्लमगमासि, पाणातिपाते वेपुल्लं गते मुसावादो वेपुल्लमगमासि, मुसावादे वेपुल्लं गते तेसं सत्तानं आयु पि परिहायि वण्णो पि परिहायि। तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं चत्तारीसवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं वीसतिवस्ससहस्सायुका पुत्ता अहेसुं।

में आया—‘हम लोग भी तीक्ष्ण से तीक्ष्ण शस्त्र बनवावें। शस्त्र बनवाकर हम जिनकी चौरी करेंगे, उनका शिर भी काट लेंगे।’ तब उन लोगों ने तीक्ष्ण शस्त्र बनवाये। और चौरी के साथ—साथ शस्त्रों से लोगों के सिर भी काटने लगे। साथ ही उन्होंने ग्राम, निगम, जनपद तथा बड़े मार्गों पर लूट—पाट और प्रसङ्ग पड़ने पर जीवहत्या भी प्रारम्भ कर दी।

पाप बढ़ने लगे, आयु क्षीण होने लगी— १५. “इस तरह, भिक्षुओ! दरिद्रों को धन न दिये जाने से, दरिद्रता बढ़ जाने के कारण चौरियाँ बढ़ती ही चली गयीं, चौरियों के बढ़ जाने के कारण (अवैध) शस्त्रनिर्माण बढ़ गया, शस्त्रनिर्माण बढ़ जाने से हथ्याएँ बढ़ गयीं। इस पाप के बढ़ जाने से उस समय के लोगों की आयु और सुन्दरता में धीरेधीरे ह्रास होने लगा। परिणामतः अस्सी हजार वर्ष आयु वाले पुरुषों के पुत्र चालीस हजार वर्ष के होने लगे।

“भिक्षुओ! उन चालीस हजार वर्ष की आयु वाले पुरुषों में से भी कोई चौरी करने लगा। उसे पकड़ कर राजपुरुष राजा के पास ले गये।... राजा ने पूछा—‘तुमने चौरी की है?’ उसने उत्तर दिया—‘नहीं की’। इस तरह उसने यह जानबूझ कर असत्यभाषण किया।

“वीसतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु अञ्जतरो पुरिसो परेसं अदित्रं [N.55] थेय्यसङ्घातं आदियि । तमेनं अञ्जतरो रज्जो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स आरोचेसि—‘इत्थन्नामो, देव, पुरिसो परेसं अदित्रं थेय्यसङ्घातं आदियी’ ति पेसुञ्जमकासि ।

१७. “इति खो, भिक्खवे, अधनानं धने अननुप्पदीयमाने दालिद्वियं वेपुल्लमगमासि, दालिद्वियं वेपुल्लं गते अदित्रादानं वेपुल्लमगमासि, अदित्रादाने वेपुल्लं गते सत्थं वेपुल्लमगमासि, सत्थे वेपुल्लं गते पाणातिपातो वेपुल्लमगमासि, पाणातिपाते वेपुल्लं गते मुसावादो वेपुल्लमगमासि, मुसावादे वेपुल्लं गते पिसुणा वाचा वेपुल्लमगमासि, पिसुणाय वाचाय वेपुल्लं गताय तेसं सत्तानं आयु पि परिहायि, वण्णो पि परिहायि । तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं वीसतिवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं दसवस्ससहस्सायुका पुत्ता अहेसुं ।

“दसवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु एकदं सत्ता वण्णवन्तो होन्ति, एकदं सत्ता दुब्बण्णा । तत्थ ये ते सत्ता दुब्बण्णा ते वण्णवन्ते सत्ते अभिज्झायन्ता परेसं दारेसु चारित्तं आपज्जिंसु ।

१८. “इति खो, भिक्खवे, अधनानं धने अननुप्पदीयमाने दालिद्वियं वेपुल्लमगमासि, दालिद्विये वेपुल्लं गते पे०....कामेसुमिच्छाचारो वेपुल्लं गते तेसं सत्तानं आयु पि [B.58] परिहायि वण्णो पि परिहायि । तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं दसवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं पञ्चवस्ससहस्सायुका पुत्ता अहेसुं ।

१९. “पञ्चवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु द्वे धम्मा वेपुल्लमगमंसु—फरुसावाचा सम्फप्पलापो च । द्वीसु धम्मेसु वेपुल्लं गतेसु तेसं सत्तानं आयु पि परिहायि वण्णो पि परिहायि । तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं पञ्चवस्ससहस्सायुकानं [R.70] मनुस्सानं अप्पेकच्चे अङ्कतेय्यवस्ससहस्सायुका अप्पेकच्चे द्वेवस्ससहस्सायुका पुत्ता अहेसुं ।

२०. “अङ्कतेय्यवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु अभिज्झाव्यापादा वेपुल्ल-

१६. “इस तरह, भिक्षुओ! दरिद्रों को धन न दिये जाने के कारण...पूर्ववत्...चालीस हजार वर्ष की आयु वाले पुरुषों के पुत्र बीस हजार वर्ष की आयुवाले हो गये ।

“उनमें से भी किसी ने चोरी की । तब किसी ने राजा को सूचना दी.... । यह चुगली करने लगा ।

१७. “...इस चुगली (पाप) के कारण लोगों की आयु और सुन्दरता घट गयी । अतः, उस समय बीस हजार वर्ष की आयुवालों के पुत्रों की आयु दश हजार वर्ष हो गयी ।

“उन दश हजार वर्ष की आयुवाले पुरुषों में से भी कुछ रूपवान् होने लगे थे, कुछ कुरूप । ये कुरूप लोग रूपवान् प्राणियों के प्रेम में उलझ कर पर स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने लगे । इस तरह, भिक्षुओ! निर्धनों को धन न देने से...व्यभिचार की वृद्धि होती गयी ।

१८. “...इस व्यभिचार की वृद्धि के कारण उस समय के लोगों की आयु और सुन्दरता घट गयी । अतः उस समय के दश हजार वर्ष की आयु वाले पुरुषों के पुत्रों की पाँच हजार वर्ष की आयु हो गयी ।

१९. “उन पाँच हजार वर्ष की आयु वाले पुरुषों में भी दो दुर्गुण अधिकता से पाये जाने लगे— एक कठोर वचन बोलना और दूसरे निरर्थक प्रलाप करना । इन दो दुर्गुणों के कारण कुछ ढाई हजार वर्ष के और कुछ उनसे भी कम दो हजार वर्ष की आयुवाले पुत्र ही होने लगे ।

मगमंसु । अभिज्झाव्यापादेसु वेपुल्लं गतेसुं तेसं सत्तानं आयु पि परिहायि वण्णो पि परिहायि । तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं अङ्कतेय्यवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं वस्ससहस्सायुका पुत्ता अहेसुं ।

[N.56] २१. “वस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु मिच्छादिट्ठि वेपुल्लमगमासि । मिच्छादिट्ठिया वेपुल्लं गताय तेसं सत्तानं आयु पि परिहायि वण्णो पि परिहायि । तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं वस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं पञ्चवस्ससतायुका पुत्ता अहेसुं ।

२२. “पञ्चवस्ससतायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु तयो धम्मा वेपुल्लमगमंसु—अधम्म-रागो, विसमलोभो, मिच्छाधम्मो । तीसु धम्मेसु वेपुल्लं गतेसु तेसं सत्तानं आयु पि परिहायि वण्णो पि परिहायि । तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं पञ्चवस्ससतायुकानं मनुस्सानं अप्पेकच्चे अङ्कतेय्यवस्ससतायुका अप्पेकच्चे द्वेवस्ससतायुका पुत्ता अहेसुं ।

“अङ्कतेय्यवस्ससतायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु इमे धम्मा वेपुल्लमगमंसु—अमतेय्यता, अपेतेय्यता, असामञ्जता, अन्नब्रह्मञ्जता, न कुले जेट्ठापचायिता ।

[B.59] २३. “इति खो, भिक्खवे, अधनानं धने अननुप्पदीयमाने दालिद्वियं वेपुल्लमगमासि, दालिद्विये वेपुल्लं गते अदिन्नादानं वेपुल्लमगमासि, अदिन्नादाने वेपुल्लं गते सत्थं वेपुल्लमगमासि, सत्थे वेपुल्लं गते पाणातिपातो वेपुल्लमगमासि, पाणातिपाते वेपुल्लं गते मुसावादो वेपुल्लमगमासि, मुसावादे वेपुल्लं गते पिसुणा वाचा वेपुल्लमगमासि, पिसुणाय वाचाय वेपुल्लं गताय कामेसु—[R.71] मिच्छाचारो वेपुल्लमगमासि, कामेसुमिच्छाचारे वेपुल्लं गते द्वे धम्मा वेपुल्लमगमंसु—फरुसा वाचा सम्फण्णलापो च । द्वीसु धम्मेसु वेपुल्लं गतेसु अभिज्झाव्यापादा वेपुल्लमगमंसु,

२०. “भिक्षुओ! उन ढाई हजार वर्ष वाली आयु के मनुष्यों में भी दो दुर्गुण अधिकता से पाये जाने लगे— एक अनुचित लोभ और दूसरा अत्यधिक हिंसाभाव । इन दुर्गुणों से उस समय के लोगों की भी आयु और सुन्दरता घटने लगी । तब लोगों की आयु एक हजार वर्ष की ही हो गयी ।

२१. “भिक्षुओ! उन एक हजार वर्ष की आयुवालों में भी मिथ्या दृष्टि दुर्गुण अधिकता से पाया जाने लगा ।...मिथ्यादृष्टि (पाखण्ड) के बढ़ जाने के कारण उन एक हजार वर्ष आयु वाले पुरुषों के पुत्र पाँच सौ वर्ष के होने लगे ।

२२. “भिक्षुओ! उन पाँच सौ वर्ष की आयुवाले पुरुषों में भी क्रमशः ये तीन धर्म बढ़ते हुए दिखायी देने लगे— (एक) अधर्म में राग, (दो) विषम (=अनुचित) लोभ एवं (तीन) मिथ्या धर्म । इन तीन बातों के बढ़ जाने से उन सत्त्वों की आयु भी और वर्ण भी घटता गया ।.... उनके पुत्र कोई ढाई सौ वर्ष के और कुछ दो सौ वर्ष की आयु वाले ही होने लगे ।

“भिक्षुओ! ढाई सौ वर्ष की आयु वाले पुरुषों में ये पाँच दुर्गुण अधिकता से बढ़ने लगे—१-२. माता-पिता का सम्मान न करना, ३. श्रमण, ४. ब्राह्मण एवं ५. परिवार के बड़े-बूढ़ों के प्रति अश्रद्धा ।

२३. “यों, भिक्षुओ! निर्धनों को धन न देने के कारण दारिद्र्य बढ़ा, दारिद्र्य के बढ़ने से चौरा बढी, चौरा बढ़ने से शस्त्रनिर्माण बढ़ा, शस्त्रनिर्माण से हिंसा बढ़ी, हिंसा के बढ़ने से असत्यभाषण बढ़ा, असत्य-भाषण के बढ़ने से चुगलखोरी, चुगलखोरी के बढ़ने पर व्यभिचार। व्यभिचार के बढ़ने पर दो दुर्गुण बढ़ते हैं— कठोर वाणी तथा निरर्थक प्रलाप। इन दोनों के बढ़ने से अभिध्या और व्यापाद इन

अभिज्ञाव्यापादेसु वेपुल्लं गतेसु मिच्छादिट्ठि वेपुल्लमगमासि, मिच्छादिट्ठिया वेपुल्लं गताय तयो धम्मा वेपुल्लमगमंसु—अधम्मरागो, विसमलोभो, मिच्छाधम्मो। तीसु धम्मेसु वेपुल्लं गतेसु इमे धम्मा वेपुल्लमगमंसु—अमत्तेय्यता, अपेत्तेय्यता, असामञ्जता, अब्रह्मञ्जता, न कुले जेट्ठापचायिता। इमेसु धम्मेसु वेपुल्लं गतेसु तेसं सत्तानं आयु पि परिहायि वण्णो पि परिहायि। तेसं आयुना पि परिहायमानानं वण्णेन पि परिहायमानानं अट्ठतेय्यवस्ससतायुकानं मनुस्सानं वस्ससतायुका पुत्ता अहेसुं।

दसवस्सायुकसमयो

२४. “भविस्सति, भिक्खवे, सो समयो यं इमेसं मनुस्सानं दसवस्सायुका पुत्ता [N.57] भविस्सन्ति। दसवस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु पञ्चवस्सिका कुमारिका अलंपतेय्या भविस्सन्ति। दसवस्सायुकेसु भिक्खवे, मनुस्सेसु इमानि रसानि अन्तरधायिस्सन्ति, सेय्यथिदं—सपि नवनीतं तेलं मधु फाणितं लोणं। दसवस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु कुट्टूसको अगं भोजनानं भविस्सति। सेय्यथापि, भिक्खवे, एतरहि सालिमंसोददो अगं भोजनानं; एवमेव खो, भिक्खवे, दसवस्सायुकेसु मनुस्सेसु कुट्टूसको अगं भोजनानं भविस्सति।

“दसवस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु दस कुसलकम्मपथा सब्बेन सब्बं अन्तर-धायिस्सन्ति। दस अकुसलकम्मपथा अतिवियादिप्पिस्सन्ति। दसवस्सायुकेसु, भिक्खवे, [B.60] मनुस्सेसु कुसलं ति पि न भविस्सति, कुतो पन कुसलस्स कारको। दसवस्सायुकेसु, [R.72] भिक्खवे, मनुस्सेसु ये ते भविस्सन्ति अमत्तेय्या अपेत्तेय्या असामञ्जा अब्रह्मञ्जा न कुले जेट्ठापचायिनो, ते पुज्जा च भविस्सन्ति पासंसा च। सेय्यथापि, भिक्खवे, एतरहि मत्तेज्जा पेत्तेज्जा सामञ्जा ब्रह्मञ्जा कुले जेट्ठापचायिनो पुज्जा च पासंसा च; एवमेव खो, भिक्खवे, दसवस्सायुकेसु मनुस्सेसु ये ते भविस्सन्ति अमत्तेय्या अपेत्तेय्या असामञ्जा अब्रह्मञ्जा न कुले जेट्ठापचायिनो, ते पुज्जा च भविस्सन्ति पासंसा च।

दोनों के बढ़ने से मिथ्यादृष्टि....., मिथ्यादृष्टि के बढ़ने से अधर्म के प्रति राग, अनुचित लोभ, एवं मिथ्याधर्म....., इन तीनों के बढ़ने से ये पाँच दुर्गुण बढ़ते गये; जैसे— माता-पिता के प्रति अश्रद्धा, श्रमण, ब्राह्मण एवं परिवार में बड़े-बूढ़ों के प्रति असम्मान। इन धर्मों के बढ़ जाने पर, उस समय के प्राणियों की आयु और सुन्दरता में कमी आती जाती है। उस आयु एवं सुन्दरता में कमी आने से उन ढाई सौ या सौ वर्ष आयु वालों के पुत्र सौ वर्ष की आयु वाले होने लगते हैं।

दश वर्ष की आयु वालों के समय की सामाजिक स्थिति—२४. “भिक्षुओ! होते-होते एक समय ऐसा भी आ जाता है कि उस समय पैदा होने वाले पुत्रों की आयु दश वर्ष की होने लगती है। भिक्षुओ! इन दश वर्ष की आयु वाले मनुष्यों का विवाह पाँच वर्ष की लड़कियों से होने लगता है। इन दश वर्ष की आयु वाले प्राणियों के समय ये पाँच रसद्रव लुप्त हो जाते हैं; जैसे— घी, मक्खन, तैल, मधु और फाणित (राव)। उनके समय कोदो धान ही श्रेष्ठ खाद्य पदार्थ कहलायगा, जैसे कि आजकल शालि धान श्रेष्ठ कहलाता है।

“भिक्षुओ! दश वर्ष की आयु वाले पुरुषों के समय में दश कुशल कर्मपथ सर्वथा नष्ट हो जायेंगे। इनके स्थान पर दश अकुशल कर्मपथ अत्यधिक बढ़ने लगेंगे। भिक्षुओ! उस.....समय ‘कुशल’ क्या है?— यह भी कोई नहीं जानेगा। कुशल का आचरण करनेवाला तो मिलना ही असम्भव हो जायगा। उस समय,

“दसवस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु न भावस्सति माता ति वा मातुच्छा ति वा मातुलानी ति वा आचरियभरिया ति वा गरूनं दारा ति वा। सम्भेदं लोको गमिस्सति, यथा अजेळका, कुक्कुटसूकरा गोणसिङ्गाला।

“दसवस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु तेसं सत्तानं अज्जमज्जम्हि तिब्बो आघातो पच्चुपट्ठितो भविस्सति तिब्बो ब्यापादो तिब्बो मनोपदोसो तिब्बं वधकचित्तं। मातु पि पुत्तम्हि, पुत्तस्स पि मातरि; पितु पि पुत्तम्हि, पुत्तस्स पि पितरि; भातु पि भगिनिया, भगिनिया पि भातरि तिब्बो आघातो पच्चुपट्ठितो भविस्सति तिब्बो ब्यापादो तिब्बो मनोपदोसो तिब्बं वधकचित्तं। सेय्यथापि, भिक्खवे, मागविकस्स मिगं दिस्वा तिब्बो आघातो पच्चुपट्ठितो होति तिब्बो ब्यापादो तिब्बो मनोपदोसो तिब्बं वधकचित्तं; एवमेव खो, भिक्खवे, दसवस्सायुकेसु [N.58] मनुस्सेसु तेसं सत्तानं अज्जमज्जम्हि तिब्बो आघातो पच्चुपट्ठितो भविस्सति तिब्बो ब्यापादो तिब्बो मनोपदोसो तिब्बं वधकचित्तं। मातु पि पुत्तम्हि, पुत्तस्स पि मातरि; पितु पि [R.73] पुत्तम्हि, पुत्तस्स पि पितरि; भातु पि भगिनिया, भगिनिया पि भातरि तिब्बो आघातो पच्चुपट्ठितो भविस्सति तिब्बो ब्यापादो तिब्बो मनोपदोसो तिब्बं वधकचित्तं।

२५. “दसवस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु सत्ताहं सत्थन्तरकप्पो भविस्सति। ते [B.61] अज्जमज्जम्हि मिगसज्जं पटिलभिस्सन्ति। तेसं तिण्हानि सत्थानि हत्थेसु पातुभविस्सन्ति। ते तिण्हेन सत्थेन ‘एस मिगो, एस मिगो’ ति अज्जमज्जं जीविता वोरोपेस्सन्ति।

२६. “अथ खो तेसं, भिक्खवे, सत्तानं एकच्चानं एवं भविस्सति—‘मा च मयं कञ्चि, मा च अम्हे कोचि। यन्नून मयं तिणगहनं वा वनगहनं वा रुक्खगहनं वा नदीविदुगं वा

मिक्षुओ! जो लोग माता-पिता का असम्मान, श्रमण-ब्राह्मण तथा परिवार में ज्येष्ठ के अवमानना का भाव रखेंगे वे ही समाज में श्रेष्ठ, पूज्य एवं प्रशंसनीय कहलायेंगे।

“मिक्षुओ! दश वर्ष की आयुवालों के लिये न कोई माता (पूज्य भाव में) रह जायगी, न मामी, न मातृश्रवसा, न आचार्य एवं गुरु की पत्नी। तब सब कुछ मिलावट (सम्भेद) हो जायगी; जैसे— भेड़-बकरियों में, मुर्गे और सूअरों में, कुत्तों और गीदड़ों में नारी (मादा) के प्रति कोई भेद-दृष्टि नहीं रहती।

“मिक्षुओ! तब उन दश वर्ष की आयु वाले पुरुषों के मन में परस्पर एक दूसरे के प्रति अत्यधिक तीव्र क्रोध, तीव्र प्रतिहिंसा, तीव्र मन-प्रदोष (दुर्भावना), तीव्र वधकचित्त (दूसरे को मारने की इच्छा) उत्पन्न होंगे। (यहाँ तक कि) माता को पुत्र के प्रति, पुत्र को माता के प्रति; पिता को पुत्र के प्रति और बहन को भाई के प्रति तीव्र क्रोध उत्पन्न होगा; इनमें परस्पर तीव्र प्रतिहिंसा, तीव्र दुर्भावना तथा तीव्र वधकचित्त भी उत्पन्न होंगे। जैसे, मिक्षुओ! किसी व्याध के मन में किसी मृग को देख तीव्र क्रोध...तीव्र वधकचित्त (प्रिय को मार डालने की इच्छा) उत्पन्न होता है, इसी तरह उन दश वर्ष आयु वाले पुरुषों का उन प्राणियों के प्रति परस्पर तीव्र क्रोध...उत्पन्न होगा। माता का पुत्र के प्रति...पूर्ववत्...तीव्र वधकचित्त उत्पन्न होगा।

२५. “मिक्षुओ! उन दश वर्ष की जीवनायु वाले पुरुषों में सप्ताहपर्यन्त शस्त्रान्तरकल्प (शस्त्रों द्वारा समय से पूर्व ही सृष्टि का नाश होने लगना) प्रारम्भ हो जायगा। वे परस्पर एक दूसरे को मृग (वध्य पशु) समझने लगेंगे। वे तीखे-तीखे शस्त्र हाथ में लेकर ‘यह मृग है, यह मृग है’— कहकर एक दूसरे का प्राण लेना प्रारम्भ कर देंगे।

२६. “तब, मिक्षुओ! उन प्राणियों में से कुछ को यह विचार होने लगेगा— ‘अब न हम किसी के

पब्बतविसमं वा पविसित्वा वनमूलफलाहारा यापेय्यामा' ति। ते तिणगहनं वा वनगहनं वा रुक्खगहनं वा नदीविदुग्गं वा पब्बतविसमं वा पविसित्वा सत्ताहं वनमूलफलाहारा यापेस्सन्ति। ते तस्स सत्ताहस्स अच्चयेन तिणगहना वनगहना रुक्खगहना नदीविदुग्गा पब्बतविसमा निक्खमित्वा अज्जमज्जं आलिङ्गित्वा सभागायिस्सन्ति समस्सासिस्सन्ति—'दिट्ठा, भो, सत्ता जीवसि, दिट्ठा, भो, सत्ता जीवसी' ति।

५. सङ्घो नाम चक्रवर्ती राजा उप्पजिस्सति

२७. "अथ खो, तेसं भिक्खवे, सत्तानं एवं भविस्सति—'मयं खो अकुसलानं धम्मानं समादानहेतु एवरूपे आयतं जातिक्खयं पत्ता। यन्नून मयं कुसलं करेय्याम। किं कुसलं करेय्याम? यन्नून मयं पाणातिपाता विरेमेय्याम, इदं कुसलं धम्मं समादाय वत्तेय्यामा' ति। ते पाणातिपाता विरमिस्सन्ति, इदं कुसलं धम्मं समादाय वत्तिस्सन्ति। ते कुसलानं धम्मानं [R.74] समादानहेतु आयुना पि वड्ढिस्सन्ति वण्णे पि वड्ढिस्सन्ति। तेसं आयुना पि वड्ढमानानं वण्णेन पि वड्ढमानानं दसवस्सायुकानं मनुस्सानं वीसतिवस्सायुका पुत्ता भविस्सन्ति।

"अथ खो तेसं भिक्खवे, सत्तानं एवं भविस्सति—'मयं खो कुसलानं धम्मानं समादानहेतु आयुना पि वड्ढाम वण्णेन पि वड्ढाम। यन्नून मयं भिय्योसोमत्ताय कुसलं [N.59] करेय्याम। किं कुसलं करेय्याम? यन्नून मयं अदिन्नादाना विरेमेय्याम, कामेसुमिच्छाचारा विरेमेय्याम, मुसावादा विरेमेय्याम, पिसुणाय वाचाय विरेमेय्याम, फरुसाय वाचाय विरेमेय्याम, सम्फप्पलापा विरेमेय्याम, अभिज्झं पजहेय्याम, ब्यापादं पजहेय्याम, मिच्छादिट्ठिं पजहेय्याम, तयो धम्मे पजहेय्याम—अधम्मरागं, विसमलोभं, मिच्छाधम्मं। यन्नून मयं मत्तेय्या अस्साम पेत्तेय्या सामज्जा ब्रह्मज्जा कुले जेट्ठापचायिनो, इदं कुसलं धम्मं समादाय वत्तेय्यामा' [B.62]

कुछ रह गये हैं, न हमारा कोई कुछ रह गया है! अतः क्यों न हम लोग घने घास से भरे किसी वन में, किसी वृक्षसमूह (अरण्य) में, नदी के किसी विषम स्थान में या कठिन पर्वतों पर जाकर केवल कन्दमूल या फल खाकर जीवन-निर्वाह करें।' एक सप्ताह वहाँ रहने के बाद घने तृण-समूह से भरे...पर्वतों से निकलकर परस्पर एक दूसरे का आलिङ्गन कर कहने लगेंगे— 'हमारा कितना सौभाग्य है कि आज हमने दूसरे प्राणी तो देखें, और उन्हें 'आप जीवित रहे, आप जीवित रहें'— यों आश्वासन, एवं शुभकामनाएँ देंगे।

५. चक्रवर्ती शङ्ख राजा की उत्पत्ति की भविष्यवाणी

२७. "भिक्षुओ! तब उन सत्त्वों के मन में यह होगा— 'हम लोगों में पाप-धर्मों का उदय होने के कारण, हम इस भयङ्कर जाति-विनाश के कगार पर पहुँच गये हैं। अतः हमें पुण्यमय आचरण करने चाहिये। अब (आगे) हम लोग जीवहिंसा से विरत रहते हुए यह कुशल कर्म करेंगे।' उस कुशल धर्म का आचरण करने के कारण उनके आयु और वर्ण में वृद्धि होने लगेगी। यों उन दश वर्ष की आयु वालों के बीस वर्ष की आयु वाले पुत्र होने लगेंगे।

"भिक्षुओ! तब कभी उन सत्त्वों के मन में यह विचार भी उठेगा— 'हम लोग कुशल धर्म का आचरण करने के कारण आयु और वर्ण में वैपुल्य (अधिकता) प्राप्त कर रहे हैं। तो क्यों न हम कोई अन्य कुशल धर्म भी ग्रहण कर लें। क्या कुशल धर्म ग्रहण करें? तो अब हम चौरी, असत्य भाषण, व्यभिचार, चुगलखोरी, कठोर वचन, निरर्थक प्रलाप, अनुचित लोभ एवं हिंसाभाव को छोड़ देंगे; साथ ही ये तीन

ति। ते मत्तेय्या भविस्सन्ति पेत्तेय्या सामञ्जा ब्रह्मञ्जा कुले जेट्ठापचायिनो, इदं कुसलं धम्मं समादाय वत्तिस्सन्ति।

२८. ते कुसलानं धम्मानं समादानहेतु आयुना पि वड्ढिस्सन्ति वण्णेन पि वड्ढिस्सन्ति। तेसं आयुना पि वड्ढमानानं वण्णेन पि वड्ढमानानं वीसतिवस्सायुकानं मनुस्सानं चत्तारीसवस्सायुका पुत्ता भविस्सन्ति। असीतिवस्सायुकानं मनुस्सानं सट्ठिवस्ससतायुका पुत्ता भविस्सन्ति। सट्ठिवस्ससतायुकानं मनुस्सानं वीसतिवस्ससतायुका पुत्ता भविस्सन्ति। वीसतिवस्ससतायुकानं मनुस्सानं चत्तारीसछब्बस्ससतायुका पुत्ता भविस्सन्ति। चत्तारीसछब्बस्ससतायुकानं मनुस्सानं द्वेवस्ससहस्सायुका पुत्ता भविस्सन्ति। द्वेवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं चत्तारिवस्ससहस्सायुका पुत्ता भविस्सन्ति। चत्तारिवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं अट्ठवस्ससहस्सायुका पुत्ता भविस्सन्ति। [R.75] अट्ठवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं वीसतिवस्ससहस्सायुका पुत्ता भविस्सन्ति। वीसतिवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं चत्तारीसवस्ससहस्सायुका पुत्ता भविस्सन्ति। चत्तारीसवस्ससहस्सायुकानं मनुस्सानं असीतिवस्ससहस्सायुका पुत्ता भविस्सन्ति। असीतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु पञ्चवस्ससतिका कुमारिका अलम्पतेय्या भविस्सन्ति।

सङ्खराजउत्पत्ति

२९. “असीतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु तयो आबाधा भविस्सन्ति— इच्छा, अनसनं, जरा। असीतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु अयं जम्बुदीपो इद्धो चेव भविस्सति फीतो च, कुक्कुटसम्पातिका गामनिगमराजधानियो। असीतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु अयं जम्बुदीपो अवीचि मज्जे फुटो भविस्सति मनुस्सेहि, सेय्यथापि [N.60] नळवनं वा सरवनं वा। असीतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु अयं बाराणसी केतुमती नाम राजधानी भविस्सति इद्धा चेव फीता च बहुजना च आकिण्णमनुस्सा च [B.63] सुभिक्खा च। असीतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु इमस्मिं जम्बुदीपे

अकुशल धर्म भी छोड़ देंगे— अधर्म के प्रति राग, अनुचित लोभ एवं मिथ्याधर्म (पाषण्ड)। अब हम माता-पिता के प्रति, श्रमण-ब्राह्मण के प्रति एवं परिवार में बड़े-बूढ़ों के प्रति पूज्य, सम्मान एवं श्रद्धा का भाव रखेंगे। यों ये माता-पिता के प्रति, श्रमण-ब्राह्मण के प्रति परिवार में बूढ़ों के प्रति पूज्य भाव रखने लगेंगे। यों वे इस कुशल धर्म का आचरण करने लगेंगे।

२८. “वे कुशल धर्मों का आचरण करने के कारण आयु में भी और वर्ण में भी वृद्धि प्राप्त करने लगेंगे। यों, आयु और वर्ण में वृद्धि प्राप्त करते हुए उन बीस वर्ष के मनुष्यों के पुत्र चालीस वर्ष के अस्सी वर्ष के एक सौ साठ वर्ष के तीन सौ बीस वर्ष के ...छह सौ चालीस वर्ष के ...दो हजार वर्ष के ...चार हजार वर्ष के आठ हजार वर्ष के बीस हजार वर्ष के ...चालीस हजार वर्ष के पुत्र होने लगेंगे। और उनके अस्सी हजार वर्ष की आयु वाले पुरुषों का विवाह पाँच सौ वर्ष की आयु वाली स्त्रियों के साथ ही उचित (धर्मसम्मत) माना जायगा।

शङ्कराज-उत्पत्ति— २९. “भिक्षुओ! उन अस्सी हजार वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में तीन ही रोग हो पायेंगे— इच्छा, उपवास और जरा (बुढ़ापा)। उन....के समय में यह जम्बुद्वीप समृद्ध और सम्पन्न होगा। उस समय ग्राम-निगम एवं नगरों में उन मनुष्यों के आवासभवन इतने समीप-समीप बने होंगे कि मुर्गा भी एक छलांग में (उछलकर) इस भवन से उस भवन चला जाय (कुक्कुटसम्पातिका)। भिक्षुओ! उस समय

चतुरासीतिनगरसहस्सानि भविस्सन्ति केतुमतीराजधानीपमुखानि । असीतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु केतुमतिया राजधानिया सङ्खो नाम राजा उप्पजिस्सति चक्रवती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो । तस्सिमानि सत्तरतनानि भविस्सन्ति, सेय्यथिदं—चक्ररतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं । परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भविस्सन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना । सो इमं पथविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्झावसिस्सति ।

६. मेत्तेय्यो नाम भगवा उप्पजिस्सति

३०. “असीतिवस्ससहस्सायुकेसु, भिक्खवे, मनुस्सेसु मेत्तेय्यो नाम भगवा [R.76] लोके उप्पजिस्सति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिस-दम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा, सेय्यथापाहमेतरहि लोके उप्पन्नो अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा । सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा पवेदेस्सति, सेय्यथापाहमेतरहि इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा पवेदेमि । सो धम्मं देसेस्सति आदिकल्याणं मज्झकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्बज्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेस्सति; सेय्यथापाहमेतरहि धम्मं देसेमि आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्बज्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेमि । सो अनेकसहस्सं भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सति, सेय्यथापाहमेतरहि अनेकसत्तं भिक्खसङ्घं परिहरामि ।

३१. “अथ खो, भिक्खवे, सङ्खो नाम राजा, यो सो यूपो रज्जा महापनादेन कारापितो,

जम्बुद्वीप इतना जनाकीर्ण होगा जैसे नदी किनारे उगा हुआ नर्कट या सरकण्डों का वन । भिक्षुओ!...उस समय यही वाराणसी केतुमती नाम से राजधानी होगी, यह जनसमूहों से भरी हुई और धन-धान्य सम्पन्न होगी । भिक्षुओ!...उस समय जम्बुद्वीप में केतुमती राजधानी सहित चौरासी हजार प्रमुख नगर होंगे । इसी केतुमती राजधानी में, उस समय, भिक्षुओ! चक्रवर्ती शङ्ख नामक धार्मिक राजा होगा । वह सात रत्नों से समन्वित होगा उसके ये सात रत्न होंगे—चक्ररत्न...पूर्ववत्...परिणायकरत्न । इसके हजार सङ्ख्या से अधिक शूर वीर, शत्रुसेना का पूर्ण मर्दन करने वाले पुत्र होंगे । वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वी को दण्ड और शस्त्र के विना ही जीतकर इस पर शासन करेगा ।

६. मैत्रेय भगवान् का अवतार

३०. “भिक्षुओ! उन अस्सी हजार वर्ष की आयु वाले मनुष्यों के समय लोक में मैत्रेय नामक भगवान् अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध...भगवान् उत्पन्न होंगे । वे इस लोक को...पूर्ववत्...साक्षात् कर धर्मोपदेश करेंगे, जैसे मैं...आजकल (वर्तमान में) धर्मोपदेश कर रहा हूँ । वे ऐसा धर्मोपदेश करेंगे जो आदि में कल्याणकारक, मध्य एवं अन्त में भी कल्याणकारण ही हो । जो सार्थक, स्पष्ट (सुविशद), सर्वथा पूर्ण तथा शुद्ध साधना का बोधक भी है । जैसे मैं...आजकल... । वे कई लाख भिक्षुओं के सङ्घ के साथ रहेंगे । जैसे कि अभी मैं कई सौ भिक्षुओं के साथ रहता हूँ ।

३१. “तब, भिक्षुओ! वह चक्रवर्ती राजा शङ्ख, राजा महाप्रणाद द्वारा निर्मापित यूप (यज्ञ स्तम्भ

[B.64] तं यूपं उस्सापेत्वा अज्झावसित्वा तं दत्वा विस्सज्जित्वा समणब्राह्मणकपणद्धिक-
[N.61] वणिब्बकयाचकानं दानं दत्वा मेतेय्यस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सन्तिके
केसमस्सु ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सति । सो
एवं पब्बजितो समानो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—
[R.77] यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरिय-
परियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति ।

७. अत्तदीपा विहरथ धम्मदीपा

३२. “अत्तदीपा, भिक्खवे, विहरथ अत्तसरणा अनज्जसरणा, धम्म दीपा धम्मसरणा
अनज्जसरणा । कथं च, भिक्खवे, भिक्खु अत्तदीपो विहरति अत्तसरणो अनज्जसरणो, धम्मदीपो
धम्मसरणो अनज्जसरणो ? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति अतापी सम्पजानो
सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं । वेदनासु वेदनानुपस्सी पे०..... चित्ते चित्तानुपस्सी
....पे०..... धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झा-
दोमनस्सं । एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अत्तदीपो विहरति अत्तसरणो अनज्जसरणो, धम्मदीपो
धम्मसरणो अनज्जसरणो ।

गोचरे चरथ

३३. “गोचरे, भिक्खवे, चरथ सके पेतिके विसये । गोचरे, भिक्खवे, चरन्ता सके
पेतिके विसये आयुना पि वड्ढिस्सथ वण्णेन पि वड्ढिस्सथ सुखेन पि वड्ढिस्सथ भोगेन पि
वड्ढिस्सथ बलेन पि वड्ढिस्सथ ।

[R.78] “किं च, भिक्खवे, भिक्खुतो आयुस्मिं ? इध, भिक्खवे, भिक्खु छन्दसमाधिपधान-
सङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति, विरियसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति, चित्त-

या प्रासाद) को और ऊँचा उठवा कर, उसमें निवास कर (अन्त में) उसको दान कर त्याग कर, श्रमण-
ब्राह्मण, याचक (निर्धन), यात्री एवं साधु-सन्तों को दान देता हुआ, मैत्रेय भगवान् के पास...प्रब्रज्या ग्रहण
करेगा । वह इस प्रकार प्रब्रजित होकर एकान्त वास कर, वीतराग एवं अप्रमत्त हो, संयम एवं आत्मनिग्रह
पूर्वक साधना करते हुए शीघ्र ही...उस अनुपम ब्रह्मचर्य (धर्म) के फल को इसी जन्म में स्वयं जानकर,
साक्षात् कर साधनारत रहेगा ।

७. भिक्षुओं को भगवान् का उपदेश

३२. “भिक्षुओ! तुम आत्मदीप एवं आत्मशरण होकर साधना करो (या फिर) धर्मदीप एवं
धर्मशरण होकर साधना करो । भिक्षुओ! कैसे कोई भिक्षु आत्मदीप....धर्मशरण होकर साधना करता है?
भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर साधना करता है...वेदनाओं में वेदनानुपश्यी
होकर...चित्त में चित्तानुपश्यी होकर...धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर साधना करता है...। इस तरह, भिक्षुओ!
भिक्षु आत्मदीप एवं...धर्मशरण होकर साधना करता है ।

शास्ता के उपदेश पर आचरण (गोचर) का लाभ— ३३. “भिक्षुओ! अपने पैतृक (स्वसम्प्रदायानुसार)
विषय-गोचर (साधनाविधि) में (गुरुप्रदत्त चार स्मृतिप्रस्थानों की साधनाविधि में) साधना करो । भिक्षुओ!
ऐसी साधना करने से वह भिक्षु आयु, रूप, सुख, समृद्धि, एवं बल में वृद्धि कर सकेगा ।

“यहाँ आयु से क्या तात्पर्य है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु छन्दसमाधि प्राप्त प्रधान संस्कारों से

समाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति, वीमंसमासमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति। सो इमेसं चतुन्नं इद्धिपादानं भावितत्ता बहुलीकतत्ता आकङ्क्षमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। इदं खो, भिक्खवे, भिक्खुनो आयुस्मिं। (१)

“किं च, भिक्खवे, भिक्खुनो वर्णस्मिं? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु [N.62, B.65] भयदस्सावी समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। इदं खो, भिक्खवे, भिक्खुनो वर्णस्मिं। (२)

“किं च, भिक्खवे, भिक्खुनो सुखस्मिं? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा....पे०.... दुतियं ज्ञानं ततियं ज्ञानं चतुत्थं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं खो, भिक्खवे, भिक्खुनो, सुखस्मिं। (३)

“किं च, भिक्खवे, भिक्खुनो भोगस्मिं? इध, भिक्खवे, भिक्खु मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महगगतेन अप्पमाणेन अवैरेन अब्बापज्जेन फरित्वा विहरति। करुणासहगतेन चेतसा....पे०.... मुदितासहगतेन चेतसा पे०....उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महगगतेन अप्पमाणेन अवैरेन अब्बापज्जेन फरित्वा विहरति। इदं खो, भिक्खवे, भिक्खुनो भोगस्मिं। (४)

“किं च, भिक्खवे, भिक्खुनो बलस्मिं? इध, भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया

समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है; वीर्य को अधिपति करके प्राप्त प्रधान संस्कारों से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है; चित्त को अधिपति करके प्राप्त...मीमांसा को अधिपति कर प्राप्त हुए प्रधानभूत संस्कारों से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है। इस तरह इन चार ऋद्धिपादों की भावना करने से, बढ़ाने से यदि वह साधक भिक्षु चाहे तो कल्पभर या कल्पावशेष (कल्प से आगे) तक ठहर सकता है। यही यहाँ भिक्षु की ‘आयु’ कही गयी है। (१)

“यहाँ, भिक्षुओ! ‘वर्ण’ क्या कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष-नियमों से संवृत, आचार-विचार से युक्त, अल्पतम अकुशल में भी अपना अहित देखने वाला, नियमों (शिक्षापदों) के अनुसार अपना आचरण रखनेवाला होता है। भिक्षुओ! उस भिक्षु का यही ‘वर्ण’ है। (२)

“भिक्षुओ! उस साधक भिक्षु का ‘सुख’ क्या है? भिक्षुओ! वह साधक भिक्षु कामभोग एवं अकुशल धर्मों का आचरण त्यागकर वितर्क-विचार सहित प्रीतिजन्य सुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। फिर वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने पर...द्वितीय ध्यान...तृतीय ध्यान...चतुर्थ ध्यान...पूर्ववत्...साधना करता है। भिक्षुओ! यही भिक्षु का ‘सुख’ है। (३)

“भिक्षुओ! उस साधक भिक्षु का ‘भोग’ क्या है? भिक्षुओ! वह भिक्षु मैत्रीयुक्त चित्त से...करुणायुक्त चित्त से...मुदितायुक्त चित्त से...उपेक्षायुक्त चित्त से...साधना करता है। यही भिक्षुओ! भिक्षु का ‘भोग’ है। (४)

विस्तार के लिये द्र०—त्रैविद्यसूत्र (दी० नि०, प्र० भा०)।

अनासवं चेतोविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिक्त्वा उपसम्पज्ज विहरति । इदं खो, भिक्खवे, भिक्खुनो बलस्मि । (५)

[R.79] ३४. “नाहं, भिक्खवे, अज्जं एकबलं पि समनुपस्सामि यं एवं दुप्पसहं—यथयिदं, भिक्खवे, मारबलं । कुसलानं, भिक्खवे, धम्मानं समादानहेतु एवमिदं पुज्जं पवड्ढती” ति । (६)

इदमवोच भगवा । अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति ॥

चक्रवर्त्तिसुत्तं निवृत्तं ततियं ॥



“भिक्खुओ! यहाँ उस साधक भिक्खु का ‘बल’ क्या है? भिक्खुओ! वह भिक्खु आश्रवों के क्षय होने से आश्रवरहित चित्त की विमुक्ति एवं प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जन्म में जान कर, साक्षात् कर साधना करता है । भिक्खुओ! यही उस भिक्खु का ‘बल’ कहलाता है । (५)

३४. “भिक्खुओ! इस बल के समान ऐसा दूसरा कोई बल नहीं देखता, जो मारबल को जीत सके, ध्वस्त कर सके । भिक्खुओ! यही भिक्खु का ‘बल’ कहलाता है । भिक्खुओ! कुशल धर्मा का आचरण करने से इस प्रकार यह पुण्य—वृद्धि होती है ।” (६)

भगवान् ने यह कहा । सन्तुष्ट हुए भिक्खुओं ने भगवान् के इस भाषण का अभिनन्दन किया ॥

तृतीय चक्रवर्त्तिसूत्र समाप्त ॥



४. अगगज्जसुत्तं

१. वासेट्ठभारद्वाजा भगवन्तं उपसङ्कमिंसु

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N.63, R.80, B.66] पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन खो पन समयेन वासेट्ठभारद्वाजा भिक्खूसु परिवसन्ति भिक्खुभावं आकङ्खमाना। अथ खो भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो पासादा ओरोहित्वा पासादपच्छायायं अब्भोकासे चङ्कमति।

२. अहसा खो वासेट्ठो भगवन्तं सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितं पासादा ओरोहित्वा पासादपच्छायायं अब्भोकासे चङ्कमन्तं। दिस्वान भारद्वाजं आमन्तेसि—“अयं, आवुसो भारद्वाज, भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो पासादा ओरोहित्वा पासादपच्छायायं अब्भोकासे चङ्कमति। आयामावुसो भारद्वाज, येन भगवा तेनुपसङ्कमिस्साम; अप्पेव नाम लभेय्याम भगवतो सन्तिका धम्मिं कथं सवनाया” ति। “एवमावुसो” ति खो भारद्वाजो वासेट्ठस्स पच्चस्सोसि।

३. अथ खो वासेट्ठभारद्वाजा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा भगवन्तं चङ्कमन्तं अनुचङ्कमिंसु। अथ खो भगवा वासेट्ठं आमन्तेसि—“तुम्हे, ख्वत्थ, वासेट्ठं ब्राह्मणजच्चा ब्राह्मणकुलीना ब्राह्मणकुला अगारस्मा अनगारियं [R.81] पब्बजिता। कच्चि वो, वासेट्ठ, ब्राह्मणा न अक्कोसन्ति न परिभासन्ती” ति ?

“तग्घ नो, भन्ते, ब्राह्मणा अक्कोसन्ति परिभासन्ति अत्तरूपाय परिभासाय परिपुण्णाय, नो अपरिपुण्णाय” ति।

“यथा कथं पन वो, वासेट्ठ, ब्राह्मणा अक्कोसन्ति परिभासन्ति अत्तरूपाय परिभासाय परिपुण्णाय, नो अपरिपुण्णाय” ति ?

४. अग्रगण्यसूत्र

१. वासिष्ठ एवं भारद्वाज का भगवान् के पास आगमन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के पूर्वारामस्थित मृगारमातृप्रासाद में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय वासिष्ठ एवं भारद्वाज ब्राह्मण, भिक्षुभाव (प्रव्रज्या) की आकांक्षा से भिक्षुओं में परिवास (नियम-पालन) कर रहे थे। उस समय (किसी दिन) भगवान् सायङ्काल ध्यानभावना से उठकर प्रासाद से उतर कर, प्रासाद के पीछे छाया में खुले स्थान में टहल रहे थे।

२. टहलते हुए भगवान् को वासिष्ठ ने देखा। देखकर उसने भारद्वाज से कहा—“आयुष्मन् वासिष्ठ! ये पूज्य भगवान्...खुले स्थान में टहल रहे हैं। आओ! आयुष्मन्! भगवान् के पास चले। उनसे कुछ धार्मिक चर्चा सुनने को मिलेगी।” “अच्छा, आयुष्मन्”—कहकर वासिष्ठ ने भारद्वाज को उत्तर दिया।

३. तब वे दोनों—वासिष्ठ एवं भारद्वाज भगवान् के पास गये। जाकर, उन्हें प्रणाम कर, उनके पीछे-पीछे चलने लगे। तब भगवान् ने वासिष्ठ से पूछा—“वासिष्ठ! तुम ब्राह्मण जाति से, ब्राह्मण होते हुए ब्राह्मण कुल से घर से बेघर हो, यहाँ प्रव्रजित होने के लिये आये हो। यह देखकर यह सुनकर ब्राह्मण लोग तुम्हारी निन्दा नहीं करते? तुम्हारा परिहास तो नहीं करते?”

“हाँ, भन्ते! ब्राह्मण लोग इसके लिये हमारा थोड़ा-बहुत ही परिहास या निन्दा नहीं, अपितु बहुत अधिक करते हैं!”

“ब्राह्मणा, भन्ते, एवमाहंसु—‘ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीना अज्जे वण्णो। ब्राह्मणो [B.67] व सुक्को वण्णो, कण्हा अज्जे वण्णो। ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा। ब्राह्मणा व ब्रह्मणो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा। ते तुम्हे सेट्ठं वण्णं [N.64] हित्वा हीनमत्थं वण्णं अज्झुपगता यदिदं मुण्डके समणके इब्भे कण्हे बन्धुपादापच्चे। तयिदं न साधु, तयिदं नप्पतिरूपं, यं तुम्हे सेट्ठं वण्णं हित्वा हीनमत्थं वण्णं अज्झुपगता यदिदं मुण्डके समणके इब्भे कण्हे बन्धुपादापच्चे’ ति। एवं खो नो, भन्ते, ब्राह्मणा अक्कोसन्ति परिभासन्ति अत्तरूपाय परिभासाय परिपुण्णाय, नो अपरिपुण्णाय” ति।

४. “तग्घ वो, वासेट्ठ, ब्राह्मणा पोरणं अस्सरन्ता एवमाहंसु—ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीना अज्जे वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हा अज्जे वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मणो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा’ [R.82] ति। दिस्सन्ति खो पन, वासेट्ठ, ब्राह्मणानं ब्राह्मणियो उतुनियो पि गम्भिनियो पि विजायमाना पि पायमाना पि। ते च ब्राह्मणा योनिजा व समाना एवमाहंसु—‘ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीना अज्जे वण्णो; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हा अज्जे वण्णो; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा वा ब्रह्मणो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा’ ति। ते ब्रह्मानं चेव अब्भाचिकखन्ति, मुसा च भासन्ति, बहं च अपुज्जं पसवन्ति।

२. धम्मो हि सेट्ठो जनेतरिम्

५. “चत्तारोमे, वासेट्ठ, वण्णा—खत्तिया, ब्राह्मणा, वेस्सा, सुद्धा। खत्तियो पि खो, वासेट्ठ, इधेकच्चो पाणातिपाती होति अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो

“कैसे कैसे वासिष्ठ! वे ब्राह्मण तुम्हारा....परिहास या निन्दा करते हैं?”

“भन्ते! वे ब्राह्मण हमारे विषय में ऐसा कहते हैं— ‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण, अन्य वर्ण हीन (निम्न स्तर के) हैं। ब्राह्मण शुक्ल (शुद्ध) वर्ण है, अन्य वर्ण हीन (अशुद्ध) हैं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र, मुख से उत्पन्न अतः साक्षात् उसी से उत्पन्न, ब्रह्मा से रचित अतएव उसके उत्तराधिकारी हैं। तो तुम ऐसे श्रेष्ठ एवं शुद्ध वर्ण को छोड़कर निम्नस्तरीय वर्ण वाले पुरुषों के बीच रह रहे हो! यह उचित नहीं है। अरे! ये मुण्डक श्रमण तो नीच (इभ्य), कृष्ण एवं ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न (शूद्र) हैं। यह आप लोगों के अनुरूप नहीं है कि आप श्रेष्ठ वर्ण के होकर भी (उसे छोड़कर) नीच वर्ण वालों के साथ रहते हुए उन्हीं में मिल जाँय। वे तो नीच...शूद्र हैं।’ इस तरह, भन्ते! वे ब्राह्मण हमारी निन्दा करते हैं, हमारा बहुत अधिक परिहास करते हैं।

४. “वासिष्ठ! वे ब्राह्मण पुरानी बातों को भूल कर ही (तुम दोनों को) ऐसा कह रहे हैं— ‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, अन्य....पूर्ववत्....उत्तराधिकारी हैं।’ वासिष्ठ! इन ब्राह्मणों की पत्नियाँ अन्य जाति की स्त्रियों की तरह ऋतुमती (रजःसावयुक्त) भी होती हैं, वे गर्भिणी भी होती हैं और इन से पुत्र-पुत्रियों का प्रसव भी होता है, वे भी बच्चों को सामान्य स्त्रियों की तरह अपना स्तन्यपान कराती हैं। वे ब्राह्मण भी अन्य साधारण पुरुषों की तरह (ब्राह्मणी माता की) योनि से ही उत्पन्न हुए हैं; (जब उनमें सभी बातें अन्य पुरुषों के समान ही हैं तब) वे ऐसा कैसे कहते हैं— ‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है...ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं!’ वे ब्रह्मा के विषय में मिथ्या भाषण करते हैं और यह मिथ्या भाषण करते हुए अत्यधिक अपुण्य ही अर्जित करते हैं।

२. जनसमाज में धर्म की ही श्रेष्ठता

५. “वासिष्ठ! (समाज में) ये चार वर्ण होते हैं— क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र। यहाँ कोई-कोई

फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छादिट्ठि। इति खो, वासेट्ठ, येमे धम्मा अकुसला अकुसलसङ्घाता सावज्जा सावज्जसङ्घाता असेवितब्बा असेवितब्बसङ्घाता नअलमरिया नअलमरियसङ्घाता कण्हा कण्हविपाका विज्जुगरहिता, खत्तिये पि ते इधेकच्चे सन्दिस्सन्ति। ब्राह्मणो पि खो, वासेट्ठ....पे०....वेस्सो पि खो, वासेट्ठ....पे०....सुद्धो पि खो, वासेट्ठ, [B.68] इधेकच्चे पाणातिपाती होति अदिन्नादायी कामेसमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छादिट्ठि। इति खो, वासेट्ठ, येमे धम्मा अकुसला अकुसलसङ्घाता....पे०....कण्हा कण्हविपाका विज्जुगरहिता, सुद्धे पि ते इधेकच्चे सन्दिस्सन्ति।

“खत्तियो पि खो, वासेट्ठ, इधेकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति अदिन्नादाना पटिविरतो कापेसुमिच्छाचारा पटिविरतो मुसावादा पटिविरतो पिसुणाय वाचाय पटिविरतो [N.65] फरुसाय वाचाय पटिविरतो सम्फप्पलापा पटिवितो अनभिज्झालु अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठि। इति खो, वासेट्ठ, येमे धम्मा कुसला कुसलसङ्घाता अनवज्जा अनवज्जसङ्घाता सेवितब्बा सेवितब्बसङ्घाता अलमरिया अलमरियसङ्घाता सुक्का सुक्कविपाका विज्जुप्पसत्था खत्तिये पि ते इधेकच्चे सन्दिस्सन्ति। ब्राह्मणो पि खो, वासेट्ठ....पे०....वेस्सो पि खो, वासेट्ठ....पे०....सुद्धो पि खो, वासेट्ठ, इधेकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति....पे०....अनभिज्झालु [R.83] अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठि। इति खो, वासेट्ठ, येमे धम्मा कुसला कुसलसङ्घाता अनवज्जा अनवज्जसङ्घाता सेवितब्बा सेवितब्बसङ्घाता अलमरिया अलमरियसङ्घाता सुक्का सुक्कविपाका विज्जुप्पसत्था, सुद्धे पि ते इधेकच्चे सन्दिस्सन्ति।

६. “इमेसु खो, वासेट्ठ, चतुसु वण्णेसु एवं उभयवोकिण्णेसु वत्तमानेसु कण्हसुक्केसु धम्मेसु विज्जुगरहितेसु चेव विज्जुप्पसत्थेसु च यदेत्थ ब्राह्मणा एवमाहंसु—‘ब्राह्मणो व सेट्ठो वण्णो, हीना अज्जे वण्णा; ब्राह्मणो व सुक्को वण्णो, कण्हा अज्जे वण्णा; ब्राह्मणा व सुज्झन्ति, नो अब्राह्मणा; ब्राह्मणा व ब्रह्मणो पुत्ता ओरसा मुखतो जाता ब्रह्मजा ब्रह्मनिम्मिता ब्रह्मदायादा’

क्षत्रिय भी हिंसक, चौर, व्यभिचारी, असत्यवादी, चुगलखोर, कठोरभाषक, व्यर्थ प्रलापी, अभिध्यालु (लोभी), हिंसा में ही मन लगाये रखने वाले एवं मिथ्यादृष्टि होते हैं। वासिष्ठ! ये (हिंसा, चौरा आदि) अकुशल धर्म ‘अकुशल’ कहे गये हैं, ये समाज में निन्दनीय हैं, दोषयुक्त हैं, इनका आचरण समाज में अच्छा नहीं माना जाता, ये अनार्य हैं, ये कृष्ण हैं, कृष्ण फल (परिणाम) वाले हैं, विद्वान् लोग इनकी निन्दा करते हैं। इन ऐसे धर्मों को वे क्षत्रिय करते देखे जाते हैं। ब्राह्मण भी....पूर्ववत्....वैश्य भी....शूद्र भी हिंसक चौर...मिथ्यादृष्टि होते हैं।....इन ऐसे धर्मों को शूद्र भी करते देखे जाते हैं।

“परन्तु, वासिष्ठ! कितने ही क्षत्रिय ऐसे भी हैं, जो जीवहिंसा से विरत रहते हैं, चौरा नहीं करते....सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। ये कुशल धर्म अनवद्य (निर्दोष), आचरणीय, श्रेष्ठ, शुक्ल (शुद्ध) एवं विद्वानों द्वारा प्रशंसा प्राप्त हैं। इन ऐसे कर्मों को वे क्षत्रिय करते देखे जाते हैं। ब्राह्मण....वैश्य....शूद्र....देखे जाते हैं।

६. “वासिष्ठ! इन चार वर्णों में दोनों तरफ बिखरे हुए ये कुशल-अकुशल धर्म जो कि विद्वानों द्वारा प्रशंसनीय भी हैं, निन्दनीय भी, उनके विषय में उपेक्षा करते हुए ये ब्राह्मण यह कहें—‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, अन्य (क्षत्रिय आदि) वर्ण हीन हैं....ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं’ तो विद्वान् लोग उनके इस मन्तव्य का कथमपि अनुमोदन नहीं करते। वह किस कारण? कारण उसमें यही है कि इन चारों वर्णों में जो भिक्षु

ति, तं तेसं विञ्जू नानुजानन्ति। तं किस्स हेतु? इमेसं हि, वासेट्ठ, चतुत्रं वण्णानं यो होति भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिकखीण-भवसंयोजनो सम्मदञ्जाविमुत्तो, सो नेसं अगमक्खायति धम्मेनेव नो अधम्मेन। धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मि; दिट्ठे चेव धम्मे, अभिसम्परायं च।

७. “तदिमिनापेतं, वासेट्ठ, परियायेन वेदितब्बं यथा धम्मो व सेट्ठो जनेतस्मि, दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च।

[B.69] “जानाति खो, वासेट्ठ, राजा पसेनदि कोसलो—‘समणो गोतमो अनन्तरा सक्ककुला पब्बजितो’ ति। सक्का खो पन, वासेट्ठ, रज्जे पसेनदिस्स कोसलस्स अनुयुत्ता भवन्ति। करोन्ति खो, वासेट्ठ, सक्का रज्जे पसेनदिमिह कोसले निपच्चकारं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं। इति खो, वासेट्ठ, यं करोन्ति सक्का रज्जे पसेनदिमिह कोसले [R.84] निपच्चकारं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं, करोति तं राजा पसेनदि कोसलो तथागते निपच्चकारं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं समाचिकम्मं। न नं सुजातो [N.66] समणो गोतमो दुज्जातोहमस्मि, बलवा समणो गोतमो दुब्बलोहमस्मि, पासादिको समणो गोतमो दुब्बण्णोहमस्मि, महेसक्खो समणो गोतमो अप्पेसक्खोहमस्मी ति। अथ खो नं धम्मं येव सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं मानेन्तो धम्मं पूजेन्तो धम्मं अपचायमानो एवं राजा पसेनदि कोसलो तथागते निपच्चकारं करोति अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं। इमिना पि खो एतं, वासेट्ठ, परियायेन वेदितब्बं यथा धम्मो सेट्ठो जनेतस्मि, दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च।

धम्मकायो तथागतो

८. “तुम्हे ख्वत्थ, वासेट्ठ, नानाजच्चा नानानामा नानागोत्ता नानाकुला अगारस्सा अनगारियं पब्बजिता। ‘के तुम्हे?’ ति—पुट्ठा समाना ‘समणा सक्कपुत्तियाम्हा’ ति—पटिजानाथ।

ज्ञानी, क्षीणाश्रव, ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, परम अर्थ (निर्वाण) तक पहुँचा हुआ, भवबन्धनमुक्त, ज्ञानी एवं विमुक्त होता है, वही सर्वतोऽधिक श्रेष्ठ है; उच्च वर्ण या हीन वर्ण में उत्पन्न होने मात्र से किसी में श्रेष्ठता या हीनता नहीं आती। धर्माचरण ही इस लोक या परलोक के लिये श्रेष्ठ माना गया है, अधर्माचरण नहीं।

७. “इसलिये भी, वासिष्ठ! धर्म ही इस समाज में श्रेष्ठ है, अधर्म नहीं।

“वासिष्ठ! कोसल नरेश राजा प्रसेनजित् जानते हैं—‘श्रमण गौतम शाक्य कुल में जन्म लेकर प्रव्रजित हुए हैं। और ये शाक्य राजा प्रसेनजित् कौसल के अधीन हैं; क्योंकि ये शाक्य राजा प्रसेनजित् के सम्मुख आने पर उन्हें अभिवादन, उनके सामने झुकना, उनके सामने प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ना आदि सभी सम्मानप्रदर्शक कार्य करते हैं। तो वासिष्ठ! उन शाक्यों द्वारा जिस राजा प्रसेनजित् का यों सम्मान किया जाता है, वही राजा प्रसेनजित् कौसल तथागत के सम्मुख आने पर उन्हें अभिवादन, विनय, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ना—आदि सभी सम्मानप्रदर्शक कार्य करता है। तो यह सब इसलिये नहीं कि वह समझ रहा हो—श्रमण गौतम उच्चकुल का है और मैं हीनकुल का हूँ; या श्रमण गौतम बलवान् हैं और मैं दुर्बल; या श्रमण गौतम सुन्दर हैं और मैं कुरूप; या श्रमण गौतम अधिक सामर्थ्य वाले हैं और मैं अल्प सामर्थ्य वाला; अपि तु वह मेरे प्रति ऐसा सम्मानास्पद व्यवहार करता हुआ धर्म का ही आदर, सत्कार एवं

यस्स खो पनस्स, वासेट्ठ, तथागते सद्धा निविट्ठा मूलजाता पतिट्ठिता दब्बा असंहारिया समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मना वा केनचि वा लोकस्मि, तस्सेतं कल्लं वचनाय—‘भगवतोमिह पुत्तो ओरसो मुखतो जातो धम्मजो धम्मनिम्मितो धम्मदायादो’ ति । तं किस्स हेतु ? तथागतस्स हेतं, वासेट्ठ, अधिवचनं ‘धम्मकायो’ इति पि, ‘ब्रह्मकायो’ इति पि, ‘धम्मभूतो’ इति पि, ‘ब्रह्मभूतो’ इति पि ।

३. अयं लोको संवट्ठति विवट्ठति

९. “होति खो सो, वासेट्ठ, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो [B.70] अच्चयेन अयं लोको संवट्ठति । संवट्ठमाने लोके येभ्य्येन सत्ता आभस्सरसंवत्तनिका होन्ति । ते तत्थ होन्ति मनोमया पीतिभक्खा सयम्पभा अन्तलिक्खचरा सुभट्ठायिनो चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति ।

“होति खो सो, वासेट्ठ, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन [R.85] अयं लोको विवट्ठति विवट्ठमाने लोके येभ्य्येन सत्ता आभस्सरकाय, चवित्वा इत्थत्तं आगच्छन्ति । तेध होन्ति मनोमया पीतिभक्खा सयम्पभा अन्तलिक्खचरा सुभट्ठायिनो चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति ।

रसपथविपातुभावो

१०. “एकोदकीभूतं खो पन, वासेट्ठ, तेन समयेन होति अन्धकारो [N.67] अन्धकारतिमिसा । न चन्दिमसुरिया पज्जायन्ति, न नक्खत्तानि तारकरूपानि पज्जायन्ति, न

गुरुकार करता है । तो, वासिष्ठ! इस कारण भी उन ब्राह्मणों को समझना चाहिये कि इस लोक या परलोक में धर्म की ही श्रेष्ठता मानी जाती है, वर्ण की नहीं ।

धर्मकार्यरूप तथागत— ८. “वासिष्ठ! इस कारण भी धर्म को ही मनुष्यों में श्रेष्ठ माना जाना चाहिये— ‘वासिष्ठ! तुम लोग नाना जाति, नाना वर्ण, नाना नाम, नाना गोत्र, नाना कुलों से आकर घर छोड़ बेघर होकर यहाँ प्रव्रजित होते हो; तुमसे कोई यह पूछता है कि ‘तुम कौन हो’, तो तुम्हारा उत्तर होता है— ‘हमलोग शाक्यपुत्रीय श्रमण हैं’ । वासिष्ठ! जो तथागत में श्रद्धानिविष्ट है, उसमें जिसकी श्रद्धा जड़ जमा चुकी है, प्रतिष्ठित है, दृढ़ है; वह किसी भी श्रमण—ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसार में किसी अन्य के द्वारा डिगाया नहीं जा सकता । अतः उसी का यह कहना उचित लगता है— ‘मैं भगवान् के मुख से उत्पन्न, धर्म से उत्पन्न, धर्मनिर्मित और धर्मदायाद (पुत्र) हूँ । वह किस लिये? इसलिये कि वासिष्ठ! ये ‘धर्मकाय’, ‘ब्रह्मकाय’, ‘धर्मभूत’ या ‘ब्रह्मभूत’ आदि नाम तथागत के बोधक हैं ।

३. इस लोक के संवर्त एवं विवर्त

संवर्त— ९. “वासिष्ठ! समय बीतने के बाद, एक अवसर ऐसा भी आ जाता है, जब इस लोक का संवर्त (प्रलय) होने लगेगा । इसी लोक का प्रलय होने पर, इस लोक के (पुण्यात्मा) प्राणी (स्वप्नारब्धवश) आभास्वर लोक में चले जाते हैं । वे वहाँ मनोमय, प्रीतिभक्ष, स्वयम्प्रभ, आकाशचारी एवं शुभस्थायी होकर बहुत समय तक वास करते हैं ।

विवर्त— “वासिष्ठ! फिर बहुत दिन बीतने के बाद, एक अवसर ऐसा भी आ जाता है, जब इस लोक का पुनः विवर्त (=उत्पाद) प्रारम्भ होने लगता है । ऐसा होने पर कुछ प्राणी (अपने प्रारब्धवश) उस आभास्वर लोक से च्युत होकर यहाँ इस लोक में आ जाते हैं । वे यहाँ भी मनोमय, प्रीतिभक्ष...शुभस्थायी होकर ही बहुत समय तक वास करते हैं ।

रसपृथ्वी का प्रादुर्भाव— १०. “फिर, वासिष्ठ! उस समय सर्वत्र जल ही जल होता है । साथ ही सर्वत्र

रतिन्दिवा पज्जायन्ति, न मासद्धमासा पज्जायन्ति, न उतुसंवच्छरा पज्जायन्ति, न इत्थिपुमा पज्जायन्ति, सत्ता सत्ता त्वेव सङ्खुच्चं गच्छन्ति। अथ खो तेसं, वासेट्ठ, सत्तानं कदाचि करहचि दीघस्स अद्दुनो अच्चयेन रसपथवी उदकस्मिं समतनि। सेय्यथापि नाम पयसो तक्कस्स निब्बायमानस्स उपरि सन्तानकं होति, एवमेव पातुरहोसि। सा अहोसि वण्णसम्पन्ना गन्धसम्पन्ना रससम्पन्ना। सेय्यथापि नाम सम्पन्नं वा सप्पि सम्पन्नं वा नवनीतं एवंवण्णा अहोसि। सेय्यथापि नाम खुद्दमधुं अनेळकं एवमस्सादा अहोसि। अथ खो, वासेट्ठ, अज्जतरो सत्तो लोलजातिको— 'अम्भो, किमेविदं भविस्सति' ति रसपथविं अङ्गुलिया सायि। तस्स रसपथविं अङ्गुलिया सायतो अच्छादेसि, तण्हा चस्स ओक्कमि। अज्जे पि खो, वासेट्ठ, सत्ता तस्स सत्तस्स दिट्ठानुगातिं आपज्जमाना रसपथविं अङ्गुलिया सायिंसु। तेसं रसपथविं अङ्गुलिया सायतं अच्छादेसि, तण्हा च तेसं ओक्कमि।

चन्दिमसुरियादिपातुभावो

११. "अथ खो ते, वासेट्ठ, सत्ता रसपथविं हत्थेहि आलुप्पकारकं उपक्कमिंसु परिभुञ्जितुं। [R.86, B.71] यतो खो ते, वासेट्ठ, सत्ता रसपथविं हत्थेहि आलुप्पकारकं उपक्कमिंसु परिभुञ्जितुं, अथ तेसं सत्तानं सयम्पभा अन्तरधायि। सयम्पभाय अन्तरहिताय चन्दिमसुरिया पातुरहेसुं। चन्दिमसुरियेसु पातुभूतेसु नक्खत्तानि तारकरूपानि पातुरहेसुं। नक्खत्तेसु तारकरूपेसु पातुभूतेसु रतिन्दिवा पज्जायिंसु। रतिन्दिवेसु पज्जायमानेसु मासद्धमासा पज्जायिंसु। मासद्धमासेसु पज्जामानेसु उतुसंवच्छरा पज्जायिंसु। एत्तावता खो, वासेट्ठ, अयं लोको पुन विवट्ठो होति।

१२. "अथ खो ते, वासेट्ठ, सत्ता रसपथविं परिभुज्जन्ता तम्भक्खा तदाहारा चिरं

अन्धकार ही अन्धकार फैला होता है। न चन्द्रमा दिखायी देता है, न सूर्य, न कोई छोटा-बड़ा नक्षत्र। न रात-दिन का ज्ञान हो पाता है, न मास या पक्ष का। न ऋतु या संवत्सर ही समझ में आते हैं, न स्त्री-पुरुष का कोई भेद ही ज्ञात होता है। केवल साधारणतः प्राणी ही प्राणी समझ में आते हैं। तब, वासिष्ठ! बहुत समय बाद जैसे तक्र बनने से पूर्व दूध पर मलाई जमती है, उसी तरह उन प्राणियों के लिये उस जल पर पपड़ी सी जम जाती है। वह देखने में लुभावनी, सूँघने में गन्धवाली एवं चखने में स्वादु लगती है। उसका वर्ण ऐसा ही होता था जैसे तैयार घी या मक्खन का होता है। जैसे मधुमक्खियों के बनाये मधु की तरह उसका स्वाद था। तब, वासिष्ठ! कोई लोभी प्राणी 'यह क्या पदार्थ हो सकता है?'— यह जानने के लिये उस पपड़ी को अंगुली में लगाकर चाटा। चाटने से वह पपड़ी उसे स्वादु लगी। उसके प्रति उसकी तृष्णा बढ़ती गयी। वासिष्ठ! उसको देखकर दूसरे प्राणी भी उस पृथ्वीरसा को अंगुलि भर-भर चाटने लगे। इन्हें भी उसका स्वाद अच्छा लगा और उसके प्रति उनकी भी तृष्णा बढ़ती गयी।

चन्द्र-सूर्य का प्रादुर्भाव— ११. "वासिष्ठ! तब वे प्राणी उस पृथ्वी-रसा का तृष्णापूर्वक चाटने के लिये अधिक से अधिक उपक्रम करने लगे। ज्यों ज्यों वे इस उपक्रम में आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों उनका स्वाभाविक तेज विनष्ट होता चला गया। उनका वह स्वाभाविक तेज विनष्ट होने पर, वहाँ चन्द्र एवं सूर्य का प्रादुर्भाव हुआ। उनके प्रादुर्भाव के साथ ही नक्षत्र एवं तारक समूह का भी प्रादुर्भाव हुआ। इन सबके प्रादुर्भूत होने से रात्रि एवं दिन का भी संज्ञान होने लगा। रात्रि एवं दिन का संज्ञान हो जाने से मास एवं पक्ष का भी संज्ञान होने लगा। धृष्ट संज्ञान होने पर, ऋतु एवं संवत्सरों का संज्ञान होना तो आवश्यक था ही। इस तरह, वासिष्ठ! यह लोक पुनः उत्पत्तिक्रम में आ जाता है।

दीघमद्धानं अटुंसु। यथा यथा खो ते, वासेट्ट, सत्ता रसपथविं परिभुञ्जन्ता तम्भक्खा [N.68] तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अटुंसु, तथा तथा तेसं सत्तानं खरतं चैव कायस्मि ओक्कमि, वण्णवे-
वेवण्णता च पज्जायित्थ। एकदं सत्ता वण्णवन्तो होन्ति एकदं सत्ता दुब्बण्णा। तत्थ ये ते
सत्ता वण्णवन्तो ते दुब्बण्णे सत्ते अतिमज्जन्ति—‘मयमेतेहि वण्णवन्ततरा, अम्हेहेते दुब्बण्णतरा’
ति। तेसं वण्णातिमानपच्चया मानातिमानजातिकानं रसपथवी अन्तरधायि। रसाय पथविया
अन्तरहिताय सन्निपत्तिंसु। सन्निपत्तिवा अनुत्थुनिंसु—‘अहो रसं, अहो रसं’ ति! तदेतरहिपि
मनुस्सा किञ्चिदेव सुरसं लभित्वा एवमाहंसु—‘अहो रसं, अहो रसं’ ति! तदेव पोराणं
अगगं अक्खरं अनुसरन्ति, न त्वेवस्स अत्थं आजानन्ति।

भूमिपप्पटकपातुभावो

१३. “अथ खो तेसं, वासेट्ट, सत्तानं रसाय पथविया अन्तरहिताय भूमि-[R.87]
पप्पटको पातुरहोसि। सेय्यथापि नाम अहिच्छत्तको एवमेव पातुरहोसि। सो अहोसि वण्णसम्पन्नो
गन्धसम्पन्नो रससम्पन्नो। सेय्यथापि नाम सम्पन्नं वा सप्पि सम्पन्नं वा नवनीतं एवंवण्णो
अहोसि। सेय्यथापि नाम खुद्दमधु अनेळकं एवमस्सादो अहोसि।

“अथ खो ते, वसेट्ट, सत्ता भूमिपप्पटकं उपक्कमिंसु परिभुञ्जितुं। ते तं [B.72]
परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अटुंसु। यथा यथा खो ते, वासेट्ट, सत्ता भूमिपप्पटकं
परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अटुंसु तथा तथा तेसं सत्तानं भिय्योसोमत्ताय
खरतं चैव कायस्मि ओक्कमि, वण्णवेवण्णता च पज्जायित्थ। एकदं सत्ता वण्णवन्तो होन्ति,
एकदं सत्ता दुब्बण्णा। तत्थ ये ते सत्ता वण्णवन्तो ते दुब्बण्णे सत्ते अतिमज्जन्ति—‘मयमेतेहि
वण्णवन्ततरा, अम्हेहेते दुब्बण्णतरा’ ति। तेसं वण्णातिमानपच्चया मानातिमानजातिकानं
भूमिपप्पटको अन्तरधायि।

१२. “तब, वासिष्ठ! वे प्राणी पृथ्वी की रसा को चाटते हुए उसी के भक्षण के अभ्यासी हो गये।
बहुत समय तक वे यही खाते रहे। जैसे जैसे, वासिष्ठ! वे प्राणी उस पृथ्वी की रसा के भक्षण के अभ्यासी
होते गये, त्यों त्यों उन के शरीर की मृदुता विनष्ट होने लगी और उसमें कठोरता आने लगी। यों उनके
वर्ण में विरूपता आ गयी। कोई सत्त्व सुन्दर होने लगे तो कोई सत्त्व कुरूप। तब जो लोग सुन्दर थे वे
अपने को उन कुरूपों से उच्च समझने लगे। और कहना आरम्भ किया— ‘हम इनसे सुन्दर हैं, ये हमसे
कुरूप हैं।’ उनके इस सौन्दर्याभिमान के कारण उस पृथ्वीरस का भी लोप हो गया। उस पृथ्वीरस का
लोप हो जाने पर वे प्राणी ‘हा रस! हा रस!’— यों विलाप करने लगे। आज भी लोग किसी स्वादु वस्तु
के खाद्य रूप में मिलने पर उसकी प्रशंसा में यही कहते हैं— ‘अहो, यह पदार्थ कितना रसमय है।’ यों,
ये उसी पुराने ‘अग्र’ रस-शब्द के संस्कारवश ऐसा बोलते हैं, उसका स्मरण करते हैं, किन्तु उसका
अर्थ नहीं जानते।

भूमि पर पपड़ी की उत्पत्ति— १३. “तब, वासिष्ठ! उन प्राणियों के लिये, पृथ्वी की रसा के लुप्त होने पर,
भूमि पर पपड़ी (पर्यटक) प्रादुर्भूत हुई। वह भी इतनी अधिक मात्रा में कि जैसे कि आज कल वर्षा ऋतु
में अहिच्छत्रक (नागफनी) पैदा हो जाता है। वह वैसे ही वर्ण, रस एवं गन्ध से सम्पन्न थी जैसे कि अच्छे
घी और मक्खन उनसे सम्पन्न होते हैं या मधु-मक्खियों द्वारा रचा गया मधु सम्पन्न होता है।

“तब वे प्राणी उस भूमिपर्पटक को ही उत्कण्ठापूर्वक खाने लगे। वे उसे बहुत काल तक खाते

पदालतापातुभावो

१४. “भूमिपप्पटके अन्तरहिते पदालता पातुरहोसि। सेय्यथापि नाम कलम्बुका एवमेव पातुरहोसि। सा आहोसि वण्णसम्पन्ना गन्धसम्पन्ना रससम्पन्ना। सेय्यथापि नाम सम्पन्नं वा सप्पि सम्पन्नं वा नवनीतं एवंवण्णा अहोसि। सेय्यथापि नाम खुद्दमधुं अनेळकं एवमस्सादा अहोसि।

[N.69] “अथ खो ते, वासेट्ठ, सत्ता पदालतं उपक्कमिंसु परिभुञ्जितुं। ते तं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठंसु। यथा यथा खो ते, वासेट्ठ, सत्ता पदालतं परिभुञ्जन्ता तम्भक्खा [R.88] तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठंसु तथा तथा तेसं सत्तानं भिय्योसोमत्ताय खरत्तं चेव कार्यास्मि ओक्कमि, वण्णवेवण्णता च पज्जायित्थ। एइकदं सत्ता वण्णवन्तो होन्ति, एकिदं सत्ता दुब्बण्णा। तत्थ ये ते सत्ता वण्णवन्तो ते दुब्बण्णे सत्ते अतिमज्जन्ति—‘मयमेतेहि वण्णवन्ततरा, अम्हेहेते दुब्बण्णतरा’ ति। तेसं वण्णातिमानपच्चया मानातिमानजातिकानं पदालता अन्तरधायि। पदालताय अन्तरहिताय सन्निपतिंसु। सन्निपतित्वा अनुत्थुनिंसु—‘अहु वत नो, [B.73] अहायि वत नो पदालता’ ति! तदेतरहि पि मनुस्सा केनचि दुक्खधम्मणे फुट्ठा एवमाहंसु—‘अहु वत नो, अहायि वत नो’ ति! तदेव पोरांमं अग्गज्जं अक्खरं अनुसरन्ति, न त्वेवस्स अत्थं आजानन्ति।

अकट्टपाकसालिपातुभावो

१५. “अथ खो तेसं, वासेट्ठ, सत्तानं पदालताय अन्तरहिताय अकट्टपाको सालि पातुरहोसि अकणो अथुसो सुद्धो सुगन्धो तण्डुलप्फलो। यं तं सायं सायमासाय आहरन्ति पातो तं होति पक्कं पटिविरूळ्हं; यं ते पातो पातरासाय आहरन्ति सायं तं होति पक्कं पटिविरूळ्हं; नापदानं पज्जायति। अथ खो ते, वासेट्ठ, सत्ता अकट्टपाकं सालि परिभुञ्जन्ता तम्भक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठंसु।

रहे। ज्यों ज्यों वे उसे खाते रहे त्यों त्यों उनका शरीर पूर्वपेक्षया अधिक कर्कश एवं विरूप होने लगा। तब उनमें से जो सुन्दर थे...पूर्ववत्...भूमिपपटक का भी लोप हो गया।

भद्रलता का प्रादुर्भाव— १४. “उस भूमिपपटक के लुप्त होने पर भद्रलता (पदालता) वैसे ही प्रादुर्भूत हुई, जैसे वर्षा ऋतु में ऊपर जमीन में सरकण्डे का वन (कलम्बुक)। वह भी इतनी अधिक वर्ण, गन्ध एवं रस से सम्पन्न...मधु।

“तब, वासिष्ठ! वे प्राणी भद्रलता को खाने लगे...भद्रलता लुप्त हो गयी। उस भद्रलता के लोप होने पर वे चिह्नाए लगे— अरे! हमारी भद्रलता कहाँ गयी! ‘अरे! हमारी भद्रलता लुप्त हो गयी।’ आज भी लोग किसी दुःखद घटना के होने पर यही बोलते हैं— ‘अरे हमारा वह (भद्र) कहाँ गया’, ‘अरे! हमारा वह (भद्र) लुप्त हो गया’। यों वे उसी पुरानी बात को स्मरण करते हैं; परन्तु उन्हें उसका अर्थ ज्ञात नहीं है।

बिना बोये पकने वाले चावल की उत्पत्ति— १५. “तब, वासिष्ठ! उन सत्त्वों के लिये, भद्रलता के लुप्त होने पर, बिना हल से बोये पकने वाले शालि (=अकृष्टपच्य, चावल) की उत्पत्ति होने लगी। वह चावल का फल कण एवं तुष रहित परन्तु सुगन्धियुक्त था। जिसे वे सायङ्काल लाते वह रात्रि भर में पककर प्रातः खाद्य बन जाता था और जिसे प्रातःकाल लाते थे, वह सायङ्काल तक पक कर खाद्य बन जाता था। काटकर

इत्थिपुरिसलिङ्गपातुभावो

१६. “यथा यथा खो ते, वासेट्ट, सत्ता अकट्टपाकं सालिं परिभुञ्जन्ता तम्भक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्ठं सु तथा तथा तेसं सत्तानं भिग्योसोमन्ताय खरत्तं चैव कायस्मि ओक्कमि, वण्णवेवण्णता च पञ्जायित्थ। इत्थिया च इत्थिलिङ्गं पातुरहोसि पुरिसस्स च पुरिसलिङ्गं। इत्थी च पुरिसिं अतिवेलं उपनिज्झायति पुरिसो च इत्थिं। तेसं अतिवेलं अज्जमज्जं उपनिज्झायतं सारागो उदपादि, परिळाहो कायस्मि ओक्कमि। ते परिळाहपच्चया मेथुनं धम्मं पटिसेविंसु।

“ये खो पन ते, वासेट्ट, तेन समयेन सत्ता पस्सन्ति मेथुनं धम्मं पटिसेवन्ते [R.89] अज्जे पंसुं खिपन्ति, अज्जे सेट्ठिं खिपन्ति, अज्जे गोमयं खिपन्ति ‘नस्स असुचि, [N.70] नस्स असुची ति। कथं हि नाम सत्तो सत्तस्स एवरूपं करिस्सती’ ति! तदेतरहि पि मनुस्सा एकच्चेसु जनपदेसु वधुया निब्बुद्दमाना अज्जे पंसुं खिपन्ति, अज्जे सेट्ठिं खिपन्ति, अज्जे गोमयं खिपन्ति; तदेव पोराणं अगगज्जं अक्खरं अनुसरन्ति, न त्वेवस्स अत्थं आजानन्ति।

मेथुनधम्मसमाचारो

१७. “अधम्मसमतं खो पन, वासेट्ट, तेन समयेन होति तदेतरहि धम्मसम्मतं। [B.74] ये खो पन, वासेट्ट, तेन समयेन सत्ता मेथुनं धम्मं पटिसेवन्ति ते मासं पि द्वेमासं पि न लभन्ति गामं वा निगमं वा पविसितुं। यतो खो ते, वासेट्ट, सत्ता तस्मि असद्धम्मे अतिवेलं अतिवेलं पातब्ब्यतं आपज्जिंसु अथ अगारानि उपक्कमिंसु कातुं तस्सेव असद्धम्मस्स पटिच्छादनत्थं। अथ खो, वासेट्ट, अज्जतरस्स सत्तस्स अलसजातिकस्स एथदहोसि—‘अम्भो, किमेवाहं विहज्जामि सालिं आहरन्तो सायं सायमासाय पातो पातरासाय! यन्नूनाहं सालिं आहरेय्यं सकिदेव सायपातरासाया’ ति! अथ खो सो, वासेट्ट, सत्तो सालिं आहासि सकिदेव सायपातरासाय।

लाया हुआ नहीं ज्ञात होता था। इस तरह, वासिष्ठ! उन प्राणियों ने वह अकृष्टपच्य शालि खा-खाकर उस युग का बहुत समय बिताया।

स्त्री-पुरुष-चिह्नों का प्रादुर्भाव— १६. “वासिष्ठ! ज्यों ज्यों वे प्राणी उस अकृष्टपच्य शालि को खाते रहे, त्यों त्यों उन प्राणियों के शरीर की मृदुता विनष्ट होती गयी और कठोरता आती गयी उनका वर्ण भी विकृत होने लगा। स्त्रियों के स्त्री-चिह्न प्रकट होने लगे और पुरुषों के पुरुषचिह्न। स्त्री पुरुष को बार-बार (अतिवेलं) आँख गड़ाकर देखने लगी, और पुरुष स्त्री को। उनके यों परस्पर एक दूसरे को अत्यधिक देखने से राग उत्पन्न होने लगा, राग से उनके शरीर में अग्नि (कामाग्नि) प्रकट हुई। वे उस गर्मी (परिदाह) से परस्पर मैथुन धर्म में सम्पृक्त हो गये।

“वासिष्ठ! उस समय जो दूसरे प्राणी उन मैथुन धर्म में सम्पृक्त देखते थे, वे उन पर, धूल, कूड़ा-कचरा या गोबर फेंकते थे और कहते थे—‘अशुचियो! नष्ट हो जाओ! कैसे कोई प्राणी दूसरे प्राणी के साथ ऐसा अनाचार करेगा!’ आजकल भी ऐसी ही परम्परा हम देखते हैं कि कहीं-कहीं नववधू आने पर लोग उस पर धूल फेंकते, कूड़ा कर्कट या गोबर फेंकते हैं। यह पुरानी ही परम्परा की स्मृति है जिसके अग्र (प्रधान) अक्षर का अनुसरण तो वे करते हैं, परन्तु उसका पूर्ण अर्थ वे नहीं समझते।

मैथुनकर्म धर्मसम्मत हो गया— १७. “वासिष्ठ! प्रारम्भ में जो कर्म (मैथुन) अधर्मसम्मत था, वही आगे चलकर धर्मसम्मत माना जाने लगा। प्रारम्भ में जो मनुष्य इस मैथुन धर्म का सेवन करते थे, वे भयवश

“अथ खो, वासेट्ठ, अञ्जतरो सत्तो येन सो सत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं सत्तं एतदवोच—‘एहि, भो सत्त, सालाहारं गमिस्सामा’ ति।

‘अलं, भो सत्त, आहतो मे सालिं सकिदेव सायपातरासाया’ ति।

“अथ खो सो, वासेट्ठ, सत्तो तस्स सत्तस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जमानो सालिं आहासि सकिदेव द्वीहाय—‘एवं पि किर, भो, साधू’ ति। अथ खो, वासेट्ठ, अञ्जतरो सत्तो येन सो [R.90] सत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं सत्तं एतदवोच—‘एहि, भो सत्त, सालाहारं गमिस्सामा’ ति।

‘अलं, भो सत्त, आहतो मे सालि सकिदेव द्वीहाया’ ति।

‘अथ खो सो, वासेट्ठ, सत्तो तस्स सत्तस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जमानो सालिं आहासि सकिदेव चतूहाय—‘एवं पि किर, भो, साधू’ ति। अथ खो, वासेट्ठ, अञ्जतरो सत्तो येन सो सत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं सत्तं एतदवोच—‘एहि, भो सत्त, सालाहारं गमिस्सामा’ ति।

‘अलं, भो सत्त, आहतो मे सालि सकिदेव चतूहाया’ ति।

[N.71, B.75] “अथ खो सो, वासेट्ठ, सत्तो तस्स सत्तस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जमानो सालिं आहासि सकिदेव अट्ठाहाय—‘एवं पि किर, भो, साधू’ ति। यतो खो ते, वासेट्ठं सत्ता सन्निधिकारकं सालिं उपक्कमिंसु परिभुञ्जितुं, अथ कणो पि तण्डुलं परियोनन्धि, थुसो पि तण्डुलं परियोनन्धि; लूनं पि नप्पटिविरूळ्हं। अपदानं पज्जायित्थ। सण्डसण्डा सालयो अट्ठंसु।

या लोक-लज्जावश (मैथुनधर्म सेवन के बाद) एक मास या दो मास तक ग्राम में प्रवेश का साहस नहीं करते थे। जब वे प्राणी उसमें पुनः पुनः अत्यधिक व्यासक्त रहने लगे तो उन्होंने लोकलज्जा से बचने के लिये, उस मैथुन कर्म को छिपाने हेतु, घर बनाने प्रारम्भ कर दिये।

“तब, वासिष्ठ! उन प्राणियों में से किसी आलसी पुरुष को यह समझ में आया— ‘क्यों मैं प्रातः सायं का आहार लाने में अपना द्विगुण समय नष्ट करता हूँ। क्यों न मैं दोनों समय का आहार एक ही समय ले आऊँ’। तब, वासिष्ठ! वह प्राणी दोनों समय का आहार एक ही बार ले आया। फिर कभी दूसरा प्राणी पहले प्राणी के पास जाकर बोला— ‘अरे प्राणी! चलो, शालि-आहार ले आवें’। पहले ने कहा— ‘तुम ही जाओ, सौम्य! मैं तो दोनों समय के लिये ले आया’।

“तब वह प्राणी उस दूसरे प्राणी का अनुकरण करते हुए दो समय के आहार के साथ दो दिन का आहार उठा लाया और सोचा कि यह उपाय तो बहुत अच्छा है। तब, वासिष्ठ! दूसरा कोई प्राणी उस प्राणी के पास जाकर बोला— ‘चलो, शालि आहार लेने चलें’। तो उसने कहा— ‘मैं तो दो दिन का आहार एक साथ ही ले आया’।

“तब, वासिष्ठ! वह उसका अनुकरण कर, उससे भी आगे बढ़ते हुए चार दिन के लिये शालि-आहार एक साथ उठा लाया। और सोचा कि यह उपाय तो और भी अच्छा है। तब, वासिष्ठ! पूर्ववत्.... वह आठ दिन का शालि आहार एक साथ उठा लाया। और सोचने लगा कि यह उपाय तो उससे भी अच्छा है।

“इस प्रकार, वासिष्ठ! वे प्राणी धीरे-धीरे उस शालि-आहार का इतना अधिक संग्रह करने लगे

सालिविभागो

१८. “अथ खो ते, वासेट्ठ, सत्ता सन्निपत्तिं सु। सन्निपत्तित्वा अनुत्थुनिं सु—‘पापका वत, भो, धम्मा सत्ते सु पातुभूता। मयं हि पुब्बे मनोमया अहुम्हा पीतिभक्खा सयम्पभा अन्तलिक्खचरा सुभट्ठायिनो चिरं दीघमद्धानं अट्टम्हा। तेसं नो अम्हाकं कदाचि करहचि दीघस्स अट्ठनो अच्चयेन रसपथवी उदकस्मिं समतनि। सा अहोसि वण्णसम्पन्ना गन्धसम्पन्ना रससम्पन्ना। ते मयं रसपथविं हत्थेहि आलुप्पकारकं उपक्कमिह परिभुञ्जितुं। तेसं नो रसपथविं हत्थेहि आलुप्पकारकं उपक्कमतं परिभुञ्जितुं सयम्पभा अन्तरधायि। ताथ अन्तरहिताय चन्दिमसुरिया पातुरहेसुं। चन्दिमसुरिये सु पातुभूते सु नक्खत्तानि तारकरूपानि पातुरहेसुं। [R.91] नक्खत्ते सु तारकरूपे सु पातुभूते सु रत्तिन्दिवा पज्जायिं सु। रत्तिन्दिवे सु पज्जायमाने सु मासड्डमासा पज्जायिं सु। मासड्डमासे सु पज्जायमाने सु उतुसंवच्छरा पज्जायिं सु। ते मयं रसपथविं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्टम्हा। तेसं नो पापकानं येव अकुसलानं धम्मानं पातुभावा रसपथवी अन्तरधायि। रसपथविया अन्तरहिताय भूमिपप्पटको पातुरहोसि। सो अहोसि वण्णसम्पन्ना गन्धसम्पन्ना रससम्पन्ना। ते मयं भूमिपप्पटकं उपक्कमिह परिभुञ्जितुं। ते मयं तं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्टम्हा। तेसं नो पापकानं येव अकुसलानं धम्मानं पातुभावा भूमिपप्पटको अन्तरधायि। भूमिपप्पटके अन्तरहिते पदालता पातुरहोसि। सा अहोसि वण्णसम्पन्ना गन्धसम्पन्ना रससम्पन्ना। ते मयं पदालतं उपक्कमिह परिभुञ्जितुं। ते मयं तं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्टम्हा। तेसं नो पापकानं येव [B.76] अकुसलानं धम्मानं पातुभावा पदालता अन्तरधायि। पदालताय अन्तरहिताय अकट्ठ-[N.72] पाको सालि पातुरहोसि अकणो अथुसो सुद्धो सुगन्धो तण्डुलप्फलो। यं तं सायं सायमासाय आहराम पातो तं होति पक्कं पटिविरूळ्हं। यं तं पातो पातरासाय आहराम सायं तं होति पक्कं

कि आगे चल कर (उस पाप के कारण) उस शालि में कण भी पड़ गया, उस पर तुष भी आ गया। कटे हुए शालि के स्थान पर दूसरा शालि उगने में भी कम हो गया। यों, शालि के खेत खण्ड-खण्ड दिखायी देने लगे।

शालि-क्षेत्रों का विभाजन— १८. “वाशिह! तब वे प्राणी कभी एकत्र हुए और चिन्ता करने लगे— ‘हम प्राणियों में पापधर्म उद्भूत हो गये हैं। हम पहले मनोमय होते हुए प्रीतिभक्ष...शुभस्थायी होते हुए दीर्घायु थे। तब कुछ समय बाद, हमारे लिये पृथ्वी के उदक पर आयु, वर्ण एवं गन्ध से सम्पन्न रस जमा। उसे हम हाथों से उठा-उठाकर तृष्णापूर्वक खाने लगे। उससे हमारी स्वयंप्रभा नष्ट हो गयी। उसके नष्ट होने पर, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रों का उदय हुआ। तब रात-दिन का, मास-पक्ष का, ऋतु-संवत्सर का प्रज्ञान हुआ। यों, हम चिरकाल तक उस रसा पृथ्वी का उपभोग करते रहे। धीरे-धीरे हमारे पाप-धर्म बढ़ जाने से वह रसा पृथ्वी लुप्त हो गयी। उसके लुप्त होने पर वर्णगन्धसम्पन्न भूमिपर्पटक उद्भूत हुआ। उसका भी हमने बहुत दिन उपभोग किया। भूमिपर्पटक के बाद भद्रलता...भद्रलता के बाद अकृष्टपच्य, कण एवं तुष रहित शुद्ध सुगन्धयुक्त तण्डुल फल उत्पन्न हुआ। उसे हम प्रातः सायं पृथक् पृथक् लाकर खाने लगे। पहले हम उसका संग्रह नहीं करते थे, आगे चलकर हमने उसका संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। हमारे इस पापधर्म के कारण उस तण्डुल पर कण और भूसी (तुष) भी आ गयी। अब तो उस तण्डुल का भूमि में उगना भी कम हो गया है। इससे हमारे बीच दैनिक कलह बढ़ेगा। तो क्यों न हम इन शालिक्षेत्रों को

पटिविरूळ्हं । नापदानं पज्जायित्थ । ते मयं अकट्टपाकं सालिं परिभुञ्जन्ता तंभक्खा तदाहारा चिरं दीघमद्धानं अट्टम्हा । तेसं नो पापकानं येव अकुसलानं धम्मानं पातुभावा कणो पि [R.92] तण्डुलं परियोनन्धि, थुसो पि तण्डुलं परियोनन्धि लूनं पि नप्पटिविरूळ्हं । अपदानं पज्जायित्थ । सण्डसण्डा सालयो ठिता । यन्नून मयं सालिं विभजेय्याम मरियादं ठपेय्यामा' ति । "अथ खो ते, वासेट्ठ, सत्ता सालिं विभजिंसु, मरियादं ठपेसु ।

अदिन्नादानादि पज्जायि

१९. अथ खो, वासेट्ठ, अज्जतरो सत्तो लोलजातिको सकं भागं परिरक्खन्तो अज्जतरं भागं अदिन्नं आदियित्वा परिभुञ्जि । तमेनं अगगहेसुं । गहेत्वा एतदवोचुं—'पापकं वत, भो सत्त, करोसि यत्र हि नाम सकं भागं परिरक्खन्तो अज्जतरं भागं अदिन्नं आदियित्वा परिभुञ्जसि । मास्सु, भो सत्त, पुन पि एवरूपमकासी' ति । 'एवं, भो' ति खो, वासेट्ठ, सो सत्तो तेसं सत्तानं पच्चस्सोसि । दुतियं पि खो, वासेट्ठ, सो सत्तो....पे०....ततियं पि खो, वासेट्ठ, सो सत्तो सकं भागं परिरक्खन्तो अज्जतरं भागं अदिन्नं आदियित्वा परिभुञ्जि । तमेनं अगगहेसुं । गहेत्वा एतदवोचुं—'पापकं वत, भो सत्त, करोसि यत्र हि नाम सकं भागं परिरक्खन्तो अज्जतरं भागं अदिन्नं आदियित्वा परिभुञ्जसि । मास्सु, भो सत्त, पुन पि एवरूपमकासी' ति । अज्जे पाणिना पहरिसु, अज्जे लेड्डुना पहरिसु, अज्जे, दण्डेन पहरिसु । तदग्गे खो, वासेट्ठ, अदिन्नादानं पज्जायति, गरहा पज्जायति, मुसावादो पज्जायति, दण्डदानं पज्जायति ।

महासम्मतराजा सम्मन्त्रितो

२०. "अथ खो ते, वासेट्ठ, सत्ता सन्निपत्तिंसु । सन्निपत्तित्वा अनुत्थुनिंसु—'पापका [B.77] वत भो धम्मा सत्तेसु पातुभूता, यत्र हि नाम अदिन्नादानं पज्जायिस्सति, गरहा पज्जायिस्सति, मुसावादो पज्जायिस्सति, दण्डादानं पज्जायिस्सति । यन्नून मयं एतं सत्तं सम्मन्नेय्याम यो नो सम्मा खीयितब्बं खीयेय्य, सम्मा गरहितब्बं गरहेय्य, सम्मा पब्बाजेतब्बं पब्बाजेय्य । मयं पनस्स सालीनं भागं अनुपदस्सामा' ति ।

बाँट लें । बाँट कर अपने अपने क्षेत्रों पर मेंड़ (मर्यादा) बाँध लें ।' तब उन लोगों ने शालिक्षेत्रों को परस्पर बाँट लिया, और उन क्षेत्रों की मेंड़ (मर्यादा) बाँध दी ।

चौरी आदि पापकर्म— १९. "तब, वाशिष्ठ! कोई लोभ-स्वभाव प्राणी अपने खेत (के धान) की रक्षा करता हुआ दूसरे के खेत में से धान चुराकर खाने लगा । दूसरों ने किसी दिन उसे पकड़ लिया । वे बोले— 'अरे सत्त्व! तुम ऐसा करके पाप कमा रहे हो आगे से ऐसा न करना ।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने उस समय तो उनकी बात मान ली, परन्तु दूसरी बार भी तीसरी बार भी पकड़ लिया, तब कोई उसे थप्पड़ मारने लगा, कोई उस पर ढेले फेंकने लगा या फिर कोई लाठी से भी मारने लगा । या किसी ने उसे धमकी देकर ही छोड़ दिया । यों, वाशिष्ठ! तबसे चौरी, निन्दा, मिथ्या भाषण आदि दण्डनीय कर्म जनता में फैल गये ।

क्षत्रियमण्डल : महासम्मत का राजा चुना जाना— २०. "तब, वाशिष्ठ! वे प्राणी पुनः एकत्र हुए । वे चिन्ता करने लगे— 'प्राणियों में पाप धर्मों की अपेक्षाकृत वृद्धि होने लगी है । वे चौरी भी करने लगे हैं, परस्पर निन्दा भी करते हैं, असत्य भाषण भी करते हैं एवं ऐसे ही अन्य दण्डनीय अपराध भी करते हैं । अतः क्यों

“अथ खो ते, वासेट्ठ, सत्ता यो नेसं सत्तो अभिरूपतरोच दस्सनीयतरो च [R.93] पासादिकतरो च महेसकखतरो च तं सत्तं उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—‘एहि, भो सत्त, [N.73] सम्मा खीयितब्बं खीय, सम्मा गरहितब्बं गरह, सम्मा पब्बाजेतब्बं पब्बाजेहि। मयं पन वो सालीनं भागं अनुप्पदस्सामा’ ति। ‘एवं, भो’ ति खो, वासेट्ठ, सो सत्तो तेसं सत्तानं पटिस्सुणित्वा सम्मा खीयितब्बं खीयि, सम्मा गरहितब्बं गरहि, सम्मा पब्बाजेतब्बं पब्बाजेसि। ते पनस्स सालीनं भागं अनुप्पदंसु।

२१. “महाजनसम्मतो ति खो, वासेट्ठ, ‘महासम्मतो, महासम्मतो’ त्वेव पठमं अक्खरं उपनिब्बत्तं। खेतानं अधिपाती ति खो, वासेट्ठ, ‘खत्तियो, खत्तियो’ त्वेव दुतियं अक्खरं उपनिब्बत्तं। धम्मेन परे रञ्जेती ति खो, वासेट्ठ, ‘राजा, राजा’ त्वेव ततियं अक्खरं उपनिब्बत्तं। इति खो, वासेट्ठ, एवमेतस्स खत्तियमण्डलस्स पोरणेन अगगज्जेन अक्खरेन अभिनिब्बत्ति अहोसि तेसं येव सत्तानं, अनज्जेसं; सदिसानं येव, नो असदिसानं; धम्मेनेव, नो अधम्मेन। धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मि दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च।

ब्राह्मणमण्डलं

२२. “अथ खो तेसं, वासेट्ठ, सत्तानं येव एकच्चानं एतदहोसि—‘पापका वत, भो, धम्मा सत्तेसु पातुभूता, यत्र हि नाम अदिन्नादानं पज्जायिस्सति, गरहा पज्जायिस्सति, मुसावादो पज्जायिस्सति, दण्डादानं पज्जायिस्सति, पब्बाजनं पज्जायिस्सति। यन्नून मयं पापके [R.94] अकुसले धम्मे वाहेय्यामा’ ति। ते पापके अकुसले धम्मे वाहेसुं। पापके अकुसले धम्मे वाहेन्ती ति खो, वासेट्ठ, ‘ब्राह्मणा, ब्राह्मणा’ त्वेव पठमं अक्खरं उपनिब्बत्तं।

न हम एक ऐसे प्राणी का निर्वाचन कर लें, जो हमारे निन्दनीय कर्मों की निन्दा करे, उचित कर्मों को हमें बतलाता रहे और दण्डनीय (निष्कासनीय) को दण्ड (निष्कासन) दे। इसके बदलें में हम उस प्राणी को अपने खेत में पैदा हुए धान का कुछ भाग देते रहेंगे।

“वाशिष्ठ! तब वे प्राणी उनमें जो अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर, दर्शनीय, मनोमोहक एवं प्रभावशाली था, उसके पास जाकर उससे यों बोले—“आओ! भो सत्त्व! आप हमारे उचितानुचित (कर्म) का भलीभाँति अनुशासन करें। हमारे निन्दनीय कर्म की निन्दा करें और निष्कासनीय का निष्कासन करें। इसके बदले में हम आप को अपने शालिभाग में छठा भाग प्रदान करते रहेंगे।” ‘बहुत अच्छा’ कहकर उसने उनकी बात को स्वीकार कर लिया। और वह प्राणी तब से उनके उचितानुचित का..छठा भाग प्रदान करते रहे।

२१. “क्योंकि वह निर्वाचित प्राणी महाजनसम्मत था, अतः उसके लिये उसी शब्द का संक्षिप्त पद ‘महासम्मत’ यह लेकर उसको सम्बोधित किया जाने लगा। क्योंकि वह सभी क्षेत्रों का अधिपति बना दिया गया था, अतः ‘क्षत्रिय’ इस दूसरे नाम (अक्षर) से भी लोग उसे सम्बोधित करने लगे। इसी तरह क्योंकि वह दूसरों को धर्म-अनुशासन से प्रसन्न (रअन) करता था, अतः लोग उसे ‘राजा’ इस तीसरे नाम से भी पुकारने लगे। वाशिष्ठ! इस तरह इस क्षत्रियमण्डल का प्राचीन अग्रगण्य अक्षर (नाम) से निर्माण हुआ। उन्हीं पुरुषों का, दूसरों का नहीं। धर्म से ही, अधर्म से नहीं। अतः वाशिष्ठ! मनुष्य में धर्म ही श्रेष्ठ है—इस जन्म में भी और परलोक में भी।

ब्राह्मण-मण्डल- २२. वाशिष्ठ! पुनः एकत्र हुए उन प्राणियों को ही यह विचार आया—‘प्राणियों में पापधर्म बहुत बढ़ते जा रहे हैं। उन्हें ‘चौरी’ भी कहा जायगा, ‘परनिन्दा’ भी, ‘असत्यभाषण’ भी,

[B.78] ते अरञ्जायतने पण्णकुटियो करित्वा पण्णकुटीसु ज्ञायन्ति वीतङ्गारा वीतधूमा पन्नमुसला सायं सायमासाय पातो पातरासाय गामनिगमराजधानियो ओसरन्ति घासमेसमाना। ते घासं पटिलभित्वा पुनदेव अरञ्जायतने पण्णकुटीसु ज्ञायन्ति। तमेनं मनुस्सा दिस्वा एवमाहंसु— 'इमे खो, भो सत्ता अरञ्जायतने पण्णकुटियो करित्वा पण्णकुटीसु ज्ञायन्ति वीतङ्गारा वीतधूमा पन्नमुसला, सायं सायमासाय पातो पातरासाय गामनिगमराजधानियो ओसरन्ति घासमेसमाना। ते घासं पटिलभित्वा पुनदेव अरञ्जायतने पण्णकुटीसु ज्ञायन्ती' ति। ज्ञायन्ती ति खो, वासेट्ठ, [N.74] 'ज्ञायका, ज्ञायका' त्वेव दुतियं अक्खरं उपनिब्बत्तं।

तेसं येव खो, वासेट्ठ, सत्तानं एकच्चे सत्ता अरञ्जायतने पण्णकुटीसु तं ज्ञानं अनभिसम्भुणमाना गामसामन्तं निगमसामन्तं ओसरित्वा गन्थे करोन्ता अच्छन्ति। तमेनं मनुस्सा दिस्वा एवमाहंसु— 'इमे खो, भो, सत्ता अरञ्जायतने पण्णकुटीसु तं ज्ञानं अनभिसम्भुणमाना गामसामन्तं निगमसामन्तं ओसरित्वा गन्थे करोन्ता अच्छन्ति। न दानिमे ज्ञायन्ती' ति। न दानिमे ज्ञायन्ती ति खो, वासेट्ठ, 'अज्झायका अज्झायका' त्वेव ततियं अक्खरं उपनिब्बत्तं। हीनसम्मतं खो पन, वासेट्ठ, तेन समयेन होति, तदेतरहि सेट्ठसम्मतं। इति खो, वासेट्ठ, एवमेतस्स [R.95] ब्राह्मणमण्डलस्स पोरणेन अगगज्जेन अक्खरेन अभिनिब्बत्ति अहोसि तेसं येव सत्तानं अनज्जेसं; सदिसानं येव नो असदिसानं; धम्मेनेव, नो अधम्मेन। धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मिं दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च।

वेस्समण्डलं

२३. "तेसं येव खो, वासेट्ठ, सत्तानं एकच्चे सत्ता मेथुनं धम्म समादाय विसुकम्मन्ते पयोजेसुं। मेथुनं धम्मं समादाय विसुकम्मन्ते पयोजेन्ती ति खो, वासेट्ठ, 'वेस्सा, वेस्सा' त्वेव

'दण्डनीय' भी, 'निष्कासनीय' भी कहा जायगा। तो क्यों न हम पापमय अकुशल धर्मों को छोड़ दें।' उन्होंने उन पापधर्मों को छोड़ दिया, बाह (त्याग) दिया। इस 'बाह' (=त्याग) के कारण वे 'ब्राह्मण' इस प्रथम अक्षर (नाम) से सम्बोधित हुए। वे जङ्गलो में पर्णकुटी बनाकर उनमें रहते हुए धर्मसाधना करने लगे। उन की पर्णकुटियों में न अग्नि जलती थी, न धूआँ ही उठता था, न उनको मूसल की ही आवश्यकता थी। वे सायङ्काल तथा प्रातःकाल के भोजन के लिये पास के ग्रामों, निगमों या नगरों (राजधानियों) में जाकर वहाँ भोजन पा जाते थे। भोजन पाकर वे पुनः अपनी पर्णकुटियों में आकर ध्यानमग्न हो जाते थे। उन्हें देखकर मनुष्यों ने कहा— 'अरे! ये प्राणी जङ्गलों में पर्णकुटी बनाकर..... ध्यानमग्न (ज्ञायन्ति) रहते हैं। क्योंकि वासिष्ठ! वे ध्यान करते हैं, अतः उन लोगों का 'ज्ञायक' (ध्यायक) यह दूसरा नाम पड़ गया। वासिष्ठ! आगे चलकर उन्हीं सत्त्वों में से कुछ लोग ध्यान में मन न लगने के कारण, ग्राम या निगम के पास ग्रन्थ (शास्त्र) बनाते हुए रहने लगे। उन्हें देखकर मनुष्यों ने कहा— '....ये सत्त्व ग्रन्थ रचते हैं, ध्यान नहीं करते। अब ये ध्यान नहीं करते (न ज्ञायन्ति) इसलिये इन सत्त्वों का तीसरा नाम 'अज्झायक' (अध्यापक) पड़ गया। वासिष्ठ! उस समय यह (ग्रन्थलेखन) नीच कर्म समझा जाता था, आज वही कर्म श्रेष्ठ समझा जाता है। वासिष्ठ! इस तरह इस ब्राह्मणमण्डल का पुराने अग्रगण्य अक्षर (नाम) से निर्माण हुआ, उन्हीं प्राणियों का; दूसरों का नहीं। धर्म से ही हुआ, अधर्म से नहीं। अतः वासिष्ठ! धर्म ही मनुष्यों में श्रेष्ठ है— इस जन्म में भी और परलोक में भी।

वैश्य-मण्डल— २३. "वासिष्ठ! उन्हीं प्राणियों में से कुछ प्राणी मैथुन धर्म का आलम्बन कर नाना कार्यों

अक्खरं उपनिब्बत्तं। इति खो, वासेट्ठ, एवमेतस्स वेस्समण्डलस्स पोरारणेन अगगज्जेन [B.79] अक्खरेन अभिनिब्बत्ति अहोसि तेसं येव सत्तानं, अनज्जेसं; सदिसानं येव नो असदिसानं; धम्मेनेव, नो अधम्मेन। धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मि दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च।

सुद्धमण्डलं

२४. “तेसं येव खो, वासेट्ठ, सत्तानं ये ते सत्ता अवसेसा ते लुद्धाचारा खुद्धाचारा अहेसुं। लुद्धाचारा खुद्धाचारा ति खो, वासेट्ठ, ‘सुद्धा, सुद्धा’ त्वेव अक्खरं उपनिब्बत्तं। इति खो, वासेट्ठ, एमेतस्स सुद्धमण्डलस्स पोरारणेन अगगज्जेन अक्खरेन अभिनिब्बत्ति अहोसि तेसं येव सत्तानं, अनज्जेसं; सदिसानं येव, नो असदिसानं; धम्मेनेव नो अधम्मेन। धम्मो हि, वासेट्ठो, सेट्ठो जनेतस्मि दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च।

२५. “अहु खो सो, वासेट्ठ, समयो यं खत्तियो पि सकं धम्मं गरहमानो [N.75] अगारस्मा अनागारियं पब्बजति—‘समणो भविस्सामी’ ति। ब्राह्मणो पि खो, वासेट्ठ, ...पे०....वेस्सो पि खो, वासेट्ठ, ...पे०....सुद्धो पि खो, वासेट्ठ, सकं धम्मं गरहमानो [R.96] अगारस्मा अनगारियं पब्बजति—‘समणो भविस्सामी’ ति। इमेहि खो, वासेट्ठ चतुहि मण्डलेहि समणमण्डलस्स अभिनिब्बत्ति अहोसि तेसं येव सत्तानं, अनज्जेसं; सदिसानं येव नो असदिसानं; धम्मेनेव नो अधम्मेन। धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मि दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च।

४. खीणासवो नेसं अगगमक्खायति

२६. “खत्तियो पि खो, वासेट्ठ, कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा मिच्छादिट्ठिको मिच्छादिट्ठिकम्मसमादानो मिच्छादिट्ठिकम्मसमादानहेतु कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गातिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। ब्राह्मणो पि खो, वासेट्ठ, ...पे०....वेस्सो पि खो, वासेट्ठ....सुद्धो पि खो, वासेट्ठ,....समणो पि खो, वासेट्ठ, कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा मिच्छादिट्ठिको मिच्छादिट्ठि—

में व्यापृत हो गये। यों मैथुन का धर्म का सेवन करते हुए उन के नाना (विषु) कर्मों में व्यापृत होने के कारण वे ‘वैश्य’ कहलाने लगे। वासिष्ठ! इस तरह इस वैश्यमण्डल का भी प्रथम अक्षर (नाम) से ही सम्बोधन प्रचलित हुआ।....।

शूद्र-मण्डल- २४. “वासिष्ठ! उन्हीं सत्त्वों में से अवशिष्ट जो क्षुद्र आचार वाले प्राणी थे उनके ‘क्षुद्र आचार’ या ‘शूद्र आचार’—इस विस्तृत शब्दसमूह से ‘शूद्र’ यह संक्षिप्त नाम उद्भूत हुआ। वाशिष्ठ! इस तरह....परलोक में भी।

श्रमण-मण्डल- २५. “वासिष्ठ! एक समय आता है जब क्षत्रिय भी...ब्राह्मण भी...वैश्य भी...शूद्र भी ‘श्रमण बनूँगा’—यह कहकर घर छोड़कर बेघर हो जाता है। वासिष्ठ! उक्त चार मण्डलों में से ही श्रमण मण्डल का उत्पाद उन्हीं सत्त्वों में से हुआ है, अन्य सत्त्वों में से नहीं; धर्म से ही, अधर्म से नहीं। अतः वाशिष्ठ! धर्म ही इस जनता में श्रेष्ठ है, इस लोक में भी और परलोक में भी।

४. इनमें क्षीणास्त्रव (ज्ञानी) श्रेष्ठ है

२६. “वासिष्ठ! क्षत्रिय काया से दुश्चरित कर, वाणी से दुश्चरित कर, मन से दुश्चरित कर मिथ्यादृष्टि होता हुआ मिथ्यादृष्टियुक्त कर्मों का ग्रहण करता हुआ, उनके कारण, इस देहपात के बाद,

कम्मसमादानो मिच्छादिट्टिकम्मसमादानहेतु कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति।

[B.80] “खत्तियो पि खो, वासेट्ठ, कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा सम्मादिट्टिको सम्मादिट्टिकम्मसमादानो सम्मादिट्टिकम्मसमादानहेतु कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जति। ब्राह्मणो पि खो, वासेट्ठ....पे०....वेस्सो पि खो, वासेट्ठ....सुद्धो पि खो, वासेट्ठ....समणो पि खो, वासेट्ठ, कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा सम्मादिट्टिको सम्मादिट्टिकम्मसमादानो सम्मादिट्टिकम्मसमादानहेतु कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जति।

२७. “खत्तियो पि खो, वासेट्ठ, कायेन द्वयकारी वाचाय द्वयकारी मनसा द्वयकारी विमिस्सदिट्टिको विमिस्सदिट्टिकम्मसमादानो विमिस्सदिट्टिकम्मसमादानहेतु कायस्स भेदा परं मरणा सुखदुक्खप्पटिसंवेदी होति। ब्राह्मणो पि खो, वासेट्ठ....पे०....वेस्सो पि खो, वासेट्ठ....सुद्धो [R.97] पि खो, वासेट्ठ....समणो पि खो, वासेट्ठ, कायेन द्वयकारी वाचाय द्वयकारी विमिस्स- [N.76] दिट्टिको विमिस्सदिट्टिकम्मसमादानो विमिस्सदिट्टिकम्मसमादानहेतु कायस्स भेदा परं मरणा सुखदुक्खप्पटिसंवेदी होति।

बोधिपक्खियभावना

२८. “खत्तियो पि खो, वासेट्ठ, कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, सत्तन्नं बोधिपक्खियानं धम्मानं भावनमन्वाय, दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायति। ब्राह्मणो पि खो, वासेट्ठ....पे०....वेस्सो पि खो, वासेट्ठ....सुद्धो पि खो, वासेट्ठ....समणो पि खो, वासेट्ठ, कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो, सत्तन्नं बोधिपक्खियानं^१ भावनमन्वाय, दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायति।

२९. “इमेसं हि, वासेट्ठ, चतुन्नं वण्णानं यो होति भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा मरणान्तर अपाययुक्त दुर्गतिमय नरक में गिरता है। ब्राह्मण भी....वैश्य भी....शूद्र भी....नरक में गिरता है।

“उधर, वाशिष्ठ! क्षत्रिय भी काया से सुचरित कर, वाणी से, मन से सुचरित कर, सम्यग्दृष्टि होता हुआ, सम्यग्दृष्टियुक्त कर्म करता हुआ, उनके कारण, इस देह के पात के बाद, मरणान्तर सुगतिमय स्वर्ग लोक प्राप्त करता है। ब्राह्मण भी....वैश्य भी....शूद्र भी....स्वर्ग लोक प्राप्त करता है।

२७. “वाशिष्ठ! क्षत्रिय भी काय, वचन एवं मनः कर्म से (उपर्युक्त) दोनों तरह के (अच्छे-बुरे) दोनों से मिश्रित धारणा रखकर मिश्रित धारणा वाले कर्म करता हुआ, उनके कारण, इस देहपात के बाद मरणान्तर सुख-दुःखमिश्रित भोग वाले स्थानों में उत्पन्न होता है। ब्राह्मण भी....वैश्य भी....शूद्र भी....श्रमण भी....सुख-दुःखमिश्रित भोगवाले स्थानों में उत्पन्न होता है।

बोधिपक्षीय भावना— २८. “वाशिष्ठ! क्षत्रिय भी काय, वचन एवं मन से संयत होकर सैंतीस बोधिपक्षीय धर्मों की भावना करके इसी जन्म में परिनिर्वृत हो सकता है। ब्राह्मण....वैश्य भी....शूद्र भी.... श्रमण परिनिर्वृत हो सकता है।

१. सत्तन्नं बोधिपक्खियानं ति। “चत्तारो सतिपट्टाना” ति आदि कोट्टासवसेन सत्तन्नं; पटिपाटिया पन सत्तत्तिंसाय बोधिपक्खियानं धम्मानं। (सु०नि०, दी०नि० अट्ठकथा, ११३ पृ०, तृ० भा०)

कतरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिकखीणभवसंयोजनो सम्मदज्जा विमुत्तो, [B.81] सो नेसं अग्गमक्खायति; धम्मेनेव, नो अधम्मेन। धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मिं दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायं च।

३०. “ब्रह्मना पेसा, वासेट्ठ, सनङ्कुमारेन गाथा भासिता—

‘खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं, ये गोत्तपटिसारिनो।

विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे’ ति ॥

“सा खो पनेसा, वासेट्ठ, गाथा ब्रह्मना सनङ्कुमारेन सुगीता नो दुग्गीता, सुभासिता नो दुब्भासिता, अत्थसंहिता नो अनत्थसंहिता, अनुमता मया। अहं पि, वासेट्ठ, एवं वदामि—

‘खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं, ये गोत्तपटिसारिनो।

[R.98]

विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे’ ति ॥

इदमवोच भगवा। अत्तमना वासेट्ठभारद्वाजा भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति ॥

अग्गज्जसुत्तं निट्ठितं चतुत्थं ॥



२९. “वाशिष्ठ! इन्हीं चार वर्णों में जो भिक्षु अर्हत्, क्षीणाश्रव, पूर्ण साधक, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थप्राप्त, भवबन्धनमुक्त, ज्ञानी एवं विमुक्त होता है वही उनमें श्रेष्ठ कहलाता है। धर्म से ही, अधर्म से नहीं। अतः वाशिष्ठ! धर्म ही इस मनुष्य जाति में श्रेष्ठ है, इस लोक में भी और परलोक में भी।

३०. “वाशिष्ठ! ब्रह्मा सनत्कुमार ने भी (इसके अनुमोदन में) यही गाथा कही है—

‘गोत्र की मान्यता से लोक-व्यवहार चलाने वाले जनसमाज में क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है। जो विद्या और आचरण से युक्त है, वह देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ है।’

“वाशिष्ठ! ब्रह्मा सनत्कुमार ने यह गाथा उचित ही कही है, अनुचित नहीं। सार्थक ही कही है, निरर्थक नहीं। इसका मैं भी अनुमोदन करता हूँ। मैं भी यही कहता हूँ— ‘गोत्र की मान्यता....देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ है।’

भगवान् ने यह कहा। सन्तुष्ट हो वाशिष्ठ एवं भारद्वाज ने भगवान् के कथन का अनुमोदन किया ॥

चतुर्थ अग्रगण्यसूत्र समाप्त ॥



५. सम्प्रसादनीयसूतं

१. सारिपुत्तस्स सीहनादो

[N.77, B.82, R.99] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्बवने। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—“एवंपसन्नो अहं, भन्ते, भगवति—‘न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति अज्जो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्योभिज्जतरो यदिदं सम्बोधिंयं’ ” ति।

२. “उळारा खो ते अयं, सारिपुत्त, आसभी वाचा भासिता। एकंसो गहितो। सीहनादो नदितो—‘एवंपसन्नो अहं, भन्ते, भगवति; न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति अज्जो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्योभिज्जतरो यदिदं सम्बोधिंयं’ ति। किं ते, सारिपुत्त, ये ते अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो चेतसा चेतो परिच्च विदिता— [R.100] ‘एवंसीला ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंधम्मा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंपज्जा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंविहारी ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी’ ” ति? “नो हेतं, भन्ते”।

“किं पन ते, सारिपुत्त, ये ते भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो चेतसा चेतो परिच्च विदिता—‘एवंसीला ते भगवन्तो भविस्सन्ति इति पि, एवंधम्मा....एवंपज्जा....एवंविहारी....एवंविमुत्ता ते भगवन्तो भविस्सन्ति इति पी’ ” ति? “नो हेतं, भन्ते”।

[B.83] “किं पन ते, सारिपुत्त, अहं एतरहि अहं सम्मासम्बुद्धो चेतसा चेतो परिच्च विदितो—‘एवंसीलो भगवा इति पि, एवंधम्मो....एवंपज्जो....एवंविहारी....एवंविमुत्तो भगवा इति पी’ ” ति?

“नो हेतं, भन्ते”।

[N.78] “एत्थ च हि ते, सारिपुत्त, अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मासम्बुद्धेसु चेतोपरियजाणं नत्थि। अथ किञ्चरहि ते अयं, सारिपुत्त, उळारा आसभी वाचा भासिता,

५. सम्प्रसादनीयसूत्र

१. सारिपुत्र का सिंहनाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) नालन्दा के प्रावारिक अम्रवन में साधना हेतु विराजमान थे। तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया— “भन्ते! भगवान् में मेरी इस प्रकार की श्रद्धा है (मैं आपके विषय में ऐसा मानता हूँ)— ‘इस समय परम ज्ञान (सम्बोधि) में भगवान् से बढ़कर कोई भी अन्य श्रमण—ब्राह्मण नहीं है।’

२-३. “सारिपुत्र! यह तेरी बहुत उदार एवं वृषभतुल्य वाणी है। तुमने तो यह एकपक्षीय बात कह डाली। यह तुम्हारा सिंहनाद ही है कि तुम भगवान् के विषय में ऐसा मानते हो कि भगवान् से बढ़कर

एकंसो गहितो, सीहनादो नदितो—‘एवंपसन्नो अहं, भन्ते, भगवति— न चाहु न च भविस्सति न चेतर्हि विज्जति अज्जो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्योभिज्जतरो यदिदं सम्बोधिंयं’” ति ?

३. “न खो मं, भन्ते, अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मासम्बुद्धेसु चेतोपरियजाणं अत्थि; अपि च, मे धम्मन्वयो विदितो। सेय्यथापि, भन्ते, रज्जो पच्चन्तिमं नगरं [R.101] दळ्हुद्धापं दळ्हुपाकारतोरणं एकद्वारं। तत्रस्स दोवारिको पण्डितो व्यत्तो मेधावी अज्जातानं निवारेता जातानं पवेसेता। सो तस्स नगरस्स समन्ता अनुपरियायपथं अनुक्कममानो न पस्सेय्य पाकारसन्धिं वा पाकारविवरं वा अन्तमसो बिळारनिकखमनमत्तं पि। तस्स एवमस्स—‘ये खो केचि ओळारिका पाणा इमं नगरं पविसन्ति वा निक्खमन्ति वा सब्बे ते इमिना व द्वारेन पविसन्ति वा निक्खमन्ति वा’ ति। एवमेव खो मे, भन्ते, धम्मन्वयो विदितो। ये ते भन्ते, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पज्जाय दुब्बलीकरणे, चतूसु सतिपट्टानेसु सुप्पतिट्ठितचित्ता, सत्त सम्बोज्झङ्गे यथाभूतं भावेत्वा, अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झिंसु। ये पि ते, भन्ते, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पज्जाय दुब्बलीकरणे, चतूसु सतिपट्टानेसु सुप्पतिट्ठितचित्ता, सत्त सम्बोज्झङ्गे यथाभूतं भावेत्वा, अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झिस्सन्ति। भगवा पि, भन्ते, एतर्हि अरहं सम्मासम्बुद्धो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पज्जाय दुब्बलीकरणे, चतूसु सतिपट्टानेसु [B.84] सुप्पतिट्ठितचित्तो, सत्त सम्बोज्झङ्गे यथाभूतं भावेत्वा, अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो।

४. “इधाहं, भन्ते, येन भगवा तेनुपसङ्कमिं धम्मस्सवनाय। तस्स मे, भन्ते, [R.102] भगवा धम्मं देसेति उत्तरुत्तरं पणीतपणीतं कण्हसुक्कसप्पटिभागं। यथा यथा मे, भन्ते, [N.79] भगवा धम्मं देसेसि उत्तरुत्तरं पणीतपणीतं कण्हसुक्कसप्पटिभागं तथा तथाहं तस्मिं धम्मे अभिज्जा इधेकच्चं धम्मं धम्मेसु निट्ठमगमं; सत्थरि पसीदिं—‘सम्मासम्बुद्धो भगवा, स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सुप्पटिपन्नो सावकसङ्घो’ ति।

२. एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति

(१) कुसलेसु धम्मेसु

५. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति कुसलेसु धम्मेसु। तत्रिमे कुसला धम्मा, सेय्यथिदं—चत्तारो सतिपट्टाना, चत्तारो सम्पधाना, चत्तारो इद्धिपादा,

इस समय कोई भी अन्य श्रमण—ब्राह्मण परम ज्ञान की प्राप्ति में उत्कृष्ट नहीं है।.....पूर्ववत्.....(महापरिनिर्वाण सूत्र, उपबन्ध सं० १५-१६ के अनुसार यहाँ भी विस्तार कर लें)।

४. “भन्ते! एक बार मैं जहाँ भगवान् थे, वहाँ धर्मश्रवण हेतु गया। तब मुझे भगवान् ने कुशल—अकुशल का विभाजन कर उत्तरोत्तर (आगे से आगे) सुन्दर धर्म का जैसे—जैसे उपदेश किया; वैसे वैसे उन धर्मों में से कुछ को जानकर उन धर्मों में मेरी श्रद्धा (निष्ठा) हुई। मैं शास्ता के प्रति ऐसे अत्यन्त श्रद्धावान् हो गया—‘भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध हैं, उनका धर्म स्वाख्यात है, भगवान् का भिक्षु (श्रावक) सङ्घ भी सुष्ठुतया मार्गारूढ है।

पञ्चिन्द्रियानि, पञ्च बलानि, सत्त बोद्धङ्गा, अरियो अट्टङ्गिको मग्गो। इध, भन्ते, भिक्षु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्चाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मं सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। एतदानुत्तरियं, भन्ते, कुसलेसु धम्मेसु। तं भगवा असेसमभिजानाति। तं भगवतो असेसमभिजानतो उत्तरि अभिज्जेय्यं नत्थि यदभिजानं अज्जो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्योभिज्जतरो अस्स, यदिदं कुसलेसु धम्मेसु।

(२) आयतनपण्णत्तीसु

६. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति आयतनपण्णत्तीसु। छयिमानि, भन्ते, अज्झत्तिकबाहिरानि आयतनानि—चक्खुं चेव रूपा च, सोतं चेव सद्दा च, घानं चेव गन्धा च, जिह्वा चेव रसा, च कायो चेव फोढुब्बा च, मोन चेव धम्मा च। एतदानुत्तरियं, भन्ते, आयतनपण्णत्तीसु। तं भगवा असेसमभिजानाति। तं भगवतो असेसमभिजानतो उत्तरि अभिज्जेय्यं नत्थि यदभिजानं अज्जो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता [R.103] भिय्योभिज्जतरो अस्स, यदिदं आयतनपण्णत्तीसु।

(३) गम्भावक्कन्तीसु

[B.85] ७. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति गम्भावक्कन्तीसु। चतस्सो इमा, भन्ते, गम्भावक्कन्तियो—इध, भन्ते, एकच्चो असम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति; असम्पजानो मातुकुच्छिस्मिं ठाति; असम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति। अयं पठमा गम्भावक्कन्ति।

२. भगवान् के उपदेशों की विशेषता

(१) कुशल धर्मों में— ५. “भन्ते! इससे भी बढ़कर विशेषता यह है कि भगवान् कुशल धर्मों का सुविशद व्याख्यान करते हैं। वे कुशल धर्म ये हैं; जैसे— चार स्मृतिप्रसाद, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियों, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग और अष्टाङ्गिक मार्ग। भन्ते! इन कुशल धर्मों का स्पष्ट ज्ञान होने से साधक भिक्षु को आश्रवों के क्षय से आश्रवरहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात्कार करने में अत्यधिक सरलता होती है— यही आप के धर्मोपदेश की विशेषता है। इस विशेषता को भगवान् पूर्णरूप से जानते हैं। इस तरह पूर्ण रूप से जानते हुए भगवान् को कुशल धर्मों के विषय में इससे अधिक जानने के लिये कुछ रह ही नहीं जाता कि कोई अन्य श्रमण या ब्राह्मण उसे जानने का कोई प्रयास करें।

(२) आयतन—प्रज्ञप्तियों में— ६. “इससे भी बढ़कर विशेषता यह है कि जो भगवान् आयतन—प्रज्ञप्तियों का यों उपदेश करते हैं। भन्ते! ये आन्तरिक और बाह्य छह आयतन हैं— चक्षु और रूप, श्रोत्र और शब्द, घ्राण और गन्ध, जिह्वा और रस, काया एवं स्पर्श तथा मन और धर्म। भन्ते! आयतन, प्रज्ञप्तियों (के विषय) में यह (ज्ञान) सबसे बढ़कर है, जिसे भगवान् ही अशेष रूप से जानते हैं। इस अशेष ज्ञान को भगवान् से अधिक कोई अन्य श्रमण—ब्राह्मण नहीं जानता।

(३) गर्भावक्रान्ति के विषय में— ७. “फिर, भगवान् जो गर्भावक्रान्ति (गर्भप्रवेश) के विषय में भिक्षुओं को उपदेश करते हैं, वह भी अन्यो से विशेष है। आप के द्वारा बतायी गर्भावक्रान्तियाँ चार हैं— (१) भन्ते! यहाँ कोई (प्राणी) न जानते हुए माता की कोंख में प्रवेश करता है, वहाँ ठहरता है और वहाँ से निकलता है। यह गर्भ में आने का पहला प्रकार है।

“पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति; असम्पजानो [N.80] मातुकुच्छिस्मिं ठाति; असम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति। अयं दुतिया गम्भावक्कन्ति।

“पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति; सम्पजानो मातुकुच्छिस्मिं ठाति; असम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति। अयं ततिया गम्भावक्कन्ति।

“पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति; सम्पजानो मातुकुच्छिस्मिं ठाति; सम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति। अयं चतुत्थी गम्भावक्कन्ति। एतदानुत्तरियं, भन्ते, गम्भावक्कन्तीसु।

(४) आदेसनविधासु

८. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति आदेसनविधासु। चतस्सो इमा, भन्ते, आदेसनविधा—इध, भन्ते, एकच्चो निमित्तेन आदिसति—‘एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं’ ति। सो बहं चे पि आदिसति, तथेव तं होति नो अज्जथा। अयं पठमा आदेसनविधा। (१)

“पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो न हेव खो निमित्तेन आदिसति; अपि च खो मनुस्सानं वा अमनुस्सानं वा देवतानं वा सद्दं सुत्वा आदिसति—‘एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं’ ति। सो बहं चे पि आदिसति, तथेव तं होति नो अज्जथा। अयं दुतिया आदेसनविधा। (२)

“पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो न हेव खो निमित्तेन आदिसति, ना पि मनुस्सानं वा अमनुस्सानं वा देवतानं वा सद्दं सुत्वा आदिसति; अपि च खो वितक्कयतो [R.104, B.86] विचारयतो वितक्कं- विप्फारसद्दं सुत्वा आदिसति—‘एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि

(२) “भन्ते! फिर कोई अन्य प्राणी जानता हुआ माता की कोंख में प्रवेश....निकलता है— यह गर्भ में आने का दूसरा प्रकार है।

(३) “भन्ते! फिर कोई जानता हुआ माता की कोंख में प्रवेश करता है, वहाँ ठहरता है; परन्तु न जानता हुआ निकलता है— यह गर्भ में आने का तीसरा प्रकार है।

(४) “भन्ते! फिर कोई गर्भ में प्रवेश, स्थिति एवं निष्क्रमण तीनों को जानता रहता है— यह गर्भावक्रान्ति का चतुर्थ प्रकार है। गर्भावक्रान्ति के विषय में आपका यह विशिष्ट ज्ञान है।

(४) आदेशनाविधि में—८. “भन्ते! इससे भी बढ़कर विशेषता है आप की आदेशनाविधि की पद्धति में। भन्ते! अपने चार प्रकार की आदेशना-विधि कही हैं। जैसे—

(१) “भन्ते! कोई निमित्त (लक्षण) जानकर आदेश करता है— ‘तुम्हारा ऐसा मन है, तुम्हारा वैसा मन है, तुम्हारा ऐसा चित्त है।’ वह बहुत स्पष्ट करे तो भी उसे इसी तरह कहना पड़ेगा, अन्यथा नहीं। यह प्रथम आदेशना प्रकार है।

(२) “भन्ते! कोई अन्य आदेशक निमित्त जानकर नहीं, अपितु किन्हीं विशिष्ट मनुष्यों या देवताओं के शब्द सुनकर आदेश करता है— तुम्हारा ऐसा मन है....। यह द्वितीय आदेशना प्रकार है।

(३) “भन्ते! कोई तीसरा आदेशक न निमित्त जानकर, न देवता का शब्द सुनकर ही, अपितु वितर्क एवं विचार समाधि में आरूढ़ चित्त को स्वचित्त से जानकर आदेश देता है— ऐसा तुम्हारा मन है....। यह तृतीय आदेशना प्रकार है।

ते चित्तं' ति। सो बहु चे पि आदिसति, तथेव तं होति नो अञ्जथा। अयं ततिया आदेसनविधा।
(३)

“पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो न हेव खो निमित्तेन आदिसति, ना पि मनुस्सानं वा अमनुस्सानं वा देवतानं वा सद्दं सुत्वा आदिसति, ना पि वितक्कयतो विचारयतो वितक्कविप्फारसद्दं सुत्वा आदिसति; अपि च खो अवितक्कं अविचारं समाधिं समापन्नस्स चेतसा चेतो परिच्च पजानाति—‘यथा इमस्स भोतो मनोसङ्खारा पणिहिता तथा इमस्स चित्तस्स अनन्तरा इमं नाम [N.81] वितक्कं वितक्केस्सती’ ति। सो बहु चे पि आदिसति तथेव तं होति नो अञ्जथा ति। अयं चतुत्था आदेसनविधा। एतदानुत्तरियं, भन्ते, आदेसनविधासु। (४)

(५) दस्सनसमापत्तीसु

९. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति दस्सनसमापत्तीसु। चतस्सो इमा, भन्ते, दस्सनसमापत्तियो—

“इध, भन्ते, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोग-मन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते इममेव कायं उद्धं पादतला अधो केसमत्थका तचपरियन्तं पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खति—‘अत्थि इमस्मिं काये केसा लोमा नखा दन्ता तचो मंसं न्हार अट्ठि अट्ठिमिञ्जं वक्कं हृदयं यकनं किलोमकं पिहकं पप्फासं अन्तं अन्तगुणं उदरियं करीसं पित्तं सेम्हं पुब्बो लोहितं सेदो मेदो अस्सु वसा खेलो सिङ्खानिका लसिका मुत्तं’ ति। अयं पठमा दस्सनसमापत्ति।
(१)

[R.105] “पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते इममेव कायं उद्धं पादतला अधो केसमत्थका तचपरियन्तं [B.87] पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खति—‘अत्थि इमस्मिंकाये केसा लोमा....

(४) “और, भन्ते! कोई अन्य आदेशक न निमित्त से, न देवता का शब्द सुनकर और न वितर्क-विचार से निकले शब्द को जानकर अपितु वितर्क-विचाररहित समाधि में स्थित चित्त से चित्त की बात जानकर आदेश करता है—‘ये इसके मनः संस्कार एकाग्र (प्रणिहित) हैं, जिसके कारण, इसके बाद ही यह वितर्क होगा।’.....। यह चतुर्थ आदेशनाविधि है। भन्ते! आदेशनाविधि के बोधन का यह आपका विशिष्ट ज्ञान है।

(५) दर्शनसमापत्तियों में—९. “फिर, भन्ते! भगवान् दर्शन-समापत्तियों के विषय में जिस प्रकार बताते हैं, वह भी आपका सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है। भन्ते! आपके मतानुसार दर्शन-समापत्तियाँ चार प्रकार की हैं। जैसे—

(१) “भन्ते! यहाँ कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योग, प्रधान, अनुयोग, अप्रमाद (आलस्यरहित) सम्यक् मनोयोग के साथ वैसी चित्तैकाग्रता (समाधि) को प्राप्त होता है, जैसी चित्तैकाग्रता से उस समाहित चित्त में पैर के तलवे से ऊपर और शिर से नीचे तक चर्मावृत इस शरीर को नाना प्रकार की गन्दगी से भरा हुआ पाता है कि इस शरीर में यही तो सब कुछ है— केश, रोम, नख, दन्त....और मूत्र। यह पहली दर्शनसमापत्ति है।

(२) “फिर, भन्ते! यहाँ कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योग....के साथ वैसी मनःसमाधि को प्राप्त करता

पे०....लसिका मुत्तं' ति। अतिक्रम्य च पुरिसस्स छविमंसलोहितं अट्ठिं पच्चवेक्खति। अयं द्रुतिया दस्सनसमापत्ति। (२)

“पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते इममेव कायं उद्धं पादतला अधो केसमत्थका तच्चपरियन्तं पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खति—‘अत्थि इमस्मिं काये केसा लोमा....पे०....लसिका मुत्तं’ ति। अतिक्रम्य च पुरिसस्स छविमंसलोहितं अट्ठिं पच्चवेक्खति। पुरिसस्स च विज्जाणसोतं पजानाति, उभयतो अब्बोच्छिन्नं—इध लोके पतिट्ठितं च परलोके पतिट्ठितं च। अयं ततिया दस्सनसमापत्ति। (३)

“पुन च परं, भन्ते, इधेकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते इममेव कायं उद्धं पादतला अधो केसमत्थका तच्चपरियन्तं पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खति—‘अत्थि इमस्मिं काये केसा लोमा....पे०.... [N.82] लसिका मुत्तं’ ति। अतिक्रम्य च पुरिसस्स छविमंसलोहितं अट्ठिं पच्चवेक्खति; पुरिसस्स च विज्जाणसोतं पजानाति, उभयतो अब्बोच्छिन्नं—इध लोके अप्पतिट्ठितं च परलोके अप्पतिट्ठितं च। अयं चतुत्था दस्सनसमापत्ति। एतदानुत्तरियं भन्ते, दस्सनसमापत्तीसु।

(६) पुगलपञ्जत्तीसु

१०. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा, भगवा धम्मं देसेति पुगलपञ्जत्तीसु। सत्तिमे, भन्ते, पुगला—उभतोभागविमुत्तो, पज्जाविमुत्तो, कायसक्खी, दिट्ठिप्पत्तो, सद्भावमुत्तो, धम्मानुसारी, सद्धानुसारी। एतदानुत्तरियं, भन्ते, पुगलपञ्जत्तीसु।

(७) पधानेसु

११. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति पधानेसु। [R.106] सत्तिमे, भन्ते, सम्बोज्झङ्गा—सतिसम्बोज्झङ्गो, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो, विरियसम्बोज्झङ्गो,

है, जिससे उस चित्त की एकाग्रता से...पूर्ववत्....और मूत्र। इस सारी गन्दगी की उपेक्षा (अतिक्रमण) करता हुआ केवल छवि, मांस, रक्त एवं अस्थि ही देखता है। यह दूसरी दर्शन—समापत्ति है।

(३) “फिर, भन्ते! यहाँ कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योग....अस्थि देखता है। साथ ही वह इस लोक और परलोक में प्रतिष्ठित अखण्डित (अव्यवच्छिन्न) पुरुष के विज्ञानस्रोत (भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान—तीनों कालों में बहती जीवनधारा) को जान लेता है। यह तीसरी दर्शन—समापत्ति है।

(४) “फिर, भन्ते! यहाँ कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योग....पूर्ववत्....इस लोक में अप्रतिष्ठित एवं परलोक में अप्रतिष्ठित विज्ञान स्रोत को जान लेता है। यह चतुर्थ दर्शनसमापत्ति है। यह दर्शनसमापत्ति विषयक उपदेश भी आपका वैशिष्ट्य है।

(६) पुद्गल प्रज्ञप्ति—१०. “फिर, भन्ते! भगवान् का इससे भी बढ़कर वैशिष्ट्य है कि जिस तरह पुद्गल—प्रज्ञप्ति का आप उपदेश करते हैं। भन्ते! आपने सात प्रकार के पुरुष बताये हैं। जैसे (१) रूप एवं अरूप समापत्ति—दोनों भागों से विमुक्त, (२) प्रज्ञाविमुक्त, (३) कायसाक्षी, (४) दृष्टिप्राप्त, (५) श्रद्धाविमुक्त, (६) धर्मानुसारी एवं (७) श्रद्धानुसारी। भन्ते! इस तरह भी आपका वैशिष्ट्य व्योक्त होता है।

(७) प्रधान के विषय में—११. “भन्ते! इसे भी बढ़कर आपका वह वैशिष्ट्य है, जब आप प्रधान के विषय

[B.88] पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो, समाधिसम्बोज्झङ्गो, उपेक्खासम्बोज्झङ्गो, एतदानुत्तरियं, भन्ते, पधानेसु।

(८) पटिपदासु

१२. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति पटिपदासु। चतस्सो इमा, भन्ते, पटिपदा—दुक्खा पटिपदा दन्धाभिज्जा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिज्जा, सुखा पटिपदा दन्धाभिज्जा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिज्जा ति। तत्र, भन्ते, यायं पटिपदा दुक्खा दन्धाभिज्जा, अयं, भन्ते, पटिपदा उभयेनेव हीना अक्खायति—दुक्खत्ता च दन्धत्ता च। तत्र, भन्ते, यायं पटिपदा दुक्खा खिप्पाभिज्जा, अयं पन, भन्ते, पटिपदा दुक्खत्ता हीना अक्खायति। तत्र, भन्ते, यायं पटिपदा सुखा दन्धाभिज्जा, अयं पन, भन्ते, पटिपदा हीना अक्खायति। तत्र, भन्ते, यायं पटिपदा सुखा खिप्पाभिज्जा, अयं पन, भन्ते, पटिपदा उभयेनेव पणीता अक्खायति—सुखत्ता च खिप्पत्ता च। एतदानुत्तरियं भन्ते, पटिपदासु।

(९) भस्ससमाचारे

[N.83] १३. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति भस्ससमाचारे। इध, एकच्चो न चेव मुसावादुपसज्जितं वाचं भासति न च वेभूतियं, न च पेसुणियं, न च सारम्भजं जयापेक्खो; मन्ता मन्ता च वाचं भासति निधानवर्तिं कालेन। एतदानुत्तरियं, भन्ते, भस्ससमाचारे।

“अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति पुरिससीलसमाचारे। इध,

में विस्तार से उपदेश करते हैं। भन्ते! आपके मतानुसार सम्बोधि के सात अङ्ग हैं। जैसे—(१) स्मृतिसम्बोध्यङ्ग, (२) धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग, (३) वीर्यसम्बोध्यङ्ग, (४) प्रीतिसम्बोध्यङ्ग, (५) प्रश्रद्धिसम्बोध्यङ्ग, (६) समाधिसम्बोध्यङ्ग एवं (७) उपेक्षासम्बोध्यङ्ग। भन्ते! प्रधानों के उपदेश में आपकी यह विशेषता है।

(८) प्रतिपदा (मार्ग) के विषय में— १२. भन्ते! इससे भी बढ़कर आपकी विशेषता यह है कि जब आप मार्ग (प्रतिपदा) के विषय में विस्तार से उपदेश करते हैं। आपकी बतायी प्रतिपदा चतुर्विध है। जैसे—(१) दुःखा प्रतिपदा दन्धाभिज्जा (२) दुःखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्जा, (३) सुखा प्रतिपदा दन्धाभिज्जा एवं (४) सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्जा।

(१) “भन्ते! जो यह दुःखा प्रतिपदा दन्धाभिज्जा है वह दोनों तरफ से हीन समझी जाती है; क्योंकि यह दुःखमय भी है और दन्धा (धीमी) भी है।

(२) “भन्ते! जो दुःखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्जा है, वह दुःखमय होने से हीन समझी जाती है।

(३) “और, भन्ते! जो सुखा प्रतिपदा दन्धाभिज्जा है, वह दन्धा (धीमी) होने के कारण हीन समझी जाती है।

(४) “परन्तु, भन्ते! यह जो सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्जा है, वह उभयतः अच्छी (प्रणीत) समझी जाती है; सुखमय होने के कारण भी और क्षिप्र (शीघ्र) होने के कारण भी।

(९) भस्ससमाचार (वाचसिक आचरण) के विषय में— १३. “फिर, भन्ते! वाचसिक आचरण पर आपका उपदेश तो और भी अधिक श्रेष्ठ है। भन्ते! कोई भिक्षु न विजय की इच्छा से असत्य बोलता है, न परस्पर विरोध कराने वाली बात करता है, न किसी की चुगली करता है, न वैर करने-कराने की बात करता है। अपितु प्रज्ञा से सोच-समझकर मन में बैठने योग्य (=विश्वसनीय) बात बोलता है।

शील-समाचार के विषय में— “फिर, भन्ते! यह भी आप की विशेषता ही है कि जिस तरह आप पुरुष के

भन्ते, एकच्चो सच्चो चस्स सद्धो च, न च कुहको, न च लपको, न च नेमित्तिको, [R.107] न च निप्पेसिको, न च लाभेन लाभं निजिगीसनको, इन्द्रियेसु गुतद्धारो, मत्तञ्जू, समकारी, जागरियानुयोगमनुयुत्तो, अतन्दितो, आरद्धविरियो, ज्ञायी, सतिमा, कल्याणपटिभानो, गतिमा, धितिमा, मतिमा, न च कामेसु गिद्धो, सतो च निपको च। एतदानुत्तरियं, भन्ते, पुरिससील-समाचारे।

(१०) अनुसासनविधासु

१४. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति अनुसासन-[B.89] विधासु। चतस्सो इमा भन्ते अनुसासनविधा— जानाति, भन्ते, भगवा अपरं पुगगलं पच्चतं योनिमोमनसिकारा ‘अयं पुगगलो यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो तिण्णं संयोजनानं परिकखया सोतापन्नो भविस्सति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो’ ति। जानाति, भन्ते, भगवा परं पुगगलं पच्चतं योनिमोमनसिकारा—‘अयं पुगगलो यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो तिण्णं संयोजनानं परिकखया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी भविस्सति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सती’ ति। जानाति, भन्ते, भगवा परं पुगगलं पच्चतं योनिमोमनसिकारा—‘अयं पुगगलो यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो पञ्चत्रं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिकखया ओपपातिको भविस्सति तत्थ परिनिब्बायी अनावतिधम्मो तस्मा लोका’ ति। जानाति, भन्ते, भगवा परं पुगगलं पच्चतं योनिमोमनसिकारा—‘अयं पुगगलो यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमानो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्जाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे [N.84] सयं अभिज्जा सच्छिक्त्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सती’ ति। एतदानुत्तरियं, भन्ते, अनुसासनविधासु।

शील-आचरण के विषय में उपदेश करते हैं। भन्ते! यहाँ शीलवान् भिक्षु सच्ची श्रद्धा वाला होता है; न पाषण्डी होता है, न वृथा प्रलापी। न निमित्त बताने वाला (ज्योतिषी) होता है, न दूत-कर्म करने वाला। न लाभ से लाभ कमाने वाला होता है। इन्द्रियों पर संयम रखने वाला, भोजन में मात्रा जानने वाला, सबके साथ समान आचरण करने वाला, जागरण में तत्पर, आलस्यरहित, वीर्यवान्, ध्यानपरायण, स्मृतिमान्, हितैषी, गतिमान् (उत्साही), धृतिमान्, बुद्धिमान्, कामभोगों में अलोलुप, स्मृति और प्रज्ञा से युक्त होता है। भन्ते! पुरुष के शील-आचरण के विषय में इससे बढ़कर और क्या उपदेश हो सकता है!

(१०) अनुशासन-विधि में—१४. “भन्ते! आपका अनुशासन विषयक उपदेश भी सर्वतोभद्र ही होता है। आपके मत में से चार अनुशासनविधियाँ हैं— (१) “भन्ते! भगवान् (आप) दूसरे पुरुष के मन की बात स्वचित्त से भली भाँति जान लेते हैं कि ‘यह पुरुष बतायी गयी विधि से ही आचरण करता हुआ तीनों संयोजनों के परिक्षय के कारण, मार्ग से च्युत होने वाला न होकर दृढ़तापूर्वक सम्बोधि के लिये सतत प्रयास करने वाला स्रोतआपन्न होगा।’ (२) भन्ते! भगवान् दूसरे के मन की बात स्वचित्त से जानकर यह समझ लेते हैं— ‘यह मनुष्य...तीनों संयोजनों के परिक्षय एवं राग-द्वेष-मोह के तनु (दुर्बल) होने के कारण सकृदागामी होगा और यह एक ही बार इस लोक में पुनः आकर स्वकीय दुःखों का अन्त करेगा।’ (३) भन्ते! भगवान्...यह समझ लेते हैं— ‘यह मनुष्य बतायी गयी विधि के अनुकूल आचरण करता हुआ, पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षय होने के कारण, देवलोक में उत्पन्न होकर वहीं परिनिर्वृत हो जायगा। इस लोक के लिये यह अनागामी (फिर न लौटने वाला) हो जायगा।’ (४) भन्ते! भगवान्...यह भी जान लेते हैं— ‘यह मनुष्य...आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात् करता हुआ प्राप्त साधना करता हुआ अर्हत हो जाता है।’ भन्ते! अनुशासन विधि का इस तरह विस्तृत उपदेश भी आपका वैशिष्ट्य है।

(११) परपुग्गलविमुत्तिजाणे

[R.108] १५. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति परपुग्गलविमुत्तिजाणं । जानाति, भन्ते, भगवा परं पुग्गलं पच्चत्तं योनिसोमनसिकारा—‘अयं पुग्गलो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो भविस्सति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो’ ति । जानाति, भन्ते, भगवा परं पुग्गलं पच्चत्तं योनिसोमनसिकारा—‘अयं पुग्गलो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी भविस्सति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सती’ ति । जानाति, भन्ते, भगवा परं पुग्गलं पच्चत्तं योनिसोमनसिकारा—‘अयं पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको भविस्सति, तत्थ परिनिब्बायी, अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका’ ति । जानाति, भन्ते, भगवा परं पुग्गलं पच्चत्तं योनिसोमनसिकारा—[B.90] ‘अयं पुग्गलो, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पज्जाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सती’ ति । एतदानुत्तरियं, भन्ते, परपुग्गलविमुत्तिजाणे ।

(१२) सस्सतवादेसु

१६. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति सस्सतवादेसु । तयोमे, भन्ते, सस्सतवादा— इध, भन्ते, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०.....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यधिदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पज्जासं पि जातियो जासिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेकानि पि जातिसतानि अनेकानि पि [R.109] जातिसहस्सानि अनेकानि पि जातिसतसहस्सानि—‘अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवंमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, [N.85] सो ततो चुतो इधूपपन्नो’ ति । इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं

(११) परपुद्गलविमुक्तिज्ञान में—१५. “फिर, भन्ते! परपुद्गलविषयक विमुक्तिज्ञान के विषय में आपका उपदेश भी अनुपम है। भन्ते! भगवान्....जान लेते हैं— ‘यह मनुष्य....स्रोतआपन्न है’। यह भी जान लेते हैं— ‘यह मनुष्य.... सकृदागामी....है’।....यह भी जान लेते हैं— ‘यह मनुष्य....इस लोक में पुनः नहीं आने वाला है’। और भन्ते! भगवान्....यह भी जान लेते हैं— ‘यह मनुष्य आश्रवों के क्षय से....अर्हत होगा’।....यह भी आप की विशेषता है।

(१२) शाश्वतवादों के विषय में— १६. “फिर, भन्ते! आपके उपदेशों शाश्वतवादविषयक’ जो उपदेश किया जाता है, वह भी आपका वैशिष्ट्य ही है। भन्ते! ये शाश्वतवाद तीन हैं— (१) यहाँ, भन्ते! कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योग करके....ऐसी समाधि प्राप्त करता है’ जिससे एकाग्रचित्त होकर अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का स्मरण करता है; जैसे— एक जन्म....लाखों जन्म....। तब वह ऐसे कहता है— मैं अतीत....एवं अनागत काल की बातें जानता हूँ कि कब लोक का संवर्त होगा, कब विवर्त होगा। यह आत्मा और लोक शाश्वत है बन्ध्य, कूटस्थ एवं अचल है। वे प्राणी नाना योनियों में दौड़ते हैं, आते-जाते हैं, मरते-उत्पन्न होते हैं। उनका अस्तित्व सदा रहेगा। यह पहला शाश्वतवाद है।

१. शाश्वतवादविषयक पाठ का पूर्ण विस्तार ब्रह्मजालसूत्र (इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग) में देखें— अनु० ।

अनुस्सरति। सो एवमाह—‘अतीतं पाहं अद्धानं जानामि—संवट्टि वा लोको विवट्टि वा ति; अनागतं पाहं अद्धानं जानामि—संवट्टिस्सति वा लोको विवट्टिस्सति वा ति; सस्सतो अत्ता च लोको च वज्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो, ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति, अत्थित्वेव सस्सतिसमं’ ति। अयं पठमो सस्सतवादो। (१)

“पुन च परं, भन्ते, इधेक्कच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि संवट्टविवट्टं द्वे पि संवट्टविवट्टानि तीणि पि संवट्टविवट्टानि चत्तारि पि संवट्टविवट्टानि पञ्च पि संवट्टविवट्टानि दस पि संवट्टविवट्टानि—‘अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; [B.91] तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो’ ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। सो एवमाह—‘अतीतं पाहं अद्धानं जानामि संवट्टि वा लोको विवट्टि वा ति; अनागतं च [R.110] ख्वाहं अद्धानं जानामि संवट्टिस्सति वा लोको विवट्टिस्सति वा ति, सस्सतो अत्ता च लोको च वज्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो, ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति, अत्थित्वेव सस्सतिसमं’ ति। अयं, भन्ते, दुतियो सस्सतवादो। (२)

“पुन च परं, भन्ते, इधेक्कच्चो समो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—दस पि संसट्टविवट्टानि वीसं पि संवट्टविवट्टानि तिसं पि संवट्टविवट्टानि चत्तालीसं पि संवट्टविवट्टानि—‘अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो’ ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। सो एवमाह—‘अतीतं पाहं [N.86] अद्धानं जानामि संवट्टि पि लोको विवट्टि पी ति; अनागतं पाहं अद्धानं जानामि संवट्टिस्सति पि लोको विवट्टिस्सति पी ति; सस्सतो अत्ता च लोको च वज्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो; ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति, अत्थित्वेव सस्सतिसमं’ ति। अयं, भन्ते, ततियो सस्सतवादो। एतदानुत्तरियं, भन्ते, सस्सतवादेसु। (३)

(१३) पुब्बेनिवासानुस्सतिजाणे

१७. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति पुब्बेनिवासानुस्स-

(२) ‘फिर, भन्ते! यहाँ कोई श्रमण या ब्राह्मण...एकाग्रचित्त होकर...पूर्वजन्म का स्मरण करता है; जैसे— एक संवर्त—विवर्त....दश संवर्त—विवर्त! वह ऐसे कहता है— मैं अतीत अनागत काल को जानता हूँ। यह लोक एवं आत्मा शाश्वत है...। यह दूसरा शाश्वतवाद है।

(३) ‘भन्ते! फिर यहाँ कोई श्रमण ब्राह्मण...चालीस संवर्त—विवर्त....। मैं अतीत...अनागत काल को...उनका अस्तित्व सदा रहेगा। यह तीसरा शाश्वतवाद है। यों इस शाश्वतवाद का उपदेश भी आपका अनुपम वैशिष्ट्य प्रकट करता है।

तिजाणे। इध, भन्ते, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं [B.92] पि जातियो तिसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्जासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि [R.111] संवट्टविवट्टकप्पे—‘अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापार्सि एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो’ ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। सन्ति, भन्ते, देवा येसं न सक्का गणनाय वा सङ्खानेन वा आयु सङ्खातुं। अपि च, यस्मिं यस्मिं अत्तभावे अभिनिवुट्टपुब्बो होति, यदि वा रूपीसु यदि वा अरूपीसु यदि वा सज्जीसु यदि वा असज्जीसु यदि वा नेवसज्जीनासज्जीसु, इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। एतदानुत्तरियं, भन्ते, पुब्बेनिवासानुस्सतिजाणे।

(१४) सत्तानं चुतूपपातजाणे

१८. “अपरं पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति सत्तानं चुतूपपातजाणे। इध, भन्ते, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति [N.87] यथासमाहिते चित्ते दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्रान्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—‘इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना : इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता [R.112] वचीसुरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपन्ना’ ति। इति

(१३) पूर्वजन्म की अनुस्मृति के विषय में—१७. “फिर, भन्ते! पूर्वजन्म की स्मृति के विषय में भी जो आपका अनुपम उपदेश है वह भी आपका वैशिष्ट्य प्रकट करता है। यहाँ, भन्ते! कोई श्रमण—ब्राह्मण उद्योग का आश्रय लेकर....अपने अनेक पूर्वजन्मों का स्मरण करता है....पूर्ववत्....(ब्रह्मजालसूत्रवत्)....अपने अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। भन्ते! ऐसे देवता भी हैं जिनकी आयुर्गणना सम्भव ही नहीं है। अपि च, जिस जिस आत्मभाव में, भले ही फिर वह रूपी हो या अरूपी, संज्ञी हो या असंज्ञी या फिर नैवसंज्ञीनासंज्ञी ही क्यों न हो, उन सभी पूर्वजन्मों को आकार और उद्देशसहित स्मरण करता है। इस पूर्वजन्मानुस्मरण का इतना विस्तृत उपदेश भी आपका अन्धों की अपेक्षा वैशिष्ट्य प्रकट करता है।

(१४) सत्त्वों के च्युति—उत्पत्तिविषयक ज्ञान में—१८. “फिर, भन्ते! यह भी वैशिष्ट्य ही है कि भगवान् जिस तरह प्राणियों का जन्म—मरण का कारण विस्तृत रूप से बताते हैं। भन्ते! कोई श्रमण—ब्राह्मण....एकाग्रचित्त होकर लोकोत्तर दिव्यचक्षु से मरते—जनमते, अच्छे—बुरे, सुन्दर, कुरूप, सुगति—दुर्गति प्राप्त सत्त्वों को देखता है। तथा....स्वकर्मानुसार प्राप्त गतिवाले सत्त्वों को जानता है—‘ये सत्त्व कायिक....वाचसिक....मानसिक

दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्रान्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने [B.93] पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति । एतदानुत्तरियं, भन्ते, सत्तानं चुतूपपातजाणे ।

(१५) इद्धिविधासु

१९. “अपरं, पन, भन्ते, एतदानुत्तरियं यथा भगवा धम्मं देसेति इद्धिविधासु । द्वेमा, भन्ते, इद्धिविधायो— ‘अत्थि, भन्ते, इद्धि ‘सासवा सउपधिका, नो अरिया’ ति वुच्चति । अत्थि, भन्ते, इद्धि ‘अनासवा अनुपधिका, अरिया’ ति वुच्चति ।

“कतमा च, भन्ते, इद्धि ‘सासवा सउपधिका, नो अरिया’ ति वुच्चति ? इध, भन्ते, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय....पे०.....तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति । एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुडुं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छति, सेय्यथापि पठवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परामसति परिमज्जति; याव ब्रह्मलोको पि कायेन वसं वत्तेति । अयं, भन्ते, इद्धि ‘सासवा सउपधिका, नो अरिया’ ति वुच्चति ।

“कतमा पन, भन्ते, इद्धि ‘अनासवा अनुपधिका, अरिया’ ति वुच्चति ? इध, भन्ते, भिक्खु सचे आकङ्खति—‘पटिकूले अप्पटिकूलसज्जी विहरेय्यं’ ति, [N. 88, R.113] अप्पटिकूलसज्जी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—‘अप्पटिकूले पटिकूलसज्जी विहरेय्यं’ ति, पटिकूलसज्जी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—‘पटिकूले च अप्पटिकूले च अप्पटिकूलसज्जी विहरेय्यं’ ति, अप्पटिकूलसज्जी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—‘पटिकूले दुराचार से युक्त होकर...ये मरणानन्तर दुर्गतिमय नरक में गिरेंगे । तथा...ये सत्त्व कायिक.... वाचसिक.... मानसिक सदाचार से युक्त हैं । ये मरणानन्तर सद्गतिमय स्वर्ग में जायेंगे ।’ यों, वह दिव्य चक्षु से....सबको जानता है । आप की यह विस्तृत उपदेश भी अपनी स्वतन्त्र विशेषता रखता है ।

(१५) ऋद्धिविध के विषय में—१९. “भन्ते! अलौकिक चमत्कारों के विषय में भी आपका उपदेशप्रकार वैशिष्ट्यपूर्ण ही है । भन्ते! ये ऋद्धिविध दो हैं— भन्ते! ऋद्धि साश्रव सोपाधिक एवं अनार्य होती है और एक ऋद्धि अनाश्रव, अनुपाधिक एवं आर्य होती है । जो अच्छी नहीं कही जाती ।

(१) “भन्ते! कौन सी ऋद्धि साश्रव सोपाधिक एवं अनार्य होती है ? यहाँ, भन्ते! कोई श्रमण—ब्राह्मण उद्योग करके...पूर्ववत्...वैसी चित्तसमाधि का स्पर्श करता है, जिससे वह एकाग्र हुए चित्त में नानाविध अलौकिक चमत्कारों का अनुभव करने लगता है । वह एक होकर नाना हो जाता है....पर्वतों के बीच में से उनका स्पर्श किये बिना ही निकल जाता है, मानो आकाश में उड़ रहा हो । पृथ्वी में भी डूबता—उतराता रहता है जैसे जल में डूबा—उतराया जाता है । आकाश में भी पद्मासन लगा कर उड़ जाता है, जैसे पंख वाला पक्षी उड़ रहा हो । ऐसी ऋद्धि और ऐसी सामर्थ्यवाला यह साधक चन्द्रमा और सूर्य का भी उतनी ही सरलता से स्पर्श कर लेता है, मानो हाथ में ढेला लिये हो । यों ब्रह्मलोक तक वह अपने इसी शरीर से जाने की सामर्थ्य रखता है । भन्ते! यह साश्रव सोपाधिक अनार्य जनसेवित ऋद्धि है ।

“भन्ते! अनाश्रव अनुपाधिक एवं आर्य ऋद्धि कौन सी है ? यहाँ, भन्ते! कोई साधक भिक्षु चाहता

च अप्पटिकूले च पटिकूलसज्जी विहरेय्यं' ति, पटिकूलसज्जी तत्थ विहरति; सचे आकङ्क्षति— 'पटिकूलं च अप्पटिकूलं च तदुभयं अभिनिवज्जेत्वा उपेक्खतो विहरेय्यं सतो सम्पजानो' ति, उपेक्खतो तत्थ विहरति सतो सम्पजानो। अयं, भन्ते, इद्धि 'अनासवा अनुपधिका अरिया' ति [B.94] वुच्चति। एतदानुत्तरियं, भन्ते, इद्धिविधासु। तं भगवा असेसमभिजानाति। तं भगवतो असेसमभिजानतो उत्तरि अभिज्जेय्यं नत्थि, यदिभजानं अज्जो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवतो भिय्योभिज्जतरो अस्स—यदिदं इद्धिविधासु।

३. सत्था अब्भनुमोदि

२०. "यं तं, भन्ते, सद्धेन कुलपुत्तेन पत्तब्बं आरद्धविरियेन थामवता पुरिसथामेन पुरिसविरियेन पुरिसपरक्कमेन पुरिसधोरह्येन, अनुप्पत्तं तं भगवता। न च, भन्ते, भगवा कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगमनुयुतो हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं, न च अत्तकिलमथानुयोगमनुयुतो दुक्खं अनरियं अनत्थसंहितं। चतुत्रं च भगवा ज्ञानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी।

२१. "सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्य—'किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, अहेसुं अतीतमद्धानं अज्जे समणा वा ब्राह्मणा वा भगवता भिय्योभिज्जतरा सम्बोधियं' ति, एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, 'नो' ति वदेय्यं। 'किं पनावुसो सारिपुत्त, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अज्जे समणा वा ब्राह्मणा वा भगवता भिय्योभिज्जतरा सम्बोधियं' ति, एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, 'नो' ति वदेय्यं। [R.114] 'किं पनावुसो सारिपुत्त, अथेतरहि अज्जो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्योभिज्जतरो सम्बोधियं' ति, एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, 'नो' ति वदेय्यं।

है— 'प्रतिकूल में अप्रतिकूल का ध्यान रखता हुआ, साधना करूँ' तो वह वैसा कर लेता है। यदि वह चाहे— 'अप्रतिकूल में प्रतिकूल का....। यदि वह— 'चाहे प्रतिकूल एवं अप्रतिकूल— दोनों का ध्यान न कर स्मृतिमान् और सावधान होकर उपेक्षाभाव से साधना करूँ' तो वह वैसा करता है। भन्ते! यह ऋद्धि अनाश्रव, अनुपाधिक एवं आर्यजनोचित कहलाती है। ऋद्धि का इस प्रकार से उपदेश करना भी आपका वैशिष्ट्य है। भन्ते! भगवान् इस ऋद्धिविध को अशेष रूप से इतना जानते हैं कि इससे आगे जानने को कुछ रह ही नहीं जाता। जिसे जानकर कोई अन्य श्रमण—ब्राह्मण इससे बढ़कर कुछ अधिक कह सके जितना भगवान् ने इन ऋद्धिविधाओं के विषय में कह दिया है।

३. शास्ता द्वारा अनुमोदन

२०. "भन्ते! किसी भी वीर्यवान्, दृढ़, पुरुषोचित स्थिरता एवं वीर्य से युक्त, पराक्रम से युक्त तथा श्रद्धायुक्त पुरुषश्रेष्ठ कुलपुत्र के लिये जो कुछ भी प्राप्त्य है, उसे आपने प्राप्त कर लिया है। भन्ते! भगवान् (आप) न तो हीन, ग्राम्य, पृथग्जनसेव्य, अनार्य, निरर्थक सांसारिक भोगविलासों में डूबे हुए हैं और न आप दुःखमय, अनार्य एवं निरर्थक आत्मकलमथानुयोग (शरीर को व्यर्थ की तपस्या कर कष्ट देना) से युक्त हैं। आप तो इसी लोक में सुखदायी आभिचेतसिक (चित्तसम्बन्धी) ध्यानों को इच्छानुसार सुखपूर्वक अत्यधिक प्राप्त करने वाले हैं।

२१. "भन्ते! यदि कोई मुझसे पूछे— 'आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या अतीतकाल में कोई श्रमण या ब्राह्मण सम्बोधि प्राप्ति में भगवान् से बढ़कर था?' मैं उत्तर दूँगा— 'नहीं। क्या अनागत काल में....?.... नहीं। वर्तमान काल में क्या कोई.... है? मेरा उत्तर होगा— 'नहीं'।

“सचे पन मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्य—‘किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, अहेसुं [N.89] अतीतमद्धानं अञ्जे समणा वा ब्राह्मणा वा भगवता समसमा सम्बोधियं’ ति, एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, ‘एवं’ ति वदेय्यं। ‘किं पनावुसो सारिपुत्त, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अञ्जे समणा वा ब्राह्मणा वा भगवता समसमा सम्बोधियं’ ति, एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, ‘एवं’ ति वदेय्यं। ‘किं पनावुसो सारिपुत्त, अथेतरहि अञ्जे समणा वा ब्राह्मणा वा भगवता समसमा सम्बोधियं’ ति, एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, ‘नो’ ति वदेय्यं।

“सचे पन मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्य—‘किं पनायस्मा सारिपुत्तो एकच्चं अब्भनुजानाति एकच्चं न अब्भनुजानाती’ ति ? एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, एवं व्याकरेय्यं—‘सम्मुखा मेतं, [B.95] आवुसो, भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अहेसु अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा मया समसमा सम्बोधियं ति; सम्मुखा मेतं, आवुसो भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा मया समसमा सम्बोधियं ति; सम्मुखा मेतं, आवुसो भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अट्टानमेतं अनवकासो यं एकस्सा लोकधातुया द्वे अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा अपुब्बं अचरिम् उप्पज्जेय्युं नेतं ठानं विज्जती’ ति।

“कच्चाहं, भन्ते, एवं पुट्ठो एवं व्याकरमानो वुत्तवादी चेव भगवतो होमि, [R.115] न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खामि, धम्मस्स चानुधम्मं व्याकरोमि, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारह्यं ठानं आगच्छती” ति ?

“तग्घ त्वं, सारिपुत्त, एवं पुट्ठो एवं व्याकरमानो वुत्तवादी चेव मे होसि, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खसि, धम्मस्स चानुधम्मं व्याकरोसि, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारह्यं ठानं आगच्छती” ति।

२२. एवं वुत्ते, आयस्मा उदायी भगवन्तं एतदवोच—“अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं,

“भन्ते! कोई मुझसे पूछे— ‘आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या अतीतकाल में, सम्बोधि प्राप्त करने में भगवान् के समान कोई था?’ तो मेरा उत्तर होगा— ‘हाँ’। कोई मुझसे पूछे— क्या अनागतकाल में....कोई होगा? मेरा उत्तर होगा— ‘हाँ’। कोई मुझसे पूछे—....आज वर्तमान में भी कोई है? मेरा उत्तर होगा— ‘नहीं’।

“भन्ते! कोई मुझसे पूछे— ‘क्या भगवान् की किसी बात का एक अंश तो जानते हैं और एक अंश नहीं भी जानते हैं?’ तो मेरा उत्तर होगा— ‘आयुष्मन्! भगवान् के मुख से ऐसा सुना है, ऐसा जाना है— अतीत काल में जितने में अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हुए हैं वे सभी सम्बोधि में मेरे समान ही थे। अनागत में....सम्बोधि में मेरे समान ही होंगे। एक ही लोकधातु में, एक ही समय दो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हों— यह सम्भव ही नहीं है।’

“भन्ते! किसी के पूछने पर ऐसा उत्तर दूँ तो क्या भगवान् के विषय में मेरा यह कहना उचित तो होगा? भगवान् के विषय में मेरा यह असत्य आरोप तो नहीं होगा? या यह (मेरा) कथन धर्मानुकूल तो होगा? मेरा यह कथन गर्हणीय तो नहीं है?”

(भगवान् बोले—) “सारिपुत्र! किसी के पूछने पर यदि तुम ऐसा उत्तर देते हो तो यह तुम्हारा कथन उचित ही होगा। मुझ पर कोई असत्य आरोप भी नहीं होगा। साथ ही तुम्हारा यह कथन धर्मानुकूल तो होगा ही। तुम्हारी गर्हा की इसमें कोई बात नहीं है।”

भन्ते, तथागतस्स अप्पिच्छता सन्तुट्ठिता सल्लेखता, यत्र हि नाम तथागतो एवम्महिद्धिको एवम्महानुभावो, अथ च पन नेवत्तानं पातुकरिस्सति! एकमेकञ्चे पि इतो, भन्ते, धम्मं अञ्जतित्थिया परिब्बाजका अत्तनि समनुपस्सेयं ते तावतकेनेव पटाकं परिहरेय्युं। अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते, तथागतस्स अप्पिच्छता सन्तुट्ठिता सल्लेखता, यत्र हि नाम तथागतो एवं महिद्धिको एवम्महानुभावो, अथ च पन नेवत्तानं पातुकरिस्सती” ति।

“पस्स खो त्वं, उदायि, तथागतस्स अप्पिच्छता सन्तुट्ठिता सल्लेखता, यत्र हि नाम तथागतो एवम्महिद्धिको एवम्महानुभावो, अथ च पन नेवत्तानं पातुकरिस्सति! एकमेकञ्चे पि [B.96] इतो, उदायि, धम्मं अञ्जतित्थिया परिब्बाजका अत्तनि समनुपस्सेय्युं, ते तावतकेनेव पटाकं परिहरेय्युं। पस्स खो त्वं, उदायि, तथागतस्स अप्पिच्छता सन्तुट्ठिता सल्लेखता, यत्र हि नाम तथागतो एवम्महिद्धिको एवम्महानुभावो, अथ च पन नेवत्तानं पातुकरिस्सती” ति। [R.116] २३. अथ खो भगवा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आमन्तेसि—“तस्मातिह त्वं, सारिपुत्त, इमं धम्मपरियायं अभिक्खणं भासेय्यासि भिक्खून् भिक्खुनीन् उपासकानं उपासिकानं। येसं पि हि, सारिपुत्त, मोघपुरिसानं भविस्सति तथागते कङ्घा वा विमति वा तेसमिमं धम्मपरियायं सुत्वा तथागते कङ्घा वा विमति वा सा पहीयिस्सती” ति।

इति हिदं आयस्मा सारिपुत्तो भगवतो सम्मुखा सम्पसादं पवेदेसि। तस्मा इमस्स वेय्याकरणस्स सम्पसादनीयं त्वेव अधिवचनं ति॥

सम्पसादनीयसुत्तं निद्रितं पञ्चमं॥



२२. भगवान् के द्वारा आयुष्मान् सारिपुत्र का इस प्रकार अनुमोदन करने पर, आयुष्मान् उदायी भगवान् से यों निवेदन करने लगे—आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! तथागत की ऐसी अल्पेच्छता, सन्तोष एवं निर्मलचित्तता कि तथागत इस प्रकार की अत्यधिक ऋद्धि एवं सामर्थ्य वाले होकर भी इन्हें लोक में प्रकट नहीं करते। यदि किसी दूसरे मत वाले परिव्राजकों में ऐसी एक भी ऋद्धि या सामर्थ्य होती तो वे उसी से अपनी महत्ता की पताका लोगों में फहराते फिरते! तो आश्चर्य है....भन्ते! तथागत की यह अल्पेच्छता....निर्विकारता कि तथागत इतने ऋद्धिमान् एवं सामर्थ्यवान् होते हुए भी उन्हें लोगों के सम्मुख प्रकट नहीं होने देते।

“उदायि! देखो तथागत की अल्पेच्छता....लोगों के सम्मुख प्रकट नहीं होने देते।”

२३. तब भगवान् ने सारिपुत्र को सम्बोधित किया—“इसलिये, सारिपुत्र! तुम भिक्षु-भिक्षुणियों को, उपासक-उपासिकाओं की यह अनुपद में धर्मोपदेश करते रहो। इससे, सारिपुत्र! जिन अज्ञों को, मोघपुरुषों को तथागत के विषय में जो भी कांक्षा (शङ्का) या विमति (सन्देह) होगी, वह दूर हो जायगी।”

इस प्रकार आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् के सम्मुख अपना सम्प्रसाद (श्रद्धाभाव) प्रकट किया। इसलिये इस सूत्र का नाम ‘सम्प्रसादनीय’ सूत्र हुआ॥

सम्प्रसादनीयसूत्र समाप्त॥



६. प्रासादिकसूतं

१. निगण्ठो नाटपुत्तो कालङ्कतो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति वेधज्जा [N.91, B.97, R.117] नाम सक्का तेसं अम्बवने प्रासादे। तेन खो पन समयेन निगण्ठो नाटपुत्तो पावायं अधुनाकालङ्कतो होति। तस्स कालङ्कुरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वधिकजाता भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अज्जमज्जं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति—“न त्वं, इमं धम्मविनयं आजानासि, अहं इमं धम्मविनयं आजानामि। किं त्वं इमं धम्मविनयं आजानिस्ससि? मिच्छापटिपन्नो त्वमसि, अहमस्मि सम्मापटिपन्नो। सहितं मे, असहितं ते। पुरेवचनीयं पच्छा अवच, पच्छावचनीयं पुरे अवच। अधिचिण्णं ते विपरावत्तं। आरोपितो ते वादो। निग्गहितो त्वमसि। चर वादप्पमोक्खाय। निब्बेठेहि वा सचे पहासी” ति। वधो येव खो मज्जे निगण्ठेसु नाटपुत्तियेसु वत्तति। [R.118] ये पि निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना ते पि निगण्ठेसु नाटपुत्तियेसु निब्बिन्नरूपा विरत्तरूपा पटिवानरूपा—यथा तं दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसम-संवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते भिन्नथूपे अप्पटिसरणे।

२. अथ खो चुन्दो समणुद्देशो पावायं वस्संवुट्ठो येन सामगामो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चुन्दो समणुद्देशो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—“निगण्ठो, भन्ते, नाटपुत्तो पावायं

६. प्रासादिकसूत्र

१. निगण्ठ नाटपुत्त का देहपात

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्यों के प्रदेश वेधज्जा नामक शाक्यों के आश्रयन प्रासाद में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय पावा (नगरी में) निगण्ठ नाटपुत्त का तत्काल (अधुना) ही देहावसान हुआ था। उसके देहपात के बाद निगण्ठों (उनके शिष्यों में) मतभेद हो गये थे, सर्वत्र दो पक्ष हो गये थे, वाग्युद्ध एवं कलह होने लगा था। धर्मवर्चा में कटु वाक्यों से परस्पर विवाद होने लगा था कि—“तुम इस धर्मविनय को नहीं जानते, मैं ही भलीभाँति जानता हूँ”, ‘तुम तो इसमें मिथ्या प्रतिपन्न (इसे गलत समझ बैठे) हो, मैं ही इसे ठीक से समझा हुआ हूँ’, ‘मेरा कथन ही शास्त्रानुकूल है, तुम्हारा नहीं’, ‘तुमको जो बात पहले कहनी चाहिये थी, वह तुमने बाद में कही और जो बाद में कहनी चाहिये थी, वह पहले ही कह डाली’, ‘तुम्हारा मत खण्डित हो चुका है, तुम्हारा कथन उलटा पड़ रहा है, अतः तुम निग्रहस्थान में आ गये हो।’ ‘इस आक्षेप से बचने का उपाय सोचो, यदि तुम में सामर्थ्य है तो इसका उचित (शास्त्रसम्मत) उत्तर दो।’ इस तरह उन निगण्ठों में मानो प्रबल युद्ध (वध) ही प्रारम्भ हो गया था। निगण्ठ नाटपुत्त के श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य भी उस निगण्ठ के वैसे ठीक से न कहे गये (दुराख्यात), ठीक से न जाने गये (दुष्प्रवेदित), पार न पहुँचाने वाले (अनैर्वाणिक), शान्ति की तरफ न जाने वाले (अनुपशम सांवर्तनिक), किसी बुद्ध द्वारा असाक्षात्कृत (असम्यक्सम्बुद्ध-प्रवेदित), प्रतिष्ठा (नींव) रहित, (भिन्न-स्तूप) एवं आश्रयरहित धर्म में अन्यमनस्क, उसके प्रति विरक्त एवं खिन्न हो रहे थे।

२. तब चुन्द समणुद्देश पावा में वर्षावास कर जहाँ सामगाम था और जहाँ आयुष्मान् आनन्द साधनाहेतु ठहरे हुए थे, वहाँ गये। जाकर, उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे चुन्द श्रमणोद्देश ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—“भन्ते! निगण्ठ नाटपुत्त का पावा नगरी में अभी-अब देहपात

अधुनाकालङ्कतो। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिकजाता....पे०.....भिन्नथूपे अप्पटिसरणे" ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो चुन्दं समणुद्देशं एतदवोच—“अत्थि खो इदं, आवुसो [R.98] चुन्द, कथापाभतं भगवन्तं दस्सनाय। आयामावुसो चुन्द, येन भगवां तेनुपसङ्कमिस्साम; [N.92] उपसङ्कमित्वा एतमत्थं भगवतो आरोचेस्सामा" ति।

“एवं, भन्ते” ति खो चुन्दो समणुद्देशो आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसि।

अथ खो आयस्मा च आनन्दो चुन्दो च समणुद्देशो येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिसु। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—“अयं, भन्ते, चुन्दो समणुद्देशो एवमाह—‘निगण्ठो, भन्ते, नाटपुत्तो पावायं अधुनाकालङ्कतो। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा....पे०.....भिन्नथूपे अप्पटिसरणे’ ” ति।

२. एवं हेतं होति दुरक्खाते धम्मविनये

[B.119] ३. “एवं हेतं, चुन्द, होति दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसम-संवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते। इध, चुन्द, सत्था च होति असम्मासम्बुद्धो, धम्मो च दुरक्खातो दुप्पवेदितो अनिय्यानिको अनुपसमसंवत्तनिको असम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, सावको च तस्मिं धम्मे न धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो विहरति न सामीचिप्पटिपन्नो न अनुधम्मचारी, वोक्कम्म च तम्हा धम्मा वत्तति। सो एवमस्स वचनीयो—‘तस्स ते, आवुसो, लाभा, तस्स ते सुलद्धं, सत्था च ते असम्मासम्बुद्धो, धम्मो च दुरक्खातो दुप्पवेदितो अनिय्यानिको अनुपसमसंवत्तनिको असम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, त्वं च तस्मिं धम्मे न धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो विहरसि न सामीचिप्पटिपन्नो न अनुधम्मचारी, वोक्कम्म च तम्हा धम्मा वत्तसी’ ति। इति खो, चुन्द, सत्था पि तत्थ गारह्यो, हो गया है। उसके देहपात के बाद उसके शिष्य निगण्ठों (जैनों) में धार्मिक मतभेद....पूर्ववत्....उसके प्रति विरक्त (उपेक्षाभावयुक्त) एवं खिन्न हो गये हैं।”

ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने कहा—“आयुष्मन् चुन्द! यह घटना तो भगवान् के दर्शन करने का बहाना मिल गयी। अतः आओ, चुन्द! जहाँ भगवान् विराजमान हैं, वहाँ चलें और उन्हें यह घटना सुनायें।” “अच्छा, भन्ते”— कहकर चुन्द श्रमणोद्देश ने आयुष्मान् आनन्द के कथन का समर्थन किया।

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे वहाँ....आनन्द यों बोले—“भन्ते! इस चुन्द श्रमणोद्देश ने मुझको अभी अब यह बताया है कि ‘पावा नगरी में....पूर्ववत्...खिन्न हो गये हैं।’”

२. दुराख्यात धर्मोपदेशों का कुफल

३. (भगवान् बोले—) “चुन्द! जहाँ शास्ता (धर्मोपदेशक गुरु) सम्यक्सम्बुद्ध नहीं होता, उसके द्वारा उपदिष्ट धर्म दुराख्यात, दुष्प्रवेदित, अनैर्याणिक, अनुपशम-सांवर्तनिक, असम्यक्सम्बुद्ध (अज्ञानी) द्वारा प्रवेदित होता है, वहाँ उसके शिष्य भी उसके प्रति प्रतिष्ठारहित, अनुसरणरहित, अन्यमनस्क एवं खिन्न होने के कारण उस धर्म के प्रति आचरण करने में उपेक्षा करने लगते हैं। तब यदि कोई उस धर्मावलम्बी को यह कहता है—‘तुम्हारा अत्यधिक लाभ (सौभाग्य) है, तुमने कोई पुण्य प्राप्त कर लिया है! जिसके कारण तुम उस असम्यक्सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट....धर्म के आचरण में मन नहीं लगा पा रहे हो और उसके

धम्मो पि तत्थ गारय्हो, सावको च तत्थ एवं पासंसो । यो खो, चुन्द, एवरूपं सावकं एवं वदेय्य—‘एतायस्मा तथा पटिपज्जतु यथा ते सत्थारा धम्मो देसितो पज्जतो’ ति; यो च समादपेति, यं च समादपेति, यो च समादपितो तथत्ताय पटिपज्जति सब्बे ते बहं अपुज्जं पसवन्ति । तं किस्स हेतु ? एवं हेतं, चुन्द, होति दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसमसंवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते ।

४. “इध पन, चुन्द, सत्था च होति असम्मासम्बुद्धो, धम्मो च दुरक्खातो [B.99] दुप्पवेदितो अनिय्यानिको अनुपसमसंवत्तनिको असम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, सावको च [N.93] तस्मिं धम्मे धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो विहरति सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी समादाय तं धम्मं वत्तति । सो एवमस्स वचनीयो—‘तस्स ते आवुसो, अलाभा, तस्स ते दुल्लद्धं, सत्था [R.120] च ते असम्मासम्बुद्धो, धम्मो च दुरक्खातो दुप्पवेदितो अनिय्यानिको अनुपसमसंवत्तनिको, असम्मासम्बुद्ध-प्पवेदितो, त्वं च तस्मिं धम्मे धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो विहरसि सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, समादाय तं धम्मं वत्तसी’ ति । इति खो, चुन्द, सत्था पि तत्थ गारय्हो, धम्मो पि तत्थ गारय्हो, सावको पि तत्थ एवं गारय्हो । यो खो, चुन्द, एवरूपं सावकं एवं वदेय्य—‘अद्दायस्मा जायप्पटिपन्नो जायमाराधेस्सती’ ति; यो च पसंसति, यं च पसंसति, यो च पसंसितो भिय्योसोमत्ताय विरियं आरभति सब्बे ते बहं अपुज्जं पसवन्ति । तं किस्स हेतु ? एवंहेतं, चुन्द, होति दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसमसंवत्तनिके असम्मा-सम्बुद्धप्पवेदिते ।

३. एवं हेतं होति स्वाक्खाते धम्मविनये

५. “इध पन, चुन्द, सत्था च होति सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च स्वाक्खातो सुप्पवेदितो

प्रति विरक्त एवं खिन्न होते जा रहे हो ।’ तो यों कहने वाला वह श्रावक ही वहाँ प्रशंसनीय है, जबकि वह धर्म और उसका उपदेष्टा— दोनों ही निन्दनीय हैं । यदि कोई श्रावक उक्त धर्मावलम्बी का उत्साहवर्धन करता हुआ यह कहे— ‘आप वैसे ही धर्म का आचरण करते रहें, जैसा आपके शास्ता ने आपको उपदिष्ट किया है, बताया है ।’ तो यहाँ वे तीनों ही अत्यधिक पाप के भागी होते हैं (१) जो वैसा करने की प्रेरणा देता है, (२) जिसको प्रेरणा देता है और (३) जो वैसी प्रेरणा पाकर वैसा आचरण करता है । वह किस कारण ? इस कारण कि वह धर्म दुराख्यात....है । इस धर्म (केमानने वालों) में ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं ।

४. “और चुन्द! ऐसे धर्म का जब शास्ता अज्ञानी हो और धर्म भी दुराख्यात हो; परन्तु इस धर्म का श्रावक उस धर्म के अनुसार आचरण करने वाला हो...., तब उस श्रावक को कोई यह कहता हो— ‘तुम्हारा अत्यधिक अलाभ (दौर्भाग्य) है, तुमने कोई बहुत बड़ा पाप किया है, जिसके कारण असम्यक्सम्बुद्ध द्वारा इस दुराख्यात एवं दुष्प्रवेदित धर्म में इस तरह मन लगाकर इस धर्म के आचरण में कटिबद्ध हो ।’ चुन्द! यहाँ ये तीनों ही निन्दनीय हैं— इस धर्म का शास्ता भी, वह धर्म भी और उस धर्म पर आचरण करने वाला श्रावक भी । और चुन्द! उस धर्म पर आचरण करने वाले श्रावक को यह कहकर प्रेरित करने वाला, उत्साहित करनेवाला ‘आप ज्ञानसम्पन्न एवं ज्ञानानुकूल आचरण करने वाले हैं’— इस तरह प्रशंसा करने वाला, जिसकी प्रशंसा की जाय या जो प्रशंसा करने वाले को प्रेरणा दे रहा हो— तीनों ही निन्दा के पात्र होते हैं । क्योंकि, चुन्द! ऐसे असम्यक्सम्बुद्ध द्वारा दुष्प्रवेदित एवं दुराख्यात धर्म (के आचरण करने वालों).... में ऐसी घटनाएँ होती ही रहती हैं ।

निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, सावको च तस्मिं धम्मे न धम्मानुधम्म-
प्पटिपन्नो विहरति न सामीचिप्पटिपन्नो न अनुधम्मचारी, वोक्कम्म च तम्हा वत्तति । सो एवमस्स
वचनीयो—‘तस्स ते, आवुसो, अलाभा तस्स ते दुल्लङ्गं, सत्था च ते सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च
स्वाक्खातो सुप्पवेदितो निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, त्वं, च तस्मिं
धम्मे न धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो विहरसि न सामीचिप्पटिपन्नो न अनुधम्मचारी, वोक्कम्म च तम्हा
धम्मा वत्तसी’ ति । इति खो, चुन्द, सत्था पि तत्थ पासंसो, धम्मो पि तत्थ पासंसो, सावको
च तत्थ एवं गारह्यो । यो खो चुन्द, एवरूपं सावकं एवं वदेय्य—‘एतायस्मा तथा पटिपज्जु
[B.100] यथा ते सत्थारा धम्मो देसितो पज्जत्तो’ ति; यो च समादपेति, यं च समादपेति, यो
च समादपितो तथत्ताय पटिपज्जति सब्बे ते बहुं पुज्जं पसवन्ति । तं किस्स हेतु ? एवंहेतं,
चुन्द, होति स्वाक्खाते धम्मविनये सुप्पवेदिते निय्यानिके उपसमसंवत्तनिके सम्मासम्बुद्ध-
प्पवेदिते ।

[R.121] ६. “इध पन, चुन्द, सत्था च होति सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च स्वाक्खातो सुप्पवेदितो
[N.94] निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, सावको च तस्मिं धम्मे
धम्मानुधम्मपटिपन्नो विहरति सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, समादाय तं धम्मं वत्तति । सो
एवमस्स वचनीयो—‘तस्स ते, आवुसो, लाभा, तस्स ते सुलङ्गं, सत्था च ते सम्मासम्बुद्धो,
धम्मो च स्वाक्खातो सुप्पवेदितो निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, त्वं
च तस्मिं धम्मे धम्मानुधम्मपटिपन्नो विहरसि सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, समादाय तं

३. स्वाख्यात धर्मोपदेशों का सुफल

५. “और फिर, चुन्द! इसके विपरीत, कोई शास्ता सम्यक्सम्बुद्ध हो; उसका धर्म भी स्वाख्यात,
सुप्रवेदित, पार पहुँचाने वाला, परम शान्तिदायक, ज्ञानी द्वारा उपदिष्ट हो, परन्तु उसके शिष्य यदि
सम्यक्तया उस धर्म का आचरण करने वाले न हों तो उन्हें यह कहना चाहिये— ‘अरे आयुष्मन्! तुम्हारा
कोई बहुत बड़ा अपुण्य तुम्हारी प्रगति में बाधक बन रहा है कि तुम ऐसे सच्छास्ता द्वारा स्वाख्यात धर्म
का आचरण करने में भी अपना मन ठीक से नहीं लगा पा रहे हो और उसके विरुद्ध चलने में ही अपनी
उन्नति समझ रहे हो ।’ तब चुन्द! ऐसे उस धर्म का उपदेष्टा और वह धर्म तो प्रशंसनीय हैं; परन्तु उस धर्म
पर आरुढ़ वह श्रावक प्रशंसनीय नहीं है । हाँ! यदि चुन्द! कोई प्रेरक उस श्रावक को यह कहकर
उत्साहित करे कि ‘आयुष्मन्! आओ, इस सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा सुप्रवेदित स्वाख्यात धर्म का भलीभाँति
आचरण करो ।’ तो वह प्रेरक अथवा जिसे प्रेरित किया गया हो या जो उस धर्म के आचरण में भलीभाँति
लग गया हो— ये सभी अत्यधिक पुण्य के भागी होते हैं । वह किस कारण? चुन्द! वह इस कारण कि ऐसे
सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा स्वाख्यात एवं सुप्रवेदित....धर्म का आचरण करने वालों को ऐसे पुण्य का लाभ तो
होता ही रहता है ।

६. “और फिर, चुन्द! जब शास्ता भी सम्यक्सम्बुद्ध हो, उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म भी स्वाख्यात....हो,
श्रावक भी उस धर्म—मार्ग पर सम्यगारुढ़ हो, तब उसको यों उत्प्रेरित करना चाहिये— ‘तुम बहुत पुण्यवान्
हो, तुम्हारा यह सौभाग्य है कि तुम्हें ऐसे सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा सुप्रवेदित स्वाख्यात धर्म का उपदेश मिला
और तुम उसका सम्यक्तया आचरण कर रहे हो ।’ तो वहाँ, चुन्द! वह धर्म और उसका शास्ता तथा
उसका श्रावक—तीनों ही प्रशंसनीय हैं । और, चुन्द! उस समय उस धर्म के श्रावक को यों प्रेरणा या

धम्मं वत्तसी' ति। इति खो, चुन्द, सत्था पि तत्थ पासंसो, धम्मो पि तत्थ पासंसो, सावको पि तत्थ एवं पासंसो। यो खो, चुन्द, एवरूपं सावकं एवं वदेय्य—'अद्वायस्मा जायप्पटिपन्नो जायमाराधेस्सती' ति; यो च पसंसति, यं च पसंसति, यो च पसंसितो भिय्योसोमत्ताय विरियं आरभति—सब्बे ते बहं पुज्जं पसवन्ति। तं किस्स हेतु? एवं हेतं, चुन्द, होति स्वाक्खाते धम्मविनये सुप्पवेदिते निय्यानिके उपसमसंवत्तनिके सम्मासम्बुद्धप्पवेदिते।

४. एवरूपो सत्था अनुत्तप्पो होति

७. "इध पन, चुन्द, सत्था च लोके उदपादि अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च स्वाक्खातो सुप्पवेदितो निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, अविज्जापितत्था चस्स होन्ति सावका सद्धम्मे, न च नेसं केवलं परिपूरं ब्रह्मचरियं आविकतं होति उत्तानीकतं सब्बसङ्गाहपदकतं सप्पाटिहीरकतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं, अथ नेसं सत्थुनो [R.122] अन्तरधानं होति। एवरूपो खो, चुन्द, सत्था सावकानं कालङ्कतो अनुत्तप्पो होति। तं किस्स हेतु? सत्था च लोके उदपादि अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च स्वाक्खातो सुप्पवेदितो निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, अविज्जापितत्था चम्ह सद्धम्मे, न च नो [B.101] केवलं परिपूरं ब्रह्मचरियं आविकतं होति उत्तानीकतं सब्बसङ्गाहपदकतं सप्पाटिहीरकतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं, अथ नो सत्थुनो अन्तरधानं होती ति। एवरूपो खो, चुन्द, सत्था सावकानं कालङ्कतो अनुत्तप्पो होति।

५. एवरूपो सत्था अननुत्तप्पो होति

८. "इध पन, चुन्द, सत्था च लोके उदपादि अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च स्वाक्खातो सुप्पवेदितो निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, विज्जापितत्था चस्स [N.95]

उत्साह देना चाहिये— 'आप ज्ञानसम्पन्न हैं और ज्ञानमार्ग पर आरुढ़ हैं।' इस तरह, चुन्द, यहाँ भी जो प्रशंसा करता हो, जिसकी प्रशंसा करता है और जो इस तरह प्रशंसित होकर उस मार्ग पर चलने का सर्वथा प्रयास करता है— वे सभी अत्यधिक पुण्यवान् होते हैं। वह किसलिये? इसलिये, चुन्द, कि ऐसे सदुपदेष्टा द्वारा स्वाख्यात धर्मविनय के आचरण करने वालों को पुण्यप्राप्ति तो साधारण बात है।

४. चिन्तनीय शास्ता

७. "चुन्द! इस लोक में 'ऐसा कोई धर्मोपदेष्टा (शास्ता) अवतरित हो, जो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हो, उसके द्वारा उपदिष्ट धर्म भी सुप्रवेदित....एवं स्वाख्यात हो, परन्तु उसके श्रावक उस धर्म के विषय में कुछ ज्ञान न रखते हों, न उनकी धर्मसाधना ही शुद्ध, आविष्कृत, सरल, सुज्ञेय या युक्तिसङ्गत हो, न देव-मनुष्यों द्वारा ही प्रकाशित हो; इसी बीच उस शास्ता का अन्तर्धान (देहपात) हो जाय। तो, चुन्द! इस प्रकार उस शास्ता का वह देहपात उन श्रावकों के लिये शोचनीय (चिन्तनीय=अनुत्तप्य) माना जायगा। वह किस कारण? वह इसलिये कि उन अज्ञ श्रावकों के लिये, जिनकी धर्मसाधना...देव-मनुष्यों द्वारा प्रकाशित न हुई हो, उस शास्ता ने उस स्वाख्यात धर्म का उपदेश ही नहीं किया और इसी बीच उस शास्ता का देहपात हो गया। चुन्द इस तरह का शास्ता, श्रावकों के लिये चिन्तनीय (=अनुत्तप्य) समझा जाता है।

५. अशोचनीय शास्ता

८. "चुन्द! यहाँ कोई ऐसा धर्मोपदेशक (शास्ता)....पूर्ववत्....श्रावकों को भी उसने अपने धर्म का समीचीनतया उपदेश कर दिया है, और वह धर्म....देव-मनुष्यों में सही ढंग से प्रकाशित हो चुका है। तब

होन्ति सावका सद्धम्मे, केवलं च तेसं परिपूरं ब्रह्मचरियं होति उत्तानीकतं सब्बसङ्गाहपदकतं सप्पाटिहीरकतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं, अथ नेसं सत्थुनो अन्तरधानं होति । एवरूपो खो, चुन्द, सत्था सावकानं कालङ्कतो अननुत्पप्पो होति । तं किस्स हेतु ? सत्था च नो लोके उदपादि अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च स्वाक्खातो सुप्पवेदितो निव्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, विज्जापितत्था चम्ह सद्धम्मे, केवलं च नो परिपूरं ब्रह्मचरियं आविकतं [R.123] होति उत्तानीकतं सब्बसङ्गाहपदकतं सप्पाटिहीरकतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं, अथ नो सत्थुनो अन्तरधानं होती ति । एवरूपो खो, चुन्द, सत्था सावकानं कालङ्कतो अननुत्पप्पो होति ।

६. ब्रह्मचरियपारिपूरिअङ्गानि

९. “एतेहि चे पि, चुन्द, अङ्गेहि समन्नागतं ब्रह्मचरियं होति, नो च खो सत्था होति थेरो रत्तञ्जू चिरपब्बजितो वयोअनुप्पत्तो—एवं तं ब्रह्मचरियं अपरिपूरं होति तेनङ्गेन ।

“यतो च खो, चुन्द, एतेहि चेव अङ्गेहि समन्नागतं ब्रह्मचरियं होति, सत्था च होति थेरो रत्तञ्जू चिरपब्बजितो अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो—एवं तं ब्रह्मचरियं परिपूरं होति तेनङ्गेन ।

१०. “एतेहि, चे पि, चुन्द, अङ्गेहि समन्नागतं ब्रह्मचरियं होति, सत्था च होति थेरो रत्तञ्जू चिरपब्बजितो अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो, नो च ख्वस्स थेरा भिक्खू सावका होन्ति वियत्ता विनीता विसारदा पत्तयोगद्वेखेमा, अलं समक्खातुं सद्धम्मस्स, अलं उप्पन्नं परप्पवादं [B.102] सहधम्महि सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेतुं—एवं तं ब्रह्मचरियं अपरिपूरं होति तेनङ्गेन ।

“यतो च खो, चुन्द, एतेहि चेव अङ्गेहि समन्नागतं ब्रह्मचरियं होति, सत्था च होति थेरो रत्तञ्जू चिरपब्बजितो अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो, थेरा चस्स भिक्खू सावका होन्ति वियत्ता

यदि उस शास्ता का (किसी कारण से) देहपात हो जाय तो ऐसे शास्ता का यह देहपात शोचनीय (चिन्तनीय=अनुत्पत्त्य) नहीं होता । कारण ? कारण यह है कि उस शास्ता द्वारा अपना सुप्रवेदित एवं स्वाख्यात धर्म श्रावकों को भलीभाँति समझा दिया गया है और वह देव-मनुष्यों में भलीभाँति प्रचारित हो चुका है । ऐसी स्थिति में यदि उस शास्ता का देहपात हो ही जाय तो भी कोई शोचनीय (अनुताप करने योग्य) स्थिति नहीं बनती; क्योंकि वह अपने धर्म का इस लोक में प्रचार व्यवस्थित ढंग से कर चुका है ।

६. धर्मसाधना के पूरक अङ्ग

९. “चुन्द! धर्म-साधना के अन्य सभी अङ्ग (पक्ष) पूर्ण हों; परन्तु वहाँ उस धर्म का उपदेष्टा (शास्ता) स्थविर धर्मानुरागी, वृद्ध, चिरप्रव्रजित, अनुभवी, वयःप्राप्त (दीर्घ आयुवाला) न हो तो तब वह धर्म इस (शास्ता के) पक्ष से अपूर्ण ही कहलायगा ।

“हाँ! जब, चुन्द! वह धर्म सर्वाङ्गसम्पृक्त हो और शास्ता भी उक्त गुणों से युक्त हो, तब वह धर्म उस अङ्ग से परिपूर्ण कहलाता है ।

१०. “फिर, चुन्द! वह धर्म सर्वाङ्गसम्पन्न हों, उसके शास्ता भी पूर्वोक्त गुणों से युक्त हों; परन्तु उनके भिक्षु श्रावक व्यक्त, विनीत, विशारद, योगक्षेम प्राप्त (मुक्त), सद्धर्मोपदेश में समर्थ, विरोध-पक्ष द्वारा प्रस्तुत तर्कों को अपने धर्मानुकूल युक्तिबल से काटने में समर्थ नहीं हों तो वह धर्म इस अङ्ग (श्रावकपक्ष) से हीन ही कहलायगा ।

विनीता विसारदा पत्तयोगकखेमा, अलं समक्खातुं सद्धम्मस्स, अलं उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्महि सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेतुं—एवं तं ब्रह्मचरियं परिपूरं होति तेनङ्गेन।

११. “एतेहि चे पि, चुन्द, अङ्गेहि समन्नागतं ब्रह्मचरियं होति, सत्था च [N.96] होति थेरो रत्तञ्जू चिरपब्बजितो अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो, थेरा चस्स भिक्खू सावका होन्ति वियत्ता विनीता विसारदा पत्तयोगकखेमा, अलं समक्खातुं सद्धम्मस्स, अलं उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्महि सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेतुं। नो च ख्वस्स मज्झिमा भिक्खू सावका होन्ति....पे०....मज्झिमा चस्स भिक्खू सावका होन्ति, नो च ख्वस्स नवा भिक्खू सावका होन्ति पे०....नवा चस्स भिक्खू सावका होन्ति, नो च ख्वस्स थेरा [R.124] भिक्खुनियो साविका होन्ति....पे०....थेरा चस्स भिक्खुनियो साविका होन्ति, नो च ख्वस्स मज्झिमा भिक्खुनियो साविका होन्ति....पे०.... मज्झिमा चस्स भिक्खुनियो साविका होन्ति, नो च ख्वस्स नवा भिक्खुनियो साविका होन्ति....पे०....नवा चस्स भिक्खुनियो साविका होन्ति, नो च ख्वस्स उपासका सावका होन्ति गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो....पे०....उपासका चस्स सावका होन्ति गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो, नो च ख्वस्स उपासका सावका होन्ति गिही ओदातवसना कामभोगिनो....पे०....उपासका चस्स सावका होन्ति गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो....पे०....उपासिका चस्स साविका होन्ति गिहिनियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो, नो च ख्वस्स उपासिका साविका होन्ति गिहिनियो ओदातवसना कामभोगिनियो पे०....उपासिका चस्स साविका होन्ति गिहिनियो ओदातवसना कामभोगिनियो, नो च ख्वस्स ब्रह्मचरियं होति इद्धं चेव फीतं च वित्थारिकं बाहुज्जं पुथुभूतं याव [B.103] देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं पे०....ब्रह्मचरियं चस्स होति इद्धं चेव फीतं च वित्थारिकं बाहुज्जं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं नो च खो लाभग्गयसग्गप्पत्तं। एवं तं ब्रह्मचरियं अपरिपूरं होति तेनङ्गेन।

“यतो च खो, चुन्द, एतेहि चेव अङ्गेहि समन्नागतं ब्रह्मचरियं होति, सत्था च होति थेरो रत्तञ्जू चिरपब्बजितो अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो, थेरा चस्स भिक्खू सावका होन्ति वियत्ता

“हाँ, यदि वह धर्म शास्ता और श्रावक के भी उक्त सब अङ्गों से युक्त हो तो तब वह धर्म इस अङ्ग से परिपूर्ण कहलायगा।

११. “इसी तरह, चुन्द! यदि धर्म सभी अङ्गों से युक्त हो, उस का शास्ता भी यथोचित गुणवाला हो, उसके भिक्षु—श्रावक भी व्यक्त विनीत....धर्मानुकूल, युक्ति बल से काटने में समर्थ हों; परन्तु उसके मध्यम भिक्षुश्रावक व्यक्त, विनीत न हों तो वह धर्म इस अङ्ग से हीन ही कहलायगा। हाँ, यदि वे मध्यम भिक्षु भी व्यक्त, विनीत हों तो वह धर्म इस अङ्ग से सम्पन्न कहलायगा।....मध्यमभिक्षु श्रावक भी विनीत, व्यक्त हों, परन्तु नये भिक्षु श्रावक व्यक्त, विनीत....न हों....नये भिक्षु श्रावक विनीत हों, परन्तु स्थविर भिक्षुणियाँ....मध्यम भिक्षु श्राविकाएँ....नयी भिक्षु श्राविकाएँ....गृही अवदातवस्त्र धर्मोपासक....कामभोगी उपासक....कामभोगी उपासिकाएँ....तो उनका धर्मारोपण समृद्ध, उन्नत नहीं होता। उससे लाभ या यश नहीं मिल पाता। और इस तरह वह धर्म इस अङ्ग से अपरिपूर्ण ही कहलायगा।

विनीता विसारदा पत्तयोगक्खेमा, अलं समक्खातुं सद्धम्मस्स, अलं उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मोहि सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेतुं; मज्झिमा चस्स भिक्खू सावका होन्ति....नवा [N.97] चस्स भिक्खू सावका होन्ति....थेरा चस्स भिक्खुनियो साविका होन्ति....मज्झिमा चस्स भिक्खुनियो साविका होन्ति....नवा चस्स भिक्खुनियो साविका होन्ति....उपासका [R.125] चस्स सावका होन्ति....गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो उपासका चस्स सावका होन्ति....गिही ओदातवसना कामभोगिनो उपासिका चस्स साविका होन्ति....गिहिनियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो उपासिका चस्स साविका होन्ति....गिहिनियो ओदातवसना कामभोगिनियो ब्रह्मचरियं चस्स होति....इद्धं चैव फीतं च वित्थारिकं बाहुज्जं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं लाभग्गप्पत्तञ्च यसग्गप्पत्तञ्च। एवं तं ब्रह्मचरियं परिपूरं होति तेनङ्गेन।

१२. “अहं खो पन, चुन्द, एतरहि सत्था लोके उप्पन्नो अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च स्वाक्खातो सुप्पवेदितो निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो, विज्जापितत्था च मे सावका सद्धम्मे, केवलं च तेसं परिपूरं ब्रह्मचरियं आविकतं उत्तानीकतं सब्बसङ्गाहपदकतं सप्पाटिहीरकतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं। अहं खो पन, चुन्द, एतरहि सत्था थेरो रत्तञ्जू चिरपब्बजितो अद्दगतो वयोअनुप्पत्तो।

“सन्ति खो पने मे, चुन्द एतरहि थेरा भिक्खू सावका होन्ति वियत्ता विनीता विसारदा पत्तयोगक्खेमा, अलं समक्खातुं सद्धम्मस्स, अलं उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मोहि सुनिग्गहितं [B.104] निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेतुं। सन्ति खो पन मे, चुन्द, एतरहि मज्झिमा भिक्खू सावका....सन्ति खो पन मे, चुन्द, एतरहि नवा भिक्खू सावका....सन्ति खो पन मे, चुन्द, एतरहि थेरा भिक्खुनियो साविका....सन्ति खो पन मे, चुन्द, एतरहि मज्झिमा भिक्खुनियो साविका....सन्ति खो पन मे, चुन्द, एतरहि नवा भिक्खुनियो साविका....सन्ति खो पन मे, चुन्द, एतरहि उपासका सावका गिही ओदातवसना ब्रह्मचारिनो....सन्ति खो पन मे, चुन्द,

“और फिर, चुन्द! धर्म सभी अङ्गों से युक्त हो....पूर्ववत्...देव-मनुष्यों में सुप्रचारित हो, समृद्ध, उन्नत, विस्तृत, प्रसिद्ध एवं विशाल, लाभ एवं यश की पूर्णता को प्राप्त कर चुका हो तो वह धर्मारोपण सभी अङ्गों से परिपूर्ण होता हुआ लाभ और यश का प्रदाता होता है।

१२. “चुन्द! इस समय मैं लोक में अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध शास्ता उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म भी स्वाख्यात, सुप्रवेदित, नैर्यागिक, उपशम (शान्ति) की ओर बढ़ाने वाला, ज्ञानी द्वारा उपदिष्ट (व्याख्यात) है। और मेरे शिष्य भी उस सद्धर्म के अर्थ को भलीभाँति जानते हैं तथा उनकी धर्मारोपण (ब्रह्मचर्य) भी समृद्ध, उन्नत....देव-मनुष्यों में सुप्रचारित एवं लाभ-यश को देने वाली है। चुन्द! मैं इस समय शास्ता के सभी अङ्गों से परिपूर्ण भी हूँ। मैं स्थविर भी हूँ, धर्मानुरागी भी हूँ, चिरप्रव्रजित भी हूँ, सही मार्ग पर चलने-चलाने वाला हूँ एवं अवस्था-प्राप्त (वृद्ध) भी हूँ।

“चुन्द! इस समय मेरे स्थविर भिक्षुश्रावक भी व्यक्त (कुशल), विनीत, विशारद, योगक्षेमप्राप्त, सद्धर्म के सम्यक्प्रकार से व्याख्याकार, युक्तिबल से दूसरे के आक्षेपों के अपसारण में समर्थ, वादिनिग्रही होते हुए मेरे इस धर्म की साङ्गोपाङ्ग व्याख्या करने में समर्थ हैं। चुन्द! मध्यम भिक्षु भी....नये भिक्षु

एतरहि उपासका सावका गिही ओदातवसना कामभोगिनो....सन्ति खो पन मे, चुन्द, एतरहि उपासिका साविका गिहिनियो ओदातवसना ब्रह्मचारिनियो....सन्ति खो पन मे, चुन्द, [R.126] एतरहि उपासिका साविका गिहिनियो ओदातवसना कामभोगिनियो। एतरहि खो पन मे, चुन्द, ब्रह्मचरियं इद्धं चेव फीतं च वित्थारिकं बाहुज्जं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं।

१३. “यावता खो, चुन्द, एतरहि सत्थारो लोके उप्पन्ना, नाहं चुन्द, अज्जं [N.98] एकसत्थारं पि समनुपस्सामि एवंलाभगयसग्गप्पत्तं यथरिवाहं। यावता खो पन, चुन्द, एतरहि सङ्घो वा गणो वा लोके उप्पन्नो; नाहं, चुन्द, अज्जं एकं सङ्घं पि समनुपस्सामि एवंलाभग-यसग्गप्पत्तं यथरिवायं, चुन्द, भिक्खुसङ्घो। यं खो तं, चुन्द, सम्मा वदमानो वदेय्य—‘सब्बाकार-सम्पन्नं सब्बाकारपरिपूरं अनूनमनधिकं स्वाक्खातं केवलमपरिपूरं ब्रह्मचरियं सुप्पकासितं’ ति, इदमेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य—‘सब्बाकारसम्पन्नं....पे०....सुप्पकासितं’ ति।

“उद्दको सुदं, चुन्द, रामपुत्तो एवं वाचं भासति—‘पस्सं न पस्सती’ ति। किं च पस्सं न पस्सती ति? खुरस्स साधुनिसितस्स तलमस्स पस्सति, धारं च ख्वस्स न पस्सति। इदं वुच्चति, चुन्द—‘पस्सं न पस्सती’ ति। यं खो पनेतं, चुन्द, उद्दकेन रामपुत्तेन भासितं हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं खुरमेव सन्धाय। यं च तं, चुन्द, सम्मा [R.127] वदमानो वदेय्य—‘पस्सं न पस्सती’ ति, इदमेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य—‘पस्सं न पस्सती’ ति। किं च पस्सं न पस्सती ति? एवं सब्बाकारसम्पन्नं सब्बाकारपरिपूरं अनूनमनधिकं केवलं परिपूरं ब्रह्मचरियं सुप्पकासितं ति, इति हेतं पस्सति। इदमेत्थ अपकट्ठेय्य, एवं तं [B.105] परिसुद्धतरं अस्सा ति। इति हेतं न पस्सति। इदमेत्थ उपकट्ठेय्य, एवं तं परिपूरं अस्सा ति, इति हेतं न पस्सति। इदं वुच्चति—‘पस्सं न पस्सती’ ति। यं खो तं, चुन्द, सम्मा वदमानो

भी....स्थविर भिक्षुणियाँ भी....मध्यम भिक्षुणियाँ भी....नगी भिक्षुणियाँ भी....श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासक भी....गृहस्थ उपासिकारै भी....गृहस्थ कामभोगी भी....गृहस्थ कामभोगिनियाँ भी....हैं। यों, चुन्द! मेरा यह सद्धर्म समृद्ध, स्फीत, विस्तारप्राप्त, सार्वजनिक (बाहुज्ज), सरल, स्पष्ट अतएव देवताओं और मनुष्यों में सर्वत्र सुगमतया प्रचार प्राप्त है।

१३. “चुन्द! इस समय जितने भी लोक में धर्मोपदेश (शास्ता) हैं, उनमें से किसी को भी मैं अपने समान, किसी को भी मेरी तरह का लाभ-यश पाने वाला नहीं देखता। न मैं इस लोक में किसी अन्य शास्ता के शिष्य-सङ्घ को ही उत्तमता में अपने शिष्यसङ्घ के समान देख पा रहा हूँ। इस समय कोई कहना चाहे कि ‘आज कौन भिक्षुसङ्घ या धर्म सर्वथा सम्पन्न, सर्वतः परिपूर्ण, न कम, न अधिक, स्वाख्यात, सुप्रकाशित तथा सर्वथा परिपूर्ण है’— तो यह सब मेरे सङ्घ या धर्म के विषय में ही उचित रूप से कह पायगा।

“चुन्द! कभी उद्दक रामपुत्त (भगवान् के आध्यात्मिक गुरुओं में से एक) ने कहा था— ‘देखते हुए नहीं देखता’। क्या देखते हुए नहीं देखता? भलीभाँति तीक्ष्ण किये छुरे के फल को देखता है, धार को नहीं। चुन्द! इसी को कहते हैं— ‘देखते हुए नहीं देखता’। चुन्द! उस समय उद्दक रामपुत्त ने जिसको हीन, ग्राम्य, मूर्खों के योग्य, अनार्य एवं निरर्थक कहा था, वह छुरे को ही लक्ष्य करके कहा था। चुन्द! यदि कोई ‘देखते हुए नहीं देखता’ का उचित अर्थ कहना चाहे तो वह यही कहेगा— ‘देखते हुए नहीं देखता’। क्या देखते हुए नहीं देखता? यों सर्वाकारसम्पन्न, सर्वतः परिपूर्ण, न कम न अधिक, स्वाख्यात,

वदेय्य—‘सब्बाकारसम्पन्नं....पे०....ब्रह्मचरियं सुप्पकासितं’ ति, इदमेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य—‘सब्बाकारसम्पन्नं सब्बाकारपरिपूरं अनूनमनधिकं स्वाक्खातं केवलं परिपूरं ब्रह्मचरियं सुप्पकासितं’ ति ।

७. सब्बेहि सङ्गायितब्बं न विवदितब्बं

१४. तस्मातिह, चुन्द, ये वो मया धम्मा अभिज्जा देसिता, तत्थ सब्बेहेव सङ्गम्म समागम्म अत्थेन अत्थं ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं सङ्गायितब्बं न विवदितब्बं, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्टितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । कतमे च ते, चुन्द धम्मा मया अभिज्जा देसिता, यत्थ सब्बेहेव [N.99] सङ्गम्म समागम्म अत्थेन अत्थं ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं सङ्गायितब्बं न विवदितब्बं, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्टितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ? सेय्यथिदं—चत्तारो सतिपट्टाना, चत्तारो सम्मप्पधाना, [R.128] चत्तारो इद्धिपादा, पञ्चिन्द्रियाणि, पञ्च बलानि, सत्त बोज्झङ्गा, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो । इमे खो ते, चुन्द, धम्मा मया अभिज्जा देसिता, यत्थ सब्बेहेव सङ्गम्म समागम्म अत्थेन अत्थं ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं सङ्गायितब्बं न विवदितब्बं, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्टितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ।

८. सब्बह्यचारिहि धम्मं भासिते

१५. “तेसं च वो, चुन्द, समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं सिक्खितब्बं अज्जतरो सब्बह्यचारी सङ्गे धम्मं भासेय्य । तत्र चे तुम्हाकं एवमस्स—‘अयं खो, आयस्मा अत्थं चेव

सुप्रकाशित तथा सर्वथा परिपूर्ण (यह धर्म) है, यही देखता है । इसमें से इतना निकाल दिया जाय तो अच्छा रहेगा, या इसमें इतना बढ़ा दिया जाय तो अच्छा रहेगा— यह नहीं देखता । इसे कहते हैं— ‘देखते हुए नहीं देखता’ । इस तरह चुन्द ! जब कोई यह स्पष्ट कहना चाहे कि ‘आज कौन धर्म या सङ्घ सर्वाकारसम्पन्न....परिपूर्ण हैं तो मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म या मेरे सङ्घ के विषय में ही यह सब कहने पर उचित रूप से कहलायगा ।

७. धर्म को एक साथ मिल-बैठ कर समझना चाहिये

१४. “अतः, चुन्द ! जिन धर्मों को मैंने स्वयं साक्षात्कार कर तुम लोगों को बताया है, उन धर्मों को तुम सब एक साथ एकत्र होकर बैठकर अर्थ और व्यञ्जन सहित जानो । उस पर कोई झूठा विवाद न करो ; जिससे कि यह ब्रह्मचर्य (धर्म) चिरस्थायी एवं तुम्हारा दूर तक साथ देने वाला बना रहे और बहुजनों के लिये हितकर एवं सुखकर तथा देव-मनुष्यों के लिये उपयोगी सिद्ध हो । चुन्द ! मैंने कौन से धर्म स्वयं साक्षात्कार कर तुम लोगों को बताये हैं, जिनको तुम्हें एकत्र होकर समझना है, जानना है, किसी प्रकार का विवाद नहीं करना है? वे धर्म ये हैं— चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रिय, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग एवं आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग । (ये सैंतीस धर्म ही अभिधर्म में ‘बोधिपक्षीय धर्म’ कहलाते हैं ।) चुन्द ! ये धर्म मैंने....देव-मनुष्यों के लिये उपयोगी सिद्ध हों ।

८. सब्बह्यचारी द्वारा धर्मोपदेश किये जाते समय

१५. “चुन्द ! यदि कोई तुम्हारा सब्बह्यचारी (गुरुभाई) एकत्र सङ्घ में धर्म (बुद्धवचन) पर बोल रहा हो, उस समय तुम्हारे मन में यह विचार उठे— ‘यह आयुष्मान् इस बुद्धवचन का अर्थ और व्यञ्जन की

मिच्छा गणहाति व्यञ्जनानि च मिच्छा रोपेती' ति, तस्स नेव अभिनन्दितब्बं न पटिक्कोसितब्बं, अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा सो एवमस्स वचनीयो—'इमस्स नु खो, आवुसो, अत्थस्स इमानि वा व्यञ्जनानि एतानि वा व्यञ्जनानि कतमानि ओपायिकतरानि, इमेसं च व्यञ्जनानं अयं वा अत्थो एसो वा अत्थो कतमो ओपायिकतरो' ति ? सो चे एवं वदेय्य—'इमस्स [B.106] खो, आवुसो, अत्थस्स इमानेव व्यञ्जनानि ओपायिकतरानि, या चेव एतानि; इमेसं च व्यञ्जनानं अयमेव अत्थो ओपायिकतरो, या चेव एसो' ति, सो नेव उस्सादेतब्बो न अपसादेतब्बो, अनुस्सादेत्वा अनपसादेत्वा स्वेव साधुकं सञ्जापेतब्बो तस्स च अत्थस्स तेसं च व्यञ्जनानं निसन्ति या।

१६. "अपरो पि चे, चुन्दो, सब्बहाचारी सङ्खे धम्मं भासेय्य। तत्र चे तुम्हाकं एवमस्स—'अयं खो आयस्मा अत्थं हि खो मिच्छा गणहाति, व्यञ्जनानि सम्मा रोपेती' ति, [R.129] तस्स नेव अभिनन्दितब्बं न पटिक्कोसितब्बं, अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा सो एवमस्स वचनीयो—'इमेसं नु खो, आवुसो, व्यञ्जनानं अयं वा अत्थो एसो वा, कतमो ओपायिकतरो' ति ? सो चे एवं वदेय्य—'तेसं खो, आवुसो, व्यञ्जनानं अयमेव अत्थो ओपायिकतरो यो चेव एसो' ति, सो नेव उस्सादेतब्बो न अपसादेतब्बो, अनुस्सादेत्वा अनपसादेत्वा स्वेव [N.100] साधुकं सञ्जापेतब्बो तस्सेव अत्थस्स निसन्ति या।

१७. "अपरो पि चे, चुन्द, सब्बहाचारी सङ्खे धम्मं भासेय्य। तत्र चे तुम्हाकं एवमस्स—'अयं खो आयस्मा अत्थं हि खो सम्मा गणहाति, व्यञ्जनानि मिच्छा रोपेती' ति, तस्स नेव अभिनन्दितब्बं न पटिक्कोसितब्बं; अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा सो एवमस्स वचनीयो—'इमस्स नु खो, आवुसो, अत्थस्स इमानि वा व्यञ्जनानि एतानि वा व्यञ्जनानि कतमानि

दृष्टि से मिथ्यारूप में प्रतिपादित कर रहा है' तो उस समय न तो उसका समर्थन करना चाहिये और न उसका प्रतिवाद ही करना चाहिये; अपि तु ऐसा कुछ न करके उससे कहना चाहिये—'आयुष्मन्! आप जो प्रतिपादन कर रहे हैं, उसके लिये ऐसा बुद्धवचन है या ऐसा? अथ च इनमें कौन सा वचन एवं अर्थ उचित (योग्य) है?' इतना पूछने पर भी वह यही कहे—'आयुष्मन्! इस अर्थ में यही वचन तथा मेरे द्वारा प्रतिपादित अर्थ ही उचित प्रतीत होता है' तो उसके कथन को न स्वीकार करना चाहिये न प्रतिवाद। विना स्वीकार किये या विना प्रतिवाद किये उस अर्थ या उन वचनों को स्वयं सङ्गमन कर उसे अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

१६. "और फिर चुन्द! एकत्र हुए सङ्घ में कोई सब्बहाचारी धर्म पर भाषण कर रहा हो। वहाँ यदि तुम्हें ऐसा लगे—'यह आयुष्मन् (बुद्धवचन के) व्यञ्जन (वाक्य) तो सही कर रहा है, परन्तु उसका अर्थ—प्रतिपादन मिथ्या है' तो न तो उसका समर्थन और न प्रतिवाद करना चाहिये, अपितु ऐसा न करते हुए उससे पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! आप जो प्रतिपादन कर रहे हैं'.....पूर्ववत्.....उसे अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

१७. "और फिर चुन्द! एकत्र हुए सङ्घ में.....भाषण कर रहा हो। वहाँ तुम्हें ऐसा लगे—'यह आयुष्मन् बुद्धवचन का अर्थ तो ठीक कह रहा है, परन्तु इस के द्वारा कहे जा रहे बुद्धवचन मिथ्या रूप से प्रतिपादित हो रहे हैं'। तो तुम्हें उसका समर्थन या प्रतिवाद न करते हुए.....पूर्ववत्.....उसे अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

ओपायिकतरानी' ति ? सो चे एवं वदेय्य—'इमस्स खो, आवुसो, अत्थस्स इमानेव व्यञ्जनानि ओपयिकतरानि यानि चेव एतानी' ति, सो नेव उस्सादेतब्बो न अपसादेतब्बो; अनुस्सादेत्वा अपसादेत्वा स्वेव साधुकं सञ्जापेतब्बो तेसज्जेव व्यञ्जनानं निसन्ति या।

“अपरो पि चे, चुन्द, सब्रह्मचारी सङ्घे धम्मं भासेय्य। तत्र चे तुम्हाकं एवमस्स— [B.107] 'अयं खो आयस्मा अत्थं चेव सम्मा गण्हाति व्यञ्जनानि च सम्मा रोपेती' ति, तस्स साधू ति भासितं अभिनन्दितब्बं अनुमोदितब्बं; तस्स साधू ति भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा सो एवमस्स वचनीयो—'लाभा नो आवुसो, सुलद्धं नो आवुसो, ये मयं आयस्मन्तं तादिसं सब्रह्मचारिं पस्साम एवं अत्थुपेतं व्यञ्जनुपेतं' ति।

९. पटिसङ्घा योनि सो पच्चयपटिसेवना

[R.130] १८. “न वो अहं, चुन्द, दिट्ठधम्मिकानं येव आसवानं संवराय धम्मं देसेमि; न पनाहं, चुन्द, सम्परायिकानं येव आसवानं पटिघाताय धम्मं देसेमि। दिट्ठधम्मिकानं चेवाहं, चुन्द, आसवानं संवराय धम्मं देसेमि; सम्परायिकानं च आसवानं पटिघाताय। तस्मातिह, चुन्द, यं वो मया चीवरं अनुज्जातं, अलं वो तं—यावदेव सीतस्स पटिघाताय, उण्हस्स पटिघाताय, डंसमकसवातातपसरीसपसम्फस्सानं पटिघाताय, यावदेव हिरिकोपीनपटिच्छादनत्थं।

यो वो मया पिण्डापातो अनुज्जातो, अलं वो सो—यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुगहाय, इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्गमि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो च। यं वो मया सेनासनं अनुज्जातं, अलं वो तं—यावदेव सीतस्स पटिघाताय, उण्हस्स पटिघाताय, डंसमकसवातातप— [N.101] सरीसपसम्फस्सानं पटिघाताय, यावदेव उतुरिस्सयविनोदनपटिसल्लानारामत्थं।

“फिर, चुन्द, यदि कोई सब्रह्मचारी....भाषण कर रहा हो। वहाँ तुम्हें ऐसा लगे— 'यह आयुष्मान् अर्थ और व्यञ्जन की दृष्टि से बुद्धवचन का उभयथा सम्यक् प्रतिपादन कर रहा है' तो तुम्हें उसको साधुवाद देना चाहिये तथा उसका अभिनन्दन एवं अनुमोदन करना चाहिये। और यह कहकर उसका उत्साहवर्धन भी करना चाहिये कि 'हम अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं और हमने बहुत अधिक पुण्यार्जन कर लिया है कि आप जैसा विद्वान् हमारे सम्मुख बुद्धवचन का अर्थ और व्यञ्जन की दृष्टि से उभयथा ही सम्यक्प्रतिपादन कर रहा है।' ”

९. धर्मोपदेश उभयविध दोषों के परिहार के लिये

१८. “चुन्द! न तो मैं केवल इस जन्म के चित्तमलों के संयम के लिये धर्मोपदेश करता हूँ और न केवल पर जन्मों के चित्तमलों के संयम के लिये ही। मैं तो, चुन्द! उभयविध (ऐहलाकिक एवं पारलौकिक उभयविध) दोषों के संयम के लिये धर्मोपदेश करता हूँ। इसीलिये, चुन्द! मैंने तुम्हें उतने चीवर रखने की अनुमति (अनुज्ञा) दी, जो सर्दी—गर्मी को रोकने के लिये, मक्खी—मच्छर—धूप—ठण्ड, सर्प—वृश्चिक के आघात से परित्राण के लिये तथा लोकलज्जा से बचाने के लिये पर्याप्त हों।

“मैंने पिण्डपात (भिक्षा) के लिये भी तुमलागों की उतनी अनुमति दे दी है, जो इस शरीर के धारण हेतु, भूख की पीड़ानिवृत्ति हेतु एवं धर्मसाधना में सहायता हेतु पर्याप्त हो, जो पुरानी वेदनाओं को उत्पन्न न होने दे, जो सरलतया जीवन—यात्रा चला सके और धर्मसाधना में पूर्णतः सहायक हो। और जो मैंने तुम लोगों को शयनासन के सम्बन्ध में अनुज्ञा दी है, वह भी सर्दी—गर्मी से रक्षा के लिये, साँप—बिच्छू

“यो वो मया गिलानपच्चयभेसज्जपरिक्खारो अनुज्जातो, अलं वो सो—यावदेव उप्पन्नानं वेय्याबाधिकानं वेदनानं पटिघाताय अब्यापज्जपरमताय।

१०. चत्तारो अरिया सुखल्लिकानुयोगा

१९. “ठानं पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अज्जतिथिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं— ‘सुखल्लिकानुयोगमनुयुत्ता समणा सक्कपुत्तिया विहरन्ती’ ति। एवंवादिनो, चुन्द, अज्ज—[B.108] तिथिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया— ‘कतमो सो, आवुसो सुखल्लिकानुयोगो? सुखल्लिकानुयोगा हि बहू अनेकविहिता नानप्पकारका’ ति?

२०. “चत्तारोमे, चुन्द सुखल्लिकानुयोगा हीना गम्मा पोथुज्जनिका अनरिया अनत्थसंहिता न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिज्जाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तन्ति। कतमे चत्तारो?

“इध, चुन्द, एकच्चो बालो पाणे वधित्वा वधित्वा अत्तानं सुखेति पीणेति—अयं पठमो सुखल्लिकानुयोगो। पुन च परं, चुन्द, इधेकच्चो अदिन्नं आदियित्वा आदियित्वा [R.131] अत्तानं सुखेति पीणेति—अयं दुतियो सुखल्लिकानुयोगो। पुन च परं, चुन्द, इधेकच्चो मुसा भणित्वा भणित्वा अत्तानं सुखेति पीणेति—अयं ततियो सुखल्लिकानुयोगो। पुन च परं, चुन्द, इधेकच्चो पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति—अयं चतुत्थो सुखल्लिकानुयोगो।

इमे खो, चुन्द, चत्तारो सुखल्लिकानुयोगा हीना गम्मा पोथुज्जनिका अनरिया अनत्थसंहिता

के आघात को रोकने के लिये तथा ऋतुओं के प्रकोप (=परिश्रय) से सुरक्षा के लिये एवं ध्यान-धारण में सहायता के लिये पर्याप्त हैं।

“और जो मैंने रुग्णावस्था में पथ्य और औषधों की जितनी अनुमति दी है, वे भी रोगों से रक्षा तथा शरीर के स्वास्थ्य के लिये पर्याप्त हैं।

१०. चार आर्य सुखल्लिकानुयोग

१९. “चुन्द! यह सम्भव है कि तुम्हारे विरोधी अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक यों कहें— ‘ये शाक्यपुत्रीय श्रमण सुखमय जीवन बिताते हुए धर्मसाधना करते हैं।’ चुन्द! ऐसा कहने वाले इन अपर सम्प्रदायों के परिव्राजकों को यों पूछना चाहिये— ‘यह सुखमय जीवन बिताना क्या है? क्योंकि लोक में ‘सुखमय जीवन बिताना’ नाना प्रकार का होता है?’

२०. “चुन्द! ये चार प्रकार की सुखमय जीवन बिताने की विधियाँ निकृष्ट (हीन), ग्राम्य, मूर्खों द्वारा सेवित, अनार्य, अनर्थमय होती हैं। ये न निर्वेद (संसार से ग्लानि) के लिये, न वैराग्य के लिये, न चित्तवृत्ति-निरोध के लिये, न उपशम के लिये, न अभिज्ञा, सम्बोधि और न निर्वाण की प्राप्ति में ही सहायक हैं। कौन सी चार?

(१) “चुन्द! यहाँ कोई अज्ञ जीवहिंसा करके प्रसन्न होता है या अपने हृदय में सुख मानता है। यह सुखमय जीवनयापन का प्रथम प्रकार है। (२) चुन्द! फिर कोई दूसरे लोग विना दी हुई वस्तु को चुरा कर उसे अपना मानते हुए सुखी एवं प्रसन्न होते हैं— यह सुखमय जीवनयापन का द्वितीय प्रकार है। (३) फिर चुन्द! कुछ लोग असत्यभाषण से ही अपने को सुखी एवं प्रसन्न मान बैठते हैं— यह तीसरे प्रकार का सुखमय जीवनयापन है। (४) फिर, चुन्द! कोई मुग्ध व्यक्ति पाँचों इन्द्रियों के कामभोगों में ही व्यासक्त रहकर अपने को सुखी एवं सन्तुष्ट मान बैठता है— यह चतुर्थ प्रकार का निकृष्ट सुखमय जीवन-यापन है।

न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिज्जाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तन्ति ।

“ठानं खो पनेतं, चुन्द विज्जति यं अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेयुं—‘इमे चत्तारो सुखल्लिकानुयोगे अनुयुत्ता समणा सक्कपुत्तिया विहरन्ती’ ति । ते वो ‘मा हेवं’ तिसु वचनीया । न ते वो सम्मा वदमाना वदेयुं, अब्भाचिक्खेयुं असता अभूतेन । (क)

[N.102] २१. “चत्तारोमे, चुन्द, सुखल्लिकानुयोगा एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिज्जाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तन्ति । कतमे चत्तारो ?

“इध, चुन्द, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं विवकजं [B.109] पीतिसुखं पठमं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति—अयं पठमो सुखल्लिकानुयोगो । पुन च परं, चुन्द, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा...पे०... दुतियं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति—अयं [R.132] दुतियो सुखल्लिकानुयोगो । पुन च परं, चुन्द, भिक्खु पीतिया च विरागा...ततियं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति—अयं ततियो सुखल्लिकानुयोगो । पुन च परं, चुन्द, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना....चतुत्थं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति—अयं चतुत्थो सुखल्लिकानुयोगो ।

“इमे खो, चुन्द, चत्तारो सुखल्लिकानुयोगा एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिज्जाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तन्ति । (ख)

“ठानं खो पनेतं, चुन्द विज्जति यं अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेयुं—‘इमे

“चुन्द! ये चार सुखमय जीवन—यापन के प्रकार निकृष्ट, ग्राम्य...पूर्ववत्...न निर्वाण—प्राप्ति में ही सहायक हैं ।

“चुन्द! यों यह सम्भव है कि कुछ अन्य सम्प्रदाय वाले तुम्हारे विरोधी परिव्राजक तुम पर यह आरोप लगायें—‘इन चार सुखमय जीवन—यापन विधियों के आश्रय से ही धर्म—साधना करते हैं’ उनका तुम लोगों को ‘आप हम पर ऐसा आरोप न लगावें’—यह कह कर प्रतिरोध करना चाहिये । क्योंकि वे यह कहकर कोई उचित बात नहीं कहते, अपितु, वे असत्य एवं न हुए कार्य का तुम पर आरोप लगाते हैं ।

२१. “चुन्द! ये चार सुखमय जीवनयापन के प्रकार एकान्ततः निर्वेद, वैराग्य, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, सम्बोधि एवं निर्वाण की प्राप्ति में सहायक होते हैं । कौन से चार ?

(१) “चुन्द! कोई साधक भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों का त्यागकर, वितर्क—विचारयुक्त विवेक से उत्पन्न प्रीति—सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करते हैं । यह प्रथम सुखमय जीवन—यापन का प्रकार है । (२) चुन्द! कोई भिक्षु धीरे—धीरे उन वितर्क—विचारों के उपशम के अनन्तर...पूर्ववत्...द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करते हैं । यह द्वितीय सुखमय जीवन—यापन का प्रकार है । (३) चुन्द! कोई साधक भिक्षु प्रीति और वैराग्य के भी उपशम के बाद...पूर्ववत्...तृतीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करते हैं । यह तृतीय सुखमय जीवनयापन का प्रकार है । (४) फिर, चुन्द! कोई साधक भिक्षु सुख—दुःख के प्रहाण के अनन्तर...चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करते हैं । यह चतुर्थ सुखमय जीवनयापन का प्रकार है ।

“चुन्द! ये चार सुखमय जीवनयापन प्रकार ही ऐकान्तिक निर्वेद...निर्वाण की प्राप्ति में सहायक होते हैं ।

“चुन्द! यह हो सकता है कि कुछ परमतावलम्बी, तुम्हारे विरोधी परिव्राजक तुम्हारे विषय में ऐसा कहें—‘ये शाक्यपुत्रीय श्रमण उक्त चार प्रकार के सुखमय जीवनयापन के आश्रय से धर्मसाधना

चत्तारो सुखल्लिकानुयोगे अनुयुत्ता समणा सक्क्यपुत्तिया विहरन्ती' ति। ते वो 'एवं' तिस्सु वचनीया। सम्मा ते वो वदमाना वदेय्युं, न ते वो अब्भाचिक्खेय्युं असता अभूतेन।

२२. "ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'इमे पनावुसो, चत्तारो सुखल्लिकानुयोगे अनुयुत्तानं विहरतं कति फलानि कतानिसंसा पाटिकङ्खा' ति? एवंवादिनो, चुन्द, अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'इमे खो, आवुसो, चत्तारो सुखल्लिकानुयोगे अनुयुत्तानं विहरतं चत्तारि फलानि चत्तारो आनिसंसा पाटिकङ्खा। कतमे चत्तारो?"

इधावुसो, भिक्खु तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो। इदं पठमं फलं, पठमो आनिसंसो। पुन च परं, आवुसो, भिक्खु तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति। इदं दुतियं फलं, दुतियो आनिसंसो। पुन च परं, आवुसो, भिक्खु पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति, तत्थ परिनिब्बायी, अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। इदं ततियं फलं, ततियो आनिसंसो। पुन च परं, [N.103] आवुसो, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पज्जाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिक्त्वा उपसम्पज्ज विहरति। इदं चतुत्थं फलं, चतुत्थो आनिसंसो। इमे खो, [B.110] आवुसो, सुखल्लिकानुयोगे अनुयुत्तानं विहरतं इमानि चत्तारि फलानि, चत्तारो आनिसंसा पाटिकङ्खा' ति।

११. खीणासवस्स अभब्बानि ठानानि

२३. "ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवं [R.133] वदेय्यं—'अट्ठितधम्मा समणा सक्क्यपुत्तिया विहरन्ती' ति। एवंवादिनो, चुन्द, अज्जतित्थिया करते हैं। तो तुम्हें उनके इस कथन का 'हाँ' में उत्तर देना चाहिये; क्योंकि वे तुम्हारे विषय में ऐसा कहते हुए उचित ही करते हैं। तुम पर कोई असत्य या न हुआ आरोप नहीं लगाते।

२२. "हो सकता है, चुन्द! तुमसे तुम्हारे विरोधी अन्यमतावलम्बी परिव्राजक यह पूछें—'आयुष्मन्! इन चार सुखमय जीवनयापन-प्रकारों का क्या फल (महात्म्य) होता है?' तो, चुन्द! उन्हें तुम्हें यह उत्तर देना चाहिये—'आयुष्मानो! इन चार सुखमय जीवनयापन-प्रकारों के ये चार फल होते हैं। कौन से चार?"

"आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु—तीन संयोजनों के नाश से, धर्म से अच्युत रहता हुआ, नियत, सम्बोधिपरायण स्रोतआपन्न होता है। यह उक्त जीवनयापन का प्रथम फल है। (१)/फिर आयुष्मानो! कोई साधक भिक्षु तीन संयोजनों के नाश हो जाने से, राग-द्वेष-मोह के दुर्बल हो जाने से, सकृदागामी की स्थिति में पहुँच जाता है। यों वह एक ही बार फिर इस लोक में आकर सांसारिक दुःखों का निःशेषतः अन्त कर लेता है। यह उस सुखमय जीवनयापन का दूसरा फल है। (२)/फिर आयुष्मानो! कोई भिक्षु पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षीण हो जाने से औपपातिक (अयोनिज देवता) स्थिति में पहुँचकर वहाँ से न लौटकर वहीं निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। यह उस सुखमय जीवनयापन प्रकार (आश्रय) से की गयी साधना का तीसरा फल है। (३)/फिर आयुष्मानो! कोई भिक्षु आश्रवों के क्षय से आश्रवरहित चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर धर्म-साधना में लगा रहता है। यह उस सुखमय जीवनयापन पद्धति के सहारे की गयी साधना का चतुर्थ फल (आनृशंस्य) होता है। (४)/यों

परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—‘अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सावकानं धम्मा देसिता पज्जता यावजीवं अनतिक्रमनीया । सेय्यथापि, आवुसो, इन्दखील्लो वा अयोखील्लो वा गम्भीरनेमो सुनिखातो अचलो असम्पवेधी; एवमेव खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सावकानं धम्मा देसिता पज्जता यावजीवं अनतिक्रमनीया । यो सो, आवुसो, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिकखीणभवसंयोजनो सम्मदज्जा विमुत्तो, अभब्बो सो नव ठानानि अज्झाचरितुं । अभब्बो, आवुसो, खीणासवो भिक्खु सञ्चिच्च पाणं जीविता वोरोपेतुं; अभब्बो खीणासवो भिक्खु अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियितुं; अभब्बो खीणासवो भिक्खु मेथुनं धम्मं पटिसेवितुं; अभब्बो खीणासवो भिक्खु सम्पजानमुसा भासितुं; अभब्बो खीणासवो भिक्खु सन्निधिकारकं कामे परिभुञ्जितुं सेय्यथापि पुब्बे आगारिकभूतो; अभब्बो खीणासवो भिक्खु छन्दागतिं गन्तुं; अभब्बो खीणासवो भिक्खु दोसागतिं गन्तुं; अभब्बो खीणासवो भिक्खु मोहागतिं गन्तु; अभब्बो खीणासवो भिक्खु भयागतिं गन्तुं—यो सो, आवुसो, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिकखीणभवसंयोजनो सम्मदज्जा विमुत्तो, अभब्बो सो इमानि नव ठानानि अज्झाचरितुं’ ति ।

१२. तस्मा ‘तथागतो’ ति वुच्चति

[R.134] २४. “ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—

आयुष्मानो! ये चार उक्त सुखमय जीवनयापन-पद्धति के आलम्बन से की गयी साधना के फल एवं आनुशंस्य (माहात्म्य) बतलाये गये हैं ।

११. क्षीणाश्रवों पर अनुचित आरोप

२३. “चुन्द! यह सम्भव है कि कोई तुम्हारे विरोधी, परमतावलम्बी परिव्राजक तुम लोगों पर यह आरोप लगावें— ‘ये शाक्यपुत्रीय श्रमण अस्थितात्मा होकर साधना करते हैं’; तो, चुन्द! ऐसा कहने वाले उन परिव्राजकों को तुम्हें यों उत्तर देना चाहिये— ‘आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ, सर्वदर्शी, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध ने अपने शिष्यों को ऐसे धर्मों का उपदेश किया है, ज्ञान कराया है जो जीवनपर्यन्त अनुल्लङ्घनीय हैं । आयुष्मानो! जैसे बहुत नीचे तक अच्छी तरह गड़ा हुआ इन्द्रकील (किले के द्वार पर गड़ा हुआ प्रस्तर स्तम्भ) या लौहस्तम्भ अचल एवं दृढ़ (स्थिर) होता है; उसी तरह उस तत्त्वज्ञ, सर्वदर्शी, अर्हत्.....अनुल्लङ्घनीय हैं । आयुष्मानो! जो क्षीणाश्रव भिक्षु पूर्ण धर्मसाधक, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, भवबन्धन से मुक्त, सम्यग्ज्ञान के आश्रय द्वारा विमुक्ति प्राप्त हो चुका है, वह इन नौ बातों से आरोपित नहीं किया जा सकता । (१) आयुष्मानो! वह क्षीणाश्रव भिक्षु जानबूझ कर कोई जीवहत्या करे— यह सम्भव नहीं । (२) वह....न दी हुई वस्तु को चोरी करके ले— यह सम्भव नहीं । (३) वह....किसी के साथ मैथुन धर्म (व्यभिचार) का सेवन करे.... । (४) वह....जानते-बूझते असत्य भाषण करे.... । (५) वह....पहले गृहस्थकाल के कामभोगों का इस (क्षीणाश्रव) अवस्था में संग्रह करने लगे.... । (६) वह....रागयुक्त.... । (७) द्वेषयुक्त.... । (८) मोहयुक्त पक्षपात करे— यह सम्भव नहीं । (९) वह किसी कारण भयभीत हो, यह सम्भव नहीं । जो क्षीणाश्रव भिक्षु पूर्ण धर्मसाधक, कृतकृत्य भारमुक्त....हो चुका है, वह इन उपर्युक्त नौ बातों से कथमपि आरोपित नहीं किया जा सकता ।

१२. इस कारण भगवान् ‘तथागत’ कहलाते हैं

२४. “हो सकता है, चुन्द! तुम्हें अन्य मतावलम्बी परिव्राजक यह व्यङ्ग्यवचन कहें— ‘श्रमण

'अतीतं खो अद्धानं आरब्भ समणो गोतमो अतीरकं जाणदस्सनं पज्जापेति नो च [N.104] खो अनागतं अद्धानं आरब्भ अतीरकं जाणदस्सनं पज्जापेति, तयिंद किंसु तयिंद [B.111] कथंसू' ति ? ते च अज्जतित्थिया परिब्बाजका अज्जविहितकेन जाणदस्सनेन अज्जविहितकं जाणदस्सनं पज्जापेतब्बं मज्जन्ति यथरिव बाला अब्यत्ता। अतीतं खो, चुन्द, अद्धानं आरब्भ तथागतस्स सतानुसारिजाणं होति; सो यावतकं आकङ्खति तावतकं अनुस्सरति। अनागतं च खो अद्धानं आरब्भ तथागतस्स बोधिजं जाणं उप्पज्जति—'अयमन्तिमा जाति, नत्थिदानि पुनब्भवो' ति। अतीतं चे पि खो, चुन्द, होति अभूतं अतच्छं अनत्थसंहितं, न तं तथागतो ब्याकरोति। अतीतं चे पि, चुन्द, होति भूतं तच्छं अनत्थसंहितं, तं पि तथागतो न ब्याकरोति। अतीतं चे पि खो, चुन्द, होति भूतं तच्छं अत्थसंहितं, तत्र कालञ्जू तथागतो होति तस्स पज्हस्स वेय्याकरणाय। अनागतं चे पि, चुन्द, होति अभूतं अतच्छं अनत्थसंहितं, न तं तथागतो ब्याकरोति...पे०.... तस्स पज्हस्स वेय्याकरणाय। पच्चुप्पन्नं चे पि, चुन्द, [R.135] होति अभूतं अतच्छं अनत्थसंहितं, न तं तथागतो ब्याकरोति। पच्चुप्पन्नं चे पि, चुन्द, होति भूतं तच्छं अनत्थसंहितं, तं पि तथागतो न ब्याकरोति। पच्चुप्पन्नं चे पि, चुन्द होति भूतं तच्छं अत्थसंहितं, तत्र कालञ्जू तथागतो होति तस्स पज्हस्स वेय्याकरणाय।

२५. "इति खो, चुन्द, अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु तथागतो कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी, तस्मा 'तथागतो' ति वुच्चति। यं च खो, चुन्द, सदेवकस्स लोकस्स समारकस्स सब्रह्मकस्स सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय दिट्ठं सुतं मुतं विज्जातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा सब्बं तथागतेन अभिसम्बुद्धं, तस्मा 'तथागतो'

गौतम अतीतकाल की बातों को लेकर अधिकतः धर्मोपदेश करते हैं, परन्तु अनागत काल की बातों को लेकर धर्मोपदेश नहीं करते कि यह क्या है और कैसे है?' वह अन्यमतावलम्बी परिव्राजक बच्चों और मुखौ की तरह दूसरी तरह के ज्ञानदर्शन से दूसरी तरह के ज्ञानदर्शन का उपदेश मान बैठते हैं। चुन्द! यहाँ वास्तविकता यह है कि अतीतकाल के विषय में तथागत को स्मृति से ज्ञान होता है। वे जितना चाहते हैं, उतना स्मरण करते हैं। अनागत काल के विषय में बोधि से इन्हें ज्ञान उत्पन्न होता है— 'यह मेरा अन्तिम जन्म है, पुनः मेरा यहाँ आगमन नहीं है।' चुन्द! यदि अतीतकाल की बात अभूत, अतथ्य एवं अनर्थमयी हो तो तथागत उसे नहीं कहते। और, चुन्द! वही बात भूत तथा तथ्यपरक हो, परन्तु वह अनर्थमयी हो तो भी तथागत उसे नहीं कहते। हाँ, वही अतीत की बात भले ही तथ्य तथा सार्थक हो तो भी तथागत उचित समय को देखकर, पहचान कर ही उसे बोलते हैं। चुन्द! अनागत काल की बातें भी यदि अभूत, अतथ्य एवं अनर्थमयी हों तो....नहीं करते। चुन्द! वर्तमान (प्रत्युत्पन्न) काल की बातें भी यदि अभूत अतथ्य तथा अनर्थमयी हों तो....नहीं करते। हाँ यदि चुन्द! वर्तमान काल की बातें भूत तथ्य तथा सार्थक हों तो तथागत उन्हें उचित अवसर देखकर बोलते हैं।

२५. "इस प्रकार, चुन्द! तथागत अतीत, अनागत एवं वर्तमान धर्मों के विषय में कालवादी (कालोचित वक्ता), भूतवादी (जैसा है वैसा ही कहने वाले), अर्थवादी (सार्थक=हितकारी), धर्मवादी (धर्मानुकूल वक्ता) एवं विनयवादी (अनुशासन रखने वाले) हैं। इसीलिये वे 'तथागत' कहलाते हैं। (क) चुन्द! देवता, मार, ब्रह्मासहित समग्र लोक, देव-मनुष्य, श्रमण-ब्राह्मण सहित सम्पूर्ण प्रजा ने जो कुछ देखा-सुना, पाया या जाना, खोजा तथा मन से विचारा है, तथागत को वह सब पहले से ही ज्ञात है।

ति वुच्चति। यं च, चुन्द, रत्तिं तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति, यं च रत्तिं अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायति, यं एतस्मि अन्तरे भासति लपति निद्दिसति, सब्बं तं तथेव होति नो अज्जथा, तस्मा 'तथागतो' ति वुच्चति। यथावादी, चुन्द, तथागतो तथाकारी, यथाकारी तथावादी। इति यथावादी तथाकारी, यथाकारी तथावादी। तस्मा 'तथागतो' [N.105] ति वुच्चति। सदेवके लोके, चुन्द, समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय तथागतो अभिभू अनभिभूतो अज्जदत्थुदसो वसवत्ती। तस्मा 'तथागतो' ति वुच्चति।

१३. किं अब्याकतं किं वा ब्याकतं

[B.112] २६. "ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'किं नु खो, आवुसो, होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति? एवंवादिनो, चुन्द, अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'अब्याकतं खो, आवुसो, भगवता—[R.136] होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति।

"ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति, यं अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'किं पनावुसो, न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति? एवंवादिनो, चुन्द, अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'एवं पि खो, आवुसो, भगवता अब्याकतं—'न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति।

"ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अज्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'किं

इसीलिये उन्हें 'तथागत' कहा जाता है। (ख)। चुन्द! तथागत जिस रात्रि में अनुपम सम्यक्सम्बोधि प्राप्त करते हैं और जिस रात्रि में उपधिरहित परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं— इन दो समयों के अन्तराल में वे जो कुछ कहते हैं, निर्देश करते हैं वह सब वैसा का वैसा ही होता है, यत्किञ्चित् भी अन्यथा नहीं। इसीलिये वे 'तथागत' कहलाते हैं। (ग)। चुन्द! तथागत जैसा करते हैं, वैसा ही कहते हैं; और वे जैसा कहते हैं, वैसा ही करते हैं। इसलिये भी उन्हें 'तथागत' कहा जाता है। (घ)। चुन्द! देवताओं सहित इस समग्र लोक में, मार, ब्रह्मा, श्रमण—ब्राह्मण एवं देव—मनुष्यों सहित सम्पूर्ण प्रजा में तथागत ही सर्वविजेता (अभिभू), किसी से भी अपराजित (अनभिभूत), एक (असन्दिग्ध) बात ही कहने वाले, द्रष्टा एवं वशवर्ती हैं। इसलिये भी उन्हें 'तथागत' कहा जाता है। (ङ)

१३. भगवान् के लिये 'अव्याकृत' या 'व्याकृत' क्या है?

२६. (क) "चुन्द! यह सम्भव है कि परमतावलम्बी परिव्राजक यों पूछें— 'आयुष्मन्! क्या तथागत मरने के बाद भी रहते हैं— यही सच है शेष सब झूठ है'? तो उन्हें यह उत्तर देना चाहिये— 'आयुष्मानो! भगवान् ने इस विषय का तो कभी व्याख्यान ही नहीं किया कि तथागत मरने के बाद भी होते हैं। यही सत्य है बाकी सब झूठ (मोघ)।'

"चुन्द! यह सम्भव है...यों पूछें— 'आयुष्मन्! क्या तथागत मरणानन्तर नहीं होते? क्या यही सच है बाकी सब झूठ?' ऐसा पूछनेवालों को, चुन्द! यह उत्तर देना चाहिये— 'भगवान् ने ऐसा कभी व्याख्यान ही नहीं किया...बाकी सब झूठ है।'

"चुन्द! यह भी सम्भव है...क्या तथागत मरणानन्तर रहते भी हैं, नहीं भी रहते? यही सच...? भगवान् ने ऐसा कभी नहीं कहा है....।

पनावुसो, होति च न च होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्जं' ति? एवंवादिनो, चुन्द, अञ्जतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'अब्बाकतं खो पनेतं, आवुसो, भगवता—'होति च न च होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्जं' ति।

“ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अञ्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'किं पनावुसो, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्जं' ति? एवंवादिनो, चुन्द, अञ्जतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'एतं पि खो, आवुसो, भगवता अब्बाकतं—नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्जं' ति।

“ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अञ्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—'कस्मा पनेतं, समणेन गोतमेन अब्बाकतं' ति? एवंवादिनो, चुन्द, अञ्जतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'न हेतं, आवुसो, अत्थसंहितं न धम्मसंहितं न आदिब्रह्मचरियकं न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिज्जाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति। तस्मा तं भगवता अब्बाकतं' ति।

२७. “ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अञ्जतित्थिया परिब्बाजका [N.106,B.113] एवं वदेय्युं—'किं पनावुसो, समणेन गोतमेन ब्याकतं' ति? एवंवादिनो, चुन्द, अञ्जतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'इदं दुक्खं ति खो, आवुसो, भगवता ब्याकतं। अयं दुक्खसमुदयो ति खो, आवुसो, भगवता ब्याकतं। अयं दुक्खनिरोधो ति खो, आवुसो, भगवता ब्याकतं। अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति खो, आवुसो, भगवता ब्याकतं' ति।

“ठानं खो पनेतं, चुन्द, विज्जति यं अञ्जतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—[R.137] 'कस्मा पनेतं, आवुसो समणेन गोतमेन ब्याकतं' ति? एवंवादिनो, चुन्द, अञ्जतित्थिया परिब्बाजका एवमस्सु वचनीया—'एतं हि, आवुसो, अत्थसंहितं, एतं धम्मसंहितं, एतं आदिब्रह्मचरियकं एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिज्जाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति। तस्मा तं भगवता ब्याकतं' ति।

“चुन्द! यह भी सम्भव है....क्या तथागत मरणान्तर न रहते हैं, न नहीं रहते? यही सच....? भगवान् ने ऐसा कभी नहीं कहा है....।

“चुन्द! यह भी सम्भव है....यदि पूछें— 'आयुष्मन्! तथागत ने इस विषय में स्वयं कुछ क्यों नहीं कहा?' तो तुम्हारे द्वारा उन्हें यह उत्तर मिलना चाहिये— 'आयुष्मानो! इस तरह की बातों का व्याख्यान न तो अर्थोपयोगी है, न धर्मोपयोगी; न ब्रह्मचर्योपयोगी है, न निर्वेदकारक; न वैराग्य तथा निरोध का उत्पादक है, न शान्ति एवं ज्ञान का उत्पादक है, न सम्बोधि या निर्वाण का प्रापक'। अतः भगवान् द्वारा ऐसा व्याख्यान निरर्थक ही होता।

२७. (ख) “चुन्द! यह भी सम्भव है कि तुमसे....यह पूछें— 'फिर आयुष्मन्! भगवान् ने क्या व्याकृत किया है?' तो चुन्द! तुम्हें उनको यों उत्तर देना चाहिये— 'आयुष्मन् भगवान् ने यह कहा है— यह (जगत) दुःख है, यह दुःख-समुदय है, यह दुःखनिरोध है, यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है।'

“चुन्द! यह भी सम्भव है....यह पूछें— 'आयुष्मन्! श्रमण गौतम ने इसे किस हेतु बतलाया है?' तो तुम्हें यह उत्तर देना चाहिये— 'आयुष्मानो! यह व्याख्यान अर्थोपयोगी....पूर्ववत्....निर्वाण का प्रापक है। अतः भगवान् ने इसका उपदेश किया है।'

पुब्बन्तसहगतदिट्ठिनिस्सया

२८. “ये पि ते, चुन्द, पुब्बन्तसहगता दिट्ठिनिस्सया, ते पि वो मया व्याकता। यथा ते व्याकातब्बा यथा च ते न व्याकातब्बा, किं वो अहं ते न तथा व्याकरिस्सामि! ये पि ते, चुन्द, अपरन्तसहगता दिट्ठिनिस्सया ते पि वो मया व्याकता। यथा ते व्याकातब्बा यथा च ते न व्याकातब्बा, किं वो अहं ते न तथा व्याकरिस्सामि!

कतमे च ते, चुन्द, पुब्बन्तसहगता दिट्ठिनिस्सया ये वो मया व्याकता, यथा ते व्याकातब्बा यथा च ते न व्याकातब्बा। सन्ति खो, चुन्द, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—‘सस्सतो अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमज्जं’ ति। सन्ति पन, चुन्द, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—‘असस्सतो अत्ता च लोको च....पे०....सस्सतो च [B.114, R. 138] असस्सतो च अत्ता च लोको च....परङ्कतो अत्ता च लोको च....सयङ्कतो च परंकतो च अत्ता च लोको च...असयङ्कारो अपरङ्कारो अधिच्चसमुप्पन्नो अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमज्जं ति। सस्सतं सुखदुक्खं....असस्सतं सुखदुक्खं....सस्सतं च असस्सतं [N.107] च सुखदुक्खं....नेवसस्सतं नासस्सतं सुखदुक्खं....सयङ्कतं सुखदुक्खं....परङ्कतं सुखदुक्खं....सयङ्कतं च परङ्कतं च सुखदुक्खं....असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं इदमेव सच्चं मोघमज्जं’ ति।

२९. “तत्र, चुन्द, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—‘सस्सतो अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमज्जं’ ति, त्याहं उपसङ्कमिन्वा एवं वदामि—‘अत्थि नु खो इदं,

पूर्वान्त दर्शन— २८. “चुन्द! ये जो पूर्वान्त-सम्बन्धी दर्शन (मतवाद) हैं, मैंने तुमको उनके विषय में भलीभाँति बता दिया कि कैसे उन का व्याख्यान करना चाहिये? और कैसे नहीं करना चाहिये? जो व्याख्या करने योग्य नहीं है, उनके विषय में मैं तुमको अधिक बताऊँ भी क्या! इसी तरह, चुन्द! जो अपरान्त सम्बन्धी दर्शन हैं, उनके विषय में भी मैंने तुमको बता ही दिया। जो न बताने योग्य हैं, उनके विषय में और अधिक क्या बता सकता हूँ!

“चुन्द! वे पूर्वान्तसहगत दृष्टियाँ कौन सी हैं, जिनका व्याख्यान मैंने, जैसा करना चाहिये था, वैसा कर ही दिया है? या जैसा नहीं करना चाहिये था, नहीं किया है? चुन्द! कितने ही श्रमण-ब्राह्मण यह कहते या यह मानते हैं—‘आत्मा और लोक शाश्वत है—यही सत्य है, अन्य सब सिद्धान्त मिथ्या है’। ...आत्मा और लोक दोनों शाश्वत भी हैं और अशाश्वत भी....। ...आत्मा और न शाश्वत हैं, न अशाश्वत....। ...आत्मा और लोक स्वयंकृत हैं....। आत्मा और लोक परकृत हैं....। ...आत्मा और लोक स्वयंकृत भी हैं, परकृत भी....। ...आत्मा और लोक न स्वयंकृत हैं, न परकृत ही....। ...आत्मा और लोक न स्वयंकृत न परकृत, अपितु अकारण उत्पन्न हैं....। ...सुख-दुःख शाश्वत हैं....। सुख-दुःख अशाश्वत हैं....। ...सुख-दुःख शाश्वत भी हैं....अशाश्वत भी....। ...सुख-दुःख शाश्वत भी हैं एवं अशाश्वत भी....। ...सुख-दुःख न शाश्वत हैं, न अशाश्वत....। ...सुख दुःख स्वयंकृत हैं....। ...सुख-दुःख परकृत हैं....। सुख-दुःख स्वयंकृत भी हैं, परकृत भी....। ...सुखदुःख न स्वयंकृत हैं न परकृत, अपि तु अकारण समुत्पन्न हैं—यही सत्य है और सब मिथ्या।’

२९. “वहाँ, चुन्द! जो श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—‘यह आत्मा और लोक शाश्वत है—यही सत्य है और सब झूठ’, उनके पास जाकर मैं यों कहता हूँ—‘आयुष्मानो! आप यह जो कहते हैं कि

आवुसो, वुच्चति—सस्सतो अत्ता च लोको चा' ति? यं च खो ते एवमाहं सु—'इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति, तं तेसं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अज्जथासज्जिनो पि हेत्थ, चुन्द, सन्तेके सत्ता। इमाय पि खो अहं, चुन्द, पज्जत्तिया नेव अत्तना समसमं समनुपस्सामि, कुतो भिय्यो। अथ खो अहमेव तत्थ भिय्यो यदिदं अधिपज्जत्ति।

३०. "तत्र, चुन्द, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'असस्सतो अत्ता च लोको च....सस्सतो च असस्सतो च अत्ता च लोको च....नेवसस्सतो नासस्सतो अत्ता च लोको च....सयङ्कतो अत्ता च लोको च....परङ्कतो अत्ता च लोको च....सयङ्कतो [R.139] अत्ता च लोको च....परङ्कतो अत्ता च लोको च....सयङ्कतो च परङ्कतो च अत्ता च लोको च....असयङ्कारो अपरङ्कारो अधिच्चसमुप्पन्नो अत्ता च लोको च....सस्सतं सुखदुक्खं....असस्सतं सुखदुक्खं....सस्सतं च असस्सतं च सुखदुक्खं....नेवसस्सतं नासस्सतं सुखदुक्खं....सयङ्कतं सुखदुक्खं.... परङ्कतं सुखदुक्खं....सयङ्कतं च परङ्कतं च सुखदुक्खं....असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति, त्याहं उपसङ्गमित्वा एवं वदामि—'अत्थि नु खो इदं, आवुसो, वुच्चति—असयङ्कारं अपरङ्कारं अधिच्चसमुप्पन्नं सुखदुक्खं' ति। यं च खो ते एवमाहं सु—'इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति, तं तेसं नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अज्जथासज्जिनो पि हेत्थ, चुन्द, सन्तेके सत्ता। इमाय पि खो अहं, चुन्द, पज्जत्तिया नेव अत्तना समसमं समनुपस्सामि, कुतो भिय्यो। अथ खो अहमेव तत्थ भिय्यो [B.115] यदिदं अधिपज्जत्ति। इमे खो ते, चुन्द, पुब्बन्तसहगता दिट्ठिनिस्सया ये वो मया व्याकता। यथा ते व्याकातब्बा यथा च ते न व्याकातब्बा, किं वो अहं ते न तथा व्याकरिस्सामी' ति!

अपरन्तसहगतदिट्ठिनिस्सया

३१. "कतमे च ते, चुन्द, अपरन्तसहगता दिट्ठिनिस्सया, ये वो मया व्याकता, यथा ते व्याकातब्बा, यथा च ते न व्याकातब्बा, किं वो अहं ते न तथा व्याकरिस्सामी [N.108] ति? सन्ति, चुन्द, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'रूपी अत्ता होति अरोगो परं

'आत्मा और लोक शाश्वत है', यह तो ठीक है, परन्तु इसके साथ ही आप यह जो कहते हैं—'यही सत्य है, अवशिष्ट सभी झूठ', यह उचित नहीं; क्योंकि यहाँ इससे अन्यथा मानने वाले भी विद्वान् हैं, जो आपके मत का समर्थन नहीं करते। चुन्द! इस मत के प्रतिपादकों में मैं अपने समान भी किसी को नहीं समझता, अपने से विशिष्ट के विषय में तो बात क्या कही जाय! अतः इस मत के प्रतिपादकों में मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ।

३०. "वहीं, चुन्द! कुछ श्रमण ब्राह्मण ऐसा भी मानते हैं—'आत्मा और लोक अशाश्वत हैं....पूर्ववत्....'सुख-दुःख न स्वयंकृत है न परकृत, अपितु अकारण समुत्पन्न हैं— यही सत्य है, बाकी सब झूठ'। उनके पास जाकर मैं यों कहता हूँ—'आयुष्मानो! आप जो यह कहते हैं....पूर्ववत्....इस मत के प्रतिपादकों में मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ। चुन्द! ये जो पूर्वान्तसम्बन्धी दृष्टियाँ हैं, उनके विषय में मुझे जो कुछ कहना था, वह सब कुछ बता दिया; और जो नहीं कहना चाहिये था, उसके विषय में तो मैं कहता ही क्या!

अपरान्त दर्शन— ३१. "चुन्द! अपरान्तसम्बन्धी मतवाद कौन से हैं, जिनको मैंने तुम्हारे लिये भली-भाँति बता दिया कि जो व्याकरणीय हैं कैसे उनका व्याख्यान करना चाहिये और कैसे नहीं करना चाहिये। और जो व्याकरणीय नहीं हैं, उनके विषय में तो मुझे कहना ही क्या था? चुन्द! यहाँ कितने ही श्रमण-ब्राह्मण

मरणा, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति । सन्ति पन, चुन्द, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो— 'अरूपी अत्ता होति....रूपी च अरूपी च अत्ता होति....नेवरूपी नारूपी अत्ता होति....सज्जी [R.140] अत्ता होति....असज्जी अत्ता होति....नेवसज्जीनासज्जी अत्ता होति....अत्ता उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति । तत्र, चुन्द, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो— 'रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि— 'अत्थि नु खो इदं, आवुसो, वुच्चति—रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति ? यं च खो ते एवमाहंसु— 'इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति, तं तेसं नानुजानामि । तं किस्स हेतु ? अज्जथासज्जिनो पि हेत्थ, चुन्द, सन्तेके सत्ता । इमाय पि खो अहं, चुन्द, पज्जत्तिया नेव अत्तना समसमं समनुपस्सामि, कुतो भिय्यो ! अथ खो अहमेव तत्थ भिय्यो यदिदं अधिपज्जति ।

३२. "तत्र, चुन्द, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो— 'अरूपी अत्ता होति.... रूपी च अरूपी च अत्ता होति....नेवरूपीनारूपी अत्ता होति....सज्जी अत्ता होति....असज्जी अत्ता होति....नेवसज्जीनासज्जी अत्ता होति....अत्ता उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि— 'अत्थि नु खो इदं, आवुसो, वुच्चति—अत्ता उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा' ति । यं च खो ते, चुन्द, एवमाहंसु— [B.116] 'इदमेव सच्चं मोघमज्जं' ति, तं तेसं नानुजानामि । तं किस्स हेतु ? अज्जथासज्जिनो पि हेत्थ, चुन्द, सन्तेके सत्ता । इमाय पि खो अहं, चुन्द, पज्जत्तिया नेव अत्तना समसमं समनुपस्सामि, कुतो भिय्यो । अथ खो अहमेव तत्थ भिय्यो यदिदं अधिपज्जति । इमे खो ते, [R.141] चुन्द, अपरन्तसहगता दिट्ठिनिस्सया ये वो मया ब्याकता । यथा ते ब्याकातब्बा, यथा च ते न ब्याकातब्बा, किं वो अहं ते न तथा ब्याकरिस्सामी' ति ?

३३. "इमेसं च, चुन्द, पुब्बन्तसहगतानं दिट्ठिनिस्सयानं इमेसं च अपरन्तसहगतानं

ऐसे वाद या मत के मानने वाले हैं— 'आत्मा रूपवान् है, यह मरणानन्तर नीरोग (सुखी) रहता है— यही सत्य है, बाकी सब झूठ' ।'आत्मा रूपरहित है....आत्मा रूपवान् एवं रूपरहित—दोनों है....आत्मा न रूपवान् है, न रूपरहित....। आत्मा संज्ञावाला है....संज्ञारहित है....संज्ञावाला तथा संज्ञारहित....न संज्ञावाला है, न संज्ञारहित ही....। आत्मा उच्छिन्न हो जाता है विनष्ट हो जाता है, मरणानन्तर नहीं होता— यही सत्य है, बाकी सब झूठ' । चुन्द ! उनमें जो श्रमण या ब्राह्मण इस मत के मानने वाले हैं कि 'आत्मा रूपवान् है.... उनके पास जाकर मैं कहता हूँ— 'आयुष्मानो ! आपका यह कथन कि आत्मा रूपवान् है—तो ठीक है, परन्तु यही सत्य है बाकी सब झूठ—इस बात से मैं सहमत नहीं; क्योंकि इस मत के विरोधी दूसरे मतवादी पुरुष हैं, जो आपकी इस बात को नहीं मानते । पूर्ववत्....इस मत के प्रतिपादकों में मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ ।

३२. "वहाँ, चुन्द ! कुछ श्रमण ब्राह्मण इस मत के कहने वाले या मानने वाले हैं— 'आत्मा रूपरहित है....'आत्मा उच्छिन्न हो जाता है, विनष्ट हो जाता है, मरणानन्तर नहीं रहता' उनके पास जाकर मैं कहता हूँ....। मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ । इस तरह, चुन्द ! अपरान्त सम्बन्धी दृष्टियाँ ये ही हैं जिनका मैंने व्याख्यान कर दिया....विशेष क्या कह सकता हूँ !

१. पूर्वान्त एवं अपरान्त सम्बन्धी दृष्टियों के विषय में विस्तार के लिये ६०— इसी दीघनिकाय ग्रन्थ का प्रथम ब्रह्मजालसुत्त ।

दिट्ठिनिस्सयानं पहानाय समतिक्रमाय एवं मया चत्तारो सतिपट्टाना देसिता पञ्जत्ता । [N.109] कतमे चत्तारो ? इध, चुन्द, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं । वेदनासु वेदनानुपस्सी....पे०.....चित्ते चित्तानुपस्सी.... पे०..... धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं । इमेसं च चुन्द, पुब्बन्तसहगतानं दिट्ठिनिस्सयानं इमेसं च अपरन्तसहगतानं दिट्ठिनिस्सयानं पहानाय समतिक्रमाय । एवं मया इमे चत्तारो सतिपट्टाना देसिता पञ्जत्ता” ति ।

३४. तेन खो पन समयेन आयस्मा उपवाणो भगवतो पिट्ठितो ठितो होति भगवन्तं बीजयमानो । अथ खो आयस्मा उपवाणो भगवन्तं एतदवोच—“अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते ! पासादिको वतायं, भन्ते, धम्मपरियायो; सुपासादिको वतायं भन्ते, धम्मपरियायो । को नामायं, भन्ते, धम्मपरियायो” ति ?

“तस्मातिह त्वं, उपवाण, इमं धम्मपरियायं ‘पासादिको’ त्वेव नं धारेही” ति ।

इदमवोच भगवा । अत्तमनो आयस्मा उपवाणो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति ॥

पासादिकसुत्तं निट्ठितं छट्ठं ॥



इन मतवादों के प्रहाणहेतु स्मृतिप्रस्थान का अभास— ३३. “चुन्द! इन पूर्वाक्त पूर्वान्त एवं अपरान्त दृष्टिवादों के प्रहाण एवं विनाश के लिये भी मैंने चार स्मृतिप्रस्थानों का विस्तृत व्याख्यान पहले (द० महासतिपट्टानसुत्त) ही कर दिया है । कौन से चार ? यहाँ (इस धर्म में) चुन्द! कोई साधक भिक्षु काया में कायानुपश्यना करता हुआ, उद्योगरत होकर अनुभव (सम्प्रजन्त्य) एवं ज्ञान से युक्त होकर, स्मृतिमान्, लोक (संसार या शरीर) में लोभ (अभिध्या) एवं दुःख (दौर्मनस्य) को दूर करके, साधना करता है । वेदना (सुखादि) में वेदनानुपश्यना करता हुआ....चित्त में चित्तानुपश्यना करता हुआ....धर्माँ में धर्मानुपश्यना करता हुआ....साधना करता है । चुन्द! इन चार स्मृतिप्रस्थानों का व्याख्यान, पूर्वान्त एवं अपरान्त वादों के प्रहाण एवं विनाश हेतु, पहले ही कर दिया है ।”

३४. “उस समय आयुष्मान् उपवाण भगवान् के पीछे खड़े होकर उन्हें पङ्क्ता झल रहे थे । तब आयुष्मान् उपवाण ने भगवान् से यों निवेदन किया— “आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! यह धर्मोपदेश (धर्मपर्याय) तो, भन्ते! आप में हम लोगों की श्रद्धा (प्रसाद) को अत्यधिक रूप से बढ़ाने वाला है । भन्ते! आप के इस धर्मोपदेश को हम लोक किस नाम से स्मरण रखें?”

“तो, उपवाण! तू इस धर्मपर्याय को ‘पासादिक’ नाम से धारण कर ले ।”— भगवान् ने यह कहा ।

सन्तुष्ट होकर आयुष्मान् उपवाण ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया ॥

छठा प्रासादिकसूत्र समाप्त ॥



७. लक्षणसूतं

१. द्वितिसमहापुरिसलक्षणानि

[N.110, B.117, R.142] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—“भिक्खवो”ति। “भदन्ते”ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. “द्वितिसिमानि, भिक्खवे, महापुरिसस्स महापुरिसलक्षणानि येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेव गतियो भवन्ति अनज्जा—सचे अगारं अज्जावसति राजा होति चक्रवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो; तस्सिमानि सत्त रतनानि भवन्ति, सेय्यथिदं—चक्ररतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना; सो इमं पठविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्जावसति। सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवट्टच्छदो।

३. “कतमानि च तानि, भिक्खवे, द्वितिस महापुरिसस्स महापुरिसलक्षणानि येहि [R.143] समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेव गतियो भवन्ति अनज्जा—सचे अगारं अज्जावसति राजा होति चक्रवत्ती....पे०....सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोको विवट्टच्छदो ?

७. लक्षणसूत्र

१. महापुरुष के बत्तीस लक्षण

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने “भिक्षुओ!” सम्बोधन से सम्बोधित किया। “हाँ, भन्ते!” कहकर भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

२. भगवान् ने यह उपदेश प्रारम्भ किया— “भिक्षुओ! (विद्वानों ने) किसी महापुरुष में ये बत्तीस (३२) महापुरुष लक्षण (शारीरिक चिह्न) बताये हैं; जिनसे युक्त उस महापुरुष की (इस संसार में) दो ही स्थितियाँ होती हैं, तीसरी नहीं। (क) यदि वह गृहस्थ धर्म में रहता है तो वह धार्मिक धर्माचरण—सम्पन्न चक्रवर्ती राजा होता है और वह सभी जनपदों के सर्वोच्च राजपद पर स्थिरता प्राप्त, चारों छोरों (अन्त) तक समग्र पृथ्वी का विजेता एवं सातों रत्नों से युक्त होता है। वे सात रत्न ये हैं; जैसे— चक्ररत्न, हस्तिरत्न, अश्वरत्न, मणिरत्न, स्त्रीरत्न, गृहपतिरत्न एवं सातवाँ परिणायकरत्न। इसके हजारों सुन्दर एवं शत्रुसंहारक, वीर पुत्र होते हैं। वह इस समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को दण्ड, शस्त्र के बिना ही धर्म के सहारे से अपने वश में रखता हुआ इस पर शासन रखता है। (ख) और यदि वह घर से बेघर हो (गृहस्थ धर्म को छोड़) कर संसार से प्रव्रज्या (संन्यास) ले लेता है तो वह लोक में अपने आवागमन की परम्परा को नष्ट करता हुआ (विवट्टच्छदो), ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध बन जाता है।

३. “भिक्षुओ! ये बत्तीस महापुरुष—लक्षण कौन से हैं, जिनसे युक्त उस महापुरुष की दो ही स्थितियाँ....पूर्ववत्...सम्यक्सम्बुद्ध बन जाता है?

“इध, भिक्खवे, महापुरिसो सुप्पतिट्ठितपादो होति। यं पि, भिक्खवे, महापुरिसो सुप्पतिट्ठितपादो होति, इदं पि, भिक्खवे, महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति।

“पुन च परं, भिक्खवे, महापुरिसस्स हेट्ठापादतलेसु चक्कानि जातानि होन्ति [N.111] सहस्सारानि सनेमिकानि सनाभिकानि सब्बाकारपरिपूरानि। यं पि, भिक्खवे, [B.118] महापुरिसस्स हेट्ठापादतलेसु चक्कानि जातानि होन्ति सहस्सारानि सनेमिकानि सनाभिकानि सब्बाकारपरिपूरानि, इदं पि, भिक्खवे, महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति।

“पुन च परं, भिक्खवे, महापुरिसो आयतपण्हि होति....पे०.... दीघङ्गुलि होति.... मुदुतलुनहत्थपादो होति.... जालहत्थपादो होति उस्सङ्खपादो होति एणिजङ्घो होति ठितको व अनोनमन्तो उभोहि पाणितलेहि जण्णुकानि परिमसति परिमज्जति कोसोहित-वत्थगुहो होति सुवण्णवण्णो होति कञ्चनसन्निभत्तचो सुखुमच्छवि होति, [R.144] सुखुमत्ता छविया रजोजल्लं काये न उपलिम्पति....एकेकलोमो होति, एकेकानि लोमानि लोमकूपेसु जातानि....उद्धग्गलोमो होति, उद्धग्गानि लोमानि जातानि नीलानि अञ्जनवण्णानि कुण्डलावट्टानि दक्खिणावट्टकजातानि....ब्रह्मजुगतो होति....सत्तुस्सदो होति ...सीहपुब्बद्धकायो होति.... चितन्तरंसो होति.... निग्रोधपरिमण्डलो होति, यावतक्कस्स कायो तावतक्कस्स ब्यामो,

“भिक्षुओ! महापुरुष सुप्रतिष्ठितपाद होता है। (उनके चरण भूमि पर समान रूप से बैठते हैं।) भिक्षुओ! यह लक्षण महापुरुष के बत्तीस लक्षणों में प्रथम है। (१)

“फिर, भिक्षुओ! उस महापुरुष के पैर के नीचे तलवों में सर्वाकार परिपूर्ण, नाभि तथा नेमि से युक्त हजारों अरों वाले चक्र होते हैं। इन लक्षणों से सम्पन्न होना महापुरुष का द्वितीय लक्षण है। (२)

“फिर, भिक्षुओ! वह महापुरुष पैरों की विस्तृत (आयत) पार्श्वि (एड़ी) वाला होता है। (३)

“उस महापुरुष की अंगुलियाँ लम्बी होती हैं। (४)

“उस महापुरुष के हाथ-पैर मृदु (कोमल) एवं चिकने होते हैं। (५)

“उस....की अंगुलियाँ जालयुक्त (बत्तख के पैरों की अंगुलियों के बीच की झिल्ली की तरह चमड़े वाली) होती हैं। (६)

“उस....के पैर के गुल्फ (टखने) ऊँचे उठे हुए पृथक् दिखायी देते हैं। (७)

“उस....की जाँघें हिरण की तरह की पिण्डलियों वाली होती हैं। (८)

“वह....सीधा खड़ा हुआ (विना झुके) ही दोनों हाथों की हथेलियों से अपने घुटनों का स्पर्श कर लेता है, मसल लेता है। (९)

“उस....का वस्तिगुह्य (मूत्रेन्द्रिय) कोषाच्छादित होता है। (१०)

“वह....सुवर्ण वर्ण वाला एवं काञ्चन वर्ण की त्वचा वाला होता है। (११)

“उस....के शरीर की त्वचा सूक्ष्म छविवाली होती है, जिससे उस....के शरीर पर धूल या मैल नहीं जमता। (१२)

“उस....के एक रोमकूप में एक-एक ही रोम होता है। (१३)

“उस....के रोम अञ्ज के समान गहरे नीले (श्याम) तथा दाहिनी तरफ (दक्षिणावर्त) घूमे हुए, कुण्डलित (घुँघराले) होते हैं। (१४)

“वह....ब्राह्म ऋजुगात्र (लम्बे अकुटिल शरीरवाला) होता है। (१५)

“उस....का शरीर सातों अङ्गों में पूर्ण आकार वाला होता है। (१६)

यावतक्रस्स ब्यामो तावतक्रस्स कायो समवट्ठकखन्धो होति....रसग्गसग्गी होति सीहहनु होति चत्तालीसदन्तो होति समदन्तो होति अविरळदन्तो होति सुसुक्कदाठो होति पहूतजिक्को होति ब्रह्मस्सरो होति करवीकभाणी....अभिनीलनेत्तो होति गोपखुमो होति उण्णा भमुकन्तरे जाता होति ओदाता मुदुतूलसन्निभा । यं पि, भिक्खवे, महापुरिसस्स उण्णा भमुकन्तरे जाता होति ओदाता मुदुतूलसन्निभा, इदं पि, भिक्खवे, महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति ।

[R.145] “पुन च परं, भिक्खवे, महापुरिसो उण्हीससीसो होति । यं पि, भिक्खवे, महापुरिसो उण्हीससीसो होति, इदं पि, भिक्खवे, महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणं भवति ।

[N.112] “इमानि खो तानि, भिक्खवे, द्वत्तिंस महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणानि येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेव गतियो भवन्ति अनज्जा—सचे अगारं अज्जावसति राजा होति [B.119] चक्कवत्ती....पे०.... सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवट्ठच्छदो ।

“इमानि खो, भिक्खवे, द्वत्तिंस महापुरिसस्स महापुरिसलक्खणानि बाहिरका पि इसयो धारेन्ति, नो च खो ते जानन्ति—‘इमस्स कम्मस्स कट्ठा इदं लक्खणं पटिलभती’ ति ।

“उस....का वक्ष आदि (शरीर का ऊपरी भाग) सिंह के समान (विस्तृत) होता है । (१७)

“उस....के कन्धों का ऊपरी भाग उपचित (मांसल-भरा पूरा) होता है । (१८)

“उस....के शरीर की ऊँचाई और चौड़ाई (व्याम) न्यग्रोध (वटवृक्ष) की तरह उभयथा समान होती है । (१९)

“उस....के कन्धे समान परिणाम (कोई ऊँचा कोई नीचा नहीं) वाले होते हैं । (२०)

“उस....की धमनियों में रक्तप्रवाह ठीक ढंग से होता रहता है । (२१)

“उस....की ठोड़ी (हनु) सिंह के समान पूर्ण होती है । (२२)

“उस....के दाँत सङ्ख्या में चालीस (४०) होते हैं । (२३)

“उस....की दन्तपंक्ति सम होती है (कोई ऊपर-नीचे नहीं) । (२४)

“उस....के दाँतों के बीच खाली जगह (विवर=छेद) नहीं होती । (२५)

“उस....की सभी दाढ़ अत्यन्त श्वेत होती हैं । (२६)

“उस....की जिह्वा लम्बी (प्रभूत) होती है । (२७)

“उस....का स्वर सुरीला एवं श्रुतिमधुर होता है, मानो करवीक पक्षी बोल रहा हो । (२८)

“उस....की आँखों की आभा अलसी के फूल की तरह गहरी नीली होती है । (२९)

“उस....की पलकें गौ के समान होती हैं । (३०)

“उस....की दोनों भौहों के बीच श्वेत कोमल कपास की तरह ऊर्णा (रोमराजि) होती है । (३१)

“उस....के शिर का आकार पगड़ी की तरह चारों ओर समान होता है । भिक्षुओ! यह भी महापुरुष का एक लक्षण होता है । (३२)

“भिक्षुओ! विद्वानों ने ये बत्तीस महापुरुष के लक्षण (शारीरिक चिह्न) बताये हैं, जिनसे युक्त महापुरुष की ये दो ही स्थितियाँ होती हैं...पूर्ववत्....सम्यक्सम्बुद्ध बन जाता है ।

“भिक्षुओ! इन बत्तीस महापुरुष-लक्षणों को अन्य सम्प्रदायों के ऋषि भी जानते हैं, परन्तु वे यह नहीं जानते कि किन शुभ कर्मों के कारण उस महापुरुष को ये चिह्न प्राप्त होते हैं ।

२. इमस्स कम्मस्स कटत्ता इदं लक्खणं

(१) सुप्पतिट्ठितपादता

४. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो दब्बहसमादानो अहोसि कुसलेसु धम्मेषु, अवत्थितसमादानो कायसुचरिते वचीसुचरिते मनोसुचरिते दानसंविभागे सीलसमादाने उपोसथुपवासे मत्तेय्यताय पेत्तेय्यताय [R.146] सामञ्जताय ब्रह्मञ्जताय कुले जेट्ठापचायिताय अञ्जतरञ्जतरेसु च अधिकुसलेसु धम्मेषु; सो, तस्स कम्मस्स कटत्ता उपचितत्ता उस्सन्नत्ता विपुलत्ता, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जति। सो तत्थ अञ्जे देवे दसहि ठानेहि अधिगगण्हाति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सद्देहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि फोट्ठब्बेहि। सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमं महापुरिसलक्खणं पटिलभति—सुप्पतिट्ठितपादो होति; समं पादं भूमियं निक्खिपति, समं उद्धरति, समं सब्बावन्तेहि पादतलेहि भूमिं फुसति।

५. “सो तेन लक्खणेन समन्नागतो सचे अगारं अञ्ज्ञावसति, राजा होति चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सिमानि सत्त रतनानि भवन्ति, सेय्यथिदं—चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा [N.113] वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पठविं सागरपरियन्तं अखिलमनिमित्तमकण्टकं [B.120] इद्धं फीतं खेमं सिवं निरब्बुदं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अञ्ज्ञावसति। राजा समानो किं लभति? अक्खम्भियो होति केनचि मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पच्चामित्तेन—राजा समानो इदं लभति।

“सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके

२. इस कर्म के कारण इस लक्षण का उद्भव

(१) सुप्रतिष्ठितपादता— ४. “भिक्षुओ! तथागत पूर्वजन्म=पूर्व भव, पूर्व निवास में मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर इन कायिक कुशल धर्मों का स्थिर होकर दृढ़ता के साथ अभ्यास करते थे; जैसे— दान, शील (सदाचार), उपोसथ व्रत, माता-पिता एवं श्रमण-ब्राह्मण की सेवा, श्रेष्ठजनों का सत्कार या ऐसे ही दूसरे सत्कर्म। इन पुण्य कर्मों के सञ्चय एवं विपुलता से उस देहपात के बाद मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं। वहाँ अन्य देवताओं से इन दश बातों में अधिक विशेषता प्राप्त किये रहते हैं; जैसे— दिव्य आयु, वर्ण, सुख, यश, प्रभुत्व (आधिपत्य) रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श (के विषय)। वे वहाँ से च्युत होकर यहाँ (इस लोक में) आकर इस (प्रथम) महापुरुषलक्षण—सुप्रतिष्ठितपादता को प्राप्त होते हैं। उस समय इनके पैर सम रूप से भूमि पर पड़ते हैं, सम ही भूमि से उठते हैं, और सब तरफ सम रूप से ही आस-पास की भूमि का स्पर्श करते हैं।

५. “उक्त लक्षणों से समन्वित वे यदि गृहस्थ धर्म में रहते हैं तो चक्रवर्ती...पूर्ववत् शासन रखते हैं। राजा होकर वे (इस लक्षण के प्रभाव से) क्या प्राप्त करते हैं? किसी भी मानव शत्रु या विरोधी से अजेय होना। राजा होकर उन्हें इस लक्षण के प्रभाव से यही उपलब्धि होती है।

“यदि वे गृहस्थ धर्म त्याग कर प्रव्रजित हो जाते हैं तो वे लोक में सांसारिक बन्धनों को काटकर

विवट्टच्छदो। बुद्धो समानो किं लभति?। अक्खम्भियो होति अब्भन्तरेहि वा बाहिरेहि वा पच्चत्थिकेहि पच्चामितेहि, रागेन वा दोसेन वा मोहेन वा समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा [R.147] मारेन वा ब्रह्मना वा केनचि वा लोकस्मि—बुद्धो समानो इदं लभति”। एतमत्थं भगवा अवोच।

६. तत्थेतं वुच्चति—

“सच्चे च धम्मे च दमे च संयमे, सोचेय्यसीलालयुपोसथेसु च।

दाने अहिंसाय असाहसे रतो, दळ्हं समादाय समत्तमाचरि॥

“सो तेन कम्मेन दिवं समक्कमि, सुखं च खिड्डुरतियो च अन्वभि।

ततो चवित्वा पुनरागतो इध, समेहि पादेहि फुसी वसुन्धरं॥

“ब्याकंसु वेय्यञ्जिका समागता, समप्पतिट्ठस्स न होति खम्भना।

गिहिस्स वा पब्बजितस्स वा पुन, तं लक्खणं होति तदत्थजोतकं॥

“अक्खम्भियो होति अगारमावसं, पराभिभू सत्तुभि नप्पमदनो।

मनुस्सभूतेनिध होति केनचि, अक्खम्भियो तस्स फलेन कम्मुनो॥

[N.114, “सच्चे च पब्बज्जमुपेति तादिसो, नेक्खम्मछन्दाभिरतो विचक्खणो।

B.121] अगो न सो गच्छति, जातु खम्भनं, नरुत्तमो एस हि तस्स धम्मता” ति॥

(२) पादतलचक्रता

[R.148] ७. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो

ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध हो जाते हैं। बुद्ध होकर वे (इस लक्षण के प्रभाव से) क्या पाते हैं? वे बाह्य या आन्तरिक शत्रु—राग, द्वेष, मोह से या श्रमण—ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या किसी भी अन्य से अजेय रहते हैं। बुद्ध होकर वे इस लक्षण के प्रभाव से उन पर विजय प्राप्त करते हैं।” भगवान् ने यह बात कही।

६. इस विषय में पौराणिक स्थविरों ने कहा है—

“सत्यभाषण, कुशल धर्म, इन्द्रियदमन, संयम, कायशुद्धि, शीलसंयम, उपोसथव्रत, दान, अहिंसा एवं ऐसे ही अन्य शुभ—कर्मों में रत रहकर दृढ़ता के साथ उन्होंने आचरण किया।

“वे उन कुशल कर्मों के प्रभाव से देहपातानन्तर स्वर्ग में पहुँचे। वहाँ क्रीड़ा एवं रति सुख का दीर्घकाल तक अनुभव करते रहे। फिर वहाँ से च्युत होकर यहाँ (इस लोक में) आये। यहाँ आकर उन्होंने सम पादों से पृथ्वी का स्पर्श किया।

(उस लक्षण को देखकर) “वहाँ आये सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता विद्वानों ने बताया— ‘सम्प्रतिष्ठित पाद वाले महापुरुष की कभी पराजय नहीं होती।’ गृही अथवा प्रव्रजित का यह लक्षण (चिह्न) इसी बात का द्योतक है।

“वह (महापुरुष) यदि गृहस्थ धर्म में रहता है तो वह, इस लक्षण के प्रभाव के कारण, किसी भी शत्रु द्वारा पराजित नहीं होता तथा यहाँ किसी भी पुरुष द्वारा स्वप्रतिष्ठित स्थान से च्युत नहीं किया जा सकता। अपितु वही दूसरों को पराजित करने की सामर्थ्य वाला होता है।

“और यदि वह नरश्रेष्ठ उस लक्षण से युक्त रहता हुआ नैष्कर्म्य का अभिलाषुक होकर प्रव्रज्या ग्रहण करता है तो वह स्वभावतः जन्म—मरण परम्परा को अतिक्रान्त कर जाता है।”

(२) पादतलचक्रता— ७. “भिक्षुओ! तथागत पूर्वजन्म, पूर्वभव या पूर्वनिवास में मनुष्य योनि में उत्पन्न

समानो बहुजनस्स सुखावहो अहोसि, उब्बेगउत्तासभयं अपनुदिता, धम्मिकं च रक्खावरणगुत्तिं संविधाता, सपरिवारं च दानं अदासि; सो तस्स कम्मस्स कटत्ता'उपचितत्ता उस्सन्नत्ता विपुलत्ता कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जति....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमं महापुरिसलक्खणं पटिलभति—हेट्ठापादतलेसु चक्कानि जातानि होन्ति सहस्सरानि सनेमिकानि सनाभिकानि सब्बाकारपरिपूरानि सुविभत्तन्तरानि।

“सो तेन लक्खणेन समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती पे०....राजा समानो किं लभति? महापरिवारो होति : महास्स होन्ति परिवारा, ब्राह्मण-गृहपतिका नेगमजानपदा गणकमहामत्ता अनीकट्ठा दोवारिका अमच्चा पारिसज्जा राजानो भोगिया कुमार। राजा समानो इदं लभति। सचे अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासबुद्धो लोके विवट्ठच्छदो। बुद्धो समानो किं लभति? महापरिवारो होति : महास्स होन्ति परिवारा भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो देवा मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा। बुद्धो समानो इदं लभति”। एतमत्थं भगवा अवोच।

८. तत्थेतं वुच्चति—

“पुरे पुरत्था पुरिमासु जातिसु, मनुस्सभूतो बहूनां सुखावहो।

उब्बेगउत्तासभयापनूदनो, गुत्तीसु रक्खावरणेसु उस्सुको ॥

“सो तेन कम्मेन दिवं समक्कमि, सुखं च खिड्डुरतियो च अन्वभि। N.115,

ततो चवित्वा पुनरागतो इध, चक्कानि पादेसु दुवेसु विन्दति ॥ B.122,

“समन्तनेमीनि सहस्सरानि च, ब्याकंसु वेय्यज्जनिका समागता। R.149]

होकर जनता का परम हित करने वाले हुए। उन्होंने उस जनता का उद्देग, भय एवं चाञ्चल्य दूरकर, उसका धार्मिक रक्षावरण का विधान कर सपरिवार विधिपूर्वक दान किया। वे उस दान कर्म की अधिकता एवं विपुलता इतनी अधिक बढ़ा ले गये कि उसके प्रभाव से देहपात के बाद वे सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न हुए।...वे वहाँ से च्युत होकर इस लोक में आकर 'पादतल में चक्र' रूपी महापुरुष लक्षण प्राप्त करते हैं। वे चक्र सहस्र अरों से युक्त, नेमि एवं नाभि सहित, सभी आकारों से परिपूर्ण एवं सुविभक्त होते हैं।

“वे इस लक्षण से युक्त होकर, यदि गृहस्थ धर्म में रहते हैं तो चक्रवर्ती राजा...पूर्ववत्...। राजा होकर वे इस लक्षण के प्रभाव से क्या पाते हैं? उनका विशाल परिवार होता है— ब्राह्मण, गृहपति, नैगम (नागरिक सभासद), जानपद (ग्रामसभासद), कोषाध्यक्ष, मन्त्री, अङ्गरक्षक, सेनापति, द्वारपाल, अमात्य, पारिषद, अधीनस्थ राजा एवं राजकुमार। राजा होकर वे यह पाते हैं।

और यदि वे घर छोड़कर बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं तो भी उनका महान् परिवार होता है। उनके उस परिवार में इनकी गणना होती है— भिक्षु, भिक्षुणियाँ, उपासक, उपासिकाएँ, देवता, मनुष्य, असुर, नाग एवं गन्धर्व। वे बुद्ध होकर, इस लक्षण के प्रभाव से, ये (महापरिवार) पाते हैं।” भगवान् ने यह कहा।

८. वहाँ पौराण स्थविरों द्वारा इस भगवद्भजन का यों विस्तार किया जाता है—

“वे अतिप्राचीन काल में हुए अपने पूर्वजन्मों में मनुष्य योनि में बहुतों के लिये सुखदायक हुए। शत्रु राजा आदि से उद्देग, भय एवं चण्ड हस्ति आदि से तात्कालिक उत्त्रास, भय को दूर करते हुए

दिस्वा कुमारं सतपुञ्जलक्खणं, परिवारवा हेस्सति सत्तुमद्दणे ॥
 “तथा हि चक्कानि समन्तनेमिनि, सचे न पब्बज्जमुपेति तादिसो ।
 वत्तेति चक्कं पठविं पसासति, तस्सानुयन्ताध भवन्ति खत्तिया ॥
 “महायसं सम्परिवारयन्ति नं, सचे च पब्बज्जमुपेति तादिसो ।
 नेक्खम्मच्छन्दाभिरतो विचक्खणो, देवामनुस्सासुर-सक्क-रक्खसा ॥
 “गन्धब्बनागा विहगा चतुप्पदा, अनुत्तरं देवमनुस्सपूजितं ।
 महायसं सम्परिवारयन्ति नं” ति ॥

(३-५) आयतपण्हितादि

९. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो अहोसि निहितदण्डो निहितसत्थो, लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहासि; सो तस्स कम्मस्स कटत्ता उपचितत्ता उस्सन्नत्ता [R.150] विपुलत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि तीणि महापुरिस-लक्खणानि पटिलभति—आयतपण्हि च होति, दीघङ्गुलि च, ब्रह्मजुगत्तो च । [B.123, N.116] सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती....पे०.... राजा समानो किं लभति ? दीघायुको होति चिरद्वितिको, दीघमायुं पालेति, न सक्का होति अन्तरा जीविता वोरोपेतुं केनचि मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पच्चामित्तेन । राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति ? दीघायुको होति चिरद्वितिको, दीघमायुं पालेति, न सक्का होति अन्तरा जीविता वोरोपेतुं पच्चत्थिकेहि पच्चामित्तेहि समणेन वा ब्राह्मणेन

रक्षावरणगुप्ति में उत्सुक रहते थे ।

“वे इस पुण्य कर्म के प्रभाव से स्वर्गलोक में पहुँचे । वहाँ उन्होंने सुदीर्घकाल तक क्रीडा एवं रति सुख का उपभोग किया । फिर कभी स्वर्गलोक से च्युत होकर, इस लोक में आकर उन्होंने, पूर्वजन्मों में किये उन पुण्य कर्मों के प्रभाव से, अपने दोनों चरणों में शुभ चक्र प्राप्त किये ।

“उन सहस्र अरों वाले एवं चारों तरफ फैली नेमि वाले चक्रों की प्राप्ति का फल बताने के लिये आये हुए सामुद्रिक शास्त्र के विद्वानों (ज्योतिषियों) ने उस सैकड़ों पुण्य-लक्षण वाले कुमार को देखकर बताया— ‘ये स्वशत्रुनाशक एवं विशाल परिवार वाले होंगे; क्योंकि इनके चरणों में चक्र का चिह्न है । यदि ऐसा पुरुष (किसी कारणवश) प्रव्रजित न हो पाये तो चक्रवर्ती राजा होकर समग्र पृथ्वीमण्डल पर शासन करता है । तथा पृथ्वी के अन्य राजा इसके अधीन रहते हैं ॥

यदि यह नैष्कर्म्य का इच्छुक जातक प्रव्रजित हो तो भी विशाल परिवार वाला होगा और यह महायशस्वी देव, मनुष्य, असुर, शक्र (इन्द्र) (‘सत्त्व’ पाठ मानने पर ‘प्राणी’), राक्षस, गन्धर्व, नाग, पशु, पक्षी द्वारा पूजित रहेगा ॥

(३-५) आयतपार्ष्णिता आदि— ९. “भिक्षुओ! तथागत पूर्वजन्म में मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर जीवहत्या का त्याग कर जीवहिंसा से विरत रहकर, दण्ड एवं शस्त्र का परित्याग करते हुए, लज्जा एवं दया से युक्त तथा सभी प्राणियों का हित तथा उन पर अनुकम्पा करने वाले होकर विचरण करते थे । वे इन कुशल कर्मों के पुण्य प्रभाव से....यहाँ आकर इन तीन महापुरुष लक्षणों को प्राप्त करते हैं— पैरों की विस्तृत (आयत) पार्ष्णि (एड़ी), लम्बी अंगुलियाँ एवं ब्रह्मा के समान सीधा, लम्बा, इकहरा गात्र ।

वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मना वा केनचि वा लोकस्मि । बुद्धो समानो इदं लभति ।" एतमत्थं भगवा अवोच ।

१०. तत्थेतं वुच्चति—

“मारणवधभयमत्तनो विदित्वा, पटिविरतो परं मारणायहोसि ।

तेन सुचरितेन सग्गमग्गमा, सुकतफलविपाकमनुभोसि ॥

“चविय पुनरिधागतो समानो, पटिलभति इध तीणि लक्खणानि ।

भवति विपुलदीघपासण्हिको, ब्रह्मा व सुजु सुभो सुजातगतो ॥

“सुभुजो सुसु सुसण्ठितो सुजातो, मुदुतलुङ्गुलियस्स होन्ति ।

दीघा तीभि पुरिसवरग्गलक्खणेहि, चिरयपनाय कुमारमादिसन्ति ॥ [R.151]

“भवति यदि गिही चिरं यपेति, चिरतरं पब्बजति यदि ततो हि ।

यापयति च वसिद्धिभावनाय, इति दीघायुकताय तं निमित्तं” ति ॥

(६) सत्तुस्सदता

११. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं [B.124] पुब्बे मनुस्सभूतो समानो दाता अहोसि पणीतानं रसितानं खादनीयानं भोजनीयानं [N.117] सायनीयानं लेहनीयानं पानानं; सो, तस्स कम्प्स कट्ठा....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो इमं महापुरिसलक्खणं पटिलभति—सत्तुस्सदो होति, सत्तस्स उस्सदा होन्ति; उभोसु हत्थेसु उस्सदा होन्ति, उभोसु पादेसु उस्सदा होन्ति, उभोसु अंसकूटेसु उस्सदा होन्ति, खन्धे उस्सदो होति ।

वे इन लक्षणों से सम्पन्न रहते हुए यदि गृहस्थ धर्म की तरफ मुड़ते हैं तो चक्रवर्ती राजा होकर समग्र पृथ्वी पर शासन करते हैं । वे इन लक्षणों के प्रभाव से राजा होकर क्या पाते हैं? वे दीर्घायु होकर चिर काल तक जीते हैं । कोई शत्रुभूत पुरुष उन्हें मार नहीं सकता । राजा होकर ...वे यह प्राप्त करते हैं । बुद्ध होकर वे क्या पाते हैं? कोई भी शत्रुभूत श्रमण—ब्राह्मण, देव या कोई अन्य उन्हें मार नहीं सकता । बुद्ध होकर वे यह प्राप्त करते हैं ।” यह भगवान् ने कहा ।

१०. वहाँ पौराण स्थविरों द्वारा इसका विस्तृत व्याख्यान यों किया गया है—

“अपनी मृत्यु तथा क्षय, भय को देखकर वे जीवहिंसा से विरत रहे । इस सत्कर्म के प्रभाव से उन्होंने स्वर्ग सुख का चिरकाल तक भोगा ।

“वहाँ से च्युत होकर उन्होंने यहाँ आकर, उसी सत्कर्म के प्रभाव से ये तीन विशेष लक्षण प्राप्त किये— विस्तृत एड़ी, लम्बी अंगुलियाँ एवं ब्रह्मा के समान लम्बा छरहरा शरीर ॥

“और इनकी शिशु की भुजाओं के समान मनोरम एवं सुन्दर भुजाएँ एवं शुभ सुजात देहयष्टि होती है ।

(ज्योतिषी लोग) “महापुरुष के इन तीन श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त कुमार को दीर्घजीवी बताते हैं ।

“वह यदि गृहस्थ रहता है तो दीर्घायु चक्रवर्ती राजा होता है और यदि प्रव्रजित होता है तो उसकी अपेक्षा भी स्ववशी होकर ऋद्धि भावना हेतु दीर्घकाल तक जीवित रहता है ।

(६) सप्त—उत्सदता— ११. “जो, भिक्षुओ! तथागत पूर्व जन्म में मनुष्य योनि में आकर नानाविध सुन्दर, स्वादिष्ट, खाद्य भोज्य, लेह्य एवं चोष्य पदार्थों का दान करते थे । उस पुण्य के प्रभाव से ...पूर्ववत् इस

“सो तेन लक्खणेन समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती.... पे०.... राजा समानो किं लभति ? लाभी होति पणीतानं रसितानं खादनीयानं भोजनीयानं सायनीयानं लेहनीयानं पानानं । राजा समानो इदं लभति.... पे०.... बुद्धो समानो किं लभति ? [R.152] लाभी होति पणीतानं रसितानं खादनीयानं भोजनीयानं सायनीयानं लेहनीयानं पानानं । बुद्धो समानो इदं लभति ।” एतमत्थं भगवा अवोच ।

१२. तत्थेतं वुच्चति—

“खज्जभोजमथ लेय्य सायियं, उत्तमगरसदायको अहु ।

तेन सो सुचरितेन कम्मुना, नन्दने चिरमभिप्पमोदति ॥

“सत्त चुस्सदे इधाधिगच्छति, हत्थपादमुदुतं च विन्दति ।

आहु ब्यञ्जननिमित्तकोविदा, खज्जभोजरसलाभिताय नं ॥

“यं गिहिस्स पि तदत्थजोतकं, पब्बज्जं पि च तदाधिगच्छति ।

खज्जभोजरसलाभिरुत्तमं, आहु सब्बगिहिबन्धनच्छिदं” ति ॥

(७-८) करचरणमुदुजालता

[B.125] १३. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे [N.118] मनुस्सभूतो समानो चतूहि सङ्गहवत्थूहि जनं सङ्गाहको अहोसि—दानेन, पेय्यवाचेन, अत्थचरियाय, समानत्तताय; सो, तस्स कम्मस्स कटत्ता.... पे०.... सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो [R.153] समानो इमानि द्वे महापुरिसलक्खणानि पटिलभति—मुदुतलुनहत्थपादो च होति जालहत्थपादो च ।

“सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती....

लोक में आकर ‘सात स्थानों से उभरा हुआ होना’—यह महापुरुष लक्षण प्राप्त करता है। जैसे—उसके दोनों हाथों में, दोनों पैरों में, दोनों कन्धों में और उसकी ग्रीवा में मांस का उभार होता है।

“वह उस लक्षण से सम्पन्न होकर यदि घर में रहता है तो चक्रवर्ती राजा होता है.... पूर्ववत्....। राजा होने पर उसे इस लक्षण के प्रभाव से क्या मिलता है? सुन्दर, स्वादिष्ट खाद्य.... पदार्थों को अतिशय प्राप्त करता है। राजा होकर वह यह पाता है। बुद्ध होकर....? बुद्ध होकर भी वह सुन्दर स्वादिष्ट खाद्य.... पदार्थों की प्राप्ति करता है।” यह भगवान् ने बताया।

१२. पौराण स्थविर इस भगवदुक्ति का व्याख्यान यों करते हैं—

“(तथागत) खाद्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य आदि उत्तम, स्वादिष्ट पदार्थों के दानरूप सत्कर्म के प्रभाव से स्वर्ग सुख चिरकाल तक भोगते रहे ॥

“(इस लोक में आने पर उस सत्कर्म के प्रभाव से) उन का शरीर सात स्थानों से उभरा हुआ अत्यधिक सुन्दर लगता था। उनके हाथ—पैर भी मृदु थे। सामुद्रिक शास्त्र के विद्वान् उसको खाद्य.... पदार्थों का लाभी बताते हैं ॥

“वे कहते हैं कि यह लक्षण गृहस्थ एवं प्रव्रजित—दोनों को ही समान लाभ देता है। ऐसे लक्षणधारकों को उत्तम खाद्य भोज्य का लाभी एवं सभी गृहकारक बन्धनों का छेदक बताया गया है ॥”

(७-८) कर—चरण मृदुजालता— १३. भिक्षुओ! तथागत पूर्वजन्म में... मनुष्य योनि में जन्म लेकर दान, (२) प्रियवचन, (३) अर्थचर्या (उपकारक कृत्य) एवं (४) समानता का व्यवहार—इन चार संग्रहकारक

पे०....राजा समानो किं लभति ? सुसङ्ग्रहितपरिजनो होति, सुसङ्ग्रहितास्स होन्ति ब्राह्मणगहपतिका नेगमजानपदा गणकमहामत्ता अनीकट्टा दोवारिका अमच्चा पारिसज्जा राजानो भोगिया कुमारा । राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति ? सुसङ्ग्रहितपरिजनो होति, सुसङ्ग्रहितास्स होन्ति भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो देवा मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा । बुद्धो समानो इदं लभति” । एतमत्थं भगवा अवोच ।

१४. तत्थेवं वुच्चति—

“दानं पि चत्थचरियतं च, पियवादितं च समानत्ततं च ।
करियचरियसुसङ्ग्रहं बहून्, अनवमतेन गुणेन याति सगं ॥
“चविय पुनरिधागतो समानो, करचरणमुदुतं च जालिनो च ।
अतिरुचिरसुवग्गुदस्सनेय्यं, पटिलभति दहरो सुसु कुमारो ॥
“भवति परिजनस्सवो विधेय्यो, महिमं आवसितो सुसङ्ग्रहितो । [B.126,
पियवदू हितसुखतं जिगीसमानो, अभिरुचितानि गुणानि आचरति ॥ R.154]
“यदि च जहति सब्बकामभोगं, कथयति धम्मकथं जिनो जनस्स । [N.119]
वचनपटिकरस्साभिप्पसन्ना, सुत्वान धम्मानुधम्ममाचरन्ती” ति ॥

(१-१०) उत्सङ्गपाद-उद्धगलोमता

१५. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो अत्थूपसंहितं धम्मूपसंहितं वाचं भासिता अहोसि, बहुजनं निदंसेसि, पाणीनं हितसुखावहो

गुणों से अपने सहायकों का संग्रह करते थे । इन सत्कर्मों के पुण्य प्रभाव से...पूर्ववत्....इन दो महापुरुष लक्षणों की प्राप्ति करता है— (१) उस के हाथ-पैर मृदु एवं तरुण (कोमल) तथा (२) जालयुक्त होते हैं ।

“वे उन लक्षणों से युक्त होकर यदि गृहस्थ रहते हैं तो राजा...होकर अपने सहायकों का संग्रह करते हुए समग्र पृथ्वी पर शासन करते हैं, राजा होने पर वे ब्राह्मण, गृहपति, नैगम, जानपद, कोषाध्यक्ष, सेनापति, द्वारपाल....सभी परिजनों का संग्रह करते हैं और बुद्ध होने पर वे वैसे सहायक संग्रह करते हैं ।.... और बुद्ध होने पर भी भिक्षु, भिक्षुणी आदि धर्मसाधक परिजनों का संग्रह करते हैं ।” यह भगवान् ने बताया ।

१४. पौराण विद्वानों ने इसका स्पष्टार्थ यों किया—

“वह दान, उपकारक कृत्य, प्रिय वचन एवं सब के साथ समान व्यवहार कर, बहुत से साथियों (परिजनों) का संग्रह करता है और इस सत्कृत्य के प्रभाव से स्वर्ग जाता है ॥

“वहाँ से च्युत होकर पुनः यहाँ आकर ऐसे मृदु और कोमल हाथ एवं जालयुक्त दीर्घ अंगुलियाँ पाता है, जैसे किसी सुन्दर दर्शनीय शिशु की हों ॥

“परिजनों का प्रिय होता है, उन का संग्रह कर समग्र पृथ्वी को वश में करता है । प्रियवक्ता एवं हित-सुख का अन्वेषक बनकर प्रिय गुणों का आचरण करता है ।

“यदि वह सभी कामभोगों का परित्याग करता है तो जितेन्द्रिय होकर जनता को धर्मोपदेश करता है । उसके उस धर्मोपदेश से प्रसन्न (श्रद्धालु) होकर वह जनता धर्माचरण करने लगती है ॥

(१-१०) उत्सङ्गपादता एवं ऊर्ध्वाग्रलोमता— १५. भिक्षुओ! तथागत अपने किसी पूर्वजन्म में मनुष्य योनि में आकर जनता को अर्थयुक्त एवं धर्मयुक्त बातों का उपदेश एवं निर्देश करते थे । प्राणियों के हितार्थ एवं

धम्मयागी; सो, तस्स कम्मस्स कटत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि द्वे महापुरिसलक्खणानि पटिलभति—उस्सङ्गपादो च होति उद्धग्गलोमो च ।

“सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्रवत्ती पे०....राजा समानो किं लभति ? अगो च होति सेट्ठो च पामोक्खो च उत्तमो च पवरो च कामभोगीनं । राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति ? अगो च होति सेट्ठो च पामोक्खो च उत्तमो च पवरो च सब्बसत्तानं । बुद्धो समानो इदं लभति” । एतमत्थं भगवा अवोच ।

१६. तत्थेतं वुच्चति—

[R.155] “अत्थधम्मसहितं पुरे गिरं, एरयं बहुजनं निदंसयि ।
पाणिनं हितसुखावहो अहं, धम्मयागमयजी अमच्छरी ॥

[B.127] “तेन सो सुचरितेन कम्मुना, सुग्गतिं वजति तत्थ मोदति ।

[N.120] लक्खणानि च दुवे इधागतो, उत्तमप्पमुखताय विन्दति ॥

“उब्भमुप्पतितलोमवा ससो, पादगण्ठिरहु साधुसण्ठिता ।
मंसलोहिताचिता तचोत्थता, उपरिचरणसोभना अहु ॥

“गेहमावसति चे तथाविधो, अगगतं वजति कामभोगिनं ।
तेन उत्तरितरो न विज्जति, जम्बुदीपमभिभुय्य इरियति ॥

[R.156] “पब्बजं पि च अनोमनिक्कमो, अगगतं वजति सब्बपाणिनं ।
तेन उत्तरितरो न विज्जति, सब्बलोकमभिभुय्य विहरती” ति ॥

सुखार्थ धर्म—यज्ञ करते थे । इन सत्कर्मों के प्रभाव से उनको ये दो लक्षण—उत्सङ्गपाद (ऊपर उठे गुल्फों वाले पैर) एवं ऊर्ध्वाग्र लोम (शरीर के लोम ऊपर उठे रहना, जबकि साधारण लोगों के लोम नीचे की तरफ झुके रहते हैं) प्राप्त करते हैं ।

“वह इन लक्षणों से समन्वित होकर यदि गृहस्थ रहता है तो चक्रवर्ती.... । राजा होकर वह इन गुणों के प्रभाव से क्या पाता है? कामभोगी लोगों की गणना में वह सबसे अग्र, श्रेष्ठ, प्रमुख उत्तम एवं प्रवर माना जाता है ।.... बुद्ध होकर वह क्या पाता है? वह भी सभी प्राणियों में अग्र...प्रवर माना जाता है । बुद्ध होकर वह इस गुण के प्रभाव से यह पाता है । “भगवान् ने यह कहा ।

१६. पौराणों द्वारा इस वचन का विस्तार यों किया गया—

“उसको पूर्वजन्मों में बहुतजनों को अर्थ एवं धर्म सम्बन्धी हितकर बातें बतायीं, प्राणियों को हित—सुख का दाता बना, मत्सररहित होकर धर्म—यज्ञ करता रहा ।

“इस सत्कर्म के प्रभाव से वे सुगतिमय स्वर्गलोक में चिरकाल तक वास कर पुनः इस लोक में आकर उक्त पुण्य कर्मों के प्रभाव से उत्सङ्गपादता, एवं ऊर्ध्वाग्रलोमता— ये दो महापुरुष लक्षण प्राप्त कर जनता में उत्तम, अग्र, श्रेष्ठ, प्रमुख एवं प्रवर बने ।

“उसके लोम ऊपर की ओर उठे रहते हैं, पैर की ग्रन्थि (गुल्फ) भलीभाँति उठी रहती है । वह मांस, रुधिर तथा चर्म से अच्छी तरह आवृत रहती है तथा चरणों पर शोभायमान रहती है ।

“वैसा पुरुष यदि गृहस्थ रहता है तो कामभोगियों में श्रेष्ठ होता है । उससे बढ़कर कोई नहीं होता । वह समग्र जम्बुद्वीप को जीतकर उस पर शासन करता है ॥

(११) एणिजङ्घता

१७. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो सक्कच्चं वाचेता अहोसि सिप्पं वा विज्जं वा चरणं वा कम्मं वा—‘किं तिमे खिप्पे विजानेय्युं, खिप्पं पटिपज्जेय्युं, न चिरं किलिस्सेय्युं’ ति; सो, तस्स कम्मस्स कटत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमं महापुरिसलक्खणं पटिलभति—एणिजङ्घो होति।

“सो तेन लक्खणेन समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती पे०....राजा समानो किं लभति ? यानि तानि राजारहानि राजङ्गानि राजूपभोगानि [B.128] राजानुच्छविकानि तानि खिप्पं लभति। राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो [N.121] किं लभति ? यानि तानि समणारहानि समणङ्गानि समणूपभोगानि समणानुच्छविकानि तानि खिप्पं पटिलभति। बुद्धो समानो इदं लभति”। एतमत्थं भगवा अवोच।

१८. तत्थेतं वुच्चति—

“सिप्पेसु विज्जाचरणेसु कम्मसु, कथं विजानेय्युं लहुं ति इच्छति।
यदूपघाताय न होति कस्सचि, वाचेति खिप्पं न चिरं किलिस्सति ॥ [R.157]

“तं कम्मं कत्वा कुसलं सुखुद्रयं, जङ्घा मनुज्जा लभते सुसण्ठिता।
वट्टा सुजाता अनुपुब्बमुग्गता, उद्धग्गलोमा सुखुमत्तचोत्थता ॥

“एणेय्यजङ्घो ति तमाहु पुग्गलं, सम्पत्तिया खिप्पमिधाहु लक्खणं।
गेहानुलोमानि यदाभिकङ्घति, अपब्बजं खिप्पमिधाधिगच्छति ॥

“यदि वह अनुपम गृहत्याग कर प्रव्रजित हो जाता है तो सभी प्राणियों में श्रेष्ठ होता है। उससे बढ़कर कोई नहीं होता। वह समग्र लोक की अपेक्षा अधिक धर्माराम्यता में लगा रहता है॥

(११) एणिजङ्घता— १७. भिक्षुओ! तथागत पूर्वजन्म में, मनुष्ययोनि में उत्पन्न होकर जनता को सत्कारपूर्वक, शिल्प, विद्या, आचरण एवं कर्मों की शिक्षा इस तरह देते थे कि सीखने वाले इसे शीघ्र जान जायें या शीघ्र ही ठीक तरह से सीख लें। अधिक समय तक हैरान न हों। वे मरणानन्तर स्वर्ग में चिरकाल तक सुखोपभोग कर इस लोक में आकर इन सत्कर्मों के प्रभाव से, वह ‘एणिजङ्घ’— इस महापुरुष-लक्षण को प्राप्त कर सके। इस लक्षण के होने पर उनकी जाँघें मृग के समान होती हैं। इसके प्रभाव से,....यदि वह राजा होता है तो वह चक्रवर्ती राजा होकर राजा के योग्य तथा उसके अनुकूल वस्तुओं को शीघ्र प्राप्त करते हैं।...बुद्ध होकर वे श्रमणों के योग्य, श्रमणोपभोग्य, श्रमणों के अनुकूल भोगों को प्राप्त करते हैं....”

१८. यहाँ...कहा है—

“वह यह चाहता है कि साधारण जनता कैसे थोड़े ही श्रम से शिल्प, विद्या, आचरण एवं व्यावहारिक कर्मों को सीख ले— यह उसकी इच्छा रहती है। जिसमें किसी को कष्ट न हो, अतः बहुत शीघ्र उन्हें वह सब कुछ सिखाता है॥

“वह यहाँ दूसरे जन्म में, उक्त सत्कर्मों के प्रभाव से एवं शरीर में परिपूर्ण सुन्दर जङ्घा पाता है। जो देखने में गोल, सुन्दर, अच्छे उतार-चढ़ाव वाली, ऊर्ध्व लोमों वाली तथा सूक्ष्म (मृदु) चर्म से वेष्टित रहती है॥

“उस पुरुष को एणिजङ्घ कहते हैं। यह लक्षण सर्वसम्पत्तिदायक होता है। यदि वह गृहस्थ रहे तो तदनुकूल मनचाहे भोगों को तत्काल पाता रहता है॥

“सचे च पब्बज्जमुपेति तादिसो, नेक्खम्मछन्दाभिरतो विचक्खणो ।
अनुच्छविकस्स यदानुलोमिकं, तं विन्दति खिप्पमनोमविक्रमो” ति ॥

(१२) सुखुमच्छविता

१९. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा परिपुच्छिता अहोसि—“किं, भन्ते, कुसलं, किं अकुसलं किं, सावज्जं, किं अनवज्जं, किं सेवितब्बं, किं न सेवितब्बं, किं मे करीयमानं दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय अस्स, किं वा पन मे करीयमानं दीघरत्तं हिताय सुखाया अस्सा’ ति; सो, [N.122, B.129] तस्स कम्मस्स कटत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमं [R.158] महापुरिसलक्खणं पटिलभति—सुखुमच्छवि होति, सुखुमत्ता छविया रजोजल्लं काये न उपलिम्पति ।

“सो तेन लक्खणेन समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती.... पे०....राजा समानो किं लभति ? महापज्जो होति, नास्स होति कोचि पज्जाय सदिसो वा सेट्ठो वा कामभोगीनं । राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति ? महापज्जो होति पुथुपज्जो हासपज्जो जनवपज्जो तिक्खपज्जो निब्बेधिकपज्जो, नास्स होति कोचि पज्जाय सदिसो वा सेट्ठो वा सब्बसत्तानं । बुद्धो समानो इदं लभति” । एतमत्थं भगवा अवोच ।

२०. तत्थेतं वुच्चति—

“पुरे पुरत्था पुरिमासु जातिसु, अज्जातुकामो परिपुच्छिता अहु ।
सुस्सूसिता पब्बजितं उपासिता, अत्थन्तरो अत्थकथं निसामयि ॥

“और यदि वह विचक्षण पुरुष नैष्काम्य में उत्सुक होकर प्रव्रज्या ग्रहण करता है तो वह भी अपनी योग्यता के अनुकूल भोगों को प्राप्त करता रहता है ॥

(१२) सूक्ष्मच्छविता— १९. “भिक्षुओ! तथागत अपने किसी पूर्वजन्म....में मनुष्य योनि में जन्म लेकर प्रायः सभी योग्य श्रमण-ब्राह्मणों से यही पूछते रहते थे— ‘भन्ते! मेरे लिये क्या कर्मकुशल है? क्या अकुशल? क्या सदोष है, क्या निर्दोष? क्या सेवनीय है? क्या असेवनीय? क्या करना मेरे लिये चिरकाल तक अहितकर होगा? और क्या करना मेरे लिये चिरकाल तक हितकर या सुखकर होगा?’ इस सत्कर्म के प्रभाव से उसने सुगतिमय स्वर्गलोक में नाना प्रकार के सुख भोग कर इस लोक में आकर उस सत्कर्म के प्रभाव से अपने शरीर की त्वचा की सूक्ष्म छवि रूप—ऐसा महापुरुष—लक्षण प्राप्त किया । त्वचा की इस सूक्ष्म छवि से उसके शरीर पर धूल या मैल नहीं जमता ।

“इस शुभ लक्षण से समन्वित होकर वह यदि राजा बनता है तो महाप्राज्ञ होता है । प्रज्ञा में उसकी समानता करनेवाला लोक में अन्य कोई नहीं होता । कामभोगों के भोग में उससे श्रेष्ठ कोई नहीं होता । बुद्ध होने पर इस लक्षण के प्रभाव से उन्हें क्या मिलता है? तब वह महाप्राज्ञ, अतिप्राज्ञ, आशुमति, तीव्रबुद्धि, तीक्ष्ण बुद्धि एवं निर्वेधिक प्रज्ञा वाले होते हैं । निष्कर्ष यह है कि सभी प्राणियों में प्रज्ञा में उनसे बढ़कर कोई नहीं । बुद्ध होकर ही कोई अन्य प्राणी ऐसी प्रज्ञा प्राप्त कर सकता है ।” भगवान् ने यह कहा ।

२०. “उस का पौराण स्थविरों ने यह व्याख्यान किया है—

“(तथागत) कुछ जानने की इच्छा से वृद्ध प्रव्रजितों के पास जाकर, उनकी सेवा करके अपने कुशल के विषय में प्रश्न किया करते थे, उनके उपदेशों पर ध्यान देते थे ।

“पज्जापटिलाभगतेन कम्मुना, मनुस्सभूतो सुखुमच्छवी अहु।
 ब्याकंसु उप्पादनिमित्तकोविदा, सुखुमानि अत्थानि अवेच्च दक्खति ॥
 “सचे न पब्बज्जमुपेति तादिसो, वत्तेति चक्कं पठविं पसासति।
 अत्थानुसिट्ठीसु परिग्गहेसु च, न तेन सेय्यो सदिसो य विज्जति ॥
 “सचे च पब्बज्जमुपेति तादिसो, नेक्खम्मछन्दाभिरतो विचक्खणो। [R.159]
 पज्जाविसिट्ठं लभते अनुत्तरं, पप्पोति बोधिं वरभूरिमेधसो” ति ॥

(१३) सुवण्णवण्णता

२१. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं [N.123, B.130]
 निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो अक्कोधनो अहोसि अनुपायासबहुलो, बहुं पि वुत्तो समानो
 नाभिसज्जि न कुप्पि न ब्यापज्जि न पतित्थियि, न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पात्वाकासि,
 दाता च अहोसि सुखुमान मुदुकानं अत्थरणानं पावुरणानं खोमसुखुमानं कप्पासिकसुखुमानं
 कोसेय्य-सुखुमानं कम्बलसुखुमानं; सो, तस्स कम्मस्स कटत्ता उपचितत्ता....पे०....सो ततो
 चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमं महापुरिसलक्खणं पटिलभति—सुवण्णवण्णो होति
 कञ्चनसन्निभत्तचो।

“सो तेन लक्खणेन समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती....
 पे०....राजा समानो किं लभति? लाभी होति सुखुमानं मुदुकानं अत्थरणानं पावुरणानं खोमसुखु-
 मानं कप्पासिकसुखुमानं कोसेय्यसुखुमानं कम्बलसुखुमानं। राजा समानो इदं लभति....
 पे०....बुद्धो समानो किं लभति? लाभी होति सुखुमानं मुदुकानं अत्थरणानं पावुरणानं
 खोमसुखुमानं कप्पासिकसुखुमानं कोसेय्यसुखुमानं कम्बलसुखुमानं। बुद्धो समानो इदं लभति”।
 एतमत्थं भगवा अवोच।

“इस वृद्धों के सम्मुख जाकर प्रश्नरूप सत्कर्म के पुण्य प्रभाव से मनुष्य होकर वह सूक्ष्मच्छवि
 होता है। लक्षणों की उत्पत्ति के ज्ञाता विद्वान् कहते हैं कि ऐसा पुरुष गृहस्थ में चक्रवर्ती राजा होकर
 सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करता है। न्याय करने में, अर्थों के अनुशासन और परिग्रह में उसके समान या
 उससे बढ़कर कोई नहीं होता ॥

“तथा वैसे पुरुष के प्रव्रजित होने पर, वह अनुपम लोकोत्तर विशेष प्रज्ञा का स्वामी होकर श्रेष्ठ
 महामेधा से बोधि प्राप्त करता है ॥

(१३) सुवर्णवर्णता— २१. “भिक्षुओ! तथागत अपने किसी पूर्वजन्म में मनुष्य होकर सभी के साथ क्रोध-
 रहित व्यवहार करते थे तथा किसी को भी दुःख पहुँचाने का प्रयास नहीं करते थे। बहुत कहने पर भी
 वे न किसी से द्वेष करते थे न वैर, न द्रोह। बहुत उद्वेग दिलाने पर भी वे न किसी से कुपित होते, न किसी
 से मार-पीट करते और न किसी को बुरा-भला ही कहते थे। किसी के भी साथ अपना क्रोध, द्वेष या
 दौर्मनस्य नहीं प्रकट करते। अपितु वे उन्हें (समय-समय पर) सूक्ष्म (महीन), मृदु (मुलायम), अलसी,
 कपास, कौषेय (रोम), तथा ऊर्णा (कम्बल) के बिछौने और ओढ़ने के वस्त्र देते रहते थे। इन सत्कर्मों के
 प्रभाव से... पूर्ववत्...स्वर्ग...वहाँ से च्युत होकर इस लोक में महापुरुष लक्षण सुवर्णच्छवि वाला शरीर
 पाकर अवतरित हुए। यह महापुरुष लक्षण पाने वाले का शरीर सुवर्ण-सदृश त्वचा वाला होता है।

“वे इस लक्षण से युक्त होकर यदि गृहस्थ धर्म का पालन करते हैं तो चक्रवर्ती राजा होते हैं।

२२. तत्थेतं वुच्चति—

“अक्कोधं च अधिट्ठहि अदासि, दानं च वत्थानि सुखुमानि सुच्छवीनि।

[R.160] पुरिमतरभवे ठितो अभिविस्सजि, महिमिव सुरो अभिवस्सं॥

“तं कत्वान इतो चुतो दिब्बं, उपपज्जि सुकतफलविपाकमनभुत्वा।

कनकतनुसन्निभो इधाभिभवति, सुरवरतरोरिव इन्दो॥

[B.131] “गेहञ्जावसति नरो अपब्बज्ज, मिच्छं महतिमहिं अनुत्तासति।

[N.124] पसह्द सहिध सत्तरतनं, पटिलभति विमलसुखुमच्छवि सुचिं च॥

“लाभी अच्छादनवत्थमोक्खपावुरणानं, भवति यदि अनागरियतं उपेति।

सहितो पुरिमकतफलं अनुभवति, न भवति कतस्स पनासो” ति॥

(१४) कोसोहितवत्थगुह्यता

२३. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो चिरप्पनट्ठे सुचिरप्पवासिनो जातिमित्ते सुहज्जे सखिनो समानेता अहोसि, मातरं पि [R.161] पुत्तेन समानेता अहोसि, पुत्तं पि मातरा समानेता अहोसि, पितरं पि पुत्तेन समानेता अहोसि, पुत्तं पि पितरा समानेता अहोसि, भातरं पि भातरा समानेता अहोसि, भातरं पि भगिनिया समानेता अहोसि, भगिनिं पि भातरा समानेता अहोसि, भगिनिं पि भगिनिया समानेता अहोसि, समङ्गीकत्वा च अब्भनुमोदिता अहोसि; सो तस्स कम्मस्स कट्ठा....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमं महापुरिसलक्खणं पटिलभति—कोसोहितवत्थगुह्यो होति।

“सो तेन लक्खणेन समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती....

राजा होकर वे इस लक्षण के प्रताप से क्या विशेष पाते हैं? वे क्षौम तथा कौषेय या कपास और ऊन के बने कोमल एवं महीन ओढ़ने बिछाने के वस्त्र अत्यधिक मात्रा में पाते हैं। बुद्ध होकर....वे क्या पाते हैं? (बुद्ध होकर भी) वे क्षौम तथा कौषेय...वस्त्र पाते हैं।....” यह भगवान् ने बताया।

२२. पौराणों द्वारा उस भगवद्वचन का व्याख्यान यों किया जाता है—

“वे क्रोधरहित होकर उसी तरह सूक्ष्म और सुन्दर वस्त्रों का दान करते रहे, जैसे पृथ्वी को सूर्य (प्रत्येक जीवनदायी वस्तु) वर्षा द्वारा दान करता रहता है॥

“उस दान के प्रभाव से वे यहाँ से च्युत होकर स्वर्ग में विविध पुण्यफल भोगते हुए पुनः यहाँ आकर काञ्चनवर्ण शरीर वैसे ही प्राप्त किया, जैसे स्वर्ग में इन्द्र कल्पतरु प्राप्त करता है।

“यदि वह गुहस्थ धर्म में ही रह जाता है तो उक्त पुण्य के प्रभाव से समग्र पृथ्वी का शासन करता हुआ चक्रवर्ती राजा होकर सातों रत्न और अपने शरीर की सुवर्ण वर्ण वाली त्वचा पाता है॥

“यदि वह प्रव्रजित होता है तो नानाविध सुन्दर—सुन्दर ओढ़ने—बिछाने के वस्त्र प्राप्त करता है। वह पूर्वकृत कर्मों का सुफल भोगता है; क्योंकि कृत कर्म का नाश (भोगे विना) असम्भव है॥

(१४) कोषावहितवस्तिगुह्यता— २३. “ भिक्षुओ! तथागत कभी पूर्वजन्म में मनुष्य होकर चिरकाल से बिछुड़े हुये, बहुत समय तक दूर गये ज्ञाति—भाइयों, मित्रों, सुहृदों सखाओं को परस्पर मिलाने वाले हुए। वे माता को पुत्र से, पुत्र को माता से; पिता को पुत्र एवं पुत्र को पिता से; भाई को भाई से; भाई को बहन से, बहन को भाई से मिलाकर प्रसन्नता अनुभव करते थे। वे इस पुण्य कर्म के प्रभाव से चिरकाल तक

पे०....राजा समानो किं लभति ? पहतपुत्तो होति, परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना । राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति ? पहतपुत्तो होति, अनेकसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना । बुद्धो समानो इदं लभति । एतमत्थं भगवा अवोच ।

२४. तत्थेतं वुच्चति—

“पुरे पुरत्था पुरिमासु जातिसु, चिरप्पन्दे सुचिरप्पवासिनो । [B.132]

जाती सुहज्जे सखिनो समानयि, समङ्गिकत्वा अनुमोदिता अहु ॥

“सो तेन कम्मेन दिवं समक्कमि, सुखं च खिङ्गारतियो च अन्वभि ।

ततो चवित्वा पुनरागतो इध, कोसोहितं विन्दति वत्थछादियं ॥ [N.125]

“पहतपुत्तो भवती तथाविधो, परोसहस्सं च भवन्ति अत्रजा । [R.162]

सूरा च वीरा च अमित्तापना, गिहिस्स पीतिजनना पियंवदा ॥

“बहूतरा पब्बजितस्स इरियतो, भवन्ति पुत्ता वचनानुसारिनो ।

गिहिस्स वा पब्बजितस्स पुन, तं लक्खणं जायति तदत्थजोतकं” ति ॥

पठमभाणवारो ॥

(१५-१६) निग्रोधपरिमण्डलता, अनोनमन्तजाणुपरिमज्जनता च

२५. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो

स्वर्ग-सुख भोगकर वहाँ से च्युत होकर मनुष्य योनि में आकर अण्डकोषों से ढका हुआ वस्तिगुह्य (मूत्रेन्द्रिय) — यह महापुरुष-लक्षण प्राप्त करते हैं ।

“इस लक्षण के प्रभाव से वे यहाँ गृहस्थ में रहते हुए चक्रवर्ती राजा होकर....बहुत से पुत्रों वाले होते हैं । उनके वे पुत्र शूर, वीर, शत्रु-सेनाप्रमर्दक एवं हजारों की संख्या में होते हैं । बुद्ध होने पर भी वे बहुत पुत्रों (शिष्यों) वाले होते हैं । उनके वे हजारों पुत्र (अध्यात्मचिन्तन में) शूर, वीर (एवं शास्त्रचर्चा में) परमतविध्वंसक होते हैं । यह भगवान् ने कहा ।

२४. इसका पौराण विद्वानों ने यों व्याख्यान किया है—

“पहले बीते हुए पूर्वजन्मों वे चिरकाल के बिछुड़ों को, दूर हुआ को, स्वजातीय, सुहृद्-सखाओं को मिलाते थे और वे इसमें प्रसन्नता का अनुभव करते थे ॥

“वे उस पुण्य कर्म के प्रभाव से स्वर्गलोक में दिव्य सुख भोगकर, वहाँ से च्युत होकर यहाँ (इस लोक में) मनुष्य-योनि में आकर उन पुण्य कर्मों के प्रभाव से कोषाच्छादित वस्तिगुह्य (मूत्रेन्द्रिय) प्राप्त करते हैं ॥

“वे उस पुण्य कर्म के प्रभाव से गृहस्थ रहते हुए बहुपुत्र होते हुए सहस्राधिक आत्मजों (पुत्र-पौत्रों) से युक्त होते हैं । वे सभी आत्मजों (पुत्र-पौत्रों) से युक्त होते हैं । वे सभी आत्मज शूर, वीर, शत्रु-सन्तापक, अपनों को प्रीत्युत्पादक और प्रियम्बद होते हैं ॥

“प्रव्रजित होने पर भी वे शिष्यरूप आज्ञाकारी बहुपुत्र वाले होते हैं । गृहस्थ हों या प्रव्रजित—दोनों के लिये वह लक्षण इसी फल का द्योतक है ॥

प्रथम भाणवार समाप्त ॥

(१५-१६) न्यग्रोधपरिमण्डलता एवं अनमज्जानुपरिमार्जनता— २५. “भिक्खुओ! तथागत पहले कभी

समानो महाजनसङ्ग्रहं समेक्खमानो सामं जानाति, पुरिसं जानाति पुरिसविसेसं जानाति— [B.133] 'अयमिदमरहति, अयमिदमरहती' ति, तत्थ तत्थ पुरिसविसेसकरो अहोसि; सो, तस्स कम्मस्स कटत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि द्वे महापुरिस-लक्खणानि पटिलभति—निग्रोधपरिमण्डलो च होति, ठितको येव व अनोनमन्तो उभोहि पाणितलेहि जण्णुकानि परिमसति परिमज्जति।

[R.163] "सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती पे०....राजा समानो किं लभति? अड्डो होति महद्धनो महाभोगो पहतजातरूपरजतो [N.126] पहतवित्तूपकरणो पहतधनधज्जो परिपुण्णकोसकोट्टागारो। राजा समानो इदं लभति पे०.... बुद्धो समानो किं लभति? अड्डो होति महद्धनो महाभोगो। तस्सिमानि धनानि होन्ति, सेव्यथिदं—सद्धाधनं सीलधनं हिरिधनं ओत्तप्पधनं सुतधनं चागधनं पज्जाधनं। बुद्धो समानो इदं लभति"। एतमत्थं भगवा अवोच।

२६. तत्थेतं वुच्चति—

"तुलिय पटिविचिय चिन्तयित्वा, महाजनसङ्ग्रहं समेक्खमानो।

अयमिदमरहति तत्थ तत्थ, पुरिसविसेसकरो पुरो अहोसि॥

"महिं च पन ठितो अनोनमन्तो, फुसति करेहि उभोहि जण्णुकानि।

महिरुहपरिमण्डलो अहोसि, सुचरितकम्मविपाकसेसकेन॥

किसी पूर्वजन्म में मनुष्य योनि में आकर जनता का अपने अनुकूल संग्रह करने की इच्छा से उसकी समीक्षा करते हुए प्रत्येक के विषय में यह जानते थे कि 'यह इससे योग्य है' या 'यह इसके योग्य है'। यह जानकर वे उस-उस के लिये विशेष प्रयत्न करते थे। उस शुभ कर्म के प्रभाव से....वे उस काया से च्युत होकर....दिव्य स्वर्ग सुख का अनुभव कर, पुनः इस लोक में आकर ये दो महापुरुषलक्षण प्राप्त करते हैं— (१) स्वशरीर की न्यग्रोध परिमण्डलता (वटवृक्ष की तरह शरीर का आयाम और व्याम भाग में समान होना) एवं (२) बिना झुके हुए अपने जानुओं (जोड़ों) को अपने हाथों से परामृष्ट करना (छूना) और परिमर्जन (मसलना) करना (लम्बे हाथ करना)।

"वह इन लक्षणों से समन्वित होकर यदि गृहस्थ रहता है तो राजा चक्रवर्ती....पूर्ववत्....। राजा होकर उसे इन लक्षणों के प्रभाव से क्या मिलता है? वह अत्यधिक वैभवशाली, अत्यन्त धनवान्, अत्यधिक सोने-चान्दी के संग्रह वाला, प्रभूत धन-धान्यवाला, परिपूर्ण कोषागार वाला, अनाज से भरे हुए कोष्ठागार वाला होता है। बुद्ध होने पर उसे इसका फल यह होता है कि वहाँ भी आढ्य, अत्यन्त वैभवशाली एवं धनवान् होता है। उसका धन है— श्रद्धा, शील, ही (लज्जा), अपत्राप्य (सङ्कोच), श्रुत (विद्या), त्याग एवं प्रज्ञा।" इस लक्षण के विषय में भगवान् ने यह बताया।

२६. उसका पौराण विद्वानों द्वारा यह विस्तार किया है—

"तुलना, परीक्षा, एवं चिन्तन के द्वारा जनता को अपने अनुकूल बनाने हेतु उसका संग्रह करने के लिये 'यह इस योग्य है', या 'यह इस योग्य है'—ऐसा प्रत्येक पुरुष का सहयोगी बनता था।।

"(इस सत्कर्म के प्रभाव से) वह पृथ्वी पर खड़े होकर बिना झुके, हाथों से अपने दोनों जानुओं को छू लेता है। तथा अवशिष्ट पुण्य के फलस्वरूप वटवृक्ष की तरह परिमण्डलयुक्त शरीर वाला होता है॥

“बहुविविधनिमित्तलक्ष्मणञ्च, अतिनिपुणा मनुजा व्याकरिषु।

बहुविविधा गिहीनं अरहानि, पटिलभति दहरो सुसु कुमारो॥

“इध च महीपतिस्स कामभोगी, गिहपतिरूपका बहू भवन्ति। [R.164]

यदि च जहति सब्बकामभोगं, लभति अनुत्तरं उत्तमधनगं” ति॥

(१७-१९) सीहपुब्बद्धकायतादि

२७. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे [B.134]

मनुस्सभूतो समानो बहुजनस्स अत्थकामो अहोसि हितकामो फासुकामो योगक्खेमकामो—

‘किन्तिमे सद्दाय वड्डेय्यं, सीलेन पड्डेय्यं, सुतेन वड्डेय्यं, चागेन वड्डेय्यं, धम्मेन वड्डेय्यं, पज्जाय

वड्डेय्यं, धनधज्जेन वड्डेय्यं, खेत्तवत्थुना वड्डेय्यं, द्विपदचतुप्पदेहि वड्डेय्यं, पुत्तदारेहि [N.127]

वड्डेय्यं, दासकम्मकरपोरिसेहि वड्डेय्यं, आतीहि वड्डेय्यं, मित्तेहि वड्डेय्यं, बन्धवेहि वड्डेय्यं’ ति;

सो तस्स कम्मस्स कंटता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि तीणि

महापुरिसलक्षणाणि पटिलभति—(१) सीहपुब्बद्धकायो च होति, (२) चितन्तरंसो च,

(३) समवट्टक्खन्धो च।

“सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति [R.165]

चक्कवती...पे०....राजा समानो किं लभति? अपरिहानधम्मो होति न परिहायति धनधज्जेन

खेत्तवत्थुना द्विपदचतुप्पदेहि पुत्तदारेहि दासकम्मकरपोरिसेहि आतीहि मित्तेहि बन्धवेहि, न

परिहायति सब्बसम्पत्तिया। राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति?

अपरिहानधम्मो होति, न परिहायति सद्दाय सीलेन सुतेन चागेन पज्जाय, न परिहायति

सब्बसम्पत्तिया। बुद्धो समानो इदं लभति”। एतमत्थं भगवा अवोच।

२८. तत्थेतं वुच्चति—

“यह लक्षण देखकर लक्षणकोविद चतुर पुरुषों ने यों भविष्य कथन किया है—“वह बाल्यावस्था से ही अनेकविध गृहस्थयोग्य भोगों को प्राप्त करने लगता है॥

“यहाँ वह राजा होकर सर्वकामभोगों को पाने वाला गृहस्थोपयोगी सभी महर्घ वस्तुओं का लाभी होता है। यदि गृहस्थ धर्म छोड़कर वह प्रव्रजित हो जाता है तो वह अनुपम श्रमणयोगी श्रद्धा आदि धनसमूह का लाभी होता है॥

(१७-१९) सिंहवत्पूर्वार्धकायता आदि— २७. “मिक्षुओ! तथागत अपने किसी पूर्व जन्म में मनुष्य शरीर प्राप्त कर अधिक से अधिक लोगों के लिये अर्थाकांक्षी, हिताकांक्षी, कठिन कार्यों में सरलता चाहने वाले एवं मङ्गलाकांक्षी (योग-क्षेम चाहने वाले) होते हुए— इनकी धर्म के प्रति श्रद्धा, शील, पुत्र-पौत्र, त्याग (दान), धर्म, प्रज्ञा, धन-धान्य, खेत, घर-द्वार (वत्थु), पशु-पक्षी, परिवार, दास-कर्मकर, नाते-रिश्तेदार, मित्र, बन्धु-बान्धव बढ़ें— यह चिन्तन करते रहते हैं। यह सत्कर्म करने के कारण वे उस देह से च्युत होकर, स्वर्ग में जाकर वहाँ चिरकाल तक दिव्य सुखोपभोग कर, वहाँ से पुनः मनुष्यलोक में आकर यहाँ से तीन महापुरुष-लक्षण प्राप्त करते हैं। जैसे— (१) उनके शरीर का पूर्वार्ध (छाती से ऊपर का भाग) सिंह की तरह विशाल होता है; एवं (२) वह चित्तांतरांस (उसके दोनों स्कन्धों के बीच का भाग भरा हुआ) होता है। तथा (३) समवर्तस्कन्ध (स्कन्धों के ऊपर गर्दन वाला भाग समान परिमाण वाला) होता है।

“वह इन तीन लक्षणों से युक्त....गृहस्थ रहते हुए चक्रवर्ती राजा बनकर....।....उसे क्या मिलता

“सद्भाय सीलेन सुतेन बुद्धिया, चागेन धम्मेन बर्हाह साधुहि।
धनेन धज्जेन च खेत्तवत्थुना, पुत्तेहि दारेहि चतुप्पदेहि च॥

“जातीहि मित्तेहि च बन्धवेहि च, बलेन वण्णेन सुखेन चूभयं।
कथं न हायेय्युं पेरेति इच्छति, अत्थस्स मिद्धी च पनाभिकङ्कति॥

[B.135] “स सीहपुब्बद्धसुसण्ठितो अहु, समवट्ठखन्धो च चितन्तरंसो।
पुब्बे सुचिण्णेन कतेन कम्मुना, अहानियं पुब्बनिमित्तमस्स तं॥

“गिही पि धज्जेन धनेन वड्ढति, पुत्तेहि दारेहि चतुप्पदेहि च।

[N.128] अकिञ्चनो पब्बजितो अनुत्तरं, पप्पोति बोधिं असहानधम्मत्तं” ति॥

(२०) रसगगसर्गिता

[R.166] २९. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे
मनुस्सभूतो समानो सत्तानं अविहेठकजातिको अहोसि पाणिना वा लेड्डुना वा दण्डेन वा
सत्थेन वा; सो, तस्स कम्मस्स कटत्ता उपचितत्ता....पे०.....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो
समानो इमं महापुरिसलक्खणं पटिलभति—रसगगसग्गी होति, उद्धग्गास्स रसहरणीयो गीवाय
जाता होन्ति समाभिवाहिनियो।

“सो तेन लक्खणेन समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती....
पे०.....राजा समानो किं लभति? अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को, समवेपाकिनिया गहणिया
समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय। राजा समानो इदं लभति....पे०.....बुद्धो समानो किं लभति?

है? उसे किसी भी भोग्य वस्तु की कमी नहीं रहती (अपरिहाणधर्मा)। बुद्ध होकर भी वे अपरिहाणधर्मा ही होते हैं। वहाँ भी उन्हें श्रद्धा आदि गुणसम्पत्ति की कोई कमी नहीं होती।” भगवान् ने यह कहा।

२८. पौराण विद्वानों ने इसका विस्तार यों किया—

“श्रद्धा, शील, श्रुत, बुद्धि, त्याग, धर्म आदि बहुत से सद्गुणों से तथा धन-धान्य, खेती, मकान, स्त्री-पुत्र, पालतू पशु-पक्षी।

“नाते-रिशतेदार, मित्र, बन्धु-बान्धव, बाल, वर्ण, उभयविध सुख आदि किसी के भी क्षीण न हों— वे यह चाहते थे और सभी को आर्थिक दृष्टि से समुन्नत देखना चाहते थे॥

“वे इन अक्षय पूर्वजन्म कृत कर्मों के पुण्यमय-प्रभाव से सिंहवत् पूर्वार्धकाय, समवर्त स्कन्ध एवं चितान्तरांस— इन तीन महापुरुष-लक्षणों से सम्पन्न हुए॥

“इन लक्षणों के कारण गृहस्थ धन-धान्य सम्पन्न घर में स्त्री-पुत्र, पशु-पक्षियों से घिरा हुआ रहता है तथा प्रव्रजित भी अपरिहाणधर्मता वाली सम्बोधि को प्राप्त करता है।”

(२०) रसाग्रसर्गिता—२९. “मिक्षुओ! तथागत कभी किसी पूर्वजन्म में मनुष्य शरीर प्राप्त कर प्राणियों को किसी प्रकार का भी कष्ट न देते थे—न हाथ से, न ढाले से, न दण्ड से न शास्त्र से। वे इस पुण्य कर्म के प्रभाव से उस देहपात के बाद चिरकाल तक स्वर्ग में दिव्य सुख भोगकर पुनः मानवजन्म पाकर रस-रक्त को ऊपर (हृदय) की तरफ ले जाने वाली धमनियों से युक्त चिह्नवाले शरीर के धारक बने। (आयुर्वेद शास्त्र मानता है कि जिस पुरुष की धमनियों में रक्त निरन्तर ऊपर की तरफ समान गति से प्रवाहित होता रहता है, वह पुरुष स्वस्थ रहता है)।

“वे इस लक्षण से युक्त होकर यदि गृहस्थ ही रहते हैं तो चक्रवर्ती राजा होकर....निरन्तर स्वस्थ

अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को, समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नात्तिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय। बुद्धो समानो इदं लभति”। एतमत्थं भगवा अवोच।

३०. तत्थेतं वुच्चति—

“न पाणिदण्डेहि पनाथ लेडुना, सत्थेन वा मरणवधेन वा पन।

उब्बाधनाय परितज्जनाय वा, न हेठयी जनतमहेठको अहु ॥

“तेनेव सो सुगतिमुपेच्च मोदति, सुखप्फलं करिय सुखानि विन्दति। [B.136]

समोजसा रसहरणी सुसण्ठिता, इधागतो लभति रसगगसगितं ॥ [R.167]

“तेनाहु नं अतिनिपुणा विचक्खणा, अयं नरो सुखबहुलो भविस्सति।

गिहिस्स वा पब्बजितस्स वा पुन, तं लक्खणं भवति तदत्थजोतकं” ति ॥ [N.129]

(२१-२२) अभिनीलेनत्तता, गोपखुमता च

३१. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे पनुस्सभूतो समानो न च विसटं न च विसाचि न च पन विचेय्य पेक्खिता उजु तथा पसटमुजुमनो पियचक्खुना बहुजनं उदिकिखता अहोसि; सो तस्स कम्मस्स कटत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि द्वे महापुरिसलक्खणानि पटिलभति—अभिनीलनेत्तो च होति गोपखुमो च।

“सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्रवर्त्ती
....पे०....राजा समानो किं लभति ? पियदस्सनो होति, बहुनो जनस्स पियो होति [R.168]

रहते हैं, उनकी पाचकाग्नि खाये-पीये पदार्थ को ठीक से पचाने का सामर्थ्य रखती है। बुद्ध (प्रव्रजित) होने पर भी उन्हें इस महापुरुष लक्षण का.... यही लाभ मिलता है। यह भगवान् ने बताया।

३०. इस की पौराण विद्वानों ने यों व्याख्या की—

“उसने जनता को न हाथ से, न डण्डे से, न ढेले से, न शस्त्र से, न हत्या के किसी अन्य उपाय से सताया। उसने अपना जीवन जनता के लिये अकष्टकर होकर ही बिताया।

“इस सत्कर्म के प्रभाव से, वह सुगतिमय स्वर्ग में चिरकाल तक दिव्य सुख भोगता रहा; क्योंकि दूसरों के लिये सुखप्रद कर्मों का अपने को भी सुख देने वाला ही होता है।

“वह मनुष्य जन्म पाकर यहाँ भी रसाग्रसर्गी धमनियाँ एवं सुव्यवस्थित पाचकाग्नि पाकर शरीर से निरन्तर स्वस्थ रहता है॥

“इसीलिये लक्षणकुशल विद्वानों ने उसके शरीर में उक्त चिह्न देखकर बताया— यह नर निरन्तर स्वस्थ रहते हुए सुखी रहता है। वह पुरुष गृहस्थ रहे या प्रव्रजित, उभयत्र इस लक्षण के प्रभाव से सर्वदा सुखसम्पन्न ही रहता है॥

(२१-२२) अभिनीलनेत्रता एवं गोपक्ष्मता— ३१. “भिक्षुओ! तथागत अपने किसी पूर्व जन्म में मानवशरीर-धारी होकर न तो किसी को (क्रोध या द्वेष के कारण) तिरछी या टेढ़ी नजर से देखते थे, न किसी से द्वेष या दौर्मनस्य ही रखते थे। अपितु, वे सरल, और सीधे मन से तथा प्यारभरी नजरों से ही सब को देखते थे। यों, उनके उस कर्म के प्रभाव से स्वर्ग....इन दो महापुरुष-लक्षणों को प्राप्त करते हैं— (१) उनके नेत्र नील (श्याम) होते हैं और (२) उसकी पलकें गौ की तरह होती हैं।....

“....वे चक्रवर्त्ती राजा होकर....जनता के लिये प्रियदर्शन होते हैं। वे ब्राह्मण, गृहपति, नैगम,

मनापो ब्राह्मणगहपतिकानं नेगमजानपदानं गणकमहामत्तानं अनीकट्टानं दोवारिकानं अमच्चानं पारिसज्जानं राजूनं भोगियानं कुमारानं। राजा समानो इदं लभति....पे०.....बुद्धो समानो किं लभति ? पियदस्सनो होति, बहुनो जनस्स पियो होति मनापो भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं देवानं मनुस्सानं असुरानं नागानं गन्धब्बानं। बुद्धो समानो इदं लभति”। एथमत्थं भगवा अवोच।

३२. तत्थेतं वुच्चति—

“न च विसटं न च विसाचि, न च पन विचेय्यपेक्खिता।

उजुं तथा पसट्मुजुमनो, पियचक्खुना बहुजनं उदक्खिता॥

[B.137] “सुगतीसु सो फलविपाकं, अनुभवति तत्थ मोदति।

इध च पन भवति गोपखुमो, अभिनीलनेत्तनयनो सुदस्सनो॥

“अभियोगिनो च निपुणा, बहू पन निमित्तकोविदा।

[N.130] सुखुमनयनकुसला मनुजा, पियदस्सनो ति अभिनिहिस्सन्ति नं॥

“पियदस्सनो गिही पि सन्तो च, भवति बहुजनपियायितो।

[R.169] यदि च न भवति गिही समणो होति, पियो बहूनं सोकनासनो” ति॥

(२३) उण्णीससीसता

३३. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो बहुजनपुब्बङ्गमो अहोसि कुसलेसु धम्मेषु बहुजनपामोक्खो कायसुचरिते वचीसुचरिते मनोसुचरिते दानसंविभागे सीलसमादाने उपोसथुपवासे मत्तेय्यताय पेत्तेय्यताय सामञ्जसाय ब्रह्मञ्जसाय कुले जेट्ठापचायिताय अञ्जतरञ्जतरेसु च अधिकुसलेसु धम्मेषु; सो तस्स कम्मस्स

जानपद, कोषाध्यक्ष, सेनापति, द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य, अधीन राजाओं के राजकुमारों के प्रिय थे। बुद्ध भी इन लक्षणों के प्राप्त होने पर सबके लिये मनोमोहक एवं प्रियदर्शन होते हैं। वे भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिकाओं...नाग, गन्धर्व—सबके लिये प्रिय थे।” यह भगवान् ने बताया।

३२. “वहाँ पौराणिक यह कहते हैं—

“वह (तथागत) न किसी को तिरछी, न उलटी नजर से, न द्वेष या दौर्मनस्य से देखता था, अपितु सभी को साफ—साफ स्नेहभरी दृष्टि से सरलतापूर्वक, शुद्ध मन से देखता था॥

“वह इस पुण्य कर्म के प्रभाव से सुगतिमय स्वर्गलोक में दिव्य सुख भोग कर पुनः इस लोक में आकर श्यामनेत्र एवं गोपक्ष्म—इन दो महापुरुषलक्षणों को प्राप्त कर सका।

“अनेक कुशल लक्षणज्ञ कहते हैं— ऐसे नेत्रों वाले मनुष्य लोक में प्रियदर्शी कहलाते हैं।

“गृहस्थ रहते हुए यह प्रियदर्शी पुरुष जनसमूह का प्रिय होता है। और श्रमण होने पर, बहुतों का प्रिय एवं शोक विनाशक होता है॥”

(२३) उण्णीषशीर्षता— ३३. “भिक्षुओ! तथागत अपने किसी पूर्वजन्म में मानवयोनि में आकर कुशल धर्मों के आचरण में अनेक लोगों से श्रेष्ठ थे; कायिक वाचिक मानसिक सदाचार में दान, शील, उपोसथव्रत, माता—पिता की सेवा में, श्रमण—ब्राह्मण के सत्कार में, कुल के वृद्धों के सम्मान में तथा ऐसे ही अन्य सत्कार्यों में श्रेष्ठ थे। इन सत्कर्मों के पुण्य प्रभाव से...पूर्ववत्...वह पुनः मनुष्यलोक में आकर इस महापुरुष—लक्षण को प्राप्त करता है— वह उत्तम शिर पर बन्धी हुई गोल पगड़ी के समान होता है।

कटत्ता....पे०..... सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमं महापुरिसलक्ष्णं पटिलभति—
उण्हीससीसो होति ।

“सो तेन लक्ष्मणेन समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्रवती
पे०.....राजा समानो किं लभति ? महास्स जनो अन्वायिको होति ब्राह्मणगहपतिका नेगमजानपदा
गणकमहामत्ता अनीकट्ठा दोवारिका अमच्चा पारिसज्जा राजानो भोगिया कुमारा । राजा समानो
इदं लभति....पे०.....बुद्धो समानो किं लभति ? महास्स जनो अन्वायिको होति भिक्खू
भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो देवा मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा । बुद्धो समानो इदं
लभति” । एतमत्थं भगवा अवोच ।

३४. तत्थेतं वुच्चति—

[B.138]

“पुब्बङ्गमो सुचरितेसु अहु, धम्मेषु धम्मचरियाभिरतो ।

अन्वायिको बहुजनस्स अहु, सगोसु वेदयित्थ पुज्जफलं ॥

“वेदित्वा सो सुचरितस्स फलं, उण्हीससीसत्तमिधज्झगमा । [R.170]

ब्याकंसु व्यञ्जननिमित्तधरा, पुब्बङ्गमो बहुजनं हेस्सति ॥ [N.131]

“पटिभोगिया मनुजेषु इध, पुब्बेव तस्स अभिरहन्ति तदा ।

यदि खत्तियो भवति भूमिपति, पटिहारकं बहुजने लभति ॥

“अथ चे पि पब्बजति सो मनुजो, धम्मेषु होति पगुणो विसवी ।

तस्सानुसासनिगुणाभिरतो, अन्वायिको बहुजनो भवती” ति ॥

(२४-२५) एकैकलोमता उण्णाभमुकन्तरता च

३५. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे
मनुस्सभूतो समानो मुसावादं पहाय मुसावादा पटिवरितो अहोसि सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो

“वह इस लक्षण के प्रभाव से चक्रवर्ती राजा....ब्राह्मण, वैश्य नैगम, जानपद, कोषाध्यक्ष,
महामात्य, सेनापति, द्वारपाल, अमात्य, पारिषदय, अधीन राजा एवं उनके राजकुमार, तथा समग्र जनता
उसकी अनुयायी (आज्ञाकारी) होती है। बुद्ध होकर....भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, देव, मनुष्य,
असुर, नाग एवं गन्धर्व तथा इसी तरह के श्रेष्ठ प्राणी उनके अनुयायी होते हैं। बुद्ध होने पर उन्हें इस
लक्षण का यह फल मिलता है।” भगवान् ने यह कहा ।

३४. इस वचन का पुराने विद्वानों ने यह व्याख्यान किया है—

“वह धर्म के सदाचरण में प्रमुख था, धर्मचर्या में निरन्तर रत रहता था। जनता का प्रमुख था।
इस पुण्यफल से उसने चिरकाल तक स्वर्ग-सुख प्राप्त किया ॥

“तथा मानव बनकर उष्णीषशीर्षत्व महापुरुष लक्षण प्राप्त किया। इसका लक्षणज्ञों ने यह फल
बताया है— वह जनसमूह का अग्रज (नेता) होता है ॥

“उसे इस मानवलोको में बहुत से प्रतिभोग्य (उपहार) मिलते हैं। यदि वह गृहस्थ रहता है तो
क्षत्रिय राजा चक्रवर्ती बनता है, उसे प्रतिहारक (=स्तुतिगायक, प्रशंसक) मिलते हैं ॥

“यदि वह बुद्ध होता है तो वह धर्माचरण में प्रमुख रहता है। अगणित जनता उसके धर्मानुशासन
में रहती है ॥

(२४-२५) एकैकलोमता एवं ऊर्णाभमुकान्तरता— ३५. “भिक्षुओ! तथागत कभी पूर्वजन्म में मनुष्य—

पच्चयिको अविसंवादको लोकस्स; सो तस्स कम्मस्स कटत्ता उपचित्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि द्वे महापुरिसलक्खणानि पटिलभति—एकेकलोमो च होति उण्णा च भमुकन्तरे जाता होति ओदाता मुदुतूलसन्निभा ।

“सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्रवर्ती.... [R.171] पे०.... राजा समानो किं लभति ? महास्स जनो उपवत्तति ब्राह्मणगहपतिका नेगम- [B.139] जानपदा गणकमहामत्ता अनीकट्ठा दोवारिका अमच्चा पारिसज्जा राजानो भोगिया कुमार। राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति ? महास्स जनो उपवत्तति भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो देवा मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा । बुद्धो समानो इदं लभति” । एतमत्थं भगवा अवोच ।

३६. तत्थेतं वुच्चति—

“सच्चप्पटिज्जो पुरिमासु जातिसु, अद्वेज्जवाचो अलिकं विवज्जाय ।
न सो विसंवादयिता पि कस्सचि, भूतेन तच्छेन तथेन भासयि ॥
[N.132] “सेता सुसुक्का मुदुतूलसन्निभा, उण्णा सुजाता भमुकन्तरे अहु ।
न लोमकूपेसु दुवे अजायिसं, एकेकलोमूपचितङ्गवा अहु ॥
“तं लक्खणज्जू बहवो समागता, ब्याकंसु उप्पादनिमित्तकोविदा ।
उण्णा च लोमा च यथा सुसण्ठिता, उपवत्तती ईदिसकं बहुज्ज्जो ॥

शरीर प्राप्त कर असत्य भाषण का त्याग कर असत्य भाषण से विरत (दूर) रहते थे । इसके विपरीत, वे सदा सत्यवादी, सत्य पर आचरण करने वाले, स्थाता (दृढ़, अचल), विश्वस्त तथा जनता के सम्मुख एक ही तरह की (एकार्थक) बात बोलने वाले थे । वह इस सत्कर्म के पुण्य प्रभाव की वृद्धि से....वहाँ से च्युत होकर मानवलोक में आकर इन दो महापुरुष लक्षणों को प्राप्त हुए—(१) उनके शरीर में एक एक रोमकूप (में एक एक ही रोम) थे तथा (२) उनकी भौहों की बीच में शुभ्र ऊर्णा ऐसी जमी हुई थी, मानों कोमल रूई हो ।

“वे इन लक्षणों से युक्त होकर यदि गृहस्थ रहते तो राजा चक्रवर्ती होकर...। राजा होने पर इन लक्षणों का क्या प्रभाव था? यह प्रतिक्षण समाज के प्रमुख लोगों से घिरा रहता था; जैसे— ब्राह्मण, वैश्य, नैगम, जानपद....अधीन राजकुमार....। बुद्ध होने पर वे क्या पाते हैं? बुद्ध होने पर भी इन्हें अनेक प्रकार का जनसमूह घेरे रखता है । जैसे— भिक्षु, भिक्षुणी....गन्धर्व । बुद्ध होने पर इन लक्षणों का यह फल पाते हैं।” भगवान् ने यह बताया ।

३६. वहाँ व्याख्याकारों ने इस भगवद्भवन की यह व्याख्या की—

“पूर्वजन्म में उसने सत्यप्रतिज्ञ एवं हृदयाकर्षक बात बोलने वाला न होकर असत्यभाषण का त्याग किया था । न वह किसी का अविश्वासी ही था । वह सदा तथ्य (सत्य) ही बोलता था । (इस सत्कर्म के प्रभाव से) इसकी दोनों भौहों के बीच श्वेत, शुभ्र, कोमल रूई जैसी ऊर्णा (छोटे-छोटे मुलायम बाल) उत्पन्न हुई । तथा उस (के शरीर) के रोमकूपों में दोहरे रोम नहीं जन्मे ॥

“लक्षणकोविद बहुत से विद्वान् जब उसको देखने आये तो उन्होंने उन लक्षणों का यह प्रभाव बताया— इस लक्षण के प्रताप से, निरन्तर अनेकविध जनसमूह घेरे रहेगा ॥

“यदि यह गृहस्थ ही रह जायगा तो भी बहुत से लोग अपने कार्य का अत्यन्त साधक समझ कर

“गिहिं पि सन्तं उपवत्तती जनो, बहु पुरत्थापकतेन कम्मना।

अकिञ्चनं पव्वजितं अनुत्तरं, बुद्धं पि सन्तं उपवत्तति जनो” ति॥

(२६-२७) चत्तालीसदन्तता अविरलदन्तता च

३७. “यं पि, भिक्षव, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भव पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो पिसुणं वाचं पहाय पिमुणाय वाचाय पटिविरतो अहोसि, इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय, इति भिन्नानं [B.140. R.172] वा सन्धाता, सहितानं वा अनुपदाता, समगारामो समगरतो समगनन्दी समगकरणिं वाचं भासिता अहोसि; सो तस्स कम्मस्स कटत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि द्वे महापुरिसलक्खणानि पटिलभति—चत्तालीसदन्तो च होति अविरलदन्तो च।

“सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अञ्जावसति, राजा होति चक्कवत्ती....पे०....राजा समानो किं लभति? अभेजपरिसो होति, अभेज्जास्स होन्ति परिसा ब्राह्मणगहपतिका नेगमजानपदा गणकमहामत्ता अनीकट्ठा दोवारिका अमच्चा पारिसज्जा राजानो भोगिया कुमार—राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति? अभेजपरिसो होति अभेज्जास्स होन्ति परिसा भिक्षव भिक्षुनियो उपासका उपासिकायो देवा [N.133] मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा। बुद्धो समानो इदं लभति”। एतमत्थं भगवा अवोच।

३८. तत्थेतं वुच्चति—

“वेभूतियं सहितभेदकारिं, भेदप्पवड्डनविवादकारिं।

कलहप्पवड्डनअकिच्चकारिं, सहितानं भेदजननिं न भणि॥

“अविवादवड्डनकरिं सुगिरं, भिन्नानुसन्धिजननिं अभणि।

कलहं जनस्स पनुदी समङ्गी, सहि तेहि नन्दति पमोदति च॥ [R.173]

इसके निरन्तर पार्श्ववर्ती रहेंगे। और यदि यह प्रव्रजित होकर बुद्ध हो जायगा तो भी धर्मोपदेश सुनने को व्याकुल बहुत सी जनता इन्हें घेरे ही रहेगी।”

(२६-२७) चत्वारिंशदन्तता और अविरलदन्तता— ३७. “भिक्षुओ! तथागत अपने किसी पूर्वजन्म में घुगलखोरी दुर्गुण त्याग कर उससे दूर रहते थे। इनमें फूट डालने के लिये यहाँ की सुनकर वहाँ नहीं कहते थे, न वहाँ की सुनकर यहाँ कहते थे। इसके बदले मैं वे कलह करते हुआँ को मिलाने वाले, मिले हुआँ की अधिसंगति करने वाले, एकताप्रेमी, लोगों की एकता में आनन्द में मानते हुए एकता कराने वाली वाणी ही बोलते थे। अतः इस सत्कर्म के पुण्य प्रभाव से...पूर्ववत्...वहाँ से च्युत होकर मनुष्यभाव में आकर इन दो महापुरुष लक्षणों का प्राप्त करते हैं— (१) चालीस दान्त होना और (२) अविरल (जुड़े हुए, बीच में बिना रिक्त स्थान की) दन्तपंक्ति का होना।

“इन लक्षणों से युक्त होकर वे यदि गृहस्थ ही रहते हैं तो वहाँ से चक्रवर्ती राजा होकर....पूर्ववत्.... अधीन राजकुमार.... राजा होकर वे यह पाते हैं।...बुद्ध होकर भी वे भिक्षु, भिक्षुणियों....गन्धर्वों की अभेद्य परिषद् से आवृत (घिरे) रहते हैं।” भगवान् ने यह कहा।

३८. वहाँ व्याख्याकारों ने उस वचन की व्याख्या यों की है—

“वे मिलकर रहने वालों में फूट डालने वाली, कलह बढ़ाने वाली, विवाद कराने वाली, अकृत्य कराने वाली बात (वचन) नहीं बोलते थे॥

“सुगतीसु सो फलविपाकं, अनुभवति तत्थ मोदति।
 दन्ता इध होन्ति अविरळा सहिता, चतुरो दसस्स मुखजा सुसण्ठिता॥
 [B.141] “यदि खत्तियो भवति भूमिपति, अविभेदियास्स परिसा भवति।
 समणो च होति विरजो विमलो, परिसास्स होति अनुगता अचला” ति॥

(२८-२९) पट्टजिह्वा ब्रह्मस्वरता च

३९. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो अहोसि, या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हृदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं वाचं भसिता अहोसि; सो तस्स कम्प्स कटता उपचितत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि द्वे महापुरिसलक्खणानि पटिलभति—पट्टजिह्वो च होति ब्रह्मस्सरो च करवीकभाणी।

[N.134] “सो तेहि लक्खणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्रवर्ती पे०....राजा समानो किं लभति? आदेय्यवाचो होति, आदियन्तिस्स वचनं ब्राह्मणगहपतिका [R.174] नेगमजानपदा गणकमहामत्ता अनीकट्टा दोवारिका अमच्चा पारिसज्जा राजानो भोगिया कुमार। राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति? आदेय्यवाचो होति, आदियन्तिस्स वचनं भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो देवा मनुस्सा असुरा नागा गन्धब्बा। बुद्धो समानो इदं लभति”। एतमत्थं भगवा अवोच।

४०. तत्थेतं वुच्चति—

“अपितु वे एकता बढ़ाने वाले, कलह मिटाने वाले सद्बचन ही बोलते थे। जिससे लोगों का कलह मिटता था। वे उन्हें एक देखकर प्रसन्न तथा प्रमुदित होते थे॥

“इस सुकृत्य के परिणामस्वरूप वे सुगतिमय स्वर्गलोक में दिव्य सुखों का प्रसन्नतापूर्वक आनन्द लेकर पुनः इस लोक में लौटते हैं। ऐसे पुरुष के मिले हुए (बीच बीच में विना अवकाश के) संख्या में चालीस दाँत होते हैं॥

“ऐसा पुरुष यदि गृहस्थ रहे तो वह क्षत्रिय श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा होता है....इसकी अमात्य परिषद् अविभेद्य होती है। इसके प्रव्रजित होने पर इसकी शिष्यपरिषद् भी अभेद्य ही होती है॥”

(२८-२९) प्रभूतजिह्वा एवं ब्रह्मस्वरता— ३९. “भिक्षुओ! तथागत कभी किसी पूर्वजन्म में मानव शरीर पाकर दूसरों के प्रति कठोर वाणी बोलना छोड़कर उस दुर्गुण से दूर ही रहते थे। अपितु वे ऐसी वाणी बोलते थे, जो दूसरों को सुनने में सरल (नेला), कर्णप्रिय, स्नेहमयी, हृदय को प्रफुल्ल कर देने वाली, सम्य (पौरी), प्रायः सभी सुननेवालों को प्रिय और मनोहर लगनेवाली होती थी। इस सत्कर्म के पुण्य प्रताप से....पूर्ववत्....वहाँ से च्युत होकर यहाँ आकर ये दो महापुरुषलक्षणों से सम्पृक्त हुए— (१) प्रभूतजिह्वा (लम्बी जीभ) एवं (२) करवीक (कोयल) पक्षी की तरह मधुर स्वर।

“वे इन लक्षणों से सम्पृक्त होकर, यदि गृहस्थ रहे तो चक्रवर्ती राजा बनकर....अनुकूल वक्ता (आदेयवाक) होते हैं, उनकी प्रत्येक बात को ब्राह्मण, वैश्य....कुमार— सभी स्वीकार करते हैं। उनके प्रव्रजित (बुद्ध) होने पर भी वे अनुकूल वक्ता होते हैं तथा उनकी बात को भिक्षु, भिक्षुणी....गन्धर्व— सभी स्वीकार करते हैं।” ऐसा भगवान् ने कहा।

४०. इसका व्याख्याकारों ने यह व्याख्यान किया है—

“अक्रोसभण्डनविहेसकारिं, उब्बाधिकं बहुजनप्पमहनं ।
 अबाळ्हं गिरं सो न भणि फरुसं, मधुरं भणि सुसंहितं सखिलं ॥
 “मनसो पिया हृदयगामिनियो, वाचा सो एरयति कण्णसुखा । [B.142]
 वाचासुचिण्णफलमनुभवि, सग्गेसु वेदयथ पुञ्ञफलं ॥
 “वेदित्वा सो सुचरितस्स फलं, ब्रह्मस्सरत्तमिधमज्झगमा ।
 जिह्वास्स होति विपुला पुथुला, आदेय्यवाक्यवचनो भवति ॥
 “गिहिनो पि इज्झति यथा भणतो, अथ चे पब्बजति सो मनुजो ।
 आदियन्तिस्स वचनं जनता, बहूना बहू सुभणितं भणतो” ति ॥ [R.175]

(३०) सीहहनुता

४१. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो अहोसि कालवादी भूतवादी [N.135] अद्व्यवादी धम्मवादी विनयवादी, निधानवतिं वाचं भासिता अहोसि कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं; सो तस्स कम्मस्स कटत्ता....पे०....सो ततो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमं महापुरिसलक्खणं पटिलभति—सीहहनु होति ।

“सो तेन लक्खणेन समत्रागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्रवती.... पे०....राजा समानो किं लभति ? अप्पधंसियो होति केनचि मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पच्चामितेन । राजा समानो इदं लभति....पे०....बुद्धो समानो किं लभति ? अप्पधंसियो होति अब्भन्तरेहि वा बाहिरेहि वा पच्चत्थिकेहि पच्चामितेहि रागेन वा दोसेन वा मोहेन वा समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मना वा केनचि वा लोकस्मिं । बुद्धो समानो इदं लभति” । एतमत्थं भगवा अवोच ।

“वह आक्रोश, कलह एवं निन्दा वाले वचन नहीं बोलता था । या ऐसे वचन भी नहीं बोलता था, जो दूसरों को कठोर या तीखे एवं पीड़ादायक हों । अपितु वह निरन्तर मधुर स्वर में सुसंगत एवं सार्थक मधुर वचनों का ही प्रयोग करता था ॥

“वह मन को लुभावने, हृदयङ्गम एवं कर्णप्रिय वचन ही बोलते थे । इस वाक्सुचरित के पुण्य प्रभाव से वह स्वर्गसुख का भोगने वाला बना ॥

“इस सुचरित का फल परलोक में भोग कर वह इस लोक में आकर ब्रह्मस्वर का लाभी होता है । इसकी जिह्वा विशाल, चौड़ी (पृथुल) होती है । इसकी कही बात को सभी ग्रहण (स्वीकार) करते हैं ।

“यदि वह गृहस्थ रहता है तो वह अपनी वाणी (वचन) से सभी को सन्तुष्ट करता है । और यदि वह प्रव्रजित होता है तो भिक्षु-भिक्षुणी आदि सभी जनसमूह (जनता) उस की कही बात को मानने वाले होते हैं ॥

(३०) सिंहहनुता— ४१. “भिक्षुओ! कभी तथागत अपने किसी पूर्वजन्म में मनुष्य होकर निरर्थक बातें (बकवाद)करना छोड़कर इस दुर्गुण से दूर ही रहते थे । अपितु, वे समय पर बोलने वाले, यथार्थवक्ता, सार्थक, धर्मवादी, विनयवादी होकर भावपूर्ण (निधानवती) एवं किनारे लगाने वाली वाणी ही बोलते थे । वे इस सत्कर्म के प्रभाव से....पूर्ववत्....यहाँ आकर सिंहहनुता— इस महापुरुष-लक्षण को पाता है ।

“वह इस लक्षण से युक्त होकर, यदि वह गृहस्थ रहता है तो राजा चक्रवर्ती....पूर्ववत्....किसी

[B.143] ४२. तत्थेतं वुच्चति—

“न सम्फप्पलापं न मुद्धतं, अविक्किण्णवचनव्यप्पथो अहोसि।
अहितमपि च अपनुदि, हितमपि च बहुजनसुखं च अभणि ॥

[R.176] “तं कत्वा इतो चुतो दिवमुप्पज्जि, सुकतफलविपाकमनुभोसि।
चविय पुनरिधागतो समानो, द्विदुगमवरतरहनुत्तमलत्थ ॥

“राजा होति सुदुप्पधंसियो, मनुजिन्दो मनुजाधिपति महानुभावो।
तिदिवपुरवरसमो भवति, सुरवरतरोरिव इन्दो ॥

“गन्धब्बायक्खासुररक्खसेभि, सुरेहि न हि भवति सुप्पधंसियो।

[N.136] तथत्तो यदि भवति तथाविधो, इध दिसा च पटिदिसा च विदिसा चा” ति ॥

(३१-३२) समदन्तता सुक्काटता च

४३. “यं पि, भिक्खवे, तथागतो पुरिमं जातिं पुरिमं भवं पुरिमं निकेतं पुब्बे मनुस्सभूतो समानो मिच्छाजीवं पहाय सम्माआजीवेन जीविकं कप्पेसि, तुलाकूट-कंसकूट-मानकूट-उक्कोटन-वञ्चन-निकति-साचियोग-छेदन-वध-बन्धन-विपरामोस-आलोप-सहसाकारा [R.177] पटिविरतो अहोसि; सो, तस्स कम्मस्स कटत्ता उपचितत्ता उस्सन्नत्ता विपुलत्ता, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जति। सो तत्थ अज्जे देवे दसहि ठानेहि अधिगण्हाति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन, दिब्बेहि रूपेहि, दिब्बेहि सदेहि, दिब्बेहि गन्धेहि, दिब्बेहि रसेहि, दिब्बेहि

भी विरोधी मानव शत्रु से अजेय रहता है। राजा होकर उसे यह लाभ मिलता है। प्रव्रजित होने पर भी वह आभ्यन्तर या बाह्य शत्रुओं से, रागद्वेष मोह से, श्रमण-ब्राह्मण....या लोक में सर्वथा अप्रधर्ष्य (अपराजेय) ही रहता है।” यह भगवान् ने कहा।

४२. इसका पुराने व्याख्याकारों ने यह व्याख्यान किया—

“उसके वचनों में न सम्प्रलाप था, न असंयत (उद्धत) बात का ही कोई स्थान था। दूसरों के लिये अहितकर बोलना छोड़कर वह उनके हित-सुख की ही बात करता था ॥

“ऐसा सत्कर्म कर, यहाँ से देहपात के बाद, स्वर्ग में जाकर दिव्य सुख का चिरकाल तक भोग कर, पुनः वहाँ से च्युत हो, यहाँ आकर उसने सिंह की तरह श्रेष्ठ हनु (ठोड़ी) वाला महापुरुष लक्षण प्राप्त किया ॥

“ऐसे लक्षणवाला पुरुष राजा, नरेन्द्र, मानवाधिपति एवं महान् सामर्थ्य वाला पुरुष होता है। वह यहाँ कल्पवृक्ष के प्रापक देवलोकधिपति इन्द्र की तरह शोभित होता है ॥

“प्रव्रजित होने पर वह गन्धर्व, असुर, यक्ष एवं राक्षसों तथा देवताओं से भी दुष्प्रधर्ष (अपराजेय) होता है ॥

(३१-३२) समदन्तता एवं शुक्लदंष्टता— ४३. “भिक्षुओ! तथागत कभी पूर्वजन्म में मानव शरीर पाकर, मिथ्या आजीविका का परित्याग कर सम्यग् आजीविका से ही स्वजीवन निर्वाह करते थे। वे तराजू (तुला) के द्वारा बटखरे (कंस) या मान (नाप) के द्वारा की जाने वाली ठगी, उक्कोटन (रिश्वत), वञ्चन (धोखा), निष्कृति (कृतघ्नता), कुटिलता (साचियोग) छेदन, वध, बन्धन, विपरामोस (डाका डालना), आलोप (लूटना), सहसाकार (रक्तपात) आदि दुष्कर्मों से विरत रहते थे। पूर्ववत्..... (द्र०- अनुबन्ध सं० ४)

फोटुब्बेहि । सो व्रतो चुतो इत्थत्तं आगतो समानो इमानि द्वे महापुरिसलक्ष्णानि [B.144]
पटिलभति—समदन्तो च होति सुसुक्कदाढो च ।

सो तेहि लक्ष्मणेहि समन्नागतो, सचे अगारं अज्झावसति, राजा होति चक्कवत्ती
धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पतो सत्तरतनसमन्नागतो । तस्सिमानि
सत्त रतनानि भवन्ति, सेय्यथिदं—चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं,
गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं । परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा
परसेनप्पमहना । सो इमं पठविं सागरपरियन्तं अखिलमनिमित्तमकण्टकं इद्धं फीतं खेमं सिवं
निरब्बुदं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्झावसति । राजा समानो किं लभति ?
सुचिपरिवारो होति, सुचिस्स होन्ति परिवारा ब्राह्मणगहपतिका गणकमहामत्ता अनीकट्टा दोवारिका
अमच्चा पारिसज्जा राजानो भोगिया कुमार । राजा समानो इदं लभति ।

“सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके
विवट्टच्छदो । बुद्धो समानो किं लभति ? सुचिपरिवारो होति, सुचिस्स होन्ति परिवारा [N.137]
भिक्षू भिक्षुनियो उपासका उपासिकायो देवा मनुस्सा नागा गन्धब्बा । बुद्धो समानो इदं
लभति” । एतमत्थं भगवा अवोच ।

४४. तत्थेव वुच्चति—

“मिच्छाजीवं च अवस्सजि समेन वुत्तिं, सुचिना सो जनयित्थ धम्मिकेन ।

अहितमपि च अपनुदि, हितमपि च बहुजनसुखं च अचरिं ॥ [R.178]

“सग्गे वेदयति नरो सुखप्फलानि, करित्वा निपुणेभि विदूहि सन्धि ।

वणिण्णतानि तिदिवपुरवरसमो, अभिरमति रतिखिड्डासमङ्गी ॥

“लद्धानं मानुसकं भवं ततो, चवित्तवान सुकतफलविपाकं । [B.145]

सेसकेन पटिलभति लपनजं, सममपि सुचिसुसुक्कं ॥

“तं वेय्यञ्जनिका समागता बहवो, ब्याकंसु निपुणसम्मता मनुजा ।

सुचिजनपरिवारगणो भवति, दिजसमसुक्कसुचिसोभनदन्तो ॥

वे इन दो महापुरुष लक्षणों से युक्त होते थे— (१) वह एक समान दाँतों वाला होता है और (२) उसकी दाढ़ें शकल (निर्मल होती हैं) ।.....पूर्ववत्... (अनु० सं. ४) । भगवान् ने यह कहा ।

४४. इसकी (प्राचीन व्याख्याकारों ने) व्याख्या यों की है—

“(उसने) मिथ्या आजीविका को छोड़ दिया तथा सम्यक्, सर्वथा परिशुद्ध एवं आजीविका से जीवन—यापन किया । उसने जनता के प्रति अहितकर बातों को छोड़कर हित—सुखमय कर्म ही किये ॥

“सभ्य, सुसंस्कृत विद्वानों द्वारा प्रशंसित इन सत्कर्मों के प्रभाव से स्वर्ग के अनुपम सुखों को भोगता है । श्रेष्ठ देवलोक के समान रतिक्रीड़ा करता हुआ रमण करता है ॥

“वहाँ से च्युत होकर मानव जन्म पाकर, उक्त सत्कर्म के अवशिष्ट प्रभाव से, वह समान और श्वेत (शुभ्र) दान्त तथा दाढ़ पाता है ॥

“उसके विषय में सामुद्रिकशास्त्रवेत्ता विद्वज्जन बताते हैं— ऐसा पुरुष, जिसके दाँत और दाढ़ समान और शुक्ल हों, शुद्ध कुल के परिवारजनों से घिरा रहता है ॥

- “रज्जो होति बहुजनो, सुचिपरिवारो महतिं महिं अनुसासतो ।
 [R.179] पसय्ह न च जनपदतुदनं, हितमपि च बहुजनसुखं च चरन्ति ॥
 “अथ चे पब्बजति भवति विपाको, समणो समितरजो विवट्छदो ।
 [N.138] विगतदरथकिलमथो, इममपि च परमपि च पस्सति लोकं ।
 “तस्सोवादकरा बहुगिही च पब्बजिता च, असुचिं गरहितं धुनन्ति पापं ।
 स हि सुचिभि परिवुतो भवति, मलखिलकलिकिलेसे पनुदेही” ति ॥
 इदमवोच भगवा । अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति ॥

लक्षणसुत्तं निद्रितं सत्तमं ॥



“यदि वह राजा होते चक्रवर्ती होकर शुद्धकुलोत्पन्न परिवारजनों से घिरा हुआ समग्र पृथ्वी-मण्डल पर शासन करता है। उसके राज्य में सभी ग्रामवासी एवं नागरिक सुखमय जीवन बिताते हैं। वह सभी का हितकारक होता है ॥

“यदि वह प्रव्रजित हो जाय तो उस जीवन में निष्पाप निष्कलङ्क एवं भवबन्धन से मुक्त होकर, भय एवं विघ्नबाधा रहित श्रमण होता है। वह इस लोक तथा परलोक का सब कुछ देखने वाला होता है ॥

“बहुत से गृहस्थ और प्रव्रजित उसका धर्मानुशासन मानने वाले होते हैं। उसके अनुशासन में रहकर अपने पापों को दूर कर डालते हैं। वह शुद्ध कुलोत्पन्न धर्मप्रेमी परिवारजनों से घिरा रहता है। और मलकण्टक एवं पापों की मलिनता को हटाता रहता है ॥”

भगवान् ने यह कहा। सन्तुष्ट होकर (श्रोता) भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया ॥

सप्तम लक्षणसूत्र समाप्त ॥



८. सिङ्गालसुतं

१. सिङ्गालको गहपतिपुत्तो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [N.139, B.146, R.180] वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन सिङ्गालको गहपतिपुत्तो कालस्सेव बुद्धाय राजगहा निक्खमित्वा अल्लवत्थो अल्लकेसो पञ्जलिको पुथुदिसा नमस्सति—पुरत्थिमं दिसं, दक्खिणं दिसं, पच्छिमं दिसं, उत्तरं दिसं, हेट्ठिमं दिसं, उपरिमं दिसं।

२. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि। अद्दसा खो भगवा सिङ्गालकं गहपतिपुत्तं कालस्सेव बुद्धाय राजगहा निक्खमित्वा अल्लवत्थं अल्लकेसं पञ्जलिकं पुथुदिसा नमस्सन्तं—पुरत्थिमं दिसं, दक्खिणं दिसं, पच्छिमं दिसं, उत्तरं दिसं, हेट्ठिसं दिसं, उपरिमं दिसं। दिस्वा सिङ्गालकं गहपतिपुत्तं एतदवोच—किं नु खो त्वं, गहपतिपुत्त, कालस्सेव बुद्धाय राजगहा निक्खमित्वा अल्लवत्थो अल्लकेसो पञ्जलिको [R.181] पुथुदिसा नमस्ससि—पुरत्थिमं दिसं, दक्खिणं दिसं, पच्छिमं दिसं, उत्तरं दिसं, हेट्ठिमं दिसं, उपरिमं दिसं" ति?

“पिता मं, भन्ते, कालं करोन्तो एवं अवच—‘दिसा, तात, नमस्सेय्यासी’ ति। सो खो अहं, भन्ते, पितुवचनं सक्करोन्तो गरुं करोन्तो मानेन्तो पूजेन्तो कालस्सेव बुद्धाय राजगहा निक्खमित्वा अल्लवत्थो अल्लकेसो पञ्जलिको पुथुदिसा नमस्सामि—पुरत्थिमं दिसं, दक्खिणं दिसं, पच्छिमं दिसं, उत्तरं दिसं, हेट्ठिमं दिसं, उपरिमं" ति।

२. एवं छ दिसा नमस्सितब्बा

३. “न खो, गहपतिपुत्त, अरियस्स विनये एवं छ दिसा नमस्सितब्बा” ति।

८. शृगालसूत्र

१. सिङ्गालक गृहपतिपुत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेशुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय सिङ्गालक नाम का कोई गृहपतिपुत्र प्रातःकाल उठकर, राजगृह नगर से बाहर निकलकर गीले कपड़ों एवं गीले केशों से युक्त हो, पूर्व—पश्चिम, दक्षिण—उत्तर, ऊपर—नीचे—सभी दिशाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा था।

२. उसी समय भगवान् वस्त्र पहनकर, पात्र—चीवर लेकर, भिक्षा के लिये राजगृह में प्रवेशहेतु चले। भगवान् ने उस समय देखा कि सिङ्गालक गृहपतिपुत्र....पूर्ववत्....सभी दिशाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा था। यह देखकर भगवान् ने उससे पूछा— गृहपतिपुत्र! तुम...सभी दिशाओं को हाथ जोड़कर क्यों नमस्कार कर रहे हो?"

(सिङ्गालक बोला—) “भन्ते! मुझको मेरे पिता ने, अपने देहपात के समय, यह अनुशासन किया था कि ‘पुत्र! तुम सभी दिशाओं को प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर प्रणाम करना’। भन्ते! वही मैं अब पिता के द्वारा प्रदत्त अनुशासन का, सत्कार एवं महत्त्व देकर, पालन करता हुआ, समय से ही शय्या त्यागकर गीले कपड़ों एवं वस्त्रों के साथ ही राजगृह से निकलकर, हाथ जोड़कर, सभी दिशाओं को प्रणाम कर रहा हूँ।”

“यथा कथं पन, भन्ते, अरियस्स विनये छ दिसा नमस्सितब्बा ? साधु मे, भन्ते, भगवा तथा धम्मं देसेतु यथा अरियस्स विनये छ दिसा नमस्सितब्बा” ति ।

[N.140] “तेन हि, गहपतिपुत्त, सुणोहि, साधुकं मनसिकरोहि, भासिस्सामी” ति ।

“एवं, भन्ते” ति खो सिङ्गालको गहपतिपुत्तो भगवतो पच्चस्सोसि ।

[B.147] भगवा एतदवोच—“यतो खो, गहपतिपुत्त, अरियसावकस्स चत्तारो कम्मकिलेसा पहीना होन्ति, चतूहि च ठानेहि पापकम्मं न करोति, छ च भोगानं अपायमुखानि न सेवति; सो एवं चुद्दसपापकापगतो छद्दिसापटिच्छादी उभोलोकविजयाय पटिपन्नो होति । तस्स अयञ्चेव लोको आरद्धो परो च लोको । सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जति ।

(१) चत्तारो कम्मकिलेसा पहीना होन्ति

४. “कतमस्स चत्तारो कम्मकिलेसा पहीना होन्ति ? पाणातिपातो खो, गहपतिपुत्त, कम्मकिलेसो, अदिन्नादानं कम्मकिलेसो, कामेसुमिच्छाचारो कम्मकिलेसो, मुसावादो कम्मकिलेसो—इमस्स चत्तारो कम्मकिलेसा पहीना होन्ती” ति । इदमवोच भगवा । इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

[R.182] “पाणातिपातो अदिन्नादानं, मुसावादो च वुच्चति ।

परदारगमनञ्चेव नप्पसंसन्ति पण्डिता” ति ॥

(२) चतूहि ठानेहि पापकम्मं न करोति

५. “कतमेहि चतूहि ठानेहि पापकम्मं न करोति ? छन्दागतिं गच्छन्तो पापकम्मं करोति, दोसागतिं गच्छन्तो पापकम्मं करोति, मोहागतिं गच्छन्तो पापकम्मं करोति, भयागतिं गच्छन्तो पापकम्मं करोति । यतो खो, गहपतिपुत्त, अरियसावको नेव छन्दागतिं गच्छति, न

२. छहों दिशाओं को प्रणाम करने की उचित विधि

३. “गृहपतिपुत्र! आर्यविनय में छह दिशाओं को नमस्कार इस तरह नहीं किया जाता है।”

“तो, भन्ते! आर्यों के विनय (धर्मानुशासन) में छह दिशाओं को प्रणाम कैसे किया जाता है? अच्छा हो, भन्ते! भगवान् मुझे वह विधि बतला दें, जिससे छह दिशाओं को प्रणाम करना उचित कहलाये।”

“तो, गृहपतिपुत्र! सुनो, मेरी बातों में ठीक से मन लगाओ। मैं तुम्हें बता रहा हूँ।”

“ठीक है, भन्ते!” सिङ्गालक गृहपतिपुत्र ने भगवान् को यह सविनय उत्तर दिया। भगवान् यह बोले—“गृहपतिपुत्र! जब किसी आर्यधर्मानुयायी श्रावक के चार कर्मक्लेश प्रहीण (नष्ट) हो गये रहते हैं, चार स्थानों से वह पापकर्म करने की स्थिति में नहीं रहता और भोगों के छह अपाय—(दुर्गति—) मुखों (मार्गों) का सेवन नहीं करता—तब वह इन चौदह पापों से विरत होकर छहों दिशाओं को आच्छादित कर उभय लोक की विजयप्राप्ति में लग जाता है तब उसका यह लोक तो सुसेवित हो ही जाता है, परलोक भी (सुसेवित हुआ समझना चाहिये; क्योंकि तब) वह इस देहच्युति के बाद मरणानन्तर सुगतियम स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है।

(१) चार कर्मक्लेश प्रहीण हुए रहते हैं— ४. “इसके कौन से चार कर्मक्लेश प्रहीण हुए रहते हैं? गृहपतिपुत्र! जीवहत्या कर्मक्लेश है; चौरा करना कर्म—क्लेश है; काम (मैथुन) सम्बन्धी दुराचार कर्मक्लेश

दोसागतिं गच्छति, न मोहागतिं गच्छति, न भयागतिं गच्छति; इमेहि चतूहि ठानेहि पापकम्मं न करोती" ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्तान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

“छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं अतिवत्तति।

निहीयति यसो तस्स, काळपक्खे व चन्दिमा॥

“छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति। [N.141]

आपूरति यसो तस्स, सुक्कपक्खे व चन्दिमा" ति॥

(३) छ अपायमुखानि न सेवति

६. “कतमानि छ भोगानं अपायमुखानि न सेवति? सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना-[B.148] नुयोगो खो, गहपतिपुत्त, भोगानं अपायमुखं, विकालविसिखाचरियानुयोगो भोगानं अपायमुखं, समज्जाभिचरणं भोगानं अपायमुखं, जूतप्पमादट्ठानानुयोगो भोगानं अपायमुखं, पापमित्तानुयोगो भोगानं अपायमुखं, आलस्यानुयोगो भोगानं अपायमुखं।

सुरामेरयस्स छ आदीनवा

७. “छ खोमे, गहपतिपुत्त, आदीनवा सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठानानुयोगे। सन्दिट्ठिका धनजानि, कलहप्पवड्ढनी, रोगानं आयतनं, अकित्तिसञ्जननी, कोपीननिदंसनी, पञ्चाय [R.183] दुब्बलिकरणीत्वेव छट्ठं पदं भवति—इमे खो, गहपतिपुत्त, छ आदीनवा सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठानानुयोगे।

है; एवं असत्य भाषण कर्मक्लेश है— उसके ये चार कर्मक्लेश नष्ट हो गये रहते हैं।” भगवान् ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगत ने फिर यह कहा—

“प्राणातिपात, अदत्तादान, मृषावाद एवं परस्त्रीगमन—इन चार दुष्कर्मों का विद्वज्जन अनुमोदन नहीं करते।”

(२) चार स्थानों से वह पापकर्म नहीं करता— ५. “किन चार कारणों (स्थानों) से वह पापकर्म नहीं करता? वह राग (छन्द) के मार्ग पर जाकर, न द्वेष के, न मोह के, न भय के मार्ग पर जाकर पापकर्म नहीं करता। गृहपतिपुत्र! वह आर्यश्रावक क्योंकि छन्द, द्वेष, मोह एवं भय के कारण उपस्थित होने पर भी पापकर्म नहीं करता, अतः कहा जाता है कि वह चार स्थानों से पापकर्म नहीं करता।” यह कर कर भगवान् शास्ता सुगत ने फिर यह भी कहा—

“छन्द, द्वेष, मोह और भय के कारण जो धर्म का अतिक्रमण करता है; कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह उसका यश क्षीण होता जाता है।”

“(तथा) छन्द, द्वेष, मोह और भय के कारण भी जो धर्म का अतिक्रमण नहीं करता, उसका यश शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह निरन्तर वृद्धिज्ञत होता रहता है।”

(३) सम्पत्तिनाश के छह कारणों का असेवन— ६. “इन भोगों के छह अपायमुख (सम्पत्तिविनाशकारण) कौन से हैं? (१) मद्यपान आदि का सेवन, गृहपतिपुत्र! सम्पत्तिविनाश का कारण होता है, (२) विकाल (सन्ध्या या रात्रि में) विशिखा (चौराहे) पर अकारण घूमना..... (३) समज्या (सामाजिक नृत्योत्सव) में भाग लेना..... (४) धूत (जूआ) और प्रमाद की तरफ ले जाने वाले खेलों में सम्मिलित होना..... (५) पाप—मित्रों का सङ्ग भी सम्पत्ति (भोग) नाश का कारण.... एवं (६) आलस्य में पड़े रहना भी सम्पत्तिनाश का कारण होता है।

[अब भगवान् क्रमशः उक्त छहों सम्पत्तिनाश के कारणों का वर्णन कर रहे हैं—]

विकालचरियाय छ आदीनवा

८. “छ खोमे, गहपतिपुत्त, आदीनवा विकालविसिखाचरियानुयोगे। अत्ता पिस्स अगुत्तो अरक्खितो होति, पुत्तदारो पिस्स अगुत्तो अरक्खितो होति, सापतेय्यं पिस्स अगुत्तं अरक्खितं होति, सङ्कियो च होति पापकेसु ठानेसु, अभीतवचनं च तस्मिं रूहति, बहून् च दुक्खधम्मानं पुरक्खितो होति—इमे खो, गहपतिपुत्त, छ आदीनवा विकालविसिखाचरियानुयोगे।

समज्जाभिचरणस्स छ आदीनवा

९. “छ खोमे, गहपतिपुत्त, आदीनवा समज्जाभिचरणे। क्व नच्चं, क्व गीतं, क्व वादितं, क्व अक्खानं, क्व पाणिस्सरं, क्व कुम्भथुनं ति—इमे खो, गहपतिपुत्त, छ आदीनवा समज्जाभिचरणे।

जूतप्पमादस्स छ आदीनवा

[B.149] १०. “छ खोमे, गहपतिपुत्त, आदीनवा जूतप्पमादट्टानानुयोगे। जयं वेरं पसवति, जिनो वित्तमनुसोचति, सन्दिट्टिका धनजानि, सभागतस्स वचनं न रूहति, मितामच्चानं परिभूतो [N.142] होति, आवाहविवाहकानं अपत्थितो होति—‘अक्खधुत्तो अयं पुरिसपुग्गलो नालं दारभरणाया’ ति—इमे खो, गहपतिपुत्त, छ आदीनवा जूतप्पमादट्टानानुयोगे।

पापमित्ताय छ आदीनवा

११. “छ खोमे, गहपतिपुत्त, आदीनवा पापमित्तानुयोगे। ये धुत्ता, ये सोण्डा, ये

मद्यपान के छह दोष—७. गृहपति! मद्यपान के ये छह दुष्परिणाम होते हैं—(१) तत्काल धन की हानि; (२) परिवार में कलह—वृद्धि; (३) अनेक रोगों का उत्पादक कारण; (४) यश एवं सम्मान का नाश; (५) लज्जा एवं शालीनता का हास एवं (६) स्मृतिभ्रंश। गृहपतिपुत्र। मद्यपान के ये छह दुष्परिणाम होते हैं।

विकालचर्या के छह दोष—८. “गृहपतिपुत्र! असमय में चौराहे पर घूमने से छह दोष होते हैं—१. वह स्वयम्, २. उसके स्त्री—पुत्र एवं ३. उसके धन का असुरक्षित होना, ४. अशुभ कर्मों के होने की शङ्का, ५. उस पर चोरी आदि मिथ्या आरोपों का लगना एवं ६. अन्य बहुत से सङ्कटों का सामना होना।

समज्या में भाग लेने के छह दुष्परिणाम—९. “गृहपतिपुत्र! सामाजिक नाच—गान में भाग लेने के ये छह दुष्परिणाम होते हैं—१. आज नृत्य कहाँ है?, २. गीत, ३. वादित, ४. आख्यान (कथा), ५. पाणिस्वर (ताल देकर नाचना) एवं ६. घटवाद्य कहाँ है?—इस के ज्ञानहेतु ग्राम, निगम आदि में घूम कर व्यर्थ समय नष्ट करना होता है, फिर वहाँ जाना होता है, जाने से पहले वहाँ के योग्य वेषभूषा की व्यवस्था करनी पड़ती है, उससे समग्र दिन के अन्य कार्यों में व्यवधान आता है, नृत्य प्रसङ्ग में एक दो तीन दिन तक घर से बाहर रहना पड़ता है, इससे (अनुपस्थिति में) घर में चौरी आदि की शङ्का भी रहती है। वृष्टि आदि का साधन हो जाने पर भी खेत जोतने आदि के कार्यों में बाधा पड़ती है।

द्यूत एवं प्रमाद के छह दुष्परिणाम—१०. “गृहपतिपुत्र! द्यूत आदि प्रमाद स्थान के व्यसनो के छह दुष्परिणाम होते हैं—१. जूए में जीत दूसरों से वैर पैदा करती है; २. पराजित हुआ व्यक्ति अपने धन रक्षा की चिन्ता में पड़ जाता है; ३. देखते—देखते उसके धन की हानि होने लगती है; ४. सभा में जाने पर उसकी कही बात पर कोई विश्वास नहीं करता; ५. मित्रों और साथियों से घनाभाव के कारण वह तिरस्कृत होता रहता है; ६. उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करने वाले ‘यह तो जुआरी है, अपने स्त्री—पुत्रों की यह कैसे रक्षा करेगा’—यह सोच कर उससे अपनी कन्या का विवाह करने में आपत्ति करते हैं। गृहपति! द्यूतादि प्रमाद—स्थान सेवन के ये छह दुष्परिणाम हैं।

पिपासा, ये नेकतिका, ये वञ्चनिका, ये साहसिका त्यास्स मित्ता होन्ति, ते सहाया—[R.184]
इमे खो, गहपतिपुत्त, छ आदीनवा पापमित्तानुयोगे।

आलस्यस्स छ आदीनवा

१२. “छ खोमे, गहपतिपुत्त, आदीनवा आलस्यानुयोगे। अतिसीतं ति कम्मं न करोति, अतिउण्हं ति कम्मं न करोति, अतिसायं ति कम्मं न करोति, अतिपातो ति कम्मं न करोति, अतिछातोस्मी ति कम्मं न करोति, अतिघातोस्मी ति कम्मं न करोति; तस्स एवं किच्चापदेसबहुलस्स विहरतो अनुप्पन्ना चेव भोगा नुप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च भोगा परिकखयं गच्छन्ति—इमे खो, गहपतिपुत्त, छ आदीनवा आलस्यानुयोगे” ति।

इदमवोच भगवा। इदं वत्तान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

“होति पानसखा नाम, होति सम्मियसम्मियो।

यो च अत्थेसु जातेसु, सहायो होति सो सखा ॥

“उस्सूरसेय्या परदारसेवना, वेरप्पसवो च अनत्थता च। [B.150]

पापा च मित्ता सुकदरियता च, एते छ ठाना पुरिसं धंसयन्ति ॥

“पापमित्तो पापसखो, पापआचारगोचरो।

अस्मा लोका परम्हा च, उभया धंसते नरो ॥

“अक्खित्थियो वारुणी नच्चगीतं, दिवा सोप्पं पारिचरिया अकाले।

पापा च मित्ता सुकदरियता च, एते छ ठाना पुरिसं धंसयन्ति ॥

पापमित्रता के छह दुष्परिणाम—११. “गृहपतिपुत्त! दुष्ट मित्र की सङ्गति के ये छह कुफल हैं—१. धूर्त, २. मद्यकारक, ३. मद्यप, ४. कृतघ्न, ५. वञ्चक (ठग) एवं ६. साहसिक हत्यारे (गुण्डे)—ये सब पापी मित्र बनने पर क्या भला करेंगे! अतः गृहपतिपुत्त! पापमित्रों का सङ्ग उनके छह दुर्गुणों को साथ लिये रहता है। आलस्य के छह दुष्परिणाम—१२. “गृहपतिपुत्त! आलस्य में भी छह दोष हैं। जैसे—१. ‘इस समय बहुत सर्दी है’—यह सोचकर कोई आलसी आदमी कर्म नहीं करता; २. ‘इस समय बहुत गर्मी है’—यह सोच कर....; ३. ‘अब तो सायङ्काल हो गया, कल देखा जायगा’—यह सोचकर....; ४. ‘अभी तो बहुत प्रातः काल है, थोड़ा ठहर कर कार्य प्रारम्भ करूँगा’—यह सोच कर....; ५. ‘अभी बहुत भूखा हूँ, पहले कुछ खा कर ही कर्म करूँगा’—यह सोच कर....; एवं ६. ‘आज तो बहुत खा लिया है, ठहर कर कार्य में हाथ लगाऊँगा’—यह सोच कर भी कोई आलसी आदमी कर्म नहीं करता। यों बहुत सी तत्काल करणीय बातों को न करने से अनुत्पन्न सुखभोग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न सुखभोग आलस्य के कारण क्षीण हो जाते हैं। गृहपतिपुत्त! ये छह दुष्परिणाम आलस्य के कारण होते हैं।”

भगवान् ने यह कहा! इसी के साथ सुगत शास्ता ने यह भी कहा—

“जो मद्यपान में सखा बनता है वह मुँह पर तो ‘हाँ! सौम्य, हाँ सौम्य’ करता रहता है, परन्तु पीठ पीछे (परोक्ष) शत्रुवत् व्यवहार करता है। ऐसा आदमी मित्र कहलाने योग्य नहीं। सच्चा मित्र तो वही है जो कार्य (स्वार्थ) पूरा होने पर भी मित्र बना रहे।।

“अतिनिद्रा, परस्त्रीगमन, वैर पैदा करना, अहित करना, पापी मित्रों का सङ्ग एवं लोभ—ये छह दुर्गुण मनुष्य के नाश के कारण हैं ॥

“पापी मित्रों का सङ्ग करने वाला, पाप कर्मों में लिप्त रहने वाला, पापाचरण के अनुरक्त पुरुष अपना यह लोक एवं परलोक—दोनों ही नष्ट—भट कर बैठता है ॥

[N.143] “अक्खेहि दिब्बन्ति सुरं पिवन्ति, यन्तिस्थियो पाणसमा परेसं।

[R.185] निहीनसेवी न च वुद्धसेवी, निहीयते काळपक्खे व चन्दो॥

“यो वारुणी अद्धनो अकिञ्चनो, पिपासो पिवं पपागतो।

उदकमिव इणं विगाहति, अकुलं काहिति खिप्पमत्तनो॥

“नो दिवा सोप्पसीलेन, रत्तिमुट्ठानदेस्सिना।

निच्चं मत्तेन सोण्डेन, सक्का आवसितुं घरं॥

“अतिसीतं अतिउण्हं, अतिसायमिदं अहु।

इति विस्सट्ठकम्मन्ते, अत्था अच्चेन्ति माणवे॥

[B.151] “योध सीतं च उण्हं च, तिणा भिय्यो न मज्जति।

करं पुरिसकिच्चानि, सो सुखं न विहायती” ति॥

३. अमित्ता मित्तपतिरूपका वेदितब्बा

१३. “चत्तारोमे, गहपतिपुत्त, अमित्ता मित्तपतिरूपका वेदितब्बा—अज्जदत्थुहरो अमित्तो मित्तपतिरूपको वेदितब्बो, वचीपरमो अमित्तो मित्तपतिरूपको वेदितब्बो, अनुप्पियभाणी अमित्तो मित्तपतिरूपको वेदितब्बो, अपायसहायो अमित्तो मित्तपतिरूपको वेदितब्बो।

[R.186] १४. “चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि अज्जदत्थुहरो अमित्तो मित्तपतिरूपको वेदितब्बो।

“जुआ, परनारी, मदय, नृत्य—गीत, दिवास्वाप (दिन में सोना), असमय के कृत्य, पापी मित्रों का सङ्ग एवं अत्यधिक कञ्जूसी—ये छह दुर्गुण मनुष्य को नष्ट कर देते हैं॥

“जो पासों से (जूआ) खेलते हैं, मद्य पीते हैं, जो अपनी स्त्री की तरह परस्त्रीके साथ रमण करते हैं, जो हीनों का साथ करते हैं, वृद्धों का साथ नहीं करते, वे उसी तरह क्रमशः क्षीण होते जाते हैं, जैसे कृष्णपक्ष का चन्द्रमा॥

“जो निरन्तर मद्यसेवी है, निर्धन है, चरित्र है, पियक्कड़ है, प्रमादी है, जल की तरह ऋण में डूबा हुआ है—ऐसा पुरुष शीघ्र ही स्वयं को व्याकुलता से घिरा पाता है॥

“(१) जो दिन में भी जब चाहे तब सोया रहता है, (२) रात्रि में, कभी आवश्यकता पड़ने पर कोई कार्य नहीं करना चाहता और (३) जो सदा शराब के नशे में मस्त रहता है—ये तीनों ही प्रकार के आदमी घर—परिवार नहीं चला सकते॥

“‘बहुत सन्ध्याकाल हो गया’, ‘बहुत गर्मी है’, ‘बहुत ठण्ड है’, यह कहकर कार्य में ढील करने वाले मनुष्य अन्त में निर्धन हो जाते हैं॥

“(इसके विपरीत) जो पुरुष शीत—उष्ण आदि कठिनाइयों को तृणवत् हीन समझता हुआ अपने कार्यों में लगा रहता है, वह कभी निर्धन नहीं होता॥”

३. मित्र रूप में शत्रु

१३. “गृहपतिपुत्र! इन चार प्रकार के पुरुषों को मित्रवत् व्यवहार करने पर भी अमित्र (शत्रु) ही समझना चाहिये। जैसे—१. परधनहारक को मित्र होते हुए भी शत्रु ही समझना चाहिये। २. बातें बनाने वाले को....। ३. खुशामद करने वाले को....। ४. हानिकारक कृत्यों में स्वेच्छया सहायक को मित्र होते हुए भी शत्रु ही समझना चाहिये।

“अञ्जदत्थुहरो होति, अप्पेन बहुमिच्छति ।
भयस्स किच्चं करोति, सेवति अत्थकारणा ॥

“इमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि अञ्जदत्थुहरो अमित्तो मित्तपति-[N.144]
रूपको वेदितब्बो ।

१५. “चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि वचीपरमो अमित्तो मित्तपतिरूपको वेदितब्बो ।
अतीतेन पटिसन्थरति, अनागतेन पटिसन्थरति, निरत्थकेन सङ्गण्हाति, पच्चुप्पन्नेसु किच्चेसु
व्यसनं दस्सेति—इमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि वचीपरमो अमित्तो मित्तपतिरूपको
वेदितब्बो ।

१६. “चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि अनुप्पियभाणी अमित्तो मित्तपतिरूपको
वेदितब्बो । पापकं पिस्स अनुजानाति, कल्याणं पिस्स अनुजानाति, सम्मुखास्स वण्णं भासति,
परम्मुखास्स अवण्णं भासति—इमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि अनुप्पियभाणी अमित्तो
मित्तपतिरूपको वेदितब्बो ।

१७. “चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि अपायसहायो अमित्तो मित्तपति-[B.152]
रूपको वेदितब्बो । सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठानानुयोगे सहायो होति, विकालविस्सिखाचरियानुयोगे
सहायो होति, समज्जाभिचरणे सहायो होति, जूतप्पमादट्ठानानुयोगे सहायो होति—इमेहि खो,
गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि अपायसहायो अमित्तो मित्तपतिरूपको वेदिब्बो” ति ।

१८. इदमवोच भगवा । इदं वत्त्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

“अञ्जदत्थुहरो मित्तो, यो च मित्तो वचीपरो ।

अनुप्पियं च यो आह, अपायेसु च यो सखा ॥

परधनहारक—१४. “गृहपतिपुत्त! इन चार स्थानों पर परधर्महारक को अपना शत्रु समझना चाहिये ।
जैसे—१. यह परधनहारक होता है, २. यह अल्पमात्र देकर अधिक की आशा रखता है, ३. दूसरों के
लिये भयोत्पादक कृत्य करता रहता है और ४. यह केवल धनप्राप्ति के लिये मैत्री करता है । गृहपतिपुत्त!
इन चार स्थानों से परधनहारक पर मित्रता का विश्वास नहीं करना चाहिये ।

बातूनी—१५. “गृहपतिपुत्त! इन चार कारणों से किसी बातूनी (केवल बातें बनाने वाले) को मित्र होते हुए
भी अमित्र ही समझना चाहिये । १. वह बीती हुई बातों की; या २. आगे होने वाली बातों की ही प्रशंसा
करता रहता है; ३. निरर्थक बातों की प्रशंसा करता है; और ४. वर्तमान के कार्यों में अनेकविध भय
दिखाता रहता है—इन चार कारणों से बातूनी पुरुष को मित्र नहीं मान बैठना चाहिये ।

चाटुकार (खुशामदी)—१६. “गृहपतिपुत्त! इन चार बातों से किसी खुशामदी (चाटुकार = अनुप्रियभाणी)
को अपना मित्र नहीं मानना चाहिये—१. वह कुत्सित कृत्यों में अनुमति दे डालता है, २. अच्छे कार्यों में
भी अनुमति देता है, ३. सामने प्रशंसा करता है; तो ४. पीठ पीछे निन्दा करता है—इन चार कारणों से
ऐसे अनुप्रियभाणी को मित्र नहीं समझना चाहिये ।

सम्पत्तिनाश में सहायक—१७. “गृहपतिपुत्त! चार कारणों से सम्पत्तिनाश में सहायक को मित्र नहीं मानना
चाहिये । १. यह शराब पीने और प्रमादयुक्त कार्य करने में सहायक होता है; २. असमय में चौरास्ता पर
घूमने में साथ देता है; ३. नृत्य—गीत उत्सवों में उसके सहायकरूप में सम्मिलित रहता है; एवं ४. जुआ
आदि दुष्कृत्यों के विधान में सहायक होता है । इन कारणों से चाहिये ।

“एते अमिते चत्तारो, इति विञ्जाय पण्डितो।

आरका परिवज्जेय्य, मगं पटिभयं यथा” ति ॥

४. मिता सुहदा वेदितब्बो

[R.187] १९. “चत्तारोमे, गहपतिपुत्त, मिता सुहदा वेदितब्बो—उपकारको मित्तो सुहदो वेदितब्बो, समानसुखदुक्खो मित्तो सुहदो वेदितब्बो, अत्थक्खायी मित्तो सुहदो वेदितब्बो, अनुकम्पको मित्तो सुहदो वेदितब्बो।

२० “चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि उपकारको मित्तो सुहदो वेदितब्बो। पमत्तं [N.145] रक्खति, पमत्तस्स सापतेय्यं रक्खति, भीतस्स सरणं होति, उपपन्नेसु किच्चकरणीयेसु तद्दिगुणं भोगं अनुप्पदेति—इमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि उपकारको मित्तो सुहदो वेदितब्बो।

२१. “चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि समानसुखदुक्खो मित्तो सुहदो वेदितब्बो। गृहमस्स आचिक्खति, गृहमस्स परिगूहति, आपदासु न विजहति, जीवितं पिस्स अत्थाय परिच्चत्तं होति—इमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि समानसुखदुक्खो मित्तो सुहदो वेदितब्बो। [B.153] २२. “चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि अत्थक्खायी मित्तो सुहदो वेदितब्बो। पापा निवारेति, कल्याणे निवेसेति, अस्सुतं सावेति, सगगस्स मगं आचिक्खति—इमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि अत्थक्खायी मित्तो सुहदो वेदितब्बो।

१८. भगवान् ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगत ने फिर यह भी कहा—

“१. परधनहारी, २. बातूनी, ३. चाटुकार एवं ४. पापकर्मी में सहायक—ये चार मित्र होते हुए भी वस्तुतः अमित्र ही हैं—ऐसा बुद्धमान् पण्डित को समझ लेना चाहिये ॥

इन चारों मित्रों को उसी तरह दूर से ही छोड़ देना चाहिये, जैसे—समझदार आदमी भयानक मार्ग को दूर से ही छोड़ देता है ॥”

४. चार प्रकार के मित्रों को सुहृद् समझना चाहिये

१९. “गृहपतिपुत्त! इन चतुर्विध मित्रों को सुहृद् समझना चाहिये। जैसे—१. उपकारी, २. सुख-दुःख में समान व्यवहार करने वाला, ३. अर्थ-प्राप्ति का उपाय बताने वाला एवं ४. निरन्तर अनुकम्पा (दया=सहानुभूति) रखने वाला मित्र सुहृद् समझा जाना चाहिये।

उपकारी—२०. “गृहपतिपुत्त! इन चार कारणों से उपकारी मित्र को सुहृद् समझना चाहिये, क्योंकि वह १. प्रमत्त की, २. प्रमत्त की सम्पत्ति की, ३. भयभीत की रक्षा करता है, एवं ४. आवश्यकता पड़ने पर, द्विगुणित लाभ कराने का प्रयास करता है। ...सुहृद् जानना चाहिये।

समान सुख-दुःखी—२१. “गृहपतिपुत्त! इन चार कारणों से समान सुख-दुःखी मित्र को सुहृद् समझना चाहिये; क्योंकि वह १. इसे अपनी गोपनीय बात बताता है, २. इस की गोपनीय बात को गुप्त ही रखता है। ३. संकटकाल में इस का परित्याग नहीं करता एवं ४. वह इस के लिये जीवन तक का भी उत्सर्ग करने का उत्साह रखता है। ...सुहृद् जानना चाहिये।

हितवादी—२२. “गृहपतिपुत्त! इन चार कारणों से अर्थसहित बात कहने वाले मित्र को सुहृद् समझना चाहिये— १. पाप कर्मों से दूर हटने का, २. शुभ कर्मों में लगे रहने का परामर्श देता है, ३. नहीं सुनी हुई विद्या को सुनाता (सिखाता) है एवं ४. सुगति (स्वर्ग) का मार्ग (उपाय) बतलाता है। ...सुहृद् समझना चाहिये।

२३. “चतूहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि अनुकम्पको मित्तो सुहदो वेदितब्बो । अभवेनस्स न नन्दति, भवेनस्स नन्दति, अवण्णं भणमानं निवारेति, वण्णं भणमानं पसंसति—इमेहि खो, गहपतिपुत्त, चतूहि ठानेहि अनुकम्पको मित्तो सुहदो वेदितब्बो” ति ।

२४. इदमवोच भगवा । इदं वत्तान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

“उपकारो च यो मित्तो, सुखे दुक्खे च यो सखा । [R.188]

अत्थक्खायी च यो मित्तो, यो च मित्तानुकम्पको ॥

“एते पि मित्ते चत्तारो, इति विञ्जाय पण्डितो ।

सक्कच्चं पयिरुपासेय्य, माता पुत्तं व ओरसं ।

पण्डितो सीलसम्पन्नो, जलं अग्गी व भासति ॥

“भोगे संहरमानस्स, भमरस्सेव इरीयतो ।

भोगा सन्निचयं यन्ति, वम्मिको वुपचीयति ॥

“एवं भोगे समाहत्वा, अलमत्तो कुले गिही ।

चतुधा विभजे भोगे, स वे मित्तानि गन्थति ॥

“एकेन भोगे भुञ्जेय्य, द्वीहि कम्मं पयोजये ।

चतुत्थं च निधापेय्य, आपदासु भविस्सती” ति ॥

५. छद्दिसापटिच्छादनं

२५. “कथं च, गहपतिपुत्त, अरियसावको छद्दिसापटिच्छादी होति ? छ [N.146] इमा, गहपतिपुत्त, दिसा वेदितब्बा—पुरत्थिमा दिसा मातापितरो वेदितब्बा, दक्खिणा दिसा

अनुकम्पक—२३. “गृहपतिपुत्त! इन चार कारणों से अनुकम्पक मित्र को सुहृद् समझना चाहिये; क्योंकि १. वह मित्र के पास सम्पत्ति न होने से प्रसन्न नहीं होता, २. होने से प्रसन्न होता है, ३. उसकी निन्दा करने वाले को रोकता है और ४. प्रशंसा करने वाले से प्रसन्न होता है। सुहृद् समझना चाहिये।”

२४. भगवान् ने यह कहा। यह कह कर उस सुगत शास्ता ने फिर यह भी कहा—

१. “उपकारी, २. समान सुख-दुख वाला, ३. अर्थ की बात कहने वाला एवं ४. मित्रानुकम्पक ॥

“ये चारों ही वास्तविक मित्र हैं—ऐसा जानकर बुद्धिमान् आदमी को, माता-पिता एवं पुत्र की तरह, उनका सत्कार करते हुए उनकी सेवा करनी चाहिये ॥

“सदाचारी पण्डित पर्वत पर प्रज्वलित अग्नि की भाँति प्रकाशित होता है ॥

“जो मधुमक्खी की तरह भोगों का सञ्चय करता है, उसके वे सभी भोग वल्मीक की तरह उपचित होते रहते हैं ॥

“इत तरह भोगों का सञ्चय कर अर्थसम्पन्न कुलवाला गृहस्थ अपने धन का चार भागों में विभाजन करे। वही मित्रों का संग्रह कर सकता है ॥

“उन भागों के एक भाग का स्वयं दैनिक उपयोग करे, दो भागों को घर के कार्य में प्रयुक्त करे और चतुर्थ भाग को संकट के समय काम में लाने के लिये सुरक्षित रखें।”

५. छह दिशाओं की पूजा

२५. “और गृहपतिपुत्त! आर्यश्रावक छह दिशाओं की पूजा कैसे करता है? गृहपतिपुत्त! छह दिशाओं को इस तरह जानना चाहिये— माता-पिता को पूर्व दिशा समझना चाहिये; आचार्य को दक्षिण

[R.189, B.154] आचरिया वेदितब्बा, पच्छिमा दिसा पुत्तदारा वेदितब्बा, उत्तरा दिसा मितामच्चा वेदितब्बा, हेट्ठिमा दिसा दासकम्मकरा वेदितब्बा, उपरिमा दिसा समणब्राह्मणा वेदितब्बा।

पुरत्थिमा दिसा मातापितरो

२६. “पञ्चहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि पुत्तेन पुरत्थिमा दिसा मातापितरो पच्चुपट्ठातब्बा—‘भतो ने भरिस्सामि, किच्चं नेसं करिस्सामि, कुलवंसं ठपेस्सामि, दायज्जं पटिपज्जामि, अथ वा पन पेतानं कालङ्कितानं दक्खिणं अनुप्पदस्सामी ति’। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि पुत्तेन पुरत्थिमा दिसा मातापितरो पच्चुपट्ठिता पञ्चहि ठानेहि पुत्तं अनुकम्पन्ति—पापा निवारिन्ति, कल्याणे निवेसेन्ति, सिप्पं सिक्खापेन्ति, पतिरूपेन दारेन संयोजेन्ति, समये दायज्जं निव्यादेन्ति। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि पुत्तेन पुरत्थिमा दिसा मातापितरो पच्चुपट्ठिता इमेहि पञ्चहि ठानेहि पुत्तं अनुकम्पन्ति। एवमस्स एसा पुरत्थिमा दिसा पटिच्छन्ना होति खेमा अप्पटिभया।

दक्खिणा दिसा आचरिया

२७. “पञ्चहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि अन्तेवासिना दक्खिणा दिसा आचरिया पच्चुपट्ठातब्बा—उट्ठानेन, उपट्ठानेन, सुस्सुसाय, पारिचरियाय, सक्कच्चं सिप्पपटिग्गहणेन। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि अन्तेवासिना दक्खिणा दिसा आचरिया पच्चुपट्ठिता पञ्चहि ठानेहि अन्तेवासिं अनुकम्पन्ति—सुविनीतं विनेन्ति, सुग्गहितं गाहापेन्ति, सब्बसिप्पस्सुतं [R.190] समक्खायिनो भवन्ति, मितामच्चेसु पटियादेन्ति, दिसासु परित्ताणं करोन्ति। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि अन्तेवासिना दक्खिणा दिसा आचरिया पच्चुपट्ठिता इमेहि पञ्चहि ठानेहि अन्तेवासिं अनुकम्पन्ति। एवमस्स एसा दक्खिणा दिसा पटिच्छन्ना होति खेमा अप्पटिभया।

दिशा....., स्त्री-पुत्र को पश्चिम दिशा....., मित्र-अमात्य को उत्तर दिशा....., दास एवं कर्मकरों को नीचे की दिशा....., एवं श्रमण-ब्राह्मण को ऊपर की दिशा समझना चाहिये।

माता-पिता पूर्व दिशा—२६. “गृहपतिपुत्र! इन पाँच कारणों से पुत्र को पूर्व दिशा मान कर माता-पिता का प्रत्युपस्थान (सेवा) करना चाहिये— १. इन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है, अतः मैं भी इनका पालन-पोषण करूँगा, २. इन्होंने मेरा कार्य किया है, अतः मैं भी इनका कार्य करूँगा, ३. इन्होंने मेरा कुल-वंश चलाया है, अतः मैं भी इनका कुलवंश चलाऊँगा, ४. इन्होंने मुझको दाय्याद्य (उत्तराधिकार) सौंपा है, अतः मैं भी दाय्याद्य का प्रतिपादन करूँगा, ५. मृत पूर्व पुरुषों को श्रद्धादान करूँगा। इस प्रकार पाँच तरह से सेवित हुए वे माता-पिता पुत्र पर पाँच तरह से अनुकम्पा करते हैं—१. पाप से दूर हटाते हैं, २. पुण्य-कर्म में लगाते हैं, ३. विद्या-शिल्प सिखाते हैं, ४. योग्य स्त्री से उसका विवाह कराते हैं, एवं ५. यथासमय दाय्याद्य (उत्तराधिकार) का निष्पादन करते हैं। गृहपतिपुत्र! इन पाँच बातों से पुत्र द्वारा माता-पितारूपी पूर्व दिशा का प्रत्युपस्थान होता है। यों, इस पुत्र की पूर्व दिशा प्रतिच्छन्न (ढकी, सुरक्षित), क्षेमयुक्त एवं भयरहित रहती है।

आचार्य दक्षिण दिशा—२७. “गृहपतिपुत्र! पाँच प्रकार से शिष्य को आचार्य-रूप दक्षिण दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये। १. उत्थान (तत्परता) से, २. उपस्थान (सेवा) से, ३. शुश्रूषा, ४. परिचर्या एवं ५. सत्कारपूर्वक विद्याग्रहण से। इस प्रकार...आचार्य पाँच प्रकार से शिष्य पर अनुकम्पा करते हैं—१. विनययुक्त कर, २. सुन्दर शिक्षा दे कर, ३. अपनी विद्या की सुरक्षा हेतु धरोहर के रूप में विद्या सिखा

पच्छिमा दिसा भरिया

२८. “पञ्चहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि सामिकेन पच्छिमा दिसा भरिया [N.147] पच्चुपट्टातब्बा—सम्माननाय, अनवमाननाय, अनतिचरियाय, इस्सरियवोस्सग्गेन, [B.155] अलङ्कारानुपदानेन। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि सामिकेन पच्छिमा दिसा भरिया पच्चुपट्टिता पञ्चहि ठानेहि सामिकं अनुकम्पति—सुसंविहितकम्मन्ता च होति, सङ्गहितपरिजना च, अनतिचारिणी च, सम्भतं च अनुरक्खति, दक्खा च होति अनलसा सब्बकिच्चेसु। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि सामिकेन पच्छिमा दिसा भरिया पच्चुपट्टिता इमेहि पञ्चहि ठानेहि सामिकं अनुकम्पति। एवमस्स एसा पच्छिमा दिसा पटिच्छन्ना होति खेमा अप्पटिभया।

उत्तरा दिसा मित्तामच्चा

२९. “पञ्चहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि कुलपुत्तेन उत्तरा दिसा मित्तामच्चा पच्चुपट्टातब्बा—दानेन, पियवज्जेन, अत्थचरियाय, समानत्तताय, अविस्वादनताय। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि कुलपुत्तेन उत्तरा दिसा मित्तामच्चा पच्चुपट्टिता पञ्चहि ठानेहि कुलपुत्तं अनुकम्पन्ति—पमतं रक्खन्ति, पमतस्स सापतेय्यं रक्खन्ति, भीतस्स सरणं होन्ति, आपदासु न विजहन्ति, अपरपजा चस्स पटिपूजेन्ति। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि कुलपुत्तेन उत्तरा दिसा मित्तामच्चा पच्चुपट्टिता इमेहि पञ्चहि ठानेहि कुलपुत्तं अनुकम्पन्ति। एवमस्स एसा उत्तरा दिसा पटिच्छन्ना होति खेमा अप्पटिभया।

हेट्ठिमा दिसा दासकम्मकरा

३०. “पञ्चहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि अत्थिरकेन हेट्ठिमा दिसा दास-[R.191] कम्मकरा पच्चुपट्टातब्बा—यथाबलं कम्मन्तसंविधानेन, भत्तवेतनानुपदानेन, गिलानुपट्टानेन,

कर, ४. उसके मित्र-अमात्यों का सुप्रतिपादन एवं ५. दिशाओं में परित्राण करते हैं। इन पाँच प्रकारों से....दक्षिण दिशा भयरहित होती है।

भार्या पश्चिम दिशा—२८. “गृहपतिपुत्र! पाँच स्थानों से पश्चिम दिशा का भार्या के रूप में प्रत्युपस्थान करना चाहिये। जैसे—१. सम्मान से, २. अपमान न करने से, ३. अतिचार (परस्त्रीगमन) न करने से, ४. ऐश्वर्यप्रदान से एवं ५. अलङ्कारप्रदान से। इन पाँच प्रकारों से उस का प्रत्युपस्थान करने पर वह बदले में पाँच प्रकार से अनुकम्पा करती है—१. घर के सभी कार्य भली भाँति सम्पन्न होते हैं, २. नौकर-चाकर वश में रहते हैं, ३. वह स्वयं अतिचारिणी नहीं होती, ४. अर्जित की रक्षा करती है एवं ५. सभी कार्यों में आलस्यरहित एवं दक्ष होती है। पश्चिम दिशा निर्भय होती है।

मित्र-अमात्य उत्तर दिशा—२९. “गृहपतिपुत्र! किसी भी कुलपुत्र को उत्तर दिशा का मित्र अमात्य के रूप में प्रत्युपस्थान करना चाहिये। जैसे—१. दान से, २. प्रियवचन से, ३. अर्थचर्या (उन का कार्य) कर देने से, ४. समान भाव दिखाने से एवं ५. विश्वास प्रदान करने से। इन पाँच स्थानों से उन का प्रत्युपस्थान करने से वे मित्र एवं साथी बदले में पाँच प्रकार से उस पर अनुकम्पा करते हैं—१. प्रमाद (भूल) करने पर रक्षा करते हैं, २. प्रमत्त की सम्पत्ति की रक्षा करते हैं, ३. भय (संकट) आने पर रक्षा करते हैं, ४. आपत्काल में नहीं छोड़ते एवं ५. अन्य साधारणजन भी ऐसे मित्र अमात्य वाले का सत्कार करते हैं।....उत्तर दिशा....निर्भय होती है।

दास-कर्मकर निचली दिशा—३०. “गृहपतिपुत्र! पाँच स्थानों से आर्यक (स्वामी) को अपने दास एवं

अच्छरियानं रसानं संविभागेन, समये वोस्सग्गेन। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि अय्यिरकेन हेट्ठिमा दिसा दासकम्मकरा पच्चुपट्ठिता पञ्चहि ठानेहि अय्यिरकं अनुकम्पन्ति—पुब्बुट्ठायिनो च होन्ति, पच्छा निपातिनो च, दिन्नादायिनो च, सुकतकम्मकरा च, कित्तिवण्णहरा च। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि अय्यिरकेन हेट्ठिमा दिसा दासकम्मकरा पच्चुपट्ठिता इमेहि पञ्चहि ठानेहि अय्यिरकं अनुकम्पन्ति। एवमस्स एसा हेट्ठिमा दिसा पटिच्छन्ना होति खेमा अप्पटिभया।

उपरिमा दिसा समणब्राह्मणा

[N.148] ३१. “पञ्चहि खो, गहपतिपुत्त, ठानेहि कुलपुत्तेन उपरिमा दिसा समणब्राह्मणा [B.156] पच्चुपट्ठातब्बा—मेत्तेन कायकम्मेन, मेत्तेन वचीकम्मेन, मेत्तेन मनोकम्मेन, अनावट-द्वाराताय, आमिसानुप्पदानेन। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, पञ्चहि ठानेहि कुलपुत्तेन उपरिमा दिसा समणब्राह्मणा पच्चुपट्ठिता छहि ठानेहि कुलपुत्तं अनुकम्पन्ति—पापा निवारोन्ति, कल्याणे निवेसेन्ति, कल्याणेन मनसा अनुकम्पन्ति, अस्सुतं सावेन्ति, सुतं परियोदपेन्ति, सग्गस्स मग्गं आचिक्खन्ति। इमेहि खो, गहपतिपुत्त, छहि ठानेहि कुलपुत्तेन उपरिमा दिसा समणब्राह्मणा पच्चुपट्ठिता इमेहि छहि ठानेहि कुलपुत्तं अनुकम्पन्ति। एवमस्स एसा उपरिमा दिसा पटिच्छन्ना होति खेमा अप्पटिभया” ति।

३२. इदमवोच भगवा। इदं वत्त्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

“मातापिता दिसा पुब्बा, आचरिया दक्खिणा दिसा।

[R.192] पुत्तदारा दिसा पच्छा, मित्तामच्चा च उत्तरा॥

“दासकम्मकरा हेट्ठा, उद्धं समणब्राह्मणा।

एता दिसा नमस्सेय्य, अलमत्तो कुले गिही॥

कर्मकरों का प्रत्युपस्थान करना चाहिये—१. शक्ति के अनुसार कार्य के विभाजन से, २. यथासमय भोजन व वेतन देने से, ३. रोगी होने पर सेवा—चिकित्सा से, समय—समय पर उत्तम पदार्थों के दान से एवं ५. समय पर छुट्टी (अवकाश) देने से। इन पाँच प्रकारों से प्रत्युपस्थान करने पर बदले में वे पाँच तरह से अनुकम्पा (सहानुभूति) दिखाते हैं—१. स्वामी से पहले सो कर उठना, २. स्वामी के सो जाने पर सोना, ३. दिये हुए का ही लेना (चौरी न करना), ४. कार्यों को भलीभाँति पूर्ण करना एवं ५. बाहर के लोगों में स्वामी की प्रशंसा करना।...निचली दिशा...निर्भय होती है।

श्रमण—ब्राह्मण ऊपर की दिशा—३१. “गृहपतिपुत्र! पाँच प्रकार से किसी भी कुलपुत्र को ऊपर की दिशा का श्रमण—ब्राह्मण की सेवा द्वारा प्रत्युपस्थान करना चाहिये—१. मैत्रीभावयुक्त कायिक कर्म से, २. मैत्रीभावयुक्त वाचिक कर्म से, ३. मैत्रीभावयुक्त मानसिक कर्म से, ४. उन के लिये अपने घर का द्वार सदा खुला रखने से ५. खाद्य—भोज्य वस्तुओं के दान से। गृहपतिपुत्र! इन पाँच प्रकार से प्रत्युपस्थान से उपकृत श्रमण—ब्राह्मण इन छह विधियों से उस कुलपुत्र पर अनुकम्पा करते हैं—१. पाप से निवारण, २. कल्याण मार्ग में प्रवेश, ३. कल्याण मन से आशीर्वाद, ४. अश्रुत विद्या की शिक्षा ५. श्रुतविद्या का अभ्यास कराना एवं ६. सुगतियम (स्वर्ग) का रास्ता बतलाना।...ऊपर की दिशा ...निर्भय होती है।”

३२. भगवान् ने यह कहा। यह कह कर सुगत शास्ता ने फिर यह भी कहा—

“माता—पिता पूर्व दिशा हैं और आचार्य दक्षिण दिशा, स्त्री—पुत्र पश्चिम दिशा है तथा मित्र—अमात्य उत्तर दिशा॥

“पण्डितो सीलसम्पन्नो, सण्हो च पटिभानवा।

निवातवुत्ति अत्थद्धो, तादिसो लभते यसं॥

“उट्टानको अनलसो, आपदासु न वेधति।

अच्छिन्नवुत्ति मेधावी, तादिसो लभते यसं॥

“सङ्गाहको मित्तकरो, वदञ्जू वीतमच्छरो।

नेता विनेता अनुनेता, तादिसो लभते यसं॥

“दानं च पेय्यवज्जं च, अत्थचरिया च या इध।

समानतता च धम्मेषु, तत्थ तत्थ यथारहं।

एते खो सङ्गाहा लोके, रथस्साणीव यायतो॥

“एते च सङ्गाहा नास्सु, न माता पुत्तकारणा।

लभेथ मानं पूजं वा, पिता वा पुत्तकारणा॥

“यस्मा च सङ्गाहा एते, समवेक्खन्ति पण्डिता।

[N.149]

तस्मा महत्तं पप्पोन्ति, पासंसा च भवन्ति ते” ति॥

[R.193]

३३. एवं वुत्ते, सिङ्गालको गृहपतिपुत्रो भगवन्तं एतदवोच—“अभिक्रन्तं, [B.157] भन्ते, अभिक्रन्तं, भन्ते। सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळहस्स वा मगं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्ती ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं” ति॥

सिङ्गालसुत्तं निद्धितं अट्टमं॥

“दास—कर्मकर नीचे की दिशा है, श्रमणब्राह्मण ऊपर की दिशा हैं। गृहस्थ को अपने कुल में इन दिशाओं को भली भाँति नमस्कार करना चाहिये॥

“पण्डित, सदाचारी, सबसे स्नेह रखने वाला, प्रतिभावान्, एकान्तसेवी एवं आत्मसंचयी पुरुष ही यश प्राप्त करता है॥

“उपयोगी, निरलस, आपत्ति पड़ने पर न घबराने वाला, अटूट नियम व्रत वाला एवं मेधावी पुरुष भी यशस्वी होता है॥

“मित्रों का संग्राहक, मित्रों का कार्यनिष्पादक, उदार, ईर्ष्यारहित, नेता, अनुशासक तथा अनुनेता पुरुष भी यशस्वी होता है॥

“जो इस संसार में दान, दूसरों के हित का निष्पादक, प्रियभाषी तथा प्रत्येक व्यक्ति में यथायोग्य समानता का व्यवहार करता है। उसके ये गुण चलते रथ की आणि (नाभि) के समान हैं॥

“यदि ये संग्रह (कारक गुण) न हों तो न माता पुत्र से मान पूजा पा सके, न पिता पुत्र से॥

“क्योंकि पण्डित (सुधी) जन इन गुणों के संग्रह का पूरा ध्यान रखते हैं, अतः वे समाज में प्रतिष्ठा (महत्त्व) एवं प्रशंसा पाते हैं॥”

३३. ऐसा कहे जाने पर शृंगालक गृहपतिपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—“आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! पूर्ववत्....। आज से आप मुझे मेरे प्राण जाने तक अपना शरणागत समझें॥”

शृंगालसूत्र समाप्त॥

९. आटानाटियसुत्तं

१. चत्तारो महाराजा

[N.150, B.158, R.194] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिञ्झकूटे पब्बते। अथ खो चत्तारो महाराजा महतिया च यक्खसेनाय महतिया च गन्धब्बसेनाय महतिया च कुम्भण्डसेनाय महतिया च नागसेनाय चतुद्दिसं रक्खं ठपेत्वा, चतुद्दिसं गुम्बं ठपेत्वा, चतुद्दिसं ओवरणं ठपेत्वा, अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं गिञ्झकूटं पब्बतं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। ते पि खो यक्खा अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे येन भगवा तेनज्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु।

२. एकमन्तं निसिन्नो खो वेस्सवणो महाराजा भगवन्तं एतदवोच—“सन्ति हि, भन्ते, [R.195] उळारा यक्खा भगवतो अप्पसन्ना। सन्ति हि, भन्ते, उळारा यक्खा भगवतो पसन्ना। सन्ति हि, भन्ते मज्झिमा यक्खा भगवतो अप्पसन्ना। सन्ति हि, भन्ते, मज्झिमा यक्खा भगवतो पसन्ना। सन्ति हि, भन्ते, नीचा यक्खा भगवतो अप्पसन्ना। सन्ति हि, भन्ते, नीचा यक्खा भगवतो पसन्ना। येभ्य्येन खो पन, भन्ते, यक्खा अप्पसन्ना येव भगवतो। तं किस्स हेतु? भगवा हि, भन्ते, पाणातिपाता वेरमणिया धम्मं देसेति, अदिन्नादाना वेरमणिया धम्मं देसेति, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया धम्मं देसेति, मुसावादा वेरमणिया धम्मं देसेति, सुरामेरयमज्ज-प्पमादट्ठाना वेरमणिया धम्मं देसेति। येभ्य्येन खो पन, भन्ते, यक्खा अप्पटिविरता येव

९. आटानाटियसूत्र

१. चार महाराज

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। तब, चारों दिशाओं के महाराज (यक्षाधिपति) अपने यक्षों, गन्धर्वों एवं कूष्माण्डों तथा नागों की विशाल सेना का चारों दिशाओं में रक्षाहेतु पहरा बैठाकर योद्धाओं की टोलियाँ (कम्पनियाँ) नियुक्त कर, चान्दनी रात में गृध्रकूट पर्वत को पूर्णतः प्रकाशित करते हुए, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जा कर भगवान् को अभिवादन (नामश्रावणपूर्वक प्रणाम) कर एक ओर बैठ गये। उन में से कितने ही यक्षों ने भगवान् का सम्मोदन किया, सम्मोदन कर एक ओर बैठ गये। और कितने ही यक्ष भगवान् की तरफ दूर से ही अञ्जलिबद्ध प्रणाम कर बैठ गये। तथा उनमें से कितने ही चुपचाप एक तरफ जा बैठे।

२. (उन में से) एक तरफ बैठे वैश्रवण महाराज भगवान् से यों निवेदन करने लगे—“भन्ते! कितने ही बड़े यक्ष आप पर अश्रद्धावान् (=अप्रसन्न) हैं, कितने ही श्रद्धावान् भी हैं; कितने ही मध्यम कोटि के यक्ष.... हीन कोटि के यक्षों में से कुछ आपके प्रति श्रद्धावान् हैं, तो कितने ही अश्रद्धावान् भी हैं। परन्तु प्रायः अधिकतर यक्ष आपके प्रति अश्रद्धावान् ही हैं। वह किस कारण? वह इस कारण कि, भन्ते! भगवान् प्राणिहिंसा न करने के लिये धर्मापदेश करते हैं; चौर्य न करने के लिये....., व्यभिचार न करने के लिये....., असत्य न बोलने के लिये....., सुरा, मैरेय एवं मद्य का पान न करने के लिये धर्मापदेश करते हैं। परन्तु,

पाणातिपाता, अप्पटिविरता अदिन्नादाना, अप्पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा, अप्पटिविरता मुसावादा, अप्पटिविरता सुरामेरयमज्जप्पमादट्टाना। तेसं तं होति अप्पियं अमनापं। सन्ति हि भन्ते, भगवतो सावका अरब्बवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवन्ति अप्पसद्धानि [B.159] अप्पिनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि पटिसल्लानसारुप्पानि। तत्थ [N.151] सन्ति उळ्ळारा यक्खा निवासिनो, ये इमस्मिं भगवतो पावचने अप्पसन्ना। तेसं पसादाय उग्गण्हातु, भन्ते, भगवा आटानाटियं रक्खं भिक्खून् भिक्खुनीन् उपासकानं उपासिकानं गुत्तिया रक्खाय अविहिंसाय फासुविहाराया” ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

२. आटानाटिया रक्खा

३. अथ खो वेस्सवणो महाराजा भगवतो अधिवासनं विदित्वा तायां वेलायां इमं आटानटियं रक्खं अभासि—

“विपस्सिस्स च नमत्थु, चक्खुमन्तस्स सिरीमतो।

सिखिस्स पि च नमत्थु, सब्बभूतानुकम्पिनो ॥ (१)

“वेस्सभुस्स च नमत्थु, न्हातकस्स तपस्सिनो।

नमत्थु ककुसन्धस्स, मारसेनापमद्दिनो ॥ (२) [R.196]

“कोणागमनस्स नमत्थु, ब्राह्मणस्स वुसीमतो।

कस्सपस्स च नमत्थु, विप्पमुत्तस्स सब्बधि ॥ (३)

“अङ्गीरसस्स नमत्थु, सक्कपुत्तस्स सिरीमतो।

यो इमं धम्मं देसेसि, सब्बदुक्खापनूदनं ॥ (४)

“ये चा पि निब्बुता लोके, यथाभूतं विपस्सिंसुं।

भन्ते! जो जीवहिंसा...मद्यपान से विरत नहीं है, उनको आपका यह धर्मोपदेश अनुकूल ज्ञात नहीं होता। भन्ते! अतः पाप कर्म में लिप्त रहने के कारण ऐसे यक्ष आपके धर्म के विरुद्ध ही हैं। भगवान् के श्रावक जंगलों या वनों में एकान्तवास करते हैं, वहाँ वे मनुष्यों से पृथक् रहते हुए ध्यानभावना में मग्न रहते हैं। वहाँ वे बड़े बड़े यक्ष भी रहते हैं, जो आप से अप्रसन्न (अश्रद्धालु) हैं। अतः उनमें प्रसाद (श्रद्धा) उत्पन्न करने के लिये, उन भिक्षु एवं भिक्षुणियों को, पीड़ारहित सुखपूर्वक साधना में रत रहने के लिये, आटानाटिय रक्षा का विधान करें।” भगवान् ने मौन भाव से उस महाराज का निवेदन स्वीकार कर लिया।

२. आटानाटिय रक्षामन्त्र

३. तब वैश्रवण महाराज ने, भगवान् की स्वीकृति जान कर, ये आटानाटिय रक्षामन्त्र कहे—

“चक्षुष्मान्, श्रीमान् विपश्यी भगवान् को नमस्कार स्वीकार हो। शिखी को भी, जो सभी प्राणियों पर अनुकम्पा रखने वाले हैं। (१)

“स्नातक, तपस्वी विश्वभू को नमस्कार स्वीकार हो। मारसेना को नष्ट-श्रेष्ठ कर देने वाले ककुच्छन्द भगवान् को नमस्कार स्वीकार हो। (२)

“ब्रह्मचारी कोणागमन ब्राह्मण को नमस्कार हो। सभी आधि-व्याधियों से मुक्त काश्यप को भी नमस्कार हो। (३)

“अङ्गीरस श्रीमान् शाक्यपुत्र को भी नमस्कार है, जिन्होंने सब दुःखों को नष्ट करने वाले धर्म का उपदेश किया। (४)

- ते जना अपि सुणाथ, महन्ता वीतसारदा ॥ (५)
 “हितं देवमनुस्सानं, यं नमस्सन्ति गोतमं।
 विज्जाचरणसम्पन्नं, महन्तं वीतसारदं ॥ (६)
४. “यतो उग्गच्छति सुरियो, आदिच्चो मण्डली महा।
 यस्स चुग्गच्छमानस्स, संवरी पि निरुज्झति।
 यस्स चुग्गते सुरिये, दिवसो ति पवुच्चति ॥ (७)
- [B.160] “रहदो पि तत्थ गम्भीरो, समुद्धो सरितोदको।
 एवं तं तत्थ जानन्ति, समुद्धो सरितोदको ॥ (८)
- [R.197] “इतो सा पुरिमा दिसा, इति नं आचिक्खती जने।
 यं दिसं अभिपालेति, महाराज यसस्सि सो ॥ (९)
- [N.152] “गन्धब्बानं अधिपति, धतरट्ठो ति नामसो।
 रमती नच्चगीतेहि, गन्धब्बेहि पुरक्खतो ॥ (१०)
 “पुत्ता पि तस्स बहवो, एकनामा ति मे सुतं।
 असीति दस एको च, इन्द्रनामा महब्बला ॥ (११)
 “ते चा पि बुद्धं दिस्वान, बुद्धं आदिच्चबन्धुनं।
 दूरतो व नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं ॥ (१२)
 “नमो ते पुरिसाजञ्ज, नमो ते पुरिसुत्तम।
 कुसलेन समेक्खसि, अमनुस्सा पि तं वन्दन्ति।
 सुतं नेतं अभिण्हसो, तस्मा एवं वदेमसे ॥ (१३)

“और जो दूसरे भी यथार्थ ज्ञान पा कर निर्वाण प्राप्त हुए हैं, वे सभी महान् निर्भय आश्रवरहित (अर्हत्) सुनें। (५)

“देव-मनुष्यों के हितकारी गौतम को प्रणाम करते हैं, जो विद्या एवं आचरण से सम्पन्न हैं। जो महान् एवं निर्भय हैं। (६)

(१) धृतराष्ट्र-४. “जहाँ से विशालमण्डल सूर्य उदय होता है जिसके उदित होने से घोर अन्धकारमयी रात्रि (शर्वरी) समाप्त हो जाती है। जिस सूर्य के उदित होने से ‘दिन’ कहलाता है। (७)

“यहाँ एक गम्भीर जलाशय है, जहाँ सभी नदियों का जल जाकर इकट्ठा होता है, वह ‘समुद्र’ कहलाता है। उसे वहाँ नदी जल वाला ‘समुद्र’ कहते हैं। (८)

“यहाँ से वह पूर्व दिशा में है—ऐसा लोग उसके विषय में कहते हैं। जिस दिशा का वह यशस्वी महाराजा पालन करता है। (९)

“वह गन्धर्वों का अधिपति है, उसका नाम धृतराष्ट्र है। गन्धर्वों को आगे कर वह नाच-गाने में रमा रहता है। (१०)

“उसके बहुत से पुत्र एक ही नाम वाले हैं। उनमें से इक्यान्वे पुत्र तो ‘इन्द्र’ नाम वाले ही हैं। (११)

“वे भी बुद्ध सूर्यवंशज, निर्भय महान् बुद्ध को देख कर दूर से ही प्रणाम करते हैं। (१२)

“वे कहते हैं—‘हे पुरुष श्रेष्ठ! हे पुरुषोत्तम! आप को नमस्कार है।’ आप कुशलपूर्वक समीक्षा

“जिनं वन्दथ गोतमं, जिनं वन्दाम गोतमं।
विज्जाचरणसम्पन्नं, बुद्धं वन्दाम गोतमं॥ (१४)

५. “येन पेता पवुच्चन्ति, पिसुणा पिट्ठिमंसिका।
पाणातिपातिनो लुद्दा, चोरा नेकतिका जना॥ (१५)
“इतो सा दक्खिणा दिसा, इति नं आचिक्खती जनो। [R.198]
यं दिसं अभिपालेति, महाराजा यसस्सि सो॥ (१६)
“कुम्भण्डानं अधिपति, विरूळ्हो इति नामसो।
रमती नच्चगीतेहि, कुम्भण्डेहि पुरक्खतो॥ (१७)
“पुत्ता पि तस्स बहवो, एकनामा ति मे सुतं।
असीति दस एको च, इन्दनामा महब्बला॥ (१८)
“ते चा पि बुद्धं दिस्वान, बुद्धं आदिच्चबन्धुनं।
दूरतो व नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं॥ (१९)
“नमो ते पुरिसाजञ्ज, नमो ते पुरिसुत्तम। [B.161]
कुसलेन समेक्खसि, अमनुस्सा पि तं वन्दन्ति।
सुतं नेतं अभिण्हसो, तस्मा एवं वदेमसे॥ (२०)
“जिनं वन्दथ गोतमं, जिनं वन्दाम गोतमं।
विज्जाचरणसम्पन्नं, बुद्धं वन्दाम गोतमं॥ (२१)

६. “यत्थ चोग्गच्छति सुरियो, आदिच्चो मण्डली महा। [N.153]

करते हैं, अमनुष्य (देवता) भी आपको प्रणाम करते हैं। हम लोग ऐसा बराबर ऐसा सुनते आ रहे हैं—
इसीलिये ऐसा कहते हैं। (१३)

“जिन गौतम को प्रणाम करो।” इसी लिये जिन गौतम को हम प्रणाम करते हैं। विद्या-आचरण
सम्पन्न गौतम बुद्ध को हम प्रणाम करते हैं। (१४)

(२) विरूढक—५. “प्राणहिंसक, रुद्र कर्म करने वाले, चौर, शठ एवं चुगलखोर तथा पीठ पीछे निन्दा
करने वाले—ये सब प्रेत कहे जाते हैं। (१५)

वे जहाँ रहते हैं—वह स्थान यहाँ से दक्षिण दिशा में हैं—ऐसा लोग कहते हैं। उस दिशा को ये
यशस्वी महाराज पालते हैं। (१६)

“वह कूष्माण्ड यक्षों का अधिपति है। उसका नाम विरूढक है। वह कूष्माण्डों को आगे ही कर
नृत्य-गीत करता हुआ मुदित रहता है। (१७)

“उसके बहुत से पुत्र एक ही नाम वाले हैं। उनमें से ८०+१०+१=९१ का ‘इन्द्र’ ही नाम है।
वे सभी महाबली हैं। (१८)

“वे भी महान् ज्ञानी बुद्ध को दूर से ही देख कर आदित्यबन्धु बुद्ध को यों प्रणाम करने लगते
हैं। (१९)

“हे पुरुषश्रेष्ठ! हे पुरुषोत्तम! आप को प्रणाम है। आप कुशल समीक्षक हो।” अमनुष्य (देवता) भी
आप को प्रणाम करते हैं। हमने ऐसा बहुत बार (अभीक्षणशः) सुना है। अतः ऐसा कहते हैं— (२०)

“हम विजयी गौतम बुद्ध को, विद्या-आचरणसम्पन्न गौतम बुद्ध को प्रणाम करते हैं। (२१)

यस्स चोग्गच्छमानस्स, दिवसो पि निरुज्झति ।

यस्स चोग्गते सुरियं, संवरी ति पवुच्चति ॥ (२२)

“रहदो पि तत्थ गम्भीरो, समुद्धो सरितोदको ।

एवं तं तत्थ जानन्ति, समुद्धो सरितोदको ॥ (२३)

“इतो सा पच्छिमा दिसा, इति नं आचिक्खती जनो ।

[R.199] यं दिसं अभिपालेति, महाराजा यसस्सि सो ॥ (२४)

“नागानं च अधिपति, विरूपक्खो ति नामसो ।

रमती नच्चगीतेहि, नागेहेव पुरक्खतो ॥ (२५)

“पुत्ता पि तस्स बहवो, एकनामा ति मे सुतं ।

असीति दस एको च, इन्दनामा महब्बला ॥ (२६)

“ते चा पि बुद्धं दिस्वान, बुद्धं आदिच्चबन्धुनं ।

दूरतो व नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं ॥ (२७)

“नमो ते पुरिसाजब्ज, नमो ते पुरिसुत्तम ।

कुसलेन समेक्खसि, अमनुस्सा पि तं वन्दन्ति ।

सुतं नेतं अभिण्हसो, तस्मा एवं वदेमसे ॥ (२८)

“जिनं वन्दथ गोतमं, जिनं वन्दाम गोतमं ।

विज्जाचरणसम्पन्नं, बुद्धं वन्दाम गोतमं ॥ (२९)

७. “येन उत्तरकुरुव्हो, महानेरु सुदस्सनो ।

मनुस्सा तत्थ जायन्ति, अममा अपरिग्गहा ॥ (३०)

[B.162] “न ते बीजं पवपन्ति, न पि नीयन्ति नङ्गला ।

अकट्टपाकिमं सालिं, परिभुञ्जन्ति मानुसा ॥ (३१)

(३) विरूपाक्ष-६. “जहाँ विशाल मण्डल वाला सूर्य उदित होता है। जिस के उदित होने पर ‘दिन’ कहलाता है और जिसके अस्त होने पर ‘शर्वरी’ (रात्रि) हो जाती है। (२२)

“वहाँ एक गम्भीर जलाशय है, जहाँ सभी नदियों का जल आकर इकट्ठा होता है, उसे ‘समुद्र’ कहते हैं। (२३)

“वह स्थान यहाँ से पश्चिम दिशा में है, उस का पालन यह यशस्वी महाराज करता है। (२४)

“यह नागों का अधिपति (राजा) है, वह विरूपाक्ष नाम से प्रसिद्ध है। वह नागों को ही आगे कर निरन्तर नृत्य-गीत करता हुआ प्रमुदित रहता है। (२५)

उसके एक ही नाम के बहुत से महाबलशाली पुत्र हैं ८०+१०+१=९१ का तो ‘इन्द्र’ यही एक नाम है। पूर्ववत्। (२६-२९)

(४) वैश्रवण-७. “जहाँ रमणीय उत्तरकुरु और सुन्दर सुमेरु पर्वत है। जहाँ सभी मनुष्य अपरिग्रही एवं ममता रहित ही उत्पन्न होते हैं। (३०)

“वे न कोई धान्य बोते हैं, न हल जोतते हैं। वे मनुष्य स्वयमुत्पन्न (अकृष्टपच्य) शालि ओदन ही खाते हैं। (३१)

“अकणं अथुसं सुद्धं, सुगन्धं तण्डुलप्फलं ।
तुण्डिकीरे पचित्वान, ततो भुञ्जन्ति भोजनं ॥ (३२) [R.200]

“गाविं एकखुरं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ।
पसुं एकखुरं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ॥ (३३)
“इत्थिं वा वाहनं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं । [N.154]

पुरिसं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ॥ (३४)

“कुमारिं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ।

कुमारं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ॥ (३५)

“ते याने अभिरूहित्वा, सब्बा दिसा अनुपरियायन्ति ।

पचारा तस्स राजिनो ॥ (३६)

“हत्थियानं अस्सयानं, दिब्बं यानं उपट्ठितं ।

पासादा सिविका चेव, महाराजस्स यसस्सिनो ॥ (३७)

“तस्स च नगरा अहु, अन्तलिक्खे सुमापिता ।

आटानाटा कुसिनाटा परकुसिनाटा, नाटसुरिया परकुसिनाटा ॥ (३८)

“उत्तरेण कसिवन्तो, जनोधमपरेण च । [R.201]

नवनवुतियो अम्बरअम्बरवतियो, आळकमन्दा नाम राजधानी ॥ (३९)

“कुवेरेस्स खो पन मारिस महाराजस्स, विसाणा नाम राजधानी ।

तस्मा कुवेरो महाराजा, वेस्सवणो ति पवुच्चति ॥ (४०)

“पच्चेसन्तो पकासेन्ति, ततोला तत्तला ततोतला । [B.163]

ओजसि तेजसि ततोजसी, सूरु राजा अरिट्ठो नेमि ॥ (४१)

“वे निष्कण, निस्तुष, शुद्ध, सुगन्धयुक्त चावल को दूध में पका कर खाते हैं । (३२)

“वे एक खुर वाले पशु (घोड़े) की सवारी से या बैलगाड़ी से सभी दिशाओं की यात्रा करते हैं ।

“या स्त्री को वाहन, (सवारी) बना कर वे सब दिशाओं की यात्रा करते हैं । पुरुष को वाहन बना कर भी वे....यात्रा करते हैं । (३३-३४)

“कुमारी को वाहन बना कर भी वे....यात्रा करते हैं । लड़कों को वाहन बना कर भी वे....।

“वे नाना प्रकार के यानों पर सवार हो कर सभी दिशाओं से अपने राजा की परिचर्या (सेवा) में आते हैं । (३५-३६)

“उस यशस्वी महाराज के पास हस्तियान, अश्वयान, दिव्ययान एवं प्रासाद (विमान) तथा शिविकाएँ (आदि सभी तरह की सवारियाँ) हैं । (३७)

“ऊपर अन्तरिक्ष में बने उसके नगरों का नाम है—आटानाटा, कुसिनाटा, परकुसिनाटा, नाटसुरिया एवं परकुसिनाटा । (३८)

“उस के उत्तर में कपीवन्त और दूसरी तरफ जनौघ—इसी तरह ९९ दूसरे नगर हैं । उनमें प्रमुख हैं—अम्बा तथा अम्बरवती । आळकमन्दा नामक उसकी राजधानी है । (३९)

“मार्श! कुबेर महाराज की राजधानी का नाम विश्राणा है । इसीलिये इस कुबेर महाराज को ‘वैश्रवण’ कहते हैं । (४०)

- “रहदो पि तत्थ धरणी नाम, यतो मेघा पवस्सन्ति।
वस्सा यतो पतायन्ति, सभा पि तत्थ सालवती नाम ॥ (४२)
- [N.155] “यत्थ यक्खा पयिरुपासन्ति, तत्थ निच्चफला रुक्खा।
नाना दिजगणा युता, मयूरकोञ्चाभिरुदा।
कोकिलादीहि वग्गुहि ॥ (४३)
- [R.202] “जीवञ्जीवकसद्देत्थ, अथो ओट्टवचित्ता।
कुक्कुटका कुळीरका, वने पोक्खरसातका ॥ (४४)
“सुकसाळिकसद्देत्थ, दण्डमाणवकानि च।
सोभति सब्बकालं सा, कुबेरनळिनी सदा ॥ (४५)
“इतो सा उत्तरा दिसा, इति नं आचिक्खती जनो।
यं दिसं अभिपालेति, महाराजा यसस्सि सो ॥ (४६)
“यक्खानं च अधिपति, कुबेरो इति नाम सो।
रमती नच्चगीतेहि, यक्खेहेव पुरक्खतो ॥ (४७)
“पुत्ता पि तस्स बहवो, एकनामा ति मे सुतं।
असीति दस एको च, इन्दनामा महब्बला ॥ (४८)
“ते चा पि बुद्धं दिस्वान, बुद्धं आदिच्चबन्धुनं।
दूरतो व नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं ॥ (४९)
“नमो ते पुरिसाञ्ज, नमो ते पुरिसुत्तम।
कुसलेन समेक्खसि, अमनुस्सा पि तं वन्दन्ति।
सुतं नेतं अभिण्हसो, तस्मा एवं वदेमसे ॥ (५०)
“जिनं वन्दथ गोतमं, जिनं वन्दाम गोतमं।
विज्जाचरणसम्पन्नं, बुद्धं वन्दाम गोतमं” ति ॥ (५१)

(वहाँ) ततोला, तत्तला, ततोतला, ओजसि, तेजसि, ततोजसि, अरिष्टनेमि एवं सूर राजा अन्वेषण करते हुए दैदीप्यमान रहते हैं। (४१)

“वहाँ धरणी नामक हृद (जलाशय) है। जहाँ से जल ले कर मेघ वृष्टि करते हैं। यही जल का उद्गम स्थान है। इस की सभा का नाम है, सालवती। (४२)

“जहाँ यक्ष लोग एकत्र होते हैं वृक्ष भी वहाँ नित्य फल देने वाले हैं। जिन पर बैठे मयूर, क्रौञ्च (हंस) एवं कोयल आदि मधुरभाषी पक्षी मधुर कलरव करते रहते हैं। (४३)

“वहाँ जीवजीवक, ओट्टव, चित्रक, मुर्गे, कुलीरक, पोक्खरसातक, शुक, सारिका एवं दण्डमाणवक—ये सभी उस कुबेर की पुष्करिणी पर सदैव शोभायमान रहते हैं। (४४-४५)

“(यह पुष्करिणी) यहाँ से उत्तर दिशा में है—ऐसा लोग कहते हैं। इस दिशा पर ये यशस्वी महाराज शासन करते हैं। (४६)

“यह कुबेर नामक महाराज यक्षों का अधिपति है। यह यक्षों को आगे कर सदैव नृत्य—गीतमय उत्सवों में रमा रहता है। (४७)

“इसके एकही नाम के अनेक महाबलीपुत्र हैं। इनमें से ९१ का तो एक ही ‘इन्द्र’ नाम है। (४८)

८. “अयं खो सा, मारिस, आटानाटिया रक्खा भिक्खून् भिक्खुनीन् [R.203]

उपासकानं उपासिकानं गुत्तिया रक्खाय अविहिंसाय फासुविहाराय ।

“यस्स कस्सचि, मारिस, भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा उपासकस्स वा [B.164]

उपासिकाय वा अयं आटानाटिया रक्खा सुग्गहिता भविस्सति समत्ता परियापुता, तं चे [N.156]
अमनुस्सो यक्खो वा यक्खिनो वा यक्खपोतको वा यक्खपोतिका वा यक्खमहामत्तो वा
यक्खपारिसज्जो वा यक्खपचारो वा, गन्धब्बो वा गन्धब्बी वा गन्धब्बपोतको वा गन्धब्बपोतिका
वा गन्धब्बमहामत्तो वा गन्धब्बपारिसज्जो वा गन्धब्बपचारो वा, कुम्भण्डो वा कुम्भण्डी वा
कुम्भण्डपोतको वा कुम्भण्डपोतिका वा कुम्भण्डमहामत्तो वा कुम्भण्डपारिसज्जो वा
कुम्भण्डपचारो वा, नागो वा नागी वा नागपोतको वा नागपोतिका वा नागमहामत्तो वा
नागपारिसज्जो वा नागपचारो वा पदुट्टचित्तो भिक्खुं वा भिक्खुनिं वा उपासकं वा उपासिकं वा
गच्छन्तं वा अनुगच्छेय्य, ठितं वा उपतिट्ठेय्य, निसिन्नं वा उपनिसीदेय्य, निपन्नं वा उपनिपज्जेय्य;
न मे सो, मारिस, अमनुस्सो लभेय्य गामेसु वा निगमेसु वा सक्कारं वा गरुकारं वा; न मे
सो, मारिस, अमनुस्सो लभेय्य आळकमन्दाय नाम राजधानिया वत्थुं वा वासं वा; न मे सो,
मारिस, अमनुस्सो लभेय्य यक्खानं समितिं गन्तुं । अपिस्सु नं, मारिस, अमनुस्सा अनावहं पि
नं करेय्युं अविक्खं । अपिस्स नं, मारिस, अमनुस्सा अत्ताहि पि परिपुण्णाहि परिभासाहि
परिभासेय्युं । अपिस्सु नं, मारिस, अमनुस्स, रित्तं पिस्स पत्तं सीसे निक्कुज्जेय्युं । अपिस्सु नं,
मारिस, अमनुस्सा सत्तथा पिस्स मुद्धं फालेय्युं ।

३. महासेनापतीनं उज्झापेतब्बं

“सन्ति हि, मारिस, अमनुस्सा चण्डा रुद्धा रभसा । ते नेव महाराजानं आदियन्ति, न
महाराजानं पुरिसकानं आदियन्ति, न महाराजानं पुरिसकानं पुरिसकानं आदियन्ति । ते खो ते,

“वे भी आदित्यबन्धु बुद्ध को दूर से ही देखकर प्रणाम करने लगते हैं । पूर्ववत्.... । गौतम
बुद्ध को प्रणाम करते हैं ।” (४९-५१)

८. “मार्ष! यह आटानाटीय रक्षा (मन्त्र) भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक उपासिकाओं की गुप्ति, रक्षा,
शुद्धचित्ता एवं सरलतापूर्वक साधना में सहायक होती हैं ।

“मार्ष! जो कोई भिक्षु इस आटानाटीय रक्षा-सूत्र को भलीभाँति स्मरण रखेगा, उसके पीछे
यदि अमनुष्य-यक्ष, यक्षिणी, यक्षपुत्र, यक्षपुत्री, यक्षमहामात्य, यक्षपार्षद, यक्षसेवक, गन्धर्व कुम्भाण्ड
....कुम्भाण्डसेवक नाग नागसेवक प्रदुष्ट चित्त (दुर्भावना) से भिक्षु का चलती हुई उपासिका का
पीछा करे, सामने खड़े हों, बैठें, सोयें, तो मार्ष! वे अमनुष्य (यक्ष आदि) मेरे द्वारा शासित ग्राम-निगम में
सत्कार या पूजा-प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकेंगे । न वह (भिक्षुद्वेषी) अमनुष्य मेरी आळकमन्दा राजधानी में
रह पायगा या वास कर पायगा । न वह यक्षों की सभा में बैठने का अधिकारी ही होगा । न कोई दूसरा यक्ष
उसके साथ विवाह-उद्वाह का सम्बन्ध रखेगा । उसका परिहास या असम्मान भी किया जायगा । उस
के सिर पर (उसको अपमानित करने के लिये) खाली पात्र उल्टा कर के रख देंगे । उसके शिर के सात
टुकड़े कर देंगे ।

३. सङ्कट के समय यक्षसेनापतियों का आह्वान

“मार्ष! कुछ अमनुष्य (यक्ष) चण्ड, रौद्र एवं उग्र स्वभाव के होते हैं । वे न तो महाराज वैश्रवण को

[R.204] मारिस, अमनुस्सा महाराजानं अवरुद्धा नाम वुच्चन्ति। सेय्यथापि, मारिस, रज्जो मागधस्स विजिते महाचोरा। ते नेव रज्जो मागधस्स आदियन्ति, न रज्जो मागधस्स पुरिसकानं आदियन्ति, न रज्जो मागधस्स पुरिसकानं पुरिसकानं आदियन्ति। ते खोते, मारिस, महाचोरा रज्जो मागधस्स अवरुद्धा नाम वुच्चन्ति। एवमेव खो, मारिस, सन्ति अमनुस्सा चण्डा रुद्धा रभसा। ते नेव महाराजानं आदियन्ति, न महाराजानं पुरिसकानं आदियन्ति, न महाराजानं [B.165] पुरिसकानं पुरिसकानं आदियन्ति। ते खोते, मारिस, अमनुस्सा महाराजानं अवरुद्धा नाम वुच्चन्ति। यो हि कोचि, मारिस, अमनुस्सो यक्खो वा यक्खिनी वा....पे०....गन्धब्बो वा गन्धब्बी वा....पे०....कुम्भण्डो वा कुम्भण्डी वा....पे०....नागो वा नागी वा नागपोतको वा [N.157] नागपोतिका वा नागमहामत्तो वा नागपारिसज्जो वा नागपचारो वा पदुट्ठचित्तो भिक्खुं वा भिक्खुनिं वा उपासकं वा उपासिकं वा गच्छन्तं वा अनुगच्छेय्य, ठितं वा उपतिट्ठेय्य, निसिन्नं वा उपनिसीदेय्य, निपन्नं वा उपनिपज्जेय्य; इमेसं यक्खानं महायक्खानं सेनापतीनं महासेनापतीनं उज्झापेतब्बं विक्कन्दितब्बं विरवितब्बं—‘अयं यक्खो गण्हाति, अयं यक्खो आविसति, अयं यक्खो हेठेति, अयं यक्खो विहेठेति, अयं यक्खो हिंसति, अयं यक्खो विहिंसति, अयं यक्खो न मुञ्चती’ ति।

९. “कतमेसं यक्खानं महायक्खानं सेनापतीनं महासेनापतीनं ?

“इन्दो सोमो वरुणो च, भारद्वाजो पजापति।

चन्दनो कामसेट्ठो च, किन्नुघण्डु निघण्डु च॥

“पनादो ओपमज्जो च, देवसूतो च मातलि।

चित्तसेनो च गन्धब्बो, नल्लो राजा जनेसभो॥

“सातागिरो हेमवतो, पुण्णको करतियो गुळो।

[R.205]

सिवको मुचलिनो च, वेस्सामित्तो युगन्धरो॥

कुछ महत्त्व देते हैं, न उनके अधिकारियों को, न उनके अधिकारियों के अनुचरों को....। मार्ष! वे अमनुष्य इन महाराजों के विद्रोही (=अवरुद्ध) कहे जाते हैं। मार्ष! जैसे मगधराज के राज्य में महाचौर हैं, वे न तो मगधराज को कुछ सम्मान देते हैं, न उनके अधिकारियों को....। वे महाचौर राज्य में राजा के ‘विद्रोही’ कहे जाते हैं। उसी तरह ये चण्ड, रुद्र एवं उग्र अमनुष्य हैं, जो न तो महाराज को अधिकारियों को....।

“मार्ष! जो कोई अमनुष्य—यक्ष यक्षिणी गन्धर्व कूम्भाण्ड कुम्भाण्डसेवक नाग नागसेवक प्रदुष्टचित्त (दुर्भावना) से भिक्षु, भिक्षुणी चलती हुई उपासिका का पीछा करे, सामने खड़ा हो जाय, बैठे सोये तो मार्ष! उस समय उन भिक्षुओं उपासकों को इन यक्षों, महायक्षों, सेनापतियों, महासेनापतियों का ध्यान करना चाहिये, स्मरण करना चाहिये, बुलाना चाहिये, चिल्ला कर उनका नाम लेना चाहिये और उनसे कहना चाहिये—‘यह यक्ष मुझे पकड़ रहा है, यह यक्ष मुझ में आविष्ट (प्रविष्ट) हो रहा है, बहुत सता रहा है, बहुत डरा रहा है, यह यक्ष छोड़ नहीं रहा है’।

९. “किन यक्षों, महायक्षों, सेनापतियों, महासेनापतियों को नाम लेकर पुकारना चाहिये?”

“इन्द्र, सोम, वरुण, भारद्वाज, प्रजापति, चन्दन, कामश्रेष्ठ, घण्डु, निर्घण्डु, प्रणाद, औपमन्यव, देवसूत, मातलि, चित्रसेन गन्धर्व, जनश्रेष्ठ नल राजा।

“सातागिर, हैमवत, पूर्णक, करतिय, गुड़, शिवक, मुचलिन, वैश्वामित्र एवं युगन्धर।

“गोपालो सुप्परोधो च, हिरि नेत्ति च मन्दियो।

पञ्चालचण्डजो आळवको, पज्जुत्रो सुमनो सुमुखो।

दधिमुखो मणि माणिवरो दीघो, अथो सेरीसको सह ॥

“इमेसं यक्खानं महायक्खानं सेनापतीनं महासेनापतीनं उज्झापेतब्बं विक्कन्दितब्बं विरवितब्बं—‘अयं यक्खो गण्हाति, अयं यक्खो आविसति, अयं यक्खो हेठेति, अयं यक्खो विहेठेति, अयं यक्खो हिंसति, अयं यक्खो विहिंसति, अयं यक्खो न मुञ्चती’ ति।

“अयं खो सा, मारिस, आटानाटिया रक्खा भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं [B.166] उपासिकानं गुत्तिया रक्खाय अविहिंसाय फासुविहाराय। हन्द च दानि मयं, मारिस, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया” ति।

“यस्स दानि तुम्हे महाराजानो कालं मज्जथा” ति।

१०. अथ खो चत्तारो महाराजा उट्टायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। ते पि खो यक्खा उट्टायासना अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा [N.158] पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा [R.206] तत्थेवन्तरधायिंसु। अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। अप्पेकच्चे तुण्हीभूता तत्थेवन्तरधायिंसू ति।

पथमभाणवारे निदित्तो ॥

४. सत्था अब्भनुमोदि

११. अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—“इमं, भिक्खवे, रत्तिं चत्तारो महाराजा महत्तिया च यक्खसेनाय महत्तिया च गन्धब्बसेनाय महत्तिया च

“गोपाल, सुप्ररोध, ह्री, नेत्री, मन्दिय, पाञ्चालचण्ड, आडवक, पर्जन्य, सुमना, सुमुख, दधिमुख, मणि, मणिवर, दीर्घ एवं साथ में सेरिसक।

“इन यक्षों, महायक्षों, सेनापतियों, महासेनापतियों को स्मरण करना चाहिये, चित्ताकर बुलाना चाहिये कि ‘यह यक्ष मुझे पकड़ रहा है पूर्ववत्....यह यक्ष मुझे छोड़ नहीं रहा है।’

“मार्श! यह आटानाटीय-रक्षा भिक्षु....उपासिकाओं की गुप्ति, रक्षा, शुद्धचित्ता एवं सरलतया साधना में अत्यधिक सहायक है। अब, मार्श! हम लोग अब अपने स्थान को वापस लौटेंगे; क्योंकि हमें बहुत से अन्य आवश्यक कार्य भी हैं।”

(भगवान् ने कहा—) “आप महाराजाओ! जैसा उचित समझें (वैसा करें)।”

१०. तब वे चारों महाराज (यक्षाधिपति) आसन से उठ कर भगवान् को प्रणाम—प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गये। (तब) उनके वे (अनुचर) यक्ष भी आसन से उठ कर, उनमें से कुछ भगवान् को प्रणाम कर वहीं अन्तर्हित हो गये, कुछ भगवान् के साथ कुशल—मङ्गल की बातें कर और कुछ करबद्ध प्रणाम कर एवं कुछ अपना नाम गोत्र सुना कर और कुछ चुपचाप ही वहाँ अन्तर्हित हो गये।

प्रथम भाणवार समाप्त ॥

४. आटानाटीय रक्षामन्त्र में शास्ता का अनुमोदन

११. तब भगवान् ने, उस रात्रि के बीतने पर भिक्षुओं से कहा—“भिक्षुओ! इस विगत रात्रि में

कुम्भण्डसेनाय महति या च नागसेनाय चतुद्दिसं रक्खं ठपेत्वा चेतुद्दिसं गुम्बं ठपेत्वा चतुद्दिसं ओवरणं ठपेत्वा अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं गिञ्झकूटं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिसु। ते पि खो, भिक्खवे, यक्खा अप्पेकच्चे मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिसु। अप्पेकच्चे मया सद्धिं सम्मोदिसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिसु। अप्पेकच्चे येनाहं तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिसु। अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिसु। अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिसु।

१२. “एकमन्तं निसिन्नो खो, भिक्खवे, वेस्सवणो महाराजा मं एतदवोच—‘सन्ति हि, भन्ते, उळारा यक्खा भगवतो अप्पसन्ना....पे०....सन्ति हि, भन्ते, नीचा यक्खा भगवतो [B.167] पसन्ना। येभुय्येन खो पन, भन्ते, यक्खा अप्पसन्ना येव भगवतो। तं किस्स हेतु? भगवा हि, भन्ते, पाणातिपाता वेरमणिया धम्मं देसेति....पे०....सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना वेरमणिया धम्मं देसेति। येभुय्येन खो पन, भन्ते, यक्खा अप्पटिविरता येव पाणातिपाता....पे०....अप्पटिविरता सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना। तेसं तं होति अप्पियं अमनापं। सन्ति हि, भन्ते, भगवतो सावका अरज्जवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवन्ति अप्पसद्धानि अप्पनिग्घोसानि विजनवातानि मनुस्सराहस्सेय्यकानि पटिसल्लानसारुप्पानि। तत्थ सन्ति उळारा यक्खा निवासिनो ये इमस्मिं भगवतो पावचने अप्पसन्ना। तेसं पसादाय उग्गण्हातु, भन्ते, भगवा आटानाटियं रक्खं भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं गुत्तिया रक्खाय अविहिंसाय फासुविहाराया’ [N.159] ति। अधिवासेसिं खो अहं, भिक्खवे, तुण्हीभावेन। अथ खो भिक्खवे, वेस्सवणो महाराजा मे अधिवासनं विदित्वा तायं वेलायं इमं आटानाटियं रक्खं अभासि—

१३. ‘विपस्सिस्स च नमत्थु, चक्खुमन्तस्स सिरीमतो।
 सिखिस्स पि च नमत्थु, सब्बभूतानुकम्पिनो ॥ (१)
 ‘वेस्सभुस्स च नमत्थु न्हातकस्स तपस्सिनो।
 नमत्थु ककुसन्धस्स, मारसेनापमद्दिनो ॥ (२)
 ‘कोणागमनस्स नमत्थु, ब्राह्मणस्स वुसीमतो।
 कस्सपस्स च नमत्थु, विप्पमुत्तस्स सब्बधि ॥ (३)
 ‘अङ्गीरसस्स नमत्थु, सक्कपुत्तस्स सिरीमतो।
 यो इमं धम्मं देसेसि, सब्बदुक्खापनूदनं ॥ (४)
 ‘ये चा पि निब्बुता लोके, यथाभूतं विपस्सिसुं।
 ते जना अपि सुणाथ, महन्ता वीतसारदा ॥ (५)
 ‘हितं देवमनुस्सानं, यं नमस्सन्ति गोतमं।
 विज्जाचरणसम्पन्नं, महन्तं वीतसारदं ॥ (६)

विशाल यक्ष सेना, गन्धर्वसेना, कूष्माण्डसेना और विशाल नागसेना के साथ चार महाराज (यक्षाधिपति) चारों दिशाओं में सेना का पहरा बैठाकर पूर्ववत् (अनुबन्ध क्रम सं. १) एक तरफ जा बैठे।

१४.

'यतो उग्गच्छति सुरियो, आदिच्चो मण्डली महा ।
 यस्स चुग्गच्छमानस्स, संवरी पि निरुज्झति ।
 यस्स चुग्गते सुरिये, दिवसो ति पवुच्चति ॥ (७)
 'रहदो पि तत्थ गम्भीरो, समुद्धो सरितोदको ।
 एवं तं तत्थ जानन्ति, समुद्धो सरितोदको ॥ (८)
 'इतो सा पुरिमा दिसा, इति नं आचिक्खती जनो ।
 यं दिसं अभिपालेति, महाराजा यसस्सि सो ॥ (९)
 'गन्धब्बानं अधिपति, धतरट्ठो ति नामसो ।
 रमती नच्चगीतेहि, गन्धब्बेहि पुरक्खतो ॥ (१०)
 'पुत्ता पि तस्स बहवो, एकनामा ति मे सुतं ।
 असीति दस एको च, इन्दनामा महब्बला ॥ (११)
 'ते चा पि बुद्धं दिस्वान, बुद्धं आदिच्चबन्धुनं ।
 दूरतो व नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं ॥ (१२)
 'नमो ते पुरिसाज्ज, नमो ते पुरिसुत्तम ।
 कुसलेन समेक्खसि, अमनुस्सा पि तं वन्दन्ति ।
 सुतं नेतं अभिण्हसो, तस्सा एवं वदेमसे ॥ (१३)
 'जिनं वन्दथ गोतमं, जिनं वन्दाम गोतमं ।
 विज्जाचरणसम्पन्नं, बुद्धं वन्दाम गोतमं ॥ (१४)
 'येन पेता पवुच्चन्ति, पिसुणा पिट्ठिमंसिका ।
 पाणातिपातिनो लुद्धा, चोरा नेकतिका जाना ॥ (१५)
 'इतो सा दक्खिणा दिसा, इति नं आचिक्खती जनो ।
 यं दिसं अभिपालेति, महाराजा यसस्सि सो ॥ (१६)
 'कुम्भण्डानं अधिपति, विरूळ्हो इति नामसो ।
 रमती नच्चगीतेहि, कुम्भण्डेहि पुरक्खतो ॥ (१७)
 'पुत्ता पि तस्स बहवो, एकनामा ति मे सुतं ।
 असीति दस एको च, इन्दनामा महब्बला ॥ (१८)
 'ते चा पि बुद्धं दिस्वान, बुद्धं आदिच्चबन्धुनं ।
 दूरतो व नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं ॥ (१९)
 'नमो ते पुरिसाज्ज, नमो ते पुरिसुत्तं ।
 कुसलेन समेक्खसि, अमनुस्सा पि तं वन्दन्ति ।
 सुतं नेतं अभिण्हसो, तस्मा एवं वदेमसे ॥ (२०)
 'जिनं वन्दथ गोतमं, जिनं वन्दाम गोतमं ।
 विज्जाचरणसम्पन्नं, बुद्धं वन्दाम गोतमं ॥ (२१)

[B.168]

[N.160]

१५.

[B.169]

१६. 'यत्थ चोग्गच्छति सुरियो, आदिच्चो मण्डली महा ।
 यस्स चोग्गच्छमानस्स, दिवसो पि निरुज्झति ।
 यस्स चोग्गते सुरिये, संवरी ति पवुच्चति ॥ (२२)
 'रहदो पि तत्थ गम्भीरो, समुद्दो सरितोदको ।
 एवं तं तत्थ जानन्ति, समुद्दो सरितोदको ॥ (२३)
 'इतो सा पच्छिमा दिसा, इति नं आचिक्खती जनो ।
 यं दिसं अभिपालेति, महाराजा यसस्सि सो ॥ (२४)

[N.161]

- 'नागानं च अधिपति, विरूपक्खो ति नामसो ।
 रमती नच्चगीतेहि, नागेहेव पुरक्खतो ॥ (२५)
 'पुत्ता पि तस्स बहवो, एकनामा ति मे सुतं ।
 असीति दस एको च, इन्दनामा महब्बला ॥ (२६)
 'ते चा पि बुद्धं दिस्वान, बुद्धं आदिच्चबन्धुनं ।
 दूरतो व नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं ॥ (२७)
 'नमो ते पुरिसाजज्ज, नमो ते पुरिसुत्तम !
 कुसलेन समेक्खसि, अमनुस्सा पि तं वन्दन्ति ।
 सुतं नेतं अभिण्हसो, तस्मा एवं वदेमसे ॥ (२८)
 'जिनं वन्दथ गोतमं, जिनं वन्दाम गोतमं ।
 विज्जाचरणसम्पन्नं, बुद्धं वन्दाम गोतमं ॥ (२९)

१७. 'येन उत्तरकुरुव्हो, महानेरु सुदस्सनो ।
 मनुस्सा तत्थ जायन्ति, अममा अपरिग्गहा ॥ (३०)

[B.170]

- 'न ते बीजं पवपन्ति, ना पि नीयन्ति नङ्गला ।
 अकट्टपाकिमं सालिं परिभुज्जन्ति मानुसा ॥ (३१)
 'अकणं अतुसं सुद्धं, सुगन्धं तण्डुलप्फलं ।
 तुण्डकीरे पचित्वान, ततो भुज्जन्ति भोजनं ॥ (३२)
 'गाविं एकखुरं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ।
 पसुं एकखुरं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ॥ (३३)
 'इत्थि वा वाहनं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ।
 पुरिसं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ॥ (३४)
 'कुमारिं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ।
 कुमारं वाहनं कत्वा, अनुयन्ति दिसोदिसं ॥ (३५)
 'ते याने अभिरुहित्वा, सब्बा दिसा अनुपरियायन्ति ।

पचारा तस्स राजिनो ॥ (३६)

‘हत्थियानं अस्सयानं, दिब्बं यानं उपट्ठितं।

पासादा सिविका चेव, महाराजस्स यसस्सिनो ॥ (३७) [N.162]

‘तस्स च नगरा अहु, अन्तलिकखे सुमापिता। *

आटानाटा कुसिनाटा परकुसिनाटा, नाटसुरिया परकुसिनाटा ॥ (३८)

‘उत्तरेन कसिवन्तो, जनोघमपरेन च।

नवनवुतियो अम्बरअम्बरवतियो, आळकमन्दा नाम राजधानी ॥ (३९)

‘कुवेरस्स खो पन, मारिस, महाराजस्स, विसाणा नाम राजधानी।

तस्मा कुवेरो महाराजा, वेस्सवणो ति पवुच्चति ॥ (४०) [B.171]

‘पच्चेसन्तो पकासेन्ति, ततोला तत्तला ततोतला।

ओजसि तेजसि ततोजसी, सूरु राजा अरिट्ठो नेमि ॥ (४१)

‘रहदो पि तत्थ धरणी नाम, यतो मेघा पवस्सन्ति।

वस्सा यतो पतायन्ति, सभा पि तत्थ सालवती नाम ॥ (४२)

‘यत्थ यक्खा पयिरुपासन्ति, तत्थ निच्चफला रुक्खा।

नाना दिजगणा युता, मयूरकोञ्चाभिरुदा।

कोकिलादीहि वग्गुहि ॥ (४३)

‘जीवञ्जीवकसद्देत्थ, अथो ओट्टुवचित्तका।

कुक्कुटका कुळीरका, वने पोक्खरसातका ॥ (४४)

‘सुकसाळिक सद्देत्थ, दण्डमाणवकानि च।

सोभति सब्बकालं सा, कुवेरनळिनी सदा ॥ (४५)

‘इतो सा उत्तरा दिसा, इति नं आचिक्खती जनो।

यं दिसं अभिपालेति, महाराजा, यसस्सि सो ॥ (४६)

‘यक्खानं च अधिपति, कुवेरो इति नाम सो।

रमती नच्चगीतेहि, यक्खेहेव पुरक्खतो ॥ (४७)

‘पुत्ता पि तस्स बहवो, एकनामा ति मे सुतं।

[N.163]

असीति दस एको च, इन्दनामा महब्बला ॥ (४८)

‘ते चा पि बुद्धं दिस्वान, बुद्धं आदिच्चबन्धुनं।

दूरतो व नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं ॥ (४९)

‘नमो ते पुरिसाजञ्ज, नमो ते पुरिसुत्तम।

कुसलेन समेक्खसि, अमनुस्सा पि तं वन्दन्ति।

सुतं नेतं अभिण्हसो, तस्मा एवं वदेमसे ॥ (५०)

‘जिनं वन्दथ गोतमं, जिनं वन्दाम गोतमं।

विज्जाचरणसम्पन्नं, बुद्धं वन्दाम गोतमं’ ति ॥ (५१)

१८. “अयं खो सा, मारिस, आटानाटिया रक्खा भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं

उपासिकानं गुत्तिया रक्खाय अविहिंसाय फासुविहाराय । यस्स कस्सचि, मारिस, भिक्खुस्स [B.172] वा भिक्खुनिया वा उपासकस्स वा उपासिकाय वा अयं आटानाटिया रक्खा सुग्गहिता भविस्सति समत्ता परियापुता तं चे अमनुस्सो यक्खो वा यक्खिनी वा....पे०....गन्धब्बो वा गन्धब्बी वा....पे०....कुम्भण्डो वा कुम्भण्डी वा....पे०....नागो वा नागी वा नागपोतको वा नागपोतिका वा नागमहामत्तो वा नागपारिसज्जो वा नागपचारो वा पदुट्टचित्तो भिक्खुं वा भिक्खुनिं वा उपासकं वा उपासिकं वा गच्छन्तं वा अनुगच्छेय्य, ठितं वा उपतिट्ठेय्य, निसिन्नं वा उपनिसीदेय्य, निपन्नं वा उपनिपज्जेय्य, न मे सो मारिस, अमनुस्सो लभेय्य गामेसु वा निगमेसु वा सक्कारं वा गरुकारं वा; न मे सो, मारिस, अमनुस्सो लभेय्य आळकमन्दाय नाम राजधानिया वत्थुं वा वासं वा; न मे सो, मारिस, अमनुस्सो लभेय्य यक्खानं समितिं गन्तुं । अपिस्सु नं, मारिस अमनुस्सा अनावय्हं पि नं करेय्युं अविवय्हं । अपिस्सु नं, मारिस, अमनुस्सा अत्ताहि परिपुण्णाहि परिभासाहि परिभासेय्युं । अपिस्सु नं, मारिस, अमनुस्सा रित्तं पिस्स पत्तं सीसे निक्कुज्जेय्युं । अपिस्सु नं, मारिस अमनुस्सा सत्तधा पिस्स मुद्धं फालेय्युं ।

सन्ति हि, मारिस, अमनुस्सा चण्डा रुद्धा रभसा । ते नेव महाराजानं आदियन्ति, न महाराजानं पुरिसकानं आदियन्ति, न महाराजानं पुरिसकानं पुरिसकानं आदियन्ति । ते खोते, मारिस, अमनुस्सा महाराजानं अवरुद्धा नाम वुच्चन्ति । सेय्यथापि, मारिस, रज्जो मागधस्स [N.164] विजिते महाचोरा । ते नेव रज्जो मागधस्स आदियन्ति, न रज्जो मागधस्स पुरिसकानं आदियन्ति, न रज्जो मागधस्स पुरिसकानं पुरिसकानं आदियन्ति । ते खोते, मारिस, महाचोर रज्जो मागधस्स अवरुद्धा नाम वुच्चन्ति । एवमेव खो, मारिस, सन्ति अमनुस्सा चण्डा रुद्धा रभसा, ते नेव महाराजानं आदियन्ति, न महाराजानं पुरिसकानं आदियन्ति, न महाराजानं पुरिसकानं पुरिसकानं आदियन्ति । ते खोते, मारिस, अमनुस्सा महाराजानं अवरुद्धा नाम वुच्चन्ति । यो हि कोचि, मारिस, अमनुस्सो यक्खो वा यक्खिनी वा....पे०....गन्धब्बो वा गन्धब्बी वा....पे०....कुम्भण्डो वा वा कुम्भण्डी वा....पे०....नागो वा नागी वा.... पे०.... पदुट्टचित्तो भिक्खुं वा भिक्खुनिं वा उपासकं वा उपासिकं वा गच्छन्तं वा उपगच्छेय्य, ठितं वा उपतिट्ठेय्य, निसिन्नं वा उपनिसीदेय्य, निपन्नं वा उपनिपज्जेय्य, इमेसं यक्खानं महायक्खानं सेनापतीनं महासेनापतीनं उज्झापेतब्बं विक्कन्दितब्बं विरवितब्बं—‘अयं यक्खो गण्हाति, अयं [B.173] यक्खो आविस्सति, अयं यक्खो हेठेति, अयं यक्खो विहेठेति, अयं यक्खो हिंसति, अयं यक्खो विहिंसति, अयं यक्खो न मुञ्चती’ ति ।

१९. “कतमेसं यक्खानं महायक्खानं सेनापतीनं महासेनापतीनं ?

“इन्दो सोमो वरुणो च, भारद्वाजो पजापति ।

चन्दनो कामसेट्ठो च, किन्नुघण्डु निघण्डु च ॥

“पनादो ओपमज्जो च, देवसूतो च मातलि ।

चित्तसेनो च गन्धब्बो, नळो राजा जनेसभो ॥

“सातागिरो हेमवत्तो, पुण्णको करतियो गुळो ।

सिवको मुचलिनन्दो, च वेस्सामित्तो युगन्धरो ॥

“गोपालो सुप्परोधो, हिरि नेत्ति च मन्दियो।

पञ्चालचण्डो आळवको, पज्जुन्नो सुमनो सुमुखो।

दधिमुखो मणि माणिवरो दीघो, अथो सेरीसको सह ॥

“इमेसं यक्खानं महायक्खानं सेनापतीनं महासेनापतीनं उज्झापेतब्बं विक्कन्दितब्बं विरवितब्बं—‘अयं यक्खो गण्हाति, अयं यक्खो आविसति, अयं यक्खो हेठेति, अयं यक्खो विहेठेति, अयं यक्खो हिंसति, अयं यक्खो विहिंसति, अयं यक्खो न मुञ्चती’ ति। अयं खो, मारिस, आटानाटिया रक्खा भिक्खून् भिक्खुनीन् उपासकानं उपासिकानं गुत्तिया [N.165] रक्खाय अविहिंसाय फासुविहाराय। हन्द च दानि मयं, मारिस, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया” ति।

“यस्स दानि तुम्हे, महाराजा, कालं मज्जथा” ति ॥

२०. “अथ खो, भिक्खवे, चत्तारो महाराजा उट्ठायासना मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। ते पि खो, भिक्खवे, यक्खा उट्ठायासना अप्पेकच्चे मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। अप्पेकच्चे मया सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। अप्पेकच्चे येनाहं तेनज्जलिं पणामेत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। [B.174] अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। अप्पेकच्चे तुण्हीभूता तत्थेवन्तरधायिंसु।

२१. “उग्गण्हाथ, भिक्खवे, आटानाटियं रक्खं। परियापुणाथ, भिक्खवे, आटानाटियं रक्खं। धारेथ, भिक्खवे, आटानाटियं रक्खं। अत्थसंहिता, भिक्खवे, आटानाटिया रक्खा भिक्खून् भिक्खुनीन् उपासकानं उपासिकानं गुत्तिया रक्खाय अविहिंसाय फासुविहाराया” ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति ॥

आटानाटियसुत्तं निदितं नवमं ॥

१२-१९. “भिक्खुओ! एक तरफ बैठे वैश्रवण महाराज मुझसे यों बोले—“मन्ते! कितने ही बड़े-बड़े यक्ष....पूर्ववत्! (इसी सूत्र के क्रम सं० २ से ८ तक का हिन्दी रूपान्तर देखें) आप जैसा उचित समझें (वैसा करें)।

२०. “तब, भिक्खुओ! वे चारों यक्षाधिपति महाराज आसन से उठकर मुझे प्रणाम—प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गये। भिक्खुओ! उनके अनुयायी यक्ष भी....पूर्ववत् चुपचाप ही (बिना कुछ कहे सुने) वहीं अन्तर्हित हो गये।

२१. “भिक्खुओ! इन आटानाटीय रक्षामन्त्रों को पढ़ो, ग्रहण करो, मन में बैठो लो। भिक्खुओ! ये आटानाटीय रक्षामन्त्र भिक्खुओं की सुरक्षा, गुप्ति, अपीड़ा, अविहिंसा एवं सुखपूर्वक धर्म—साधना में अत्यधिक सहायक एवं उपयोगी हैं।”

भगवान् ने यह उपदेश किया। श्रोता भिक्खुओं ने सन्तुष्ट होकर भगवान् के इस आदेश का अभिनन्दन किया ॥

नवम आटानाटीयसूत्र समाप्त ॥

१०. सङ्गीति सुतं

१. सारिपुत्तो अनुज्जातो धम्मिया कथाय

[N.166, R.207, B.175] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मल्लेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि येन पावा नाम मल्लानं नगरं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा पावायं विहरति चुन्दस्स कम्मरपुत्तस्स अम्बवने।

२. तेन खो पन समयेन पावेय्यकानं मल्लानं उब्भतकं नाम नवं सन्थागारं अचिरकारितं होति अनज्झावुत्थं समणेन वा ब्राह्मणेन वा केनचि वा मनुस्सभूतेन। अस्सोसुं खो पावेय्यका मल्ला—“भगवा किर मल्लेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि पावं अनुप्पत्तो पावायं विहरति चुन्दस्स कम्मरपुत्तस्स अम्बवने” ति। अथ खो पावेय्यका मल्ला येन भगवा तेनुपङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो पावेय्यका मल्ला भगवन्तं एतदवोचुं—“इध, भन्ते, पावेय्यकानं मल्लानं उब्भतकं नाम नवं सन्थागारं अचिरकारितं होति अनज्झावुत्थं समणेन वा ब्राह्मणेन वा केनचि वा [R.208] मनुस्सभूतेन। तं च खो, भन्ते, भगवा पठमं परिभुञ्जतु। भगवता पठमं परिभुत्तं पच्छा पावेय्यका मल्ला परिभुञ्जिस्सन्ति। तदस्स पावेय्यकानं मल्लानं दीघरत्तं हिताय सुखाया” ति। अधिवासेसि खो भगवा तुण्हीभावेन।

३. अथ खो पावेय्यका मल्ला भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन सन्थागारं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा सब्बसन्थरि सन्थागारं

१०. सङ्गीति (एकता) सूत्र

१. भगवान् की सारिपुत्र को धार्मिक कथा के लिये अनुज्जा

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) पाँच सौ भिक्षुओं के विशाल सङ्घ के साथ मल्ल देश में चारिका करते हुए, जहाँ पावा नामक मल्लों का नगर है, वहाँ पहुँचे। वहाँ पावा में भगवान् चुन्द कर्मार (सुनार) पुत्र द्वारा निर्मापित आश्रम में साधनाहेतु विराजमान हुए।

२. उस समय उस पावा नगर के निवासी मल्लों का एक नया ऊँचा संस्थागार (पञ्चायत भवन) कुछ समय पहले बना (अचिरकारित) था। परन्तु वहाँ अभी तक किसी श्रमण—ब्राह्मण या मनुष्य ने वास नहीं किया था। जब पावा—वासी मल्लों ने सुना—‘भगवान् चारिका करते हुए पावा में पधारे हैं, तथा यहाँ चुन्द कर्मारपुत्र के आश्रम में विराजमान हैं’ तो वे पावावासी मल्ल, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। जा कर भगवान् को अभिवादन कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे उन पावावासी मल्लों ने भगवान् से यों निवेदन किया—“भन्ते! यहाँ (पावा नगरी में) हमने अभी अब एक नया ऊँचा संस्थागार निर्मित कराया है। पन्तु उसमें अभी तक कोई श्रमण—ब्राह्मण या अन्य मनुष्य नहीं ठहरा है। भन्ते! (हम चाहते हैं कि) भगवान् उसका प्रथम परिभोग (उपयोग) करें। भगवान् द्वारा उसका पहले परिभोग करने के बाद ही पावावासी दूसरे मल्ल जन उस का उपयोग करने की बात सोच सकते हैं। यह बात (भगवान् द्वारा उसका प्रथम परिभोग) हम पावावासी मल्लों के लिये बहुत समय तक सुखदायी एवं हितकारी होगी।” भगवान् ने पावावासी उन मल्लों का यह निवेदन मौन भाव से स्वीकार कर लिया।

३. तब वे पावावासी मल्ल इस विषय में भगवान् की स्वीकृति जान कर, आसन से उठ कर

सन्थरित्वा भगवतो आसनानि पञ्चापेत्वा उदकमणिकं पतिट्टपेत्वा तेलपदीपं आरोपेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं ठिता [N.167, B.176] खो ते पावेय्यका मल्ला भगवन्तं एतदवोचुं—“सब्बसन्थरिसन्थतं, भन्ते, सन्थागारं। भगवतो आसनानि पञ्चत्तानि, उदकमणिको पतिट्टापितो, तेलपदीपो आरोपितो। यस्स दानि, भन्ते, भगवा कालं मज्जती” ति।

४. अथ खो भगवा निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन सन्थागारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा मज्झिमं थम्भं निस्साय पुरत्थाभिमुखो निसीदि। भिक्खुसङ्घो पि खो पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा [R.209] पच्छिमं भित्तिं निस्साय पुरत्थाभिमुखो निसीदि, भगवन्तं येव पुरक्खत्वा। पावेय्यका पि खो मल्ला पादे पक्खालेत्वा सन्थागारं पविसित्वा पुरत्थिमं भित्तिं निस्साय पच्छिमाभिमुखा निसीदिंसु, भगवन्तं येव पुरक्खत्वा। अथ खो भगवा पावेय्यके मल्ले बहुदेव रत्तिं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुतेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उय्योजेसि—“अभिक्कन्ता खो, वासेट्ठा, रत्ति। यस्स दानि तुम्हे कालं मज्जथा” ति। “एवं, भन्ते” ति खो पावेय्यका मल्ला भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु।

५. अथ खो भगवा अचिरपक्कन्तेसु पावेय्यकेसु मल्लेसु तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आमन्तेसि—“विगतथिनमिद्धो खो, सारिपुत्त, भिक्खुसङ्घो। पटिभातु तं, सारिपुत्त, भिक्खून् धम्मी कथा। पिट्ठि मे आगिलायति। तमहं आयमिस्सामी”

भगवान् को प्रणाम—प्रदक्षिणा कर उक्त संस्थागार में पहुँचे। पहुँच कर उस संस्थागार को सब तरफ से झाड़-पोंछ कर, बिछायत तथा आसन बिछाकर, तैल का दीपक जला कर, जल का घड़ा रख कर पुनः भगवान् जहाँ विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे भगवा पावेयक मल्ल भगवान् से यों निवेदन करने लगे—“भन्ते! संस्थागार झाड़-पोंछ दिया गया है, वहाँ आपके लिये भली भाँति आसन लगा दिये हैं, जल का घड़ा रख दिया है, (प्रकाश के लिये) तैल का दीपक जला दिया है। अब आप जैसा उचित समझें (वैसा करें)।”

४. तब भगवान् वस्त्र पहन कर, पात्र चीवर लेकर, भिक्षुसङ्घ के साथ उस संस्थागार में पहुँचे। वहाँ पहुँच, पैर धो कर, संस्थागार में प्रविष्ट हो कर वे मध्यम स्तम्भ का सहारा ले कर, पूर्व की तरफ मुख कर के बैठे। भिक्षुसङ्घ भी पैर धो कर, संस्थागार में प्रविष्ट हो कर पश्चिम दीवार का सहारा लेकर पूर्व की तरफ मुँह कर भगवान् के सामने बैठा। उधर पावावासी मल्ल भी पैर धोकर...पूर्व की दीवार का सहारा ले कर पश्चिम की तरफ मुँह कर भगवान् के सामने बैठ गये। तब भगवान् बहुत रात तक उन पावावासी मल्लों को धार्मिक कथा द्वारा सन्दृष्ट, समादपित (उत्साहित), समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट कर सभा विसर्जित करते हुए उनसे जोसे—“वासिष्ठो! बहुत रात्रि व्यतीत हो गयी। अब तुम जैसा उचित समझो, करो।” “अच्छा, भन्ते!” कह कर वे पावावासी मल्ल आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम—प्रदक्षिणा कर चले गये।

५. तब मल्लों के चले जाने के कुछ देर बाद भगवान् ने भिक्षुसङ्घ को शान्त (चुपचाप) देख कर आयुष्मान् सारिपुत्र को बुला कर कहा—“सारिपुत्र! भिक्षुसङ्घ इस समय स्त्यान—मूद्ध (आलस्य) रहित है। अतः तुम इसके सम्मुख धर्म—कथा सुनाना प्रारम्भ करो। इस समय मेरी पीठ दुखने लगी है, अतः अब मैं कुछ देर लेटूँगा।” “अच्छा, भन्ते”—यह कहते हुए आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य

ति। “एवं, भन्ते” ति खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्चापेत्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि, पादे पादं अच्चाधाय, सतो सम्पजानो, उट्ठानसज्जं मनसि करित्वा।

२. निगण्ठा भिन्ना भण्डनजाता

[R.210] ६. तेन खो पन समयेन निगण्ठो नाटपुत्तो पावायं अधुनाकालङ्कतो होति। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिकजाता भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अज्जमज्जं [B.177] मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति—“न त्वं इमं धम्मविनयं आजानासि, अहं, इमं [N.168] धम्मविनयं आजानामि। किं त्वं इमं धम्मविनयं आजानिस्ससि! मिच्छापटिपन्नो त्वमसि, अहमस्मि सम्मापटिपन्नो। सहितं मे, असहितं ते। पुरेवचनीयं पच्छा अवच, पच्छावचनीयं पुरे अवच। अधिचिण्णं ते विपरावत्तं। आरोपितो ते वादो। निग्गहितो त्वमसि। चर वादप्पोक्खाय। निब्बेठेहि वा सन्ने प्होसी” ति। वधो येव खो मज्जे निगण्ठेसु नाटपुत्तियेसु वत्तति। ये पि निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना ते पि निगण्ठेसु नाटपुत्तियेसु निब्बिन्नरूपा विरत्तरूपा पटिवानरूपा—यथा तं दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसमसंवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते भिन्नथूपे अप्पटिसरणे।

७. अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—“निगण्ठो, आवुसो, नाटपुत्तो पावायं अधुनाकालङ्कतो। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिकजाता....पे०.....भिन्नथूपे अप्पटिसरणे”।

३. तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितव्वं

[R.211] “एवज्हेतं, आवुसो, होति दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसमसंवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते। अयं खो पनावुसो, अम्हाकं भगवता धम्मो स्वाक्खातो सुप्पवेदितो निय्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितव्वं,

की। उधर भगवान्, अपनी सङ्घाटि चौहरा बिछवा कर पैर पर पैर रखकर सिंहशय्या आसन लगाकर दक्षिण पार्श्व से लेट गये। तथा उन्होंने स्मृतिस्मरण के साथ उत्थान संज्ञा में मन लगाया।

२. निगण्ठों में हो रहे विवाद की चर्चा

६. उस समय निगण्ठ नाटपुत्त का पावा में कुछ ही समय पहले देहावसान हुआ था। इसके बाद निगण्ठों (जैनों) में फूट पड़ गयी और वे दो भागों में बँट गये। यों वे कलह-विवाद में पड़ कर एक दूसरे को भला-बुरा कहने लगे।...यों उन कलहग्रस्त निगण्ठों के श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य भी उनके प्रति विरक्त हो कर उपेक्षाभाव दिखाने लगे। (द्व०-पासादिक सुत्त)

७. तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने भी भिक्षुओं को बताया—“भिक्षुओ! पावा में कुछ ही समय पूर्व निगण्ठ नाटपुत्त का देहावसान हो गया है। इसके बाद जैन लोग परस्पर विवाद एवं कलह से ग्रस्त हो चुके हैं।...पूर्ववत्....।

३. सारिपुत्र द्वारा सङ्घ में एकता का आह्वान

आयुष्मानो! ऐसे दुराख्यात दुष्प्रवेदित धर्मविनय का यही परिणाम हुआ करता है। इसके विपरीत, आयुष्मानो! हमारा यह धर्म भगवान् द्वारा स्वाख्यात, सुप्रवेदित, दुःख से पार करने वाला, शक्तिप्रापक, बुद्ध द्वारा साक्षात्कृत है। अतः हम सबको इस धर्म का एकतापूर्वक पालन करना चाहिये।

न विवदितब्बं यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजन-
सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । कतमो चावुसो, अम्हाकं भगवता
धम्मो स्वाक्खातो सुप्पवेदितो नित्यानिको उपसमसंवत्तनिको सम्मासम्बुद्धप्पवेदितो; यत्थ
सब्बेहेव सङ्गायितब्बं, न विवदितब्बं, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स
बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ?

एको धम्मो सम्मदक्खातो

८. “अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन [B.178]
एको धम्मो सम्मदक्खातो; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं, न विवदितब्बं, यथयिदं [N.169]
अद्धनियं अस्स चिरिट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय
हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ।

“कतमो एको धम्मो ? सब्बे सत्ता आहारट्ठितिका; सब्बे सत्ता सङ्खारट्ठितिका । अयं खो,
आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन एको धम्मो सम्मदक्खातो; [R.212]
तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं, न विवदितब्बं यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स
बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ।

द्वे धम्मा सम्मदक्खाता

९. “अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन द्वे
धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं, न विवदितब्बं यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं
अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय
देवमनुस्सानं । कतमे द्वे ? नामं च रूपं च । अविज्जा च भवतण्हा च । भवदिट्ठि च विभवदिट्ठि

इसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं होना चाहिये । तभी सङ्गायन किया हुआ यह धर्म हम लोगों के लिये
चिरकाल तक हितकारी एवं सुखप्रद होगा । आयुष्मानो! कैसे यह भगवान् द्वारा सुप्रवेदित धर्म हमलोगों
के लिये चिरकाल तक हितकारी एवं सुखप्रद होगा?

सम्यग्वाख्यात एकक धर्म— ८. आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ सर्वद्रष्टा अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने एक धर्म
सम्यक्प्रकार से बतलाया है, उसके प्रति हम सबको एकमत होना चाहिये । किसी प्रकार का विवाद नहीं
करना चाहिये । ताकि यह धर्म अधिक से अधिक दूर तक हम लोगों का साथ दे सके । यही अधिक जनों
के लिये हितकर एवं सुखदायी होगा ।

“कौन सा एक धर्म? ‘सभी प्राणी आहार पर निर्भर हैं । सभी प्राणी संस्कारों पर टिके हुए हैं ।’
आयुष्मानो! उन तत्त्वज्ञ सर्वद्रष्टा भगवान् ने यह एक यथार्थ धर्म हम लोगों को बताया । इसके विषय में हम
सब को एकमत रहना चाहिये । किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये । जिससे यह धर्म हम लोगों का
दूर तक साथ दे सके और यह स्वयं भी चिरस्थायी हो । तथा बहुत जनों के लिये हितकारी एवं सुखप्रद
सिद्ध हो सके ।

सम्यग्वाख्यात द्विक धर्म—९. “आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ...द्वे दो दो धर्म सम्यग् रूप से
बतलाये हैं, जहाँ हम सभी को पूर्ववत् सुखप्रद सिद्ध हो सके । कौन से दो? नाम और रूप, अविद्या
और भवतृष्णा (आवागमन की इच्छा), भवदृष्टि (नित्यता) एवं विभवदृष्टि (उच्छेद), निर्लज्जता एवं धृष्टता
(भयराहित्य), लज्जा और सङ्कोच, दुर्वचनता एवं दुष्ट की सङ्गीति, सुवचनता और कल्याणमित्रता । दोषकुशलता

च। अहिरिकं च अनोत्तप्यं च। हिरी च ओत्तप्यं च। दोवचस्सता च पापमित्तता च। सोवचस्सता च कल्याणमित्तता च।

“आपत्तिकुसलता च आपत्तिवुट्ठानकुसलता च। समापत्तिकुसलता च समापत्तिवुट्ठान- [B.179] कुसलता च। धातुकुसलता च मनसिकारकुसलता च। आयतनकुसलता च पटिच्च- [R.213] समुप्पादकुसलता च। ठानकुसलता च अट्ठानकुसलता च। अज्जवं च लज्जवं च। खन्ति च सोरच्चं च। साखल्यं च पटिसन्धारो च। अविहिंसा च सोचेय्यं च। मुट्ठस्सच्चं च असम्पजज्जं च। सति च सम्पजज्जं च। इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारता च भोजने अमत्तञ्जुता च। इन्द्रियेसु गुत्तद्वारता च भोजने मत्तञ्जुता च। पटिसङ्ख्यानबलं च भावनाबलं च। सतिबलं च समाधिबलं च। समथो च विपस्सना च। समथनिमित्तं च पग्गहनिमित्तं च। पग्गहो च [R.214] अविक्खेपो च। सीलविपत्ति च दिट्ठिविपत्ति च। सीलसम्पदा च दिट्ठिसम्पदा च। सीलविसुद्धि च दिट्ठिविसुद्धि च। दिट्ठिविसुद्धि खो पन यथा दिट्ठिस्स च पधानं। संवेगो च संवेजनीयेसु ठानेसु संविग्गस्स च योनिंसो पधानं। असन्तुट्ठिता च कुसलेसु धम्मेसु अप्पटिवानिता [B.180] च पधानस्मिं। विज्जा च विमुत्ति च। खये जाणं अनुप्पादे जाणं।

“इमे खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन द्वे धम्मा [N.170] सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं, न विवदितब्बं, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।

तथो धम्मा सम्मदक्खाता

१०. “अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन तयो धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं पे०.... अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमे तयो ?

“तीणि अकुसलमूलानि—लोभो अकुसलमूलं, दोसो अकुसलमूलं, मोहो अकुसल-

एवं दोषों से चित्त को हटाने की कुशलता, ध्यानकुशलता एवं ध्यानव्युत्थान—कुशलता। धातुकुशलता एवं मनस्कारकुशलता। आयतनकुशलता एवं प्रतीत्यसमुत्पादकुशलता, स्थानकुशलता एवं अस्थानकुशलता, आर्जव (सरलता) एवं मार्दव (कोमलता), क्षमा एवं आचारयुक्तता (सौरत्य), मधुरवचनता (साखल्य) और प्रतिसंस्तार (धर्म का छिद्र=दोष-पिधान), अहिंसा और मैत्री भावना, स्मृतिलोप एवं असम्प्रजन्त्य (ज्ञानाभाव), स्मृति एवं सम्प्रजन्त्य, अजितेन्द्रियता एवं भोजन में अमात्रज्ञाता, इन्द्रियगुप्तद्वारता एवं भोजनमालता। प्रतिसंख्यान (अकम्पित ज्ञान) बल एवं भावनाबल, स्मृतिबल एवं समाधिबल, शमथ एवं विपश्यना (प्रज्ञा), शमथनिमित्त एवं विपश्यनानिमित्त, प्रग्रह (चित्तनिग्रह) एवं अविक्षेप, शीलविपत्ति (आचारदोष) एवं दृष्टिविपत्ति (सिद्धान्तदोष), शीलसम्पदा और दृष्टिसम्पदा, शीलविशुद्धि एवं दृष्टिविशुद्धि। सम्यग्दृष्टि का निरन्तर अभ्यास ही दृष्टिविशुद्धि कहलाता है। ‘संवेग’ कहते हैं—वैराग्यदायक स्थानों में संविग्रचित्तता का निरन्तर अभ्यास। कुशल (श्रेष्ठ) धर्मों में असन्तुष्टि एवं प्रधान (निरन्तर अभ्यास) में अप्रतिवानता (निरलसता), त्रिविध विद्याओं से विमुक्ति (आश्रवों से चित्तविमुक्ति) एवं निर्वाण। क्षयज्ञान एवं अनुत्पादज्ञान।

“आयुष्मानो! ये द्विक धर्म उन तत्त्वज्ञ सर्वद्रष्टा ने सम्यक् प्रकार से बतलाये हैं। इन पर सभी को पूर्ववत् ये देव-मनुष्यों के लिये भी हितकर एवं सुखप्रद हैं।

मूलं। तीणि कुसलमूलानि—अलोभो कुसलमूलं, अदोसो कुसलमूलं, अमोहो [R.215] कुसलमूलं। तीणि दुच्चरितानि—कायदुच्चरितं, वचीदुच्चरितं, मनोदुच्चरितं। तीणि सुचरितानि—कायसुचरितं, वचीसुचरितं, मनोसुचरितं। तयो अकुसलवितक्का—कामवितक्को, ब्यापादवितक्को, विहिंसावितक्को। तयो कुसलवितक्का—नेखम्मवितक्को, अब्यापादवितक्को, अविहिंसावितक्को। तयो अकुसलसङ्कप्पा—कामसङ्कप्पो, ब्यापादसङ्कप्पो, विहिंसासङ्कप्पो। तयो [B.181] कुसलसङ्कप्पा—नेखम्मसङ्कप्पो, अब्यापादसङ्कप्पो, अविहिंसासङ्कप्पो। तिस्सो अकुसलसञ्जा—कामसञ्जा, ब्यापादसञ्जा, विहिंसासञ्जा। तिस्सो कुसलसञ्जा—नेखम्मसञ्जा, अब्यापादसञ्जा, अविहिंसासञ्जा। तिस्सो अकुसलधातुयो—कामधातु, ब्यापादधातु, विहिंसाधातु। तिस्सो कुसलधातुयो—नेखम्मधातु, अब्यापादधातु, अविहिंसाधातु। अपरा पि तिस्सो धातुयो—कामधातु, रूपधातु, अरूपधातु। अपरा पि तिस्सो धातुयो—[R.216] रूपधातु, अरूपधातु, निरोधधातु। अपरा पि तिस्सो धातुयो—हीनधातु, मज्झिमधातु, पणीतधातु। तिस्सो तण्हा—कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा। अपरा पि तिस्सो तण्हा—कामतण्हा, रूपतण्हा, अरूपतण्हा। अपरा पि तिस्सो तण्हा—रूपतण्हा, अरूपतण्हा, निरोधतण्हा। तीणि संयोजनानि—सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा, सीलब्बतपरामासो। तयो आसवा—कामासवो, भवासवो, अविज्जासवो। तयो भवा—कामभवो, रूपभवो, अरूपभवो। तिस्सो एसना—सम्यग्ब्याख्यात त्रिक धर्म— १०. “आयुष्मानो! उन तत्त्वज्ञ, सर्वदृष्टा भगवान् ने धर्मों के ये त्रिक यथार्थ ही कहे हैं। कौन से त्रिक।

तीन अकुशल मूल हैं। कौन से तीन? लोभ अकुशलमूल, द्वेष अकुशलमूल, मोह अकुशलमूल।

तीन कुशलमूल—अलोभ....अद्वेष.... एवं अमोह कुशलमूल।

तीन दुश्चरित—कायदुश्चरित, वाग्दुश्चरित एवं मनोदुश्चरित।

तीन सुचरित—कायसुचरित, वाक्सुचरित एवं मनःसुचरित।

तीन अकुशल वितर्क—कामावितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क।

तीन कुशल वितर्क—नैष्काम्यवितर्क, अव्यापादवितर्क एवं अविहिंसावितर्क।

तीन अकुशल सङ्कल्प—कामसङ्कल्प, व्यापादसङ्कल्प एवं विहिंसासङ्कल्प।

तीन कुशल सङ्कल्प—नैष्काम्य सङ्कल्प, अव्यापादसङ्कल्प एवं अविहिंसासङ्कल्प।

तीन अकुशल संज्ञा—कामसंज्ञा, व्यापादसंज्ञा, एवं विहिंसासंज्ञा।

तीन कुशल संज्ञा—नैष्काम्य संज्ञा, अव्यापादसंज्ञा, एवं अविहिंसासंज्ञा।

तीन अकुशल धातु—कामधातु, व्यापादधातु, एवं विहिंसाधातु।

तीन कुशल धातु—निष्कामधातु, अव्यापादधातु एवं अविहिंसाधातु।

तीन लोकधातु—कामधातु, रूपधातु एवं अरूपधातु।

तीन चित्तधातु—हीनधातु, मध्यम धातु एवं प्रणीत (उत्तम) धातु।

तीन तृष्णा—कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा।

कामतृष्णा, रूपतृष्णा एवं अरूपतृष्णा।

रूपतृष्णा, अरूपतृष्णा एवं निरोधतृष्णा।

तीन संयोजन—सक्काय दृष्टि, विचिकित्सा एवं शीलव्रतपरामर्श।

तीन आश्रव—कामाश्रव, भवाश्रव एवं अविद्याश्रव।

कामेसना, भवेसना, ब्रह्मचरियेसना। तिस्सो विधा—सेय्योहमस्मी ति विधा, सदिसोहमस्मी ति विधा, हीनोहमस्मी ति विधा। तयो अद्धा—अतीतो अद्धा, अनागतो अद्धा, पच्चुप्पन्नो [N.171] अद्धा। तयो अन्ता—सक्कायो अन्तो, सक्कायसमुदयो अन्तो, सक्कायनिरोधो अन्तो। तिस्सो वेदना—सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। तिस्सो दुक्खता—दुक्खदुक्खता, सङ्खारदुक्खता, विपरिणामदुक्खता। तयो रासी—मिच्छत्तनियतो रासि, [B.182, R.217] सम्पत्तनियतो रासि, अनियतो रासि। तयो तमा—अतीतं वा अद्धानं आरब्ध कङ्कति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति, अनागतं वा अद्धानं आरब्ध कङ्कति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति, एतरहि वा पच्चुप्पन्नं अद्धानं आरब्ध कङ्कति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति। तीणि तथागतस्स अरक्खेय्यानि—परिसुद्ध-कायसमाचारो, आवुसो, तथागतो, नत्थि तथागतस्स कायदुच्चरितं यं तथागतो रक्खेय्य—‘मा मे इदं परो अज्जासी’ ति; परिसुद्धवचीसमाचारो, आवुसो, तथागतो, नत्थि तथागतस्स वचीदुच्चरितं यं तथागतो रक्खेय्य—‘मा मे इदं परो अज्जासी’ ति; परिसुद्धमनोसमाचारो, आवुसो, तथागतो, नत्थि तथागतस्स मनोदुच्चरितं यं तथागतो रक्खेय्य—‘मा मे इदं परो अज्जासी’ ति। तयो किञ्चना—रागो किञ्चनं, दोसो किञ्चनं, मोहो किञ्चनं। तयो अग्गी—रागगि, दोसगि, मोहगि। अपरे पि तयो अग्गी—आहुनेय्यगि, गहपतगि, दक्खिणेय्यगि। तिविधेन रूपसङ्गहो—सनिदस्सनसप्पटिघं रूपं, अनिदस्सनसप्पटिघं रूपं, अनिदस्सनअप्पटिघं

तीन भव—कामभव, रूपभव एवं अरूपभव।

तीन एषणा—कामैषणा, भवैषणा, ब्रह्मचर्यैषणा।

तीन विधि (प्रकार)—‘मै श्रेष्ठ हूँ’, ‘मैं उसके समान हूँ’, ‘मैं उससे हीन हूँ’।

तीन अध्व (काल)—अतीत (भूत), अनागत (भविष्य) एवं प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) अध्व।

तीन अन्त—सत्काय, सत्कायसमुदय एवं सत्कायनिरोध।

तीन वेदना (अनुभव)—सुखा वेदना, दुःखा वेदना एवं अदुःख-असुखा वेदना।

तीन दुःखता—दुःखदुःखता, संस्कार दुःखता एवं विपरिणामदुःखता।

तीन राशि—मिथ्यात्वनियत, सम्यक्त्वनियत एवं अनियत।

तीन तम (अन्धकार)—१. भूत काल को लेकर सन्देह करता है, न उससे मुक्त होता है, न प्रसन्न ही होता है। २. भविष्य को लेकर सन्देह करता है, न उससे मुक्त होता है, न प्रसन्न ही होता है। ३. वर्तमान को लेकर सन्देह करता है, न उससे मुक्त होता है न प्रसन्न होता है।

तीन आरक्षणीय—१. आयुष्मानो! तथागत का कायिक आचार परिशुद्ध है, अर्थात् तथागत को कोई कायदुश्चरित नहीं है, अतः तथागत उसे गोपनीय रखने का ऐसा कोई प्रयास नहीं करते कि इसके विषय में कोई कुछ जान न ले। २. आयुष्मानो! तथागत का वाचसिक आचार परिशुद्ध है...पूर्ववत्...कुछ जान न ले। ३. आयुष्मानो! तथागत मानसिक आचार से परिशुद्ध है। अर्थात् तथागत को कोई ऐसा मानसिक आचार नहीं कि जिसके विषय में तथागत को सोचना पड़े कि मैं इसे छिपा कर रखूँ ताकि कोई इसके विषय में कुछ जान न ले।

तीन किञ्चन (प्रतिबन्ध)—राग, द्वेष एवं मोह।

तीन अग्नि—रागाग्नि, द्वेषाग्नि एवं मोहाग्नि। या आहवनीयाग्नि, गार्हपत्याग्नि एवं दाक्षिण्याग्नि।

रूपं । तयो सङ्खारा—पुञ्जाभिसङ्खारो, अपुञ्जाभिसङ्खारो, आनेज्जाभिसङ्खारो । तयो [R.218] पुग्गला—सेक्खो पुग्गलो, असेक्खो पुग्गलो, नेवसेक्खोनासेक्खो पुग्गलो । तयो थेरा—जातिथेरो, धम्मथेरो, सम्मुतिथेरो । तीणि पुञ्जकिरियवत्थूनि—दानमयं पुञ्जकिरियवत्थु, सीलमयं [B.183] पुञ्जकिरियवत्थु, भावनामयं पुञ्जकिरियवत्थु । तीणि चोदनावत्थूनि—दिट्ठेन, सुतेन, परिसङ्काय । तिस्सो कामूपपत्तियो—सन्तावुसो, सत्ता पच्चुपट्ठितकामा, ते पच्चुपट्ठितेसु कामेसु वसं वत्तेन्ति, सेय्यथापि मनुस्सा एकच्चे च देवा एकच्चे च विनिपातिका, अयं पठमा कामूपपत्ति; सन्तावुसो, सत्ता निम्मितकामा, ते निम्मितत्वा निम्मितत्वा कामेसु वसं वत्तेन्ति, सेय्यथापि देवा निम्मानरती, अयं दुतिया कामूपपत्ति; सन्तावुसो सत्ता परनिम्मितकामा, ते परनिम्मितेसु कामेसु वसं वत्तेन्ति, सेय्यथापि देवा परनिम्मितवसवती, अयं ततिया कामुपपत्ति । तिस्सो सुखूपपत्तियो—[N.172] सन्तावुसो, सत्ता उप्पादेत्वा उप्पादेत्वा सुखं विहरन्ति, सेय्यथापि देवा ब्रह्मकायिका, अयं पठमा सुखूपपत्ति; सन्तावुसो, सत्ता सुखेन अभिसन्ना परिसन्ना परिपूरा परिप्फुटा, ते कदाचि करहचि उदानं उदानेन्ति—‘अहो सुखं, अहो सुखं’ ति, सेय्यथापि देवा आभस्सरा, अयं दुतिया सुखूपपत्ति; सन्तावुसो, सत्ता सुखेन अभिसन्ना परिसन्ना परिपूरा परिप्फुटा, ते [R.219] सन्तं येव तुसिता सुखं पटिसंवेदेन्ति, सेय्यथापि देवा सुभकिण्हा, अयं ततिया सुखूपपत्ति । तिस्सो पज्जा—सेक्खा पज्जा, असेक्खा पज्जा, नेवसेक्खानासेक्खा पज्जा । अपरा पि तिस्सो पज्जा—चिन्तामया पज्जा, सुतमया पज्जा, भावनामया पज्जा । तीणावुधानि—सुतावधं,

तीन रूपसंग्रह—१. सनिदर्शन—सप्रतिघ (स्वविज्ञानसहित दर्शन) रूपसंग्रह, २. अनिदर्शन—सप्रतिघ (स्वविज्ञानरहित दर्शन) रूपसंग्रह । ३. अनिदर्शन—अप्रतिघ (स्वविज्ञानरहित दर्शन प्रतिघरहित) रूपसंग्रह ।

तीन संस्कार—पुण्याभिसंस्कार, अपुण्याभिसंस्कार एवं आनेअयाभिसंस्कार ।

तीन पुद्गल—शैक्ष्य पुद्गल, अशैक्ष्य पुद्गल एवं नैवशैक्ष्यनाशैक्ष्य पुद्गल ।

तीन स्थविर—जातिस्थविर, धर्मस्थविर एवं सम्मतिस्थविर ।

तीन पुण्यक्रियावस्तु—दानमय पुण्य....शीलमय पुण्य....एवं भावनामय पुण्य क्रियावस्तु ।

तीन चोदना (दोषारोप) वस्तु—दृष्ट दोष से, श्रुत दोष से एवं आशङ्कित दोष से ।

तीन कामोत्पत्तिर्याँ—१. आयुष्मानो! कुछ प्राणी वर्तमान कामभोगोत्पत्ति वाले होते हैं, जो वर्तमान कामों के वशवर्ती (अधीन) होते हैं, जैसे—मनुष्य, कुछ देवता और कुछ अधम योनि वाले । २. आयुष्मानो! कुछ प्राणी निर्मितकाम हैं, वे स्वयं अपने लिये निर्माण कर कामों के वशवर्ती होते हैं, जैसे—निर्माणरति देव । ३. आयुष्मानो! कुछ प्राणी परनिर्मितकाम हैं, वे दूसरों के द्वारा निर्मित कामों के वशवर्ती होते हैं, जैसे—परनिर्मितवशवर्ती देव ।

तीन सुखोत्पत्तिर्याँ—१. आयुष्मानो! कुछ प्राणी सुख उत्पन्न कर सुखपूर्वक विहार करते हैं, जैसे—ब्रह्मकायिक देव । २. आयुष्मानो! कुछ प्राणी सुख से अभिष्विन्न, परिष्विन्न कभी—कभी उस सुख से परिप्लावित हो कर हर्षोल्लासपूर्वक यह उद्गार प्रकट करते हैं—‘अरे! यह कैसा मनःप्रसादक सुख है । ३. आयुष्मानो! कुछ प्राणी सुख से परिस्फुट रहते हैं, जैसे—शुभकृत्स्न देव । ये उपस्थित सुख से प्रसन्न, सन्तुष्ट हो कर सुखानुभव करते रहते हैं ।

तीन प्रज्ञा—१. शैक्ष्य प्रज्ञा, अशैक्ष्य प्रज्ञा एवं नैवशैक्ष्यनाशैक्ष्य प्रज्ञा । या २. चिन्तामयी प्रज्ञा, श्रुतमयी प्रज्ञा एवं भावनामयी प्रज्ञा ।

तीन आयुध—श्रुतायुध, प्रविवेकायुध एवं प्रज्ञायुध ।

पविवेकावुधं, पज्जावुधं। तीणिन्द्रियाणि—अनज्जातज्जस्सामीतिन्द्रियं, अज्जिन्द्रियं, अज्जाता-
[B.184] विन्द्रियं। तीणि चक्खूनि—मंसचक्खु, दिब्बचक्खु, पज्जाचक्खु। तिस्सो सिक्खा—
अधिशीलसिक्खा, अधिचित्तसिक्खा, अधिपज्जासिक्खा। तिस्सो भावना—कायभावना,
चित्तभावना, पज्जाभावना। तीणि अनुत्तरियाणि—दस्सनानुत्तरियं, पटिपदानुत्तरियं, विमुत्ता-
नुत्तरियं। तयो समाधी—सवितक्कसविचारो समाधि, अवितक्कविचारमतो समाधि, अवितक्क-
अविचारो समाधि। अपरे पि तयो समाधी—सुज्जतो समाधि, अनिमित्तो समाधि, अप्पणिहितो
[R.220] समाधि। तीणि सोचेय्यानि—कायसोचेय्यं, वचीसोचेय्यं, मनोसोचेय्यं। तीणि
मोनेय्यानि—कायमोनेय्यं, वचीमोनेय्यं, मनोमोनेय्यं। तीणि कोसल्लानि—आयकोसल्लं,
अपायकोसल्लं, उपायकोसल्लं। तयो मदा—आरोग्यमदो, योब्वनमदो, जीवितमदो। तीणि
आधिपतेय्यानि—अत्ताधिपतेय्यं, लोकाधिपतेय्यं, धम्माधिपतेय्यं। तीणि कथावत्थूनि—अतीतं
वा अद्धानं आरब्भ कथं कथेय्य—‘एवं अहोसि अतीतमद्धानं’ ति; अनागतं वा अद्धानं
आरब्भ कथं कथेय्य—‘एवं भविस्सति अनागतमद्धानं’ ति; एतरहि वा पच्चुप्पन्नं अद्धानं
आरब्भ कथं कथेय्य—‘एवं होति एतरहि पच्चुप्पन्नं अद्धानं’ ति। तिस्सो विज्जा—पुब्बेनिवासा-
नुस्सतिजाणं विज्जा, सत्तानं चुतूपाते जाणं विज्जा, आसवानं खये जाणं विज्जा। तयो विहारा—
[N.173] दिब्बो विहारो, ब्रह्मा विहारो, अरियो विहारो। तीणि पाटिहारियाणि—इद्धिपाटिहारियं,
आदेसनापाटिहारियं, अनुसासनीपाटिहारियं।

तीन इन्द्रियाँ—‘न जाने कों जानूँगा’ इन्द्रिय, आज्ञा (ज्ञान) इन्द्रिय एवं अज्ञातावी (अर्हज्ज्ञान) इन्द्रिय।

तीन चक्षु—मांसचक्षु, दिव्यचक्षु एवं प्रज्ञाचक्षु।

तीन शिक्षाएँ—शीलविषयक शिक्षा, चित्तविषयक शिक्षा एवं प्रज्ञाविषयक शिक्षा।

तीन भावनाएँ—कायभावना, चित्तभावना एवं प्रज्ञाभावना।

तीन अनुत्तरीय (श्रेष्ठ)—दर्शनानुत्तरीय, प्रतिपदानुत्तरीय एवं विमुक्त्यनुत्तरीय।

तीन समाधि—१. सवितर्क—सविचार समाधि, अवितर्कविचारमात्र....एवं अवितर्काविचार....।

२. शून्यता—समाधि, अनिमित्त समाधि एवं अप्रणिहितसमाधि।

तीन शुचिताएँ—कायशुचिता, वाक्शुचिता एवं मनःशुचिता।

तीन मौन—कायमौन, वाङ्मौन एवं मनोमौन।

तीन कौशल—आय-कौशल, अपाय कौशल एवं उपाय कौशल।

तीन मद—आरोग्यमद, यौवनमद एवं जातिमद।

तीन स्वामित्व—आत्मस्वामित्व, लोकस्वामित्व एवं धर्मस्वामित्व।

तीन कथाविषय—१. अतीत काल को ले कर कथा कहे—‘अतीत काल ऐसा था’। २. भविष्यत्काल को लेकर कथा कहे—‘भविष्यत्काल ऐसा होगा’। ३. वर्तमानकाल को लेकर कथा कहे—‘वर्तमान काल ऐसा है’।

तीन विद्याएँ—१. पूर्वनिवासानुस्मृतिज्ञान विद्या (स्वकीय पूर्वजन्म का स्मरण), २. दूसरे प्राणियों के च्युत्युत्पादविषयक ज्ञान की विद्या एवं ३. आश्रवों के क्षयज्ञान की विद्या।

तीन विहार—दिव्य विहार, ब्रह्मविहार एवं आर्यविहार।

तीन प्रातिहार्य (चमत्कार)—ऋद्धिप्रातिहार्य, देशनाप्रातिहार्य एवं अनुशासनीप्रातिहार्य।

“इमे खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन तयो धम्मा सम्मदक्खाता । तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं....पे०....अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ।

चत्तारो धम्मा सम्मदक्खाता

११. “अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता [B.185, R.221] सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं, न विवदितब्बं.... पे० अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । कतमे चत्तारो ?

“चत्तारो सतिपट्ठाना— इधावुसो, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं । वेदनासु वेदनानुपस्सी....पे०....चित्ते चित्तानुपस्सी पे०....धम्मसु धम्मनानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झा-दोमनस्सं ।

“चत्तारो सम्पप्पधाना—इधावुसो, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति । उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति । अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति । उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति ।

“चत्तारो इद्धिपादा—इधावुसो, भिक्खु छन्दसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं

“आयुष्मानो! उन तत्त्वज्ञ, सर्वद्वष्टा....ने धर्मों के इन त्रिकों का (अपने उपदेशों में) भली-भाँति उपदेश किया है । इस का हम सबको एक हो कर पालन करना चाहिये । इनके विषय में हमारे बीच किसी प्रकार का विवाद नहीं होना चाहिये जो कि देव-मनुष्यों के लिये हितकर एवं सुखप्रद हैं ।
सम्यग्बुद्ध्यात् चतुष्क धर्म—११. “आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ सर्वद्वष्टा सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मों के इन चतुष्कों का भी भलीभाँति बोधन किया है । उन पर हम सभी को एक हो कर....पूर्ववत् देवमनुष्यों के लिये हितकर एवं सुखप्रद हैं । कौन से चार ?

चार स्मृतिप्रस्थान—“आयुष्मानो! यहाँ कोई साधक भिक्षु १. उद्योग के साथ पूर्ण ध्यान रखता हुआ, स्मृतिमान् होकर लोकसम्बन्धी अभिध्या एवं दौर्मनस्य को स्वचित्त से दूर हटा कर काया में कायानुपशयना करता (शरीर की वास्तविकता देखता) हुआ साधना करता है; २. वेदनाओं में वेदनानुपशयना करता हुआ, ३. चित्त में चित्तानुपशयना करता हुआ, एवं ४. धर्मों में धर्मानुपशयना करता हुआ साधना करता है ।

चार सम्यक्प्रधान—“यहाँ, आयुष्मानो! कोई साधक भिक्षु १. अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों का उत्पाद न हो-एतदर्थ इच्छा करता है, उपयोग करता है, शक्ति लगाता है, चित्त का निग्रह करता है एवं अभ्यास करता है; २. उत्पन्न पापमय धर्मों के विनाश के लिये इच्छा करता है, ३. उत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये इच्छा करता है, ४. उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति के लिये, अक्षीणता के लिये, अधिकाधिक वृद्धि के लिये, उनकी विपुलता के लिये, अभ्यास के लिये एवं पूर्णता के लिये रुचि पैदा करता है, उपयोग करता है अभ्यास करता है ।

चार ऋद्धिपाद—“आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु १. छन्दसमाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद

भावेति। चित्तसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति। विरियसमाधिपधानसङ्खार-
[R.222] समन्नागतं इद्धिपादं भावेति। वीमंसासमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति।

“चत्तारि ज्ञानानि—इधावुसो, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवंकजं पीतिसुखं पठमं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं ज्ञानं [N.174, B.186] उपसम्पज्ज विहरति। पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पज्जानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति यं तं अरिया आचिक्खन्ति—‘उपेक्खको सतिमा सुखविहारी’ ति ततियं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति। सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना, पुब्बे सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा, अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपरिसुद्धिं चतुत्थं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति।

१२. चतस्सो समाधिभावना— “अत्थावुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता दिट्ठधम्मसुखविहाराय संवत्तति। अत्थावुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता जाणदस्सन-पटिलाभाय संवत्तति। अत्थावुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता सतिसम्पज्जज्जाय संवत्तति। अत्थावुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता आसवानं खयाय संवत्तति।

“कतमा चावुसो, समाधिभावना, भाविता बहुलीकता दिट्ठधम्मसुखविहाराय संवत्तति? इधावुसो, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं....पे०.... चतुत्थं

की भावना करता है। २. चित्तसमाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है, ३. वीर्यसमाधि-प्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना (अभ्यास) करता है, ४. मीमांसा-समाधि प्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है।

चार ध्यान—“यहाँ, आयुष्मानो! कोई साधक भिक्षु कामभोगों से एवं अकुशल धर्मों से दूर रह कर, वितर्क-विचार सहित प्रीतिसुखयुक्त प्रथम ध्यान प्राप्त कर साधना करता है, २. कुछ समय बाद अभ्यास करते-करते वितर्क-विचारों का व्युपशम (शान्ति) हो जाने के बाद, आध्यात्मिक सम्प्रसाद से चित्त की एकाग्रता (एकोदिभाव) एवं वितर्क-विचार रहित समाधिजन्य प्रीतिसुखयुक्त द्वितीय ध्यान प्राप्त कर साधना करता है; ३. फिर धीरे-धीरे प्रीति से भी वैराग्य हो जाने पर स्मृति-सम्प्रजन्यपूर्वक उपेक्षामय सुख का काया से अनुभव करता है, जिसके विषय में आर्यजनों का कहना है—‘वह स्मृति-सम्प्रजन्य के साथ उपेक्षक रहता हुआ सुखपूर्वक साधना करता है’—ऐसे तृतीय ध्यान की भावना करता है। ४. और अन्त में शनैः शनैः सुख एवं दुःख के प्रहाण से, पहले ही सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से, उपेक्षा एवं स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है।

१२. चार समाधिभावना— “आयुष्मानो! १. एक ऐसी समाधिभावना होती है, जो भावित होने पर, वृद्धिज्ञत होने पर, इसी जन्म में सुखविहार के लिये होती है। आयुष्मानो! २. एक समाधिभावना ऐसी भी होती है, जो भावित होने पर, वृद्धिज्ञत होने पर ज्ञानदर्शन (साक्षात्कार) के लाभ के लिये होती है। ३. आयुष्मानो! फिर एक ऐसी भी समाधिभावना होती है, जो भावित एवं वृद्धिज्ञत होने पर स्मृतिसम्प्रजन्य के लिय होती है, ४. और आयुष्मानो! एक ऐसी भी समाधिभावना.... जो आश्रवक्ष्य के लिये उपयुक्त होती है।

“आयुष्मानो! वह कौन सी समाधिभावना होती है जो भावित एवं वृद्धिज्ञत होने पर सुखविहार के लिये होती है? आयुष्मानो! साधक भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों को दूर हटा कर पूर्ववत्.... प्रथम

ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं, आवुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता दिट्ठधम्म-सुखविहाराय संवत्तति। (१)

“कतमा चावुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता जाणदस्सनपटिलाभाय संवत्तति ? इधावुसो, भिक्खु आलोकसज्जं मनसि करोति, दिवासज्जं अधिट्ठाति, यथा दिवा तथा रत्तिं, यथा रत्तिं तथा दिवा। इति विवटेन चेतसा अपरियोनद्धेन सप्पभासं चित्तं भावेति। [R.223] अयं, आवुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता जाणदस्सनपटिलाभाय संवत्तति। (२)

“कतमा चावुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता सतिसम्पज्ज्जाय संवत्तति ? इधावुसो, भिक्खुनो विदिता वेदना उपपज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति; विदिता सज्जा उपपज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति; विदिता वितक्का उपपज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। अयं, आवुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता सतिसम्पज्ज्जाय संवत्तति। (३)

“कतमा चावुसो, समाधिभावना भाविता बहुलीकता आसवानं खयाय [B.187] संवत्तति ? इधावुसो, भिक्खु पञ्चसु उपादानक्खन्धेषु उदयब्बयानुपस्सी विहरति। इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति वेदना....इति सज्जा इति सङ्कारा....इति विज्जाणं, इति विज्जाणस्स समुदयो, इति विज्जाणस्स अत्थङ्गमो। अयं आवुसो, [N.175] समाधिभावना भाविता बहुलीकता आसवानं खयाय संवत्तति। (४)

१३. चतस्सो अप्पमज्जा— “इधावुसो, भिक्खु मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं [R.224] फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि ध्यान... द्वितीय ध्यान तृतीय ध्यान....चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना में लगता है। आयुष्मानो! यह समाधि भावना....इसी जन्म में सुखविहार के लिये होती है। (१)

“और, आयुष्मानो! वह समाधि भावना कौन सी होती है, जो ज्ञानदर्शन प्रतिलाभ के लिये होती है? आयुष्मानो! जब भिक्षु आलोकसंज्ञा (प्रकाशज्ञान) को मन में करता है, दिनसंज्ञा का अधिष्ठान (दृढ़ विचार) करता है—‘जैसा दिन वैसी रात’ या ‘जैसी रात वैसा दिन’, यों विवृत (खुले) एवं निर्बन्ध मन से प्रभावित सप्रभास चित्त की भावना करता है। आयुष्मानो! यह समाधि भावना ज्ञानदर्शनप्रतिलाभ के लिये होती है। (२)

“और, आयुष्मानो! वह समाधि भावना कौन सी होती है जो स्मृति सम्प्रजन्य के लिये होती है? यहाँ आयुष्मानो! किसी भिक्षु को अनुभूत वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं, ज्ञात होती हुई उपस्थित रहती हैं और अन्त में अस्त हो जाती हैं; अनुभूत संज्ञाएँ अस्त हो जाती हैं; पूर्व में अनुभूत विवर्तक अस्त हो जाते हैं। आयुष्मानो! यह ऐसी समाधिभावना स्मृतिसम्प्रजन्य के लिये होती है। (३)

“और, आयुष्मानो! वह समाधिभावना कौन सी होती है जो आश्रवक्षयज्ञान के लिये होती है? आयुष्मानो! कोई भिक्षु पाँच उपादान-स्कन्धों में उत्पत्ति एवं विनाश को देखते हुए अपनी साधना को आगे बढ़ाता है—‘ऐसा रूप है’, ‘ऐसा रूप का समुदय है’, ‘ऐसा रूप का अस्त है’; ‘ऐसी वेदना....ऐसी संज्ञा....ऐसे संस्कार ऐसा विज्ञान का अस्तगमन है। आयुष्मानो! यह समाधिभावना भावित एवं वृद्धिज्ञत होने पर आश्रवक्षय के लिये होती है। (४)

चार अप्रामाण्या (सीमारहित)—१३. “आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु मैत्रीसहगत चित्त से एक दिशा

सम्बत्तताय सम्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवैरेन अब्बापज्जेन फरित्वा विहरति । करुणासहगतेन चेतसा....पे०....मुदितासहगतेन चेतसा पे०....उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा ततियं, तथा चतुत्थं । इति उद्धमधो तिरियं सम्बधि सम्बत्तताय सम्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवैरेन अब्बापज्जेन फरित्वा विहरति ।

चत्तारो आरुप्पा—“इधवुसो, भिक्खु सम्बसो रूपसज्जानं समतिक्रमा पटिघसज्जानं अत्थङ्गमा नानत्तसज्जानं अमनसिकारा ‘अनन्तो आकासो’ ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति । सम्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्रमम् ‘अनन्तं विज्जाणं’ ति विज्जाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति । सम्बसो विज्जाणञ्चायतनं समतिक्रमम् ‘नत्थि किञ्ची’ ति आकिञ्चज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति । सम्बसो आकिञ्चज्जायतनं समतिक्रमम् नेवसज्जानासज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति ।

चत्तारि अपस्सेनानि—“इधवुसो, भिक्खु सङ्घायेकं पटिसेवति, सङ्घायेकं अधिवासेति, सङ्घायेकं परिवज्जेति, सङ्घायेकं विनोदेति ।

[B.188] १४. चत्तारो अरियवंसा— “इधवुसो, भिक्खु सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन चीवरेन, इतरीतरचीवरसन्तुट्ठिया च दण्णवादी, न च चीवरहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति; अलद्धा

को पूर्ण कर साधना में लगा रहता है, उसी तरह दूसरी तीसरी, चौथी दिशा को । इसी प्रकार ऊपर नीचे, आड़े-तिरछे, समग्र मन से, सबके लिये, मैत्रीभावयुक्त, विपुल, महान् अप्रमाण (असीम), निर्वैर, निर्दोह चित्त से सम्पूर्ण लोक को स्पर्श कर साधनारत रहता है । (१) ...करुणाभावयुक्त चित्त से (२) मुदिता भावयुक्त चित्त से (३) उपेक्षाभावयुक्त चित्त से एक दिशा को पूर्ण कर सम्पूर्ण लोक को स्पर्श कर साधनारत रहता है । (४)

चार आरुप्य (रूपराहित्य)—“आयुष्मानो कोई भिक्षु रूपसंज्ञा के सर्वथा अतिक्रमण से, प्रतिहिंसासंज्ञा के अस्त होने से, नानात्वसंज्ञा के मन में न करने (उपेक्षा) से, ‘आकाश अनन्त है’—इस आकाशानन्त्य के आयतन (स्थान) को प्राप्त कर साधना में लगता है । (१) फिर (साधना करते-करते) इस आकाशानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर ‘विज्ञान अनन्त है’—इस विज्ञानानन्त्य के आयतन को प्राप्त कर साधनारत होता है । (२) (कुछ समय बाद) इस विज्ञानानन्त्य का भी सर्वथा अतिक्रमण कर ‘कुछ नहीं है’ (नास्ति किञ्चित्)—इस आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर साधनारत होता है । (३) (साधना में और आगे बढ़ने पर) इस आकिञ्चन्यायतन भावना का भी सर्वथा अतिक्रमण करने के बाद नैव संज्ञा और न असंज्ञा आयतन को प्राप्त हो कर साधना करता है । (४)

चार अपाश्रयण—“यहां, आयुष्मानो! कोई भिक्षु जानकर (सङ्घाय) किसी धर्म का सेवन करता है; (१) जानकर किसी धर्म को स्वीकार करता है; (२) जानकर किसी धर्म का परिवर्जन (त्याग) कर देता है (३) और जानकर किसी को हटा (अस्वीकार कर) देता है । (४)

चार आर्यवंश—१४. “आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु जैसा-तैसा चीवर पा कर भी सन्तुष्ट रहता है, उस जैसे-तैसे चीवर की प्राप्ति की प्रशंसा करता है, वैसा चीवर न प्राप्त होने से उस की खोज में ही मिथ्या उपाय करने हेतु अपने आप को नहीं लगाता, न उस चीवर के प्राप्त न होने पर कोई कष्ट ही मानता है तथा उस चीवर को पाकर भी वह उसके प्रति निर्लोभ, अलिप्त, अमूर्च्छित, अनासक्त, उसके दुष्परिणामों की समीक्षा कर उस के प्रति त्यागवृत्ति रखता हुआ उस का उपयोग करता है । अपने उस साधारण चीवर

च चीवरं न परितस्सति, लद्धा च चीवरं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपज्जो परिभुज्जति; ताय च पन इतरीतरचीवरसन्तुट्ठिया नेवत्तानुक्कंसेति न परं [R.225] वम्भेति। यो हि तत्थ दक्खो होति अनलसो सम्पजानो पटिस्सतो, अयं वुच्चतावुसो—‘भिक्षु पोराणे अगगज्जे अरियवंसे ठितो’। (१)

“पुन च परं, आवुसो भिक्षु सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन पिण्डपातेन, इतरीतरपिण्डपातसन्तुट्ठिया च वण्णवादी, न च पिण्डपातहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति; [N.176] अलद्धा च पिण्डपातं न परितस्सति, लद्धा च पिण्डपातं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपज्जो परिभुज्जति; ताय च पन इतरीतरपिण्डपातसन्तुट्ठिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। यो हि तत्थ दक्खो अनलसो सम्पजानो पटिस्सतो, अयं वुच्चतावुसो—‘भिक्षु पोराणे अगगज्जे अरियवंसे ठितो’। (२)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्षु सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन सेनासनेन, इतरीतरसेनासनसन्तुट्ठिया च वण्णवादी, न च सेनासनहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति; अलद्धा च सेनासनं न परितस्सति, लद्धा च सेनासनं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपज्जो परिभुज्जति; ताय च पन इतरीतरसेनासनसन्तुट्ठिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। यो हि तत्थ दक्खो अनलसो सम्पजानो पटिस्सतो, अयं वुच्चतावुसो—‘भिक्षु पोराणे अगगज्जे अरियवंसे ठितो’। (३)

“पुन च परं, आवुसो भिक्षु पहानारामो होति पहानरतो, भावनारामो होति भावनारतो; ताय च पन पहानारामताय पहानरतिया भावनारामतया भावनारतिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। यो हि तत्थ दक्खो अनलसो सम्पजानो पटिस्सतो, अयं वुच्चतावुसो—‘भिक्षु पोराणे अगगज्जे अरियवंसे ठितो’ ति। (४)

१५. “चत्तारि पधानानि—‘संवरपधानं, पहानपधानं, भावनापधानं, [B.189] अनुरक्खणापधानं। कतमञ्चावुसो, संवरपधानं? इधावुसो, भिक्षु चक्खुना रूपं दिस्वा न

के परिभोग के कारण हुए सन्तोष से न अपने को महान् मानता है, न उनमें इस गुण के न होने के कारण दूसरे भिक्षुओं को हीन ही समझता है। अपितु वह अपनी धर्मसाधना में ही निरन्तर दक्ष, निरलस, सम्प्रज्ञाता एवं प्रतिस्मृत रहता है। आयुष्मानो! वह कहलाता है—‘यह भिक्षु पुराने अग्रगण्य (सर्वोत्तम) आर्यवंश (परम्परा) में स्थित है। (१)

“.... जैसी-तैसी भिक्षा पा कर भी सन्तुष्ट रहता है पूर्ववत् आर्यवंश में स्थित है। (२)

“.... जैसा-तैसा शयनासन (निवास) पा कर भी सन्तुष्ट रहता है स्थित है। (३)

“और फिर आयुष्मानो! कोई साधनारत भिक्षु प्रहाण (त्याग) में ही सुख मानता है, अतः प्रहाण में ही रत रहता है। दूसरा कोई भावना में ही सुख मानता है, अतः वह भावना में ही रत रहता है। परन्तु वे दोनों ही प्रकार के भिक्षु अपनी प्रहाणरति एवं भावनारति के कारण न तो अपने को दूसरे भिक्षुओं से ऊँचा समझते हैं, न दूसरे भिक्षुओं को इन गुणों के अभाव के कारण अपने से हीन ही समझते हैं। आयुष्मानो! इसे कहते हैं—‘यह भिक्षु....आर्यवंश में स्थित है। (४)

चार प्रधान (अभ्यास)—१५. “१. “संवरप्रधान, २. प्रहाणप्रधान, ३. भावनाप्रधान एवं ४.

[R.226] निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही । यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवृतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति । सोतेन सहं सुत्वा.... घानेन गन्धं घायित्वा.... जिह्वाय रसं सायित्वा कायेन फोटुब्बं फुसित्वा मनसा धम्मं विज्जाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही । यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवृतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति । इदं वुच्चावुसो, संवरपधानं । (१)

कतमञ्चावुसो, पहानपधानं ? इधावुसो, भिक्खु उप्पन्नं कामवितर्कं नाधिवासेति पजहति [N.177] विनोदेति ब्यन्ति करोति अनभावं गमेति । उप्पन्नं ब्यापादवितर्कं पे०.... उप्पन्नं विहिंसावितर्कं पे०.... उप्पन्नपन्ने पापके अकुसले धम्मे नाधिवासेति पजहति विनोदेति ब्यन्ति करोति अनभावं गमेति । इदं वुच्चावुसो, पहानपधानं । (२)

“कतमञ्चावुसो, भावनापधानं ? इधावुसो, भिक्खु सतिसम्बोज्झङ्गं भावेति विवेक-निस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सगपरिणामिं । धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति.... विरियसम्बोज्झङ्गं भावेति पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेति पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति समाधि-सम्बोज्झङ्गं भावेति.... उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सगपरिणामिं । इदं वुच्चावुसो, भावनापधानं । (३)

“कतमञ्चावुसो, अनुरक्खणापधानं ? इधावुसो, भिक्खु उप्पन्नं भद्रकं समाधिनिमित्तं

अनुरक्षणाप्रधान । (प्रधान=प्रयत्न, अभ्यास या व्यायाम) । आयुष्मानो! ‘संवरप्रधान’ क्या है? आयुष्मानो! यहाँ कोई साधक भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पादहेतु प्रयत्न करता है, श्रम करता है, चित्त को वश में करता है, उसे दबाये रखता है । वह चक्षु से रूप (विषय) को देखकर भी न उस के कारण से आकृष्ट होता है, न उसके आकार से कि कहीं यह मेरी अनिगृहीत चक्षुरिन्द्रिय के कारण अकुशल पाप-धर्मों का आवास न बन जाय । अतः वह ऐसे पापमय धर्मों से अपनी चक्षुरिन्द्रिय को बचाता है, उस पर निग्रह करता है । वह श्रोत्र से शब्द सुनकर भी घ्राण से गन्ध सूँघ कर भी.... जिह्वा से रस को चख कर भी काय से स्पर्शयोग्य विषयों का स्पर्श करके भी मन से मनोधर्मों को जान कर भी उन के कारणों की तरफ आकृष्ट नहीं होता, न उन के आकारों से ही आकृष्ट होता है कि कहीं ये मेरी अनिगृहीत मनइन्द्रिय के कारण अकुशल पापमय धर्मों का आवास न बन जाय । अतः वह ऐसे पापमय धर्मों से अपनी मन इन्द्रिय को बचाता है, उस पर निग्रह करता है । आयुष्मानो! यह ‘संवरप्रधान’ कहलाता है । (१)

“और आयुष्मानो! यह ‘प्रहाणप्रधान’ क्या है? यहाँ आयुष्मानो! कोई साधक भिक्षु उत्पन्न कामवितर्क ... द्वेषवितर्क ... विहिंसावितर्क आदि सभी पापमय अकुशल धर्मों को छोड़ देता है, दूर हटा देता है, पृथक् कर देता है या उन को मिटा देता है । आयुष्मानो! यह ‘प्रहाणप्रधान’ कहलाता है । (२)

“और आयुष्मानो! ‘भावनाप्रधान’ क्या है? यहाँ कोई भिक्षु स्मृतिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है, जो कि विवेकनिःसृत है वैराग्यनिःसृत है तथा उत्सर्ग स्वभाव वाला है । धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग वीर्य-विचयसम्बोध्यङ्ग प्रीतिसम्बोध्यङ्ग प्रश्रद्धिसम्बोध्यङ्ग समाधिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है, जो कि विवेकनिःसृत, वैराग्यनिःसृत एवं उत्सर्ग स्वभाव वाला है । आयुष्मानो! यह कहलाता है ‘भावनाप्रधान’ । (३)

“और आयुष्मानो! यह अनुरक्षणाप्रधान क्या है? यहाँ, आयुष्मानो! कोई साधक भिक्षु समाधि के

अनुरक्खति अट्टिकसज्जं पुळुवकसज्जं विनीलकसज्जं विच्छिद्दकसज्जं उद्धुमातकसज्जं ।
इदं वुच्चावुसो, अनुरक्खणापधानं । (४)

१६. “चत्तारि जाणानि—धम्मे जाणं, अन्वये जाणं, परिये जाणं, सम्मुतिया जाणं ।

“अपरानि पि चत्तारि जाणानि—दुक्खे जाणं, दुक्खसमुदये जाणं, [B.190, R.227]
दुक्खनिरोधे जाणं, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय जाणं ।

“चत्तारि सोतापत्तियङ्गानि—सप्पुरिससंसेवो, सद्धम्मस्सवनं, योनिसोमनसिकारो,
धम्मानुधम्मपटिपत्ति ।

“चत्तारि सोतापन्नस्स अङ्गानि—इधावुसो, अरियसावको बुद्धे अवेचप्पसादेन
समन्नागतो होति—‘इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू
अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा’ ति; धम्मे अवेचप्पसादेन समन्नागतो
होति—‘स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपरिस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं
वेदितब्बो विञ्जूही’ ति; सङ्खे अवेचप्पसादेन समन्नागतो होति—‘सुप्पटिपन्नो भगवतो
सावकसङ्घो, उज्जुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, जायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, [N.178]
सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुगला एस
भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिण्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्जक्खत्तं
लोकस्सा’ ति; अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागतो होति अखण्डेहि अच्छिद्देहि असबलेहि
अकम्मासेहि भुजिस्सेहि विञ्जुप्पसत्थेहि अपरामट्ठेहि समाधिसंवत्तनिकेहि ।

(श्मशानयोग से) उत्पन्न हुए कुशल कारणों की रक्षा करता है, जैसे मृत शरीर के खुले अस्थिपत्र, मृत
शरीर के सड़ जाने, नीला पड़ जाने, सड़-गल जाने, कीड़े पड़ जाने, फूल जाने आदि अशुभ कारणों को
देखना । आयुष्मानो! यह कहलाता है ‘अनुरक्षणाप्रधान’ । (४)

चार ज्ञान—१६. “१. धर्मविषयक ज्ञान, २. अन्वयज्ञान, ३. परिच्छेदज्ञान एवं, ४. सम्मतिज्ञान ।

१. दुःखज्ञान, २. दुःखसमुदयज्ञान, ३. दुःखनिरोधज्ञान एवं ४. दुःखनिरोधगामिमार्ग ज्ञान ।

चार स्रोतापत्ति अङ्ग—“१. सत्पुरुषसेवन, २. सद्धर्मश्रवण, ३. योनिशः मनस्कार (कारणपूर्वक
विचार) एवं धर्मानुधर्मप्रतिपत्ति (लोकोत्तरधर्म की अनुधर्मभूत पूर्वभागप्रतिपत्ति का प्रतिपादन) ।

चार स्रोतआपन्न के अङ्ग—“आयुष्मानो! यहाँ आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा से युक्त
होता है कि वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध (परमज्ञानी), विद्या एवं आवरण से युक्त, सुगत, लोकविद्,
पुरुषों को सन्मार्ग पर लाने के लिये अनुपम ज्ञान रूप चाबुक वाले सारथि (सवार), देव-मनुष्यों के शास्ता
(उपदेशक) हैं । वह आर्यश्रावक (बुद्ध)धर्म में भी अचल श्रद्धा रखता है कि उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म
स्वाख्यात है, वह इसी जन्म में फलदायक है, सद्यः फलप्रद (अकालिक) है, यहीं दिखायी देने वाला,
निर्वाण की तरफ बढ़ाने वाला एवं विज्ञ पुरुषों द्वारा ही ज्ञेय है । वह आर्यश्रावक सङ्घ में भी ऐसी अचल
श्रद्धा रखता है कि यह सङ्घ सन्मार्गारूढ है, सरलमार्गारूढ है, न्यायमार्गारूढ है, उचितमार्गारूढ है । ये
चार पुरुषयुगल या आठ पुरुष-पुद्गल हैं । यही भगवान् का श्रावक (शिष्य) सङ्घ है । ग्रह आह्वान के (समूह-
भोजनादि के अवसर पर) योग्य हैं, यह आतिथ्य के योग्य है, यह दान-दक्षिणा के योग्य है, प्रणाम के
योग्य है तथा यह लोक के लिये पुण्यवपन का क्षेत्रभूत है । वह (स्रोतआपन्न) अखण्ड, अच्छिद्र,
अकल्मष, निष्कलङ्क, योग्य, विद्वज्जनों द्वारा प्रशंसित, अपरामृष्ट (अनिन्दित), समाधिगामी, आर्य एवं
कमनीय (मनोहर) शील धर्मों से युक्त होता है ।

चत्तारि सामञ्जसफलानि—“सोतापत्तिफलं, सकदागामिफलं, अनागामिफलं, अरहत्तफलं।

[R.228] “चतस्सो धातुयो—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु।

“चत्तारो आहारो—कबळीकारो आहारो ओळारिको वा सुखुमो वा, फस्सो दुतियो, मनोसञ्चेतना ततिया, विज्जाणं चतुत्थं।

“चतस्सो विज्जाणट्ठितियो—रूपपायं वा, आवुसो विज्जाणं तिट्ठमानं तिट्ठति रूपारम्भं [B.191] रूपप्पतिट्ठं नन्दूपसेचनं बुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जति; वेदनूपायं वा, आवुसो.... सञ्जूपायं वा, आवुसो....सङ्खारूपायं वा, आवुसो, विज्जाणं तिट्ठमानं तिट्ठति सङ्खारारम्भं सङ्खारप्पतिट्ठं नन्दूपसेचनं बुद्धं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जति।

“चत्तारि अगतिगमनानि—छन्दागतिं गच्छति, दोसागतिं गच्छति, मोहागतिं गच्छति, भयागतिं गच्छति।

“चत्तारो तणहुप्पादा—चीवरहेतु वा, आवुसो, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति; पिण्डपातुहेतु वा, आवुसो, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति; सेनासनहेतु वा, आवुसो, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति; इतिभवाभवहेतु वा, आवुसो, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति।

“चतस्सो पटिपदा—दुक्खा पटिपदा दन्धाभिज्जा, दुक्खा पटिपदा खिप्पभिज्जा, सुखा पटिपदा दन्धाभिज्जा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिज्जा।

[R.229] “अपरा पि चतस्सो पटिपदा—अक्खमा पटिपदा, खमा पटिपदा, दमा पटिपदा, समा पटिपदा।

[N.179] “चत्तारि धम्मपदानि—अनभिज्झा धम्मपदं, अब्यापादो धम्मपदं, सम्मासति धम्मपदं, सम्मासमाधि धम्मपदं।

चार श्रामण्यफल—“स्रोतआपत्ति—फल, सकृदागामि—फल, अनागामि फल एवं, अर्हत्त्वफल।

चार धातु (महाभूत)—“पृथ्वी धातु, अब्धातु, तेजोधातु एवं वायुधातु।

चार आहार—“औदरिक (स्थूल) या सूक्ष्म ग्रास कर के खाया जाने वाला आहार, दूसरा स्पर्श, तीसरा मनःसञ्चेतना एवं चतुर्थ विज्ञान।

चार विज्ञान (जीव) स्थितियाँ—“१. आयुष्मानो! विज्ञान रूप प्राप्त कर के, रूप में रमण करते हुए, रूप में प्रतिष्ठित होकर ठहरता है। २. तृष्णा (वेदना) के सेवन से वृद्धि एवं गहराई को प्राप्त कर ठहरता है। ३. संज्ञा प्राप्त कर। ४. संस्कार प्राप्त कर संस्कार में रमण करते हुए, संस्कार में प्रतिष्ठित होकर ठहरता है, स्थित होता है।

चार अगतिगमन—“वह रागगति की तरफ जाता है, या द्वेषगति, या मोहगति या भयागति की तरफ जाता है।

चार तृष्णोत्पाद—“आयुष्मानो! भिक्षु को १. चीवर के लिये, २. पिण्डपात के लिये, ३. शयनासन (वास) के लिये या ४. ऐसे जन्म या अजन्म के लिये तृष्णा उत्पन्न होती हैं।

चार प्रतिपदा (मार्ग)—“१. दुःखाप्रतिपदा विलम्ब से ज्ञानवाली, २. दुःखा प्रतिपदा क्षिप्र (शीघ्र) ज्ञान वाली, ३. सुखा (सरल) प्रतिपदा विलम्ब से ज्ञान वाली एवं ४. सुखा प्रतिपदा शीघ्र ज्ञान वाली।

“चत्तारि धम्मसमादानानि—(१) अत्थावुसो, धम्मसमादानं पच्चुप्पन्नदुक्खं चेव आयतिं च दुक्खविपाकं; (२) अत्थावुसो, धम्मसमादानं पच्चुप्पन्नदुक्खं आयतिं सुखविपाकं; (३) अत्थावुसो, धम्मसमादानं पच्चुप्पन्नसुखं आयतिं दुक्खविपाकं; (४) अत्थावुसो, धम्मसमादानं पच्चुप्पन्नसुखं चेव आयतिं च सुखविपाकं।

“चत्तारो धम्मक्खन्धा—सीलक्खन्धो, समाधिक्खन्धो, पज्जाक्खन्धो, विमुत्तिक्खन्धो।

“चत्तारि बलानि—विरियबलं, सतिबलं, समाधिबलं, पज्जाबलं।

“चत्तारि अधिष्ठानानि—पज्जाधिष्ठानं, सच्चाधिष्ठानं, चागाधिष्ठानं, उपसमाधिष्ठानं।

१७. “चत्तारि पङ्कह्याकरणानि—एकंसव्याकरणीयो पङ्को, पटिपच्छा-[B.192] व्याकरणीयो पङ्को, विभज्जव्याकरणीयो पङ्को, ठपनीयो पङ्को।

“चत्तारि कम्मनि—अत्थावुसो, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं; अत्थावुसो, कम्मं [R.230] सुक्कं सुक्कविपाकं; अत्थावुसो, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं; अत्थावुसो, कम्मं अकण्ह-असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति।

“चत्तारो सच्छिकरणीया धम्मा—पुब्बेनिवासो सतिया सच्छिकरणीयो; सत्तानं चतुपपातो चक्खुना सच्छिकरणीयो; अट्ठ विमोक्खा कायेन सच्छिकरणीया; आसवानं खयो पज्जाय सच्छिकरणीयो।

“चत्तारो ओघा—कामोघो, भवोघो, दिट्ठोघो, अविज्जोघो।

अन्य चार प्रतिपदाएँ—“१. अक्षमा प्रतिपदा, २. क्षमा प्रतिपदा, ३. दमा प्रतिपदा, एवं ४. समा प्रतिपदा।

चार धर्मपद—“१. अलोभधर्मपद, २. अद्वोह धर्मपद, ३. सम्यक्समृति एवं ४. सम्यक्समाधिधर्मपद।

चार धर्मसमादान—“आयुष्मानो! पहला धर्मसमादान वह है, जो वर्तमान में भी दुःखमय हों और भविष्य में दुःखपरिणाम वाला हो, दूसरा धर्मसमादान वह है, जो वर्तमान में दुःखमय एवं भविष्य में सुख परिणाम वाला हो; तीसरा धर्मसमादान वह है, जो वर्तमान में भले ही सुखमय हो परन्तु परिणाम में दुःखदायी हो; और चतुर्थ धर्मसमादान वह है, जो वर्तमान में भी सुखमय एवं परिणाम में भी सुखमय हो। (समादान=ग्रहण)।

चार धर्मस्कन्ध—“१. शीलस्कन्ध, २. समाधिस्कन्ध, ३. प्रज्ञास्कन्ध एवं, ४. विमुक्तिस्कन्ध।

चार बल—“१. वीर्यबल, २. स्मृतिबल, ३. समधिबल, एवं, ४. प्रज्ञाबल।

चार अधिष्ठान (संकल्प)—“१. प्रज्ञाधिष्ठान, २. सत्याधिष्ठान, ३. त्यागधिष्ठान, एवं ४. उपशमधिष्ठान।

१७. चार व्रश्चव्याकरण—“१. एकअंश में व्याकरण (व्याख्यान) योग्य प्रश्न, २. प्रतिपृच्छा (प्रश्न) के रूप में व्याकरण योग्य प्रश्न, ३. विभज्य (विभाग कर के) व्याकरणीय प्रश्न एवं ४. स्थापनीय (न उत्तर देने योग्य) प्रश्न।

चार कर्म—“१. आयुष्मानो! एक कर्म ऐसा है जो कृष्ण (पाप) एवं कृष्ण-फल हो, २. एक कर्म ऐसा है जो स्वयं शुक्ल (शुद्ध) हो, उसका फल भी शुक्ल हो, ३. एक कर्म ऐसा है शुक्ल-कृष्ण हो और उसका विपाक भी शुक्ल-कृष्ण हो, ४. और एक कर्म अकृष्ण-शुक्ल एवं उसका फल भी अकृष्ण-शुक्ल हो।

चार साक्षात्करणीय धर्म—“१. पूर्वजन्म स्मृति से साक्षात्करणीय, २. प्राणियों का जन्म-मरण (च्युति-उत्पाद) चक्षु से साक्षात्करणीय, ३. आठ विमोक्ष काया से साक्षात्करणीय, ४. आश्रवों का क्षय प्रज्ञा से साक्षात्करणीय।

“चत्तारो योगा—कामयोगो, भवयोगो, दिट्ठियोगो, अविज्जायोगो ।

“चत्तारो विसञ्जोगा—कामयोगविसञ्जोगो, भवयोगविसञ्जोगो, दिट्ठियोग-
विसञ्जोगो, अविज्जायोगविसञ्जोगो ।

“चत्तारो गन्था—अभिज्झा कायगन्थो, व्यापादो कायगन्थो, सीलव्रतपरामासो काय-
गन्थो, इदं सच्चाभिनिवेसो कायगन्थो ।

“चत्तारि उपादानानि—कामुपादानं, दिट्ठुपादानं, सीलव्रतुपादानं, अत्तवादुपादानं ।

“चत्तस्सो योनियो—अण्डजयोनि, जलाबुजयोनि, संसेदजयोनि, ओपपतिकयोनि ।

[N.180, R.231] “चत्तस्सो गम्भावकन्तियो—इधावुसो, एकच्चो असम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति, असम्पजानो मातुकुच्छिस्मिं ठाति, असम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अयं [B.193] पठमा गम्भावकन्ति । पुन च परं, आवुसो इधेकच्चो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति, असम्पजानो मातुकुच्छिस्मिं ठाति, असम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अयं दुतिया गम्भावकन्ति । पुन च परं, आवुसो, इधेकच्चो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति, सम्पजानो मातुकुच्छिस्मिं ठाति, असम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अयं ततिया गम्भावकन्ति । पुन च परं, आवुसो, इधेकच्चो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति, सम्पजानो मातुकुच्छिस्मिं ठाति, सम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अयं चतुत्था गम्भावकन्ति ।

“चत्तारो अत्तभावपटिलाभा—अत्थावुसो, अत्तभावपटिलाभो यस्मिं अत्तभावपटिलाभे अत्तसञ्चेतना येव कमति नो परसञ्चेतना; अत्थावुसो, अत्तभावपटिलाभो यस्मिं अत्तभावपटिलाभे परसञ्चेतना येव कमति नो अत्तसञ्चेतना; अत्थावुसो, अत्तभावपटिलाभो यस्मिं अत्तभावपटिलाभे

चार ओघ (बाढ़)—“कामओघ, २. भवओघ, ३. दृष्टिओघ एवं ४. अविद्याओघ ।

चार योग (मिलना)—“कामयोग, भवयोग, दृष्टियोग एवं अविद्यायोग ।

चार विसंयोग—“कामयोगवियोग, भवयोगवियोग, दृष्टियोगवियोग एवं अविद्यायोगवियोग ।

चार गन्ध—“अभिध्या कायगन्ध, व्यापाद कायगन्ध, शीलव्रतपरामर्श कायगन्ध एवं ‘यही सत्य है’—ऐसा पक्षपातपूर्ण मतवाद कायगन्ध ।

चार उपादान—“कामोपादान, दृष्ट्युपादान, शीलव्रतपरामर्शोपादान, एवं आत्मवादोपादान ।

चार योनियाँ—“अण्डज योनि, जरायुज योनि, संस्वेदज योनि एवं औपपातिक (देव) योनि ।

चार गर्भावक्रान्ति (गर्भप्रवेश)—“आयुष्मानो! कोई प्राणी ज्ञान के बिना ही माता की कोंख (गर्भ) में प्रवेश करता है, माता की कोंख में ठहरता है और माता की कोंख से निकलता है—यह पहली गर्भावक्रान्ति है; और फिर आयुष्मानो! कोई ज्ञानसहित माता की कोंख में आता है परन्तु ज्ञानरहित ही वहाँ ठहरता है वहाँ से ज्ञानरहित निकलता है—यह दूसरे प्रकार की गर्भावक्रान्ति है; और कोई प्राणी ज्ञानसहित माता की कोंख में आता है, वहाँ ज्ञानसहित ठहरता है, परन्तु ज्ञानरहित वहाँ से निकलता है; तथा कोई चतुर्थ प्रकार का प्राणी ज्ञानसहित ही माता को कोंख में आता है, ज्ञानसहित ही वहाँ ठहरता है और ज्ञानसहित ही वहाँ से निकलता है—यह चतुर्थ प्रकार की गर्भावक्रान्ति है ।

चार आत्मभावप्रतिलाभ (शरीरधारण)—“आयुष्मानो! एक आत्मभावप्रतिलाभ वह होता है जिस में प्राणी आत्मसञ्चेतना (स्वयं को जानना) तो पाता है, परन्तु परसञ्चेतना नहीं पाता; दूसरा आत्मभावप्रतिलाभ वह है जिसमें प्राणी परसञ्चेतना (दूसरे को जानना) तो पाता है, परन्तु आत्मसञ्चेतना नहीं; तीसरा

अत्तसञ्चेतना चेव कमति परसञ्चेतना च; अत्थावुसो, अत्तभावपटिलाभो यस्मिं अत्तभावपटिलाभे नेव अत्तसञ्चेतना कमति नो परसञ्चेतना ।

१८. “चत्तसो दक्खिणाविसुद्धियो—अत्थावुसो, दक्खिणा दायकतो विसुद्धिति नो पटिग्गाहकतो; अत्थावुसो, दक्खिणा पटिग्गाहकतो विसुद्धिति नो दायकतो; अत्थावुसो, दक्खिणानेव दायकतो विसुद्धिति नो पटिग्गाहकतो; अत्थावुसो, दक्खिणा दायकतो [R.232] चेव विसुद्धिति पटिग्गाहकतो च ।

“चत्तारि सङ्ग्रहवत्थूनि—दानं, पेय्यवज्जं, अत्थचरिया, समानत्तता ।

“चत्तारो अनरियवोहारा—मुसावादो, पिसुणावाचा, फरुसावाचा, सम्फप्पलापो ।

“चत्तारो अरियवोहारा—मुसावादा वेरमणी, पिसुणाय वाचाय वेरमणी, फरुसाय वाचाय वेरमणी, सम्फप्पलापा वेरमणी ।

“अपरे पि चत्तारो अनरियवोहारा—अदिट्ठे दिट्ठवादिता, अस्सुते सुतवादिता, अमुते मुतवादिता, अविज्जाते विज्जातवादिता ।

“अपरे पि चत्तारो अरियवोहारा—अदिट्ठे अदिट्ठवादिता, अस्सुते [N.181, B.194] अस्सुतवादिता, अमुते अमुतवादिता, अविज्जाते अविज्जातवादिता ।

“अपरे पि चत्तारो अनरियवोहारा—दिट्ठे अदिट्ठवादिता, सुते अस्सुतवादिता, मुते अमुतवादिता, विज्जाते अविज्जातवादिता ।

“अपरे पि चत्तारो अरियवोहारा—दिट्ठे दिट्ठवादिता, सुते सुतवादिता, मुते मुतवादिता, विज्जाते विज्जातवादिता ।

आत्मभावप्रतिलाभ यह है जिसमें वह आत्मसञ्चेतना भी और परसञ्चेतना भी—दोनों ही पाता है और चौथा आत्मभावप्रतिलाभ यह है जहाँ वह न आत्मसञ्चेतना प्राप्त करता है, न परसञ्चेतना ही ।

१८. चार दक्षिणा (दान) विशुद्धि—“आयुष्मानो! पहली दक्षिणाविशुद्धि वह है जो दाता के पक्ष से तो शुद्ध हो, परन्तु प्रतिग्राहक के पक्ष से अशुद्ध; दूसरी वह है जिसमें प्रतिग्राहक शुद्ध हो और दाता अशुद्ध; तीसरी वह है जहाँ न दाता पक्ष या प्रतिग्राहक पक्ष—दोनों ही अशुद्ध हों। चौथी में दोनों ही पक्ष शुद्ध होते हैं ।

चार संग्रहवस्तु—“दान, प्रियवचन (मधुरवाणी), अर्थचर्या (उपकार) एवं समानार्थता ।

चार अनार्य व्यवहार—“मृषावाद, पिशुनवचन, परुषवचन एवं सम्प्रलाप ।

चार आर्यव्यवहार—“मृषावाद, पिशुनवचन, सम्प्रलाप एवं परुषवचन—इन दुर्गुणों से दूर रहना ।

अन्य भी चार अनार्य व्यवहार—“अदृष्ट में दृष्टवादिता, अश्रुत में श्रुतवादिता, अस्मृत में स्मृत एवं अविज्ञात में विज्ञातवादिता ।

अन्य चार आर्य व्यवहार—“अदृष्ट में अदृष्टवादिता, अश्रुत में अश्रुतवादिता, अस्मृत में अस्मृतवादिता, अविज्ञात में अविज्ञातवादिता ।

अन्य चार अनार्य व्यवहार—“दृष्ट में अदृष्टवादिता, श्रुत में अश्रुतवादिता, स्मृत में अस्मृत.... एवं विज्ञात में अविज्ञातवादिता ।

और भी चार आर्यव्यवहार—“दृष्ट में दृष्टवादी, श्रुत में श्रुतवादी, स्मृत में स्मृतवादी एवं अविज्ञात में विज्ञातवादी होना ।

१९. “चत्तारो पुग्गला— इधवुसो, एकच्चो पुग्गलो अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो; इधवुसो, एकच्चो पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो; इधवुसो, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो; इधवुसो, [R.233] एकच्चो पुग्गलो नेव अत्तन्तपो होति न अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति।

“अपरे पि चत्तारो पुग्गला—इधवुसो, एकच्चो पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय; इधवुसो, एकच्चो पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति नो अत्तहिताय; इधवुसो, एकच्चो पुग्गलो नेव अत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय; इधवुसो एकच्चो पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च।

“अपरे पि चत्तारो पुग्गला—तमो तमपरायनो, तमो जोतिपरायनो, जोति तमपरायनो, जोति जोतिपरायनो।

“अपरे पि चत्तारो पुग्गला—समणमचलो, समणपदुमो, समणपुण्डरीको, समणेषु समणसुखुमालो।

[B.195] “इमे खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन चत्तारो धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं पे०.....अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ॥

पठमभाणवारो ॥

पञ्च धम्मा सम्मदक्खाता

[N.182] २०. “अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन पञ्च धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं....पे०.....अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमे पञ्च ?

१९. चार पुद्गल—“१. आयुष्मानो! कोई पुद्गल आत्मन्तप (सन्ताप देने वाला) होता है; २. कोई पुद्गल दूसरों को सन्ताप देने वाला होता है; ३. कोई आत्मन्तप परन्तप— दोनों ही नहीं होता। ४. वह ऐसा न हो कर इसी जन्म में शान्त सुखी, शीतल, सुखानुभवी ब्रह्मभूत आत्मा के साथ साधना करता है।

और भी चार पुद्गल—“१. कोई पुद्गल आत्महित में लगा रहता है, परहित में नहीं; २. कोई परहित में ही लगा रहता है, आत्महित में नहीं; ३. कोई न परहित में लगा रहता है, न आत्महित में ही और ४. कोई परहित एवं आत्महित—दोनों में ही लगा रहता है।

और भी चार पुद्गल—“१. तमतमपरायण, २. तमज्योतिपरायण, ३. ज्योतितमपरायण एवं ४. ज्योति ज्योतिपरायण।

और भी चार पुद्गल—“१. श्रमण अचल, २. श्रमण पद्म, ३. श्रमण पुण्डरीक एवं ४. श्रमणों में श्रमण सुकुमार।

“आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा भगवान् धर्मों के ये नानाविध चतुष्क भली भौति कहे हैं। इन पर हम सभी को एकमत रहना चाहिये, कोई विवाद नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये सभी देव एवं मनुष्यों के लिये सुखकर एवं हितकर हैं।

प्रथम भाणवार समाप्त ॥

“पञ्चकखन्धा—रूपकखन्धो, वेदनाकखन्धो, सञ्जाकखन्धो, सङ्खारकखन्धो, विञ्जाण-
कखन्धो ।

“पञ्चपादानकखन्धा—रूपपादानकखन्धो, वेदनुपादानकखन्धो, सञ्जुपादान-[R.234]
कखन्धो, सङ्खारूपादनकखन्धो, विञ्जाणुपादानकखन्धो ।

“पञ्च कामगुणा—चक्षुर्विज्जेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता
रजनीया, सोतविज्जेय्या सहा....घानविज्जेय्या गन्धा....जिह्वाविज्जेय्या रसा...कायविज्जेय्या
फोट्टब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया ।

“पञ्च गतियो—निरयो, तिरच्छानयोनि, पेत्तिविसयो, मनुस्सा, देवा ।

“पञ्च मच्छरियानि—आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं,
धम्ममच्छरियं ।

“पञ्च नीवरणानि—कामच्छन्दनीवरणं, व्यापादनीवरणं, थिनमिद्धनीवरणं, उद्धच्चकु-
कुच्चनीवरणं, विचिकिच्छानीवरणं ।

“पञ्च ओरम्भागियानि सञ्जोजनानि—सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा, सीलब्बतपरामासो,
कामच्छन्दो, व्यापादो ।

“पञ्च उद्धम्भागियानि सञ्जोजनानि—रूपरागो, अरूपरागो, मानो उद्धच्चं, [B.196]
अविज्जा ।

“पञ्च सिक्खापदानि—पाणातिपाता वेरमणी, अदिन्नादाना वेरमणी, कामेसु [R.235]
मिच्छाचारा वेरमणी, मुसावादा वेरमणी, सुरामेरयमज्जप्पमादट्ठाना वेरमणी ।

सम्यग्गाख्यात धर्मो के पञ्चक—२०. “आयुष्मानो! उन तत्त्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ने धर्मो के ये पञ्चक
भली भाँति बताये हैं। कौन से पञ्चक?

पञ्च स्कन्ध—“रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध, संस्कारस्कन्ध एवं विज्ञानस्कन्ध ।

पञ्च उपादानस्कन्ध—“१. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादान, ३. संज्ञोपादान, ४. संस्कारोपादान,
एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध ।

पञ्च कामगुण—१. “चक्षुर्विज्ञेय इष्ट, कान्त, मनाप, रजनीय रूप; २. श्रोत्रविज्ञेय इष्ट, कान्त, मनाप
रजनीय शब्द; ३. घ्राणविज्ञेय इष्ट, कान्त, मनाप रजनीय गन्ध; ४. जिह्वाविज्ञेय इष्ट, कान्त, मनाप रजनीय
रस; ५. कायविज्ञेय इष्ट, कान्त, मनाप रजनीय स्पर्श ।

पञ्च गति—“१. निरय (नरक), २. तिर्यक् (पशु-पक्षी आदि), ३. प्रेत्यविषय (भूत-प्रेत आदि), ४.
मनुष्य एवं ५. देव ।

पञ्च मात्सर्य (अभिमान)—“१. आवासमात्सर्य, २. कुल....., ३. लाभ....., ४. वर्ण..... एवं ५.
धर्ममात्सर्य ।

पञ्च नीवरण—“१. कामच्छन्द नीवरण, २. व्यापाद, ३. स्त्यानमृद्ध, ४. औद्धत्य कौकृत्य एवं ५.
विचिकित्सा नीवरण ।

पञ्च अवरभागीय संयोजन (बन्धन)—“सक्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श, कामच्छन्द तथा
व्यापाद संयोजन ।

पञ्च ऊर्ध्वभागीय संयोजन—“रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य एवं अविद्या ।

२१. “पञ्च अभब्बद्वानानि—अभब्बो, आवुसो खीणासवो भिक्खु सञ्चिच्च पाणं जीविता वोरपेतुं; अभब्बो खीणासवो भिक्खु अदिन्नं थेय्यसङ्घातं आदियितुं; अभब्बो खीणासवो [N.183] भिक्खु मेथुनं धम्मं पटिसेवितुं; अभब्बो खीणासवो भिक्खु सम्पजानमुसा भासितुं, अभब्बो खीणासवो भिक्खु सन्निधिकारकं कामे परिभुञ्जितुं, सेय्यथापि पुब्बे आगारिकभूतो।

“पञ्च व्यसनानि—जातिव्यसनं, भोगव्यसनं, रोगव्यसनं, शीलव्यसनं, दिट्ठिव्यसनं। नावुसो, सत्ता जातिव्यसनहेतु वा भोगव्यसनहेतु वा रोगव्यसनहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति। शीलव्यसनहेतु वा, आवुसो, सत्ता दिट्ठिव्यसनहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति।

“पञ्च सम्पदा—जातिसम्पदा, भोगसम्पदा, आरोग्यसम्पदा, शीलसम्पदा, दिट्ठिसम्पदा। नावुसो, सत्ता जातिसम्पदाहेतु वा भोगसम्पदाहेतु वा आरोग्यसम्पदाहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जन्ति। शीलसम्पदाहेतु वा, आवुसो, सत्ता दिट्ठिसम्पदाहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जन्ति।

[R.236] “पञ्च आदीनवा दुस्सीलस्स शीलविपत्तिया— इधावुसो, दुस्सीलो शीलविपन्नो पमादाधिकरणं महतिं भोगजानिं निगच्छति, अयं पठमो आदीनवो दुस्सीलस्स शीलविपत्तिया। पुन च परं, आवुसो, दुस्सीलस्स शीलविपन्नस्स पापको कित्सदो अब्भुग्गच्छति, अयं [B.197] दुतियो आदीनवो दुस्सीलस्स शीलविपत्तिया। पुन च परं, आवुसो, दुस्सीलो शीलविपन्नो यज्जदेव परिसं उपसङ्कमति, यदि खत्तियपरिसं यदि ब्राह्मणपरिसं यदि गहपतिपरिसं यदि समणपरिसं, अविसारदो उपसङ्कमति मङ्कुभूतो, अयं ततियो आदीनवो दुस्सीलस्स शीलविपत्तिया। पुन च परं, आवुसो, दुस्सीलो शीलविपन्नो सम्मूळ्हो कालं करोति, अयं

पञ्च शिक्षापद—“१. प्राणातिपातविरति, २. अदत्तादानविरति, ३. काममिथ्याचारविरति, ४. मृषावादविरति एवं ५. मद्य-प्रमादस्थानविरति।

पञ्च अभव्य (अयोग्य) स्थान—“आयुष्मानो! क्षीणाश्रव (अर्हत) भिक्षु जानबूझ कर प्राणिहिंसा करने में अयोग्य है; २. अदत्तादान में अयोग्य है, ३. काममिथ्याचार में अयोग्य है; ४. मृषावाद में, ५. संग्रह कर के कामभोग करने में अयोग्य है जैसा कि गृहस्थ के समय करता था।

पाँच व्यसन (संलग्नता या नाश)—“जातिव्यसन, भोगव्यसन, रोगव्यसन, शीलव्यसन एवं दृष्टिव्यसन। आयुष्मानो! कोई प्राणि जातिव्यसन, भोगव्यसन या रोगव्यसन के कारण, देहावसान के बाद यह आवश्यक नहीं कि वह अपाय, दुर्गति विनिपात, निरय को प्राप्त हो; परन्तु शीलव्यसन एवं दृष्टिव्यसन के कारण निश्चय ही वह अपाय निरय (नरक) में गिरता है।

पाँच सम्पद्—“जातिसम्पद्, भोगसम्पद्, आरोग्यसम्पद्, शीलसम्पद् एवं दृष्टिसम्पद्। आयुष्मानो! कोई प्राणी जाति, भोग एवं आरोग्य सम्पद् के कारण मरणानन्तर स्वर्ग में ही पहुँचे यह आवश्यक नहीं; हाँ शील एवं दृष्टिसम्पत्ति से वह अवश्य स्वर्ग में ही पहुँचता है।

पाँच आदीनव—“(दुःशील पुरुष को शीलविपत्ति के कारण होने वाले पाँच दुष्परिणाम) १. आयुष्मानो! शीलविपन्न, दुःशील (दुराचारी) पुरुष प्रमाद के कारण प्रबल भोगक्षय को प्राप्त होता है, शीलविपन्न के लिये यह प्रथम दुष्परिणाम है। २. और फिर आयुष्मानो! उस शीलविपन्न के लिये जनता में पापमय निन्दात्मक बातें प्रारम्भ हो जाती हैं— यह....दूसरा दुष्परिणाम है। ३. फिर आयुष्मानो! वह

चतुत्थो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। पुन च परं, आवुसो, दुस्सीलो सीलविपन्नो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति, अयं पञ्चमो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

“पञ्च आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाय—इधावुसो, सीलवा सीलसम्पन्नो अप्पमादा-धिकरणं महन्तं भोगक्खन्धं अधिगच्छति, अयं पठमो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। पुन च परं, आवुसो, सीलवतो सीलसम्पन्नस्स कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति, अयं दुतियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। पुन च परं, आवुसो, सीलवा सीलसम्पन्नो [N.184] यज्जदेव परिसं उपसङ्कमति, यदि खत्तियपरिसं यदि ब्राह्मणपरिसं यदि गहपतिपरिसं यदि समणपरिसं, विसारदो उपसङ्कमति अमङ्कुभूतो, अयं ततियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। पुन च परं, आवुसो, सीलवा सीलसम्पन्नो असम्पूळ्हो कालं करोति, अयं चतुत्थो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। पुन च परं, आवुसो, सीलवा सीलसम्पन्नो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सगं लोकं उपपज्जति, अयं पञ्चमो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय।

“चोदकेन, आवुसो, भिक्खुना परं चोदेतुकामेन पञ्च धम्मे अज्झत्तं उपट्ठपेत्वा [R.237] परो चोदेतब्बो। कालेन वक्खामि नो अकालेन, भूतेन वक्खामि नो अभूतेन, सण्हेन वक्खामि नो फरुसेन, अत्थसंहितेन वक्खामि नो अनत्थसंहितेन, मेत्तचित्तेन वक्खामि नो दोसन्तरेना ति—चोदकेन, आवुसो, भिक्खुना परं चोदेतुकामेन इमे पञ्च धम्मे अज्झत्तं उपट्ठपेत्वा परो चोदेतब्बो।

२२. “पञ्च पथानिचङ्गानि— १. इधावुसो, भिक्खु सद्दो होति, सहहति [B.198]

शीलविपन्न जिस किसी भी परिषद् में जाय, भले ही क्षत्रियपरिषद् या ब्राह्मणपरिषद् में, वैश्यपरिषद् या श्रमणपरिषद् में—सर्वत्र ही वह अपने दुःशील के कारण अविशारद तथा मूक बन कर बैठा रहता है। ४. फिर अन्त में वह शीलविपन्न सम्मोह प्राप्त कर मृत्यु का ग्रास बनता है। ५. तथा वह अपने दुःशील के कारण मरणानन्तर अपाय, दुर्गतिमय नरक में जा गिरता है। यह उस शीलविपन्न की शीलविपत्ति से होने वाला पाँचवाँ दुष्परिणाम है।

शीलसम्पदा के पाँच गुण—“आयुष्मानो! यहाँ कोई भी शीलवान् पुरुष १. अपनी शीलसम्पत्ति के कारण होने वाले अप्रमाद के कारण विशाल भोगस्कन्ध का उपभोग करता है—यह शीलसम्पदा का पहला सुपरिणाम है। २....पुरुष का उस की शीलसम्पत्ति के कारण लोक में सब तरफ सुयश फैलने लगता है। ३ फिर वह शीलवान् पुरुष जिस किसी भी परिषद् में जाय....पूर्ववत्.... सर्वत्र बुद्धिमत्ता की बातें करता हुआ वहाँ शिर ऊँचा करके बैठता है। ४. फिर वह शीलवान् मृत्युके समय सम्मोह को प्राप्त नहीं करता....। एवं ५. वह काया छोड़ मरने के बाद सुगतिमय स्वर्गलोक में पहुँचता है। यह उसकी शीलसम्पत्ति का पाँचवाँ गुण है।

इन पाँच धर्मों को स्वीकार कर के ही आरोपी को दूसरे पर आरोप करना चाहिये— “आयुष्मानो! वे पाँच धर्म कौन से हैं? (१) उचित कहूँगा, अनुचित नहीं, (२) मृदुता से कहूँगा, कठोरता से नहीं; (३) सत्य ही कहूँगा, असत्य नहीं; (४) यथार्थ कहूँगा, अयथार्थ नहीं और (५) मैत्रीभाव से कहूँगा, द्वेषभाव से नहीं। आयुष्मानो! इस तरह आरोपकर्ता को दूसरे पर आरोप करने से पहले अपने चित्त में ये पाँच धर्म बैठा लेने चाहिये।

२२. पाँच प्रधानीय अङ्ग— “(प्रधान=धर्मप्राप्ति का प्रयास) यहाँ आयुष्मानो! (१) भिक्षु श्रद्धालु होता

तथागतस्स बोधिं—‘इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मासारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा’ ति; २. अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को, समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय; २. असठो होति अमायावी, यथाभूतं अत्तानं आविकत्ता सत्थरि वा विञ्जूसु वा सब्रह्मचारीसु; ३. आरद्धविरियो विहरति, अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु; ५. पञ्जवा होति, उदयत्थगामिनिया पञ्जाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मादुक्खक्खयगामिनिया।

२३. “पञ्च सुद्धावासा—अविहा, अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी, अकनिट्ठा।

“पञ्च अनागामिनो—अन्तरापरिनिब्बायी, उपहच्चपरिनिब्बायी, असङ्खारपरिनिब्बायी, ससङ्खारपरिनिब्बायी, उद्धंसोतो, अकनिट्ठगामी।

[R.238] २४. “पञ्च चेतोखिला। इधावुसो, भिक्खु सत्थरि कङ्कति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति। यो सो, आवुसो, भिक्खु सत्थरि कङ्कति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न [N.185] सम्पसीदति तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय। यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पठमो चेतोखिलो। पुन च परं, आवुसो, भिक्खु धम्मे कङ्कति विचिकिच्छति.... पे०..... सङ्गे कङ्कति विचिकिच्छति.... सिक्खाय कङ्कति विचिकिच्छति.... सब्रह्मचारीसु कुपितो होति अनत्तमनो आहतचित्तो खिलजातो। यो सो, आवुसो, भिक्खु सब्रह्मचारीसु कुपितो होति अनत्तमनो आहतचित्तो खिलजातो तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय। यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पञ्चमो चेतोखिलो।

है, तथागत द्वारा प्राप्त बोधि पर श्रद्धा रखता है—ऐसे वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध। २. अल्प आबाध (रोग) एवं आतङ्क (उपद्रव) वाला होता है, उसकी पाचनशक्ति ठण्डे या गर्म को पचाने की शक्ति रखती है। ३. शास्ता, विद्वान् तथा ज्येष्ठ गुरुभाइयों के सम्मुख अपने को यथाभूत (जैसा है वैसा ही प्रकट करने वाला) अशठ एवं अमायावी रहता है। ४. अकुशल धर्मों के नाश एवं कुशल धर्मों की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है एवं ५. अन्तस्तल तक पहुँचने वाली, सम्यक् दुःख क्षय की तरफ ले जाने वाली प्रज्ञा से युक्त रहता है।

२३. पाँच शुद्धावास (देवलोक)—“अविह(म), अतर्प्य, सुदर्श, सुदर्शी एकंकनिष्ठ।

पाँच अनागामी—“अन्तरापरिनिर्वायी, उपहत्यपरिनिर्वायी, असंस्कारपरिनिर्वायी, ससंस्कारपरिनिर्वायी एवं ऊर्ध्वस्रोतअकनिष्ठगामी।

२४. पाँच चेतस्कील—“(१) आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु अपने शास्ता (आचार्य) में कांक्षा, विचिकित्सा, सन्देह करता है, सन्देहरहित नहीं होता, श्रद्धा नहीं करता। उसका चित्त उदयोग तथा अनुयोग के लिये, निरन्तर लगे रहने के लिये, प्रयत्न के लिये नहीं झुकता—यह प्रथम चेतस्कील है। २. और फिर आयुष्मानो! कोई भिक्षु अपने धर्म में ...पूर्ववत् ...नहीं झुकता....। ३. और फिर आयुष्मानो! कोई भिक्षु सङ्घ में ...पूर्ववत् ...नहीं झुकता....। ४. और फिर कोई भिक्षु शिक्षा में....। ५. कोई भिक्षु गुरुभाइयों में दुष्टचित्त, असन्तुष्टमना हो कर कील के समान कुपित होता है। उसका चित्त उदयोग के लिये नहीं झुकता—यह पाँचवाँ चेतस्कील है।

२५. “पञ्च चेतसो विनिबन्धा—इधावुसो, भिक्खु कामेसु अवीतरागो होति अविगत-
च्छन्दो अविगतपेमो अविगतपिपासो अविगतपरिळाहो अविगततण्हो। यो सो, [B.199]
आवुसो, भिक्खु कामेसु अवीतरागो होति अविगतच्छन्दो अविगतपेमो अविगतपिपासो
अविगतपरिळाहो अविगततण्हो तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय।
यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पठमो चेतसो विनिबन्धो।
पुन च परं, आवुसो, भिक्खु काये अवीतरागो होति....पे०....रूपे अवीतरागो होति....पे०....पुन
च परं, आवुसो, भिक्खु यावदत्थं उदरावदेहकं भुञ्जित्वा सेय्यसुखं पस्ससुखं [R.239]
मिद्धसुखं अनुयुत्तो विहरति....पे०....पुन च परं, आवुसो, भिक्खु अञ्जतरं देवनिकायं पणिधाय
ब्रह्मचरियं चरति—‘इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन वा देवो वा भविस्सामि
देवञ्जतरो वा’ ति। यो सो, आवुसो, भिक्खु अञ्जतरं देवनिकायं पणिधाय ब्रह्मचरियं
चरति—‘इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन वा देवो वा भविस्सामि देवञ्जतरो
वा’ ति, तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय। यस्स चित्तं न नमति
आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पञ्चमो चेतसो विनिबन्धो।

“पञ्चिन्द्रियानि—चक्षुन्द्रियं, सोतिन्द्रियं, घानिन्द्रियं, जिह्विन्द्रियं, कायिन्द्रियं।

“अपरानि पि पञ्चिन्द्रियानि—सुखिन्द्रियं, दुक्खिन्द्रियं, सोमनस्सिन्द्रियं, दोमनस्सिन्द्रियं,
उपेक्खिन्द्रियं।

“अपरानि पि पञ्चिन्द्रियानि—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधि-[N.186]
न्द्रियं, पञ्जिन्द्रियं।

२६. “पञ्च निस्सरणिया धातुयो— इधावुसो, भिक्खुनो कामे मनसिकरोतो कामेसु
चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति; नेक्खम्मं खो पनस्स [R.240]
मनसिकरोतो नेक्खम्मे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। तस्स तं चित्तं सुगतं

२५. पाँच चित्तविनिबन्ध—“आयुष्मानो! जो भिक्षु कामवासनाओं में वीतराग, वीतच्छन्द, विगतप्रेमा,
विगतपिपास या तृष्णारहित नहीं होता, उसका चित्त उद्योग के लिये, अनुयोग के लिये यह चित्त का
प्रथम विनिबन्ध है। २. आयुष्मानो! जो भिक्षु काया में वीतराग। ३. जो भिक्षु रूप में वीतराग। ४.
.... जो भिक्षु यथेच्छ पेट भर खा कर शय्यासुख, स्पर्शसुख, मृद्व (आलस्य) सुख लेते हुए विहरता है।
५. और कोई भिक्षु किसी एक देवलोक की प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मचर्य साधना करता है—कि मैं इस शील,
व्रत तप के पालन से अमुक देवलोक में पहुँच जाऊँगा, उसका चित्त उद्योग के लिये प्रधान (प्रयत्न)
के लिये नहीं झुकता—यह पाँचवाँ चित्तविनिबन्ध है।

पाँच इन्द्रियाँ—“चक्षुरिन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय एवं कायेन्द्रिय।

अन्य पाँच इन्द्रियाँ—“सुखेन्द्रिय, दुःखेन्द्रिय, सौमनस्येन्द्रिय, दौर्मनस्येन्द्रिय एवं उपेक्षेन्द्रिय।

अन्य पाँच इन्द्रियाँ—“श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृतीन्द्रिय, समाधीन्द्रिय एवं प्रज्ञेन्द्रिय।

२६. पाँच निःसरणीय धातु—“आयुष्मानो! किसी भिक्षु द्वारा कामभोगों में मन लगाते—लगाते एक
समय ऐसा आता है, जब उस का चित्त कामभोगों की तरफ नहीं दौड़ता, उन के उपभोग से प्रसन्न नहीं
होता, उन में स्थित नहीं रहता, न उन से विमुक्त ही होता है; अपितु इसके विपरीत निष्कामता की तरफ
उसका चित्त दौड़ता है, प्रसन्न होता है, वहाँ ठहरता है। तब उसका वह चित्त कामभोगों से भली भाँति

सुभावितं सुवुद्धितं सुविमुक्तं विसंयुतं कामेहि । ये च कामपच्चया उपपज्जन्ति आसवा विधाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि । न सो तं वेदनं वेदेति । इदमक्खातं कामानं निस्सरणं । (१)

[B.200] “पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो ब्यापादं मनसिकरोतो ब्यापादे चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति; अब्यापादं खो पनस्स मनसिकरोतो अब्यापादे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति । तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुद्धितं सुविमुक्तं विसंयुतं ब्यापादेन । ये च ब्यापादपच्चया उपपज्जन्ति आसवा विधाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि । न सो तं वेदनं वेदेति । इदमक्खातं ब्यापादस्स निस्सरणं । (२)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो विहेसं मनसिकरोतो विहेसाय चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति; अविहेसं खो पनस्स मनसिकरोतो अविहेसाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति । तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुद्धितं सुविमुक्तं विसंयुतं विहेसाय । ये च विहेसापच्चया उपपज्जन्ति आसवा विधाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि । मसो तं वेदनं वेदेति । इदमक्खातं विहेसाय निस्सरणं । (३)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो रूपे मनसिकरोतो रूपेसु चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति; अरूपं खो पनस्स मनसिकरोतो अरूपे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति । तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुद्धितं सुविमुक्तं विसंयुतं रूपेहि । ये च रूपपच्चया उपपज्जन्ति आसवा विधाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि । न सो तं वेदनं वेदेति । इदमक्खातं रूपानं निस्सरणं । (४)

[N.187] “पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो सक्कायं मनसिकरोतो सक्काये चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति; सक्कायनिरोधं खो पनस्स मनसिकरोतो सक्कायनिरोधे [R.241] चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति । तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुद्धितं सुविमुक्तं विसंयुतं सक्कायेन । ये च सक्कायपच्चया उपपज्जन्ति आसवा विधाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि । न सो तं वेदनं वेदेति । इदमक्खातं सक्कायस्स निस्सरणं । (५)

विमुक्त हो कर, उन कामों के कारण जो आश्रव विधात, परिदाह उत्पन्न होते हैं, उन से वह मुक्त हो जाता है—यह कामों का निःसरण कहा गया है । (१)

“और फिर आयुष्मानो! भिक्षु द्वारा व्यापाद में मन लगाते लगाते एक समय ऐसा आ जाता है....पूर्ववत् यह व्यापाद का निःसरण कहा गया है । (२)

“और फिर आयुष्मानो! भिक्षु द्वारा विहिंसा में मन लगाते-लगाते पूर्ववत् यह विहिंसा का निःसरण कहा गया है । (३)

“और फिर आयुष्मानो! भिक्षु द्वारा रूपों में मन लगाते-लगाते पूर्ववत् यह रूपों का निःसरण कहा गया है । (४)

“और फिर आयुष्मानो! सत्काय (आत्मदृष्टि) में मन लगाते-लगाते एक समय ऐसा आता है कि उसका मन सत्काय की तरफ नहीं दौड़ता अपितु इसके विपरीत सत्कायनिरोध में उस का चित्त दौड़ता है वहाँ ठहरता है । तब उसका चित्त सत्कायदृष्टि से पूर्णतः विमुक्त हो जाता है । और उस सत्कायदृष्टि के कारण जो आश्रव, विधात या परिदाह उत्पन्न होते हैं उन से मुक्त हो जाता है । उस वेदना का अनुभव नहीं करता । यह सत्कायदृष्टि का निःसरण है । (५)

२७. पञ्च विमुत्तायतनानि। इधावुसो, भिक्खुनो सत्था धम्मं देसेति अञ्जतरो वा गरुट्टानिको सब्रह्मचारी। यथा यथा, आवुसो, भिक्खुनो सत्था धम्मं देसेति अञ्जतरो [B.201] वा गरुट्टानिको सब्रह्मचारी तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थपटिसंवेदी च होति धम्मपटिसंवेदी च। तस्स अत्थपटिसंवेदिनो धम्मपटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्धकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति; इदं पठमं विमुत्तायतनं।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति अञ्जतरो वा गरुट्टानिको सब्रह्मचारी, अपि च खो यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति....पे०.... [R.242] अपि च खो यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्जायं करोति....पे०....अपि च खो यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति.... पे०....अपि च ख्वस्स अञ्जतरं समाधिनिमित्तं सुग्गहितं होति सुमनसिकतं सूपधारितं सुप्पटिविद्धं पज्जाय। यथा यथा, आवुसो, भिक्खुनो अञ्जतरं समाधिनिमित्तं सुग्गहितं होति सुमनसिकतं सूपधारितं सुप्पटिविद्धं पज्जाय तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थपटिसंवेदी च होति धम्मपटिसंवेदी च। तस्स अत्थपटिसंवेदिनो धम्मपटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, [R.243] पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्धकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति; इदं पञ्चमं विमुत्तायतनं।

“पञ्च विमुत्तिपरिपाचनीया सञ्जा—अनिच्चसञ्जा, अनिच्चे दुक्खसञ्जा, दुक्खे अनत्तसञ्जा, पहानसञ्जा, विरागसञ्जा।

२७. पाँच विमुक्त्यायतन—“यहाँ, आयुष्मानो! (१) कोई शास्ता या कोई अन्य शास्ता के समान ज्येष्ठ गुरुभाई किसी भिक्षु को धर्म का उपदेश करता है। आयुष्मानो! उस समय जैसे-जैसे शास्ता द्वारा धर्म का उपदेश किया जाता है वैसे-वैसे वह भिक्षु उस धर्म के अर्थ की तथा उस धर्म की गम्भीरता से परिचित होने लगता है। यों वह उस धर्म की उसके अर्थ की गम्भीरता को जानता हुआ प्रमुदित होने लगता है। प्रमुदित होने पर उसे उस धर्म के प्रति प्रीति होने लगती है, तब प्रीतिमना का शरीर स्थिर होने लगता है। तदनन्तर उसे एक विशेष सुख का अनुभव होने लगता है। तब इस सुख के प्रभाव से उसका चित्त एकाग्र हो जाता है। यह प्रथम विमुक्त्यायतन है।

(२) “और फिर, आयुष्मानो! उस भिक्षु को कोई शास्ता या ज्येष्ठ गुरुभाई धर्म का उपदेश नहीं करता तो भी वह अपने पूर्व श्रुत के अनुसार दूसरों को उस धर्म का उपदेश करता है तो वह। (३) अपितु तु पूर्व श्रुत का शास्त्रानुसार विस्तृत स्वाध्याय करता है तो वह। (४).... अपितु पूर्वश्रुत का शास्त्रानुसार चित्त से अनुवितर्क तथा अनुविचार करता है, मन में चिन्तन करता है। (५) अपितु उसको पूर्वश्रुत का कोई समाधिनिमित्त (समाधिकारण) सुगृहीत, सुमनसिकृत, सुप्रधारित (भली भाँति समझा हुआ) और प्रज्ञा द्वारा सुप्रतिबद्ध (नीचे तल तक जाना गया) होने लगता है, वैसे-वैसे वह भिक्षु उस धर्म के अर्थ की गम्भीरता से परिचित होने लगता है। यों वह उस धर्म की, उसके अर्थ की गम्भीरता को जानता हुआ प्रमुदित होने लगता है पूर्ववत् चित्त एकाग्र हो जाता है। यह पञ्चम विमुक्त्यायतन है।

पाँच विमुक्तिपरिपाचनीय संज्ञा—“१. अनित्यसंज्ञा, २. अनित्य में दुःखसंज्ञा, ३. दुःख में आनात्मसंज्ञा, ४. प्रहाणसंज्ञा एवं ५. विराग संज्ञा।

[N.188] “इमे खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन पञ्च धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं.....पे०.....अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ॥

छ धम्मा सम्मदक्खाता

२८. “अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन छ धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं.....पे०.....अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । कतमे छ ?

[B.202] “छ अङ्गत्तिकानि आयतनानि—चक्खायतनं, सोतायतनं, घानायतनं, जिह्वायतनं, कायायतनं, मनायतनं ।

“छ बाहिरानि आयतनानि—रूपायतनं, सद्दायतनं, गन्धायतनं, रसायतनं, फोटुब्बायतनं, धम्मयतनं ।

“छ विज्जाणकाया—चक्खुविज्जाणं, सोतविज्जाणं, घानविज्जाणं, जिह्वाविज्जाणं, कायविज्जाणं, मनोविज्जाणं ।

“छ फस्सकाया—चक्खुसम्फस्सो, सोतसम्फस्सो, घानसम्फस्सो, जिह्वासम्फस्सो, कायसम्फस्सो, मनोसम्फस्सो ।

[R.244] “छ वेदनाकाया—चक्खुसम्फस्सजा वेदना, सोतसम्फस्सजा वेदना, घानसम्फस्सजा वेदना, जिह्वासम्फस्सजा वेदना, कायसम्फस्सजा वेदना, मनोसम्फस्सजा वेदना ।

“छ सज्जाकाया—रूपसज्जा, सद्दसज्जा, गन्धसज्जा, रससज्जा, फोटुब्बसज्जा, धम्मसज्जा ।

“छ सञ्चेतनाकाया—रूपसञ्चेतना, सद्दसञ्चेतना, गन्धसञ्चेतना, रससञ्चेतना, फोटुब्बसञ्चेतना, धम्मसञ्चेतना ।

“छ तण्हाकाया—रूपतण्हा, सद्दतण्हा, गन्धतण्हा, रसतण्हा, फोटुब्बतण्हा, धम्मतण्हा ।

“आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, ज्ञानी भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मों के ये पञ्चक कहे हैं । इनको हमें एकतापूर्वक ग्रहण करना चाहिये, इन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये....हितकर एवं सुखप्रद हैं ।

सम्यग्व्याख्यात धर्मों का षट्क— २८. “आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मों का षट्क भी बताया है । उनके विषय में हम सब को एक हो कर रहना चाहिये । उन पर किसी का विवाद नहीं करना चाहिये । कौन से छह ?

छह आध्यात्मिक आयतन— “चक्षुरायतन, श्रोत्रायतन, घ्राणायतन, जिह्वायतन, कायायतन एवं मन आयतन ।

छह बाह्य आयतन—“रूपायतन, शब्दायतन, गन्धायतन, रसायतन, स्पर्शायतन एवं धर्मायतन ।

छह विज्ञानकाय—“चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान एवं मनोविज्ञान ।

छह स्पर्शकाय—“चक्षुःसंस्पर्श, श्रोत्रसंस्पर्श, घ्राणसंस्पर्श, जिह्वासंस्पर्श, कायसंस्पर्श एवं मनसंस्पर्श ।

छह वेदनाकाय—“चक्षुःसंस्पर्शज वेदना, श्रोत्रसंस्पर्शज वेदना, घ्राणसंस्पर्शज वेदना, जिह्वासंस्पर्शज वेदना, कायसंस्पर्शज वेदना एवं मनःसंस्पर्शज वेदना ।

छह संज्ञाकाय—“रूपसंज्ञा, शब्दसंज्ञा, गन्धसंज्ञा, रससंज्ञा, स्पर्शसंज्ञा एवं धर्मसंज्ञा ।

२९. "छ अगारवा— इधावुसो, भिक्खु सत्थरि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो; धम्मे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो; सङ्खे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो; सिक्खाय अगारवो विहरति अप्पतिस्सो; अप्पमादे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो; पटिसन्थारे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो।

"छ गारवा— इधावुसो, भिक्खु सत्थरि सगारवो विहरति सप्पतिस्सो; धम्मे [N.189] सगारवो विहरति सप्पतिस्सो; सङ्खे सगारवो विहरति सप्पतिस्सो; सिक्खाय सगारवो विहरति सप्पतिस्सो; अप्पमादे सगारवो विहरति सप्पतिस्सो; पटिसन्थारे सगारवो विहरति सप्पतिस्सो।

"छ सोमनस्सूपविचारा— चक्खुना रूपं दिस्वा सोमनस्सट्ठानियं रूपं [B.203] उपविचरति; सोतेन सदं सुत्वा....घानेन गन्धं घायित्वा जिह्वाय रसं सायित्वा कायेन फोट्टब्बं फुसित्वा....मनसा धम्मं विज्जाय सोमनस्सट्ठानियं धम्मं उपविचरति।

"छ दोमनस्सूपविचारा— चक्खुना रूपं दिस्वा दोमनस्सट्ठानियं रूपं उपविचरति [R.245] पे०....मनसा धम्मं विज्जाय दोमनस्सट्ठानियं धम्मं उपविचरति।

"छ उपेक्खूपविचारा— चक्खुना रूपं दिस्वा उपेक्खाट्ठानियं रूपं उपविचरति....पे०....मनसा धम्मं विज्जाय उपेक्खाट्ठानियं धम्मं उपविचरति।

"छ सारणीया धम्मा— इधावुसो, भिक्खुनो मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो सारणीयो पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामगिया एकीभावाय संवत्तति। (१)

छह सञ्चेतना— "रूपसञ्चेतना, शब्दसञ्चेतना, गन्धसञ्चेतना रससञ्चेतना, स्प्रष्टव्यसञ्चेतना एवं धर्मसञ्चेतना।

छह तृष्णाकाय— "रूपतृष्णा, शब्दतृष्णा, गन्धतृष्णा, रसतृष्णा, स्प्रष्टव्यतृष्णा एवं धर्मतृष्णा।

२९. छह अगौरव— "आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु (१) शास्ता में अगौरव (सम्मानरहित) एवं आश्रयरहित हो कर साधना करता है; (२) धर्म में। (३) सङ्घ में। (४) शिक्षा में। (५) अप्रमाद में। एवं (६) प्रतिसंस्तार (बड़ों के मैत्रीपूर्ण स्वागत) में अगौरव एवं आश्रय रहित होता है। (विस्तार के लिये द्र० इस प्रसङ्ग की अट्ठकथा, पृ० ३७९)

छह गौरव— "....(१) शास्ता में सगौरव (सम्मान) एवं सप्रतिश्रय (आदरभावना सहित) होकर साधना करता है। (२) धर्म में। (३) सङ्घ में। (४) शिक्षा में। (५) अप्रमाद (युक्त साधना) में एवं (६) प्रतिसंस्तार में सगौरव एवं सप्रतिश्रय होकर साधना करता है।

छह सोमनस्य-उपविचार— "(१) चक्षु से रूप देख कर प्रसन्नतादायक रूपों का विचार करता है। (२) श्रोत्र से शब्द सुन कर। (३) घ्राण से गन्ध सूँघ कर। (४) जिह्वा से रस चख कर। (५) काया से स्प्रष्टव्य का स्पर्श कर। एवं (६) मन से धर्मों को जानकर प्रसन्नता देने वाले धर्मों का विचार करता है।

छह दोर्मनस्य-उपविचार— "(१) चक्षु से रूप देखकर, अप्रसन्नता प्रदान करने वाले रूपों का विचार करता है। (२) श्रोत्र से शब्द सुन कर। (३) घ्राण से। (४) जिह्वा से। (५) काया से। एवं (६) मन से धर्मों को जान कर अप्रसन्नताप्रदायक धर्मों का विचार करता है।

छह उपेक्षा-उपविचार— "(१) चक्षु से रूप देखकर उपेक्षास्थानीय रूपों का विचार करता है; (२) श्रोत्र से शब्द; (३) घ्राण से गन्ध; (४) जिह्वा से रस; (५) काया से स्प्रष्टव्य (६) मन से धर्म देख कर उपेक्षास्थानीय धर्मों का विचार करता है।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो मेतं वचीकम्मं पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो सारणीयो....पे०....एकीभावाय संवत्तति। (२)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो मेतं मनोकम्मं पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो सारणीयो....पे०....एकीभावाय संवत्तति। (३)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु ये ते लाभा धम्मिका धम्मलद्धा अन्तमसो पत्तपरिया- [N.190] पन्नमत्तं पि, तथारूपेहि लाभेहि अप्पटिविभत्तभोगी होति, सीलवन्तेहि सब्रह्मचारीहि साधारणभोगी। अयं पि धम्मो सारणीयो....पे०....एकीभावाय संवत्तति। (४)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु यानि तानि सीलानि अखण्डानि अच्छिद्धानि असबलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्जुप्पसत्थानि अपरामद्धानि समाधिसंवत्तनिकानि तथारूपेसु सीलेसु [R.246] सीलसामञ्जगतो विहरति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो सारणीयो पे०....एकीभावाय संवत्तति। (५)

[B.204] “पुन च परं, आवुसो, भिक्खु यायं दिट्ठि अरिया निय्यानिका निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाय तथारूपाय दिट्ठिया दिट्ठिसामञ्जगतो विहरति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो सारणीयो पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तति। (६)

३०. छ विवादमूलानि— इधावुसो, भिक्खु कोधनो होति उपनाही। यो सो, आवुसो, भिक्खु कोधनो होति उपनाही सो सत्थरि पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सङ्खे पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सिक्खाय पि न परिपूरकारी

छह सारणीय धर्म—“यहाँ, आयुष्मन्! भिक्षु को सब्रह्मचारियों में गुप्त या प्रकट मैत्रीयुक्त कायिक कर्म प्रकट होता है—यह धर्म भी सारणीय, प्रिय कारक, गुरुकारक है; संग्रह, अविवाद एवं एकता के लिये हैं। (१)

“.... मैत्रीयुक्त वाचिक कर्म....। (२)

“.... मैत्रीयुक्त मानसिक कर्म....। (३)

“भिक्खु अपने धार्मिक, धर्मलब्ध लाभों को, भले ही वे अन्ततः पात्र में लेशमात्र के लिये (अल्पमात्रा में) ही क्यों न हों, बाँट कर भोगने वाला होता है; शीलवान् सब्रह्मचारियों के साथ भोगने वाला होता है—यह भी सारणीय, प्रियकारक एवं गुरुकारक है। (४)

“.... जो अखण्ड, अच्छिद्र, अशबल, अकल्मष, उचित (भोग्य) विद्वज्जनप्रसंसित, अनिन्दित, समाधिगामी शील है, वैसे शीलों में सब्रह्मचारियों के साथ गुप्त या प्रकट शीलश्रामण्य को प्राप्त हो कर साधना करता है—यह भी....। (५)

“.... जो यह अनैर्याणिक दृष्टि है, जो कि वैसा करने वाले को भली भाँति दुःखक्षय की तरफ ले जाती है, वैसी दृष्टि से सब्रह्मचारियों के साथ गुप्त एवं प्रकट से व्यवहार करता है। यह धर्म भी सारणीय, प्रियकारक एवं गुरुकारक है। (६)

३०. छह विवादमूल—“यहाँ, आयुष्मानो! कोई भिक्षु क्रोधी या उपनाही (शत्रुभाव रखने वाला, या पाषण्डी) होता है, आयुष्मानो! वह अपने शास्ता में असम्मान व हीन भाव रखता है, धर्म में भी सङ्घ में भी शिक्षा भी भिक्षु-नियमों को पूर्णतया पालन नहीं करता। आयुष्मानो! ऐसा भिक्षु जो सङ्घ

होति । यो सो, आवुसो, भिक्खु सत्थरि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सङ्घे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सिक्खाय न परिपूरकारी, सो सङ्घे विवादं जनेति, यो होति विवादो बहुजनअहिताय बहुजनअसुखाय अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं । एवरूपं चे तुम्हे, आवुसो विवादमूलं अञ्जत्तं वा बहिद्धा वा समनुपस्सेय्याथ, तत्र तुम्हे, आवुसो, तस्सेव पापकस्स विवादमूलस्स पहानाय वायमेय्याथ । एवरूपं चे तुम्हे, आवुसो, विवादमूलं अञ्जत्तं वा बहिद्धा वा न समनुपस्सेय्याथ, तत्र तुम्हे, आवुसो, तस्सेव पापकस्स विवादमूलस्स आयतिं अनवस्सवाय पटिपज्जेय्याथ । एवमेतस्स पापकस्स विवादमूलस्स पहानं होति । एवमेतस्स पापकस्स विवादमूलस्स आयतिं अनवस्सवो होति । (१)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु मक्खी होति पळासी.... पे०.... इस्सुकी होति [R.247] मच्छरी.... सठो होति मायावी.... पापिच्छो होति मिच्छादिट्ठि सन्दिट्ठिपरामासी होति [N.191] आधानग्गाही दुप्पतिनिस्सग्गी । यो सो, आवुसो, भिक्खु सन्दिट्ठिपरामासी होति आधानग्गाही दुप्पतिनिस्सग्गी, सो सत्थरि पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सङ्घे पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सिक्खाय पि न परिपूरकारी होति । यो, सो, आवुसो, भिक्खु सत्थरि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे अगारवो विहरति [B.205] अप्पतिस्सो, सङ्घे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सिक्खाय न परिपूरकारी, सो सङ्घे विवादं जनेति, यो होति विवादो बहुजनअहिताय बहुजनअसुखाय अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं । एवरूपं चे तुम्हे, आवुसो, विवादमूलं अञ्जत्तं वा बहिद्धा वा समनुपस्सेय्याथ, तत्र तुम्हे, आवुसो, तस्सेव पापकस्स विवादमूलस्स पहानाय वायमेय्याथ । एवरूपं चे तुम्हे, आवुसो विवादमूलं अञ्जत्तं वा बहिद्धा वा न समनुपस्सेय्याथ, तत्र तुम्हे, आवुसो, तस्सेव पापकस्स विवादमूलस्स आयतिं अनवस्सवाय पटिपज्जेय्याथ । एवमेतस्स पापकस्स विवाद-मूलस्स पहानं होति । एवमेतस्स पापकस्स विवादमूलस्स आयतिं अनवस्सवो होति । (२-६)

“छ धातुयो—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु, आकासधातु, विज्जाणधातु ।

में भी ऐसे विवाद उत्पन्न करता है जो बहुतों के लिये अहितकर एवं असुखप्रद हो सकते हैं, देव—मनुष्यों के लिये अनर्थकर भी हो सकते हैं । आयुष्मानो! आप लोग ऐसे विवाद अपने में या बाहर (दूसरों में) देखो तो आयुष्मानो! आप लोग उस दुष्ट विवादमूल के नाश का प्रयत्न करें । आयुष्मानो! उस दुष्ट विवादमूल को वर्तमान में, अपने में या दूसरों में न देखो तो, भविष्य में, तुम लोगों में ऐसा विवादमूल उत्पन्न न हो जाय—ऐसा प्रयत्न करें । इस तरह उस दुष्ट विवादमूल का वर्तमान में प्रहान होता है और भविष्य में उसका उत्पाद नहीं हो पाता । (१)

“और फिर आयुष्मानो! कोई भिक्षु भ्रक्षी (गुणवान् का अवमानक) या पलासी (निहुरस्वभाव) होता है। (२) ईर्ष्यालु या मत्सरी (वृथाभिमानी) होता है। (३) शठ एवं मायावी (धूर्त) होता है। (४) पापेच्छु एवं मिथ्यादृष्टि होता है। (५) सन्दृष्टिपरामर्शी (तत्काल चाहने वाला), आधानग्राही (हठी) होता है, दुष्प्रतिनिगर्मी (कठिनाता से छोड़ने वाला) होता है उत्पाद नहीं होता । (६)

छ धातु—“पृथ्वीधातु, अब्धातु, तेजोधातु, वायुधातु, आकाशधातु, एवं विज्ञानधातु ।

[R.248] ३१. “छ निस्सरणिया धातुयो। इधावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘मेत्ता हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे ब्यापादो चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो ‘मा हेवं’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच, मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि, न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं, न हि भगवा एवं वदेय्य। अट्टानमेतं, आवुसो, अनवकासो यं मेत्ताय चेतोविमुत्तिया भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय, अथ च पनस्स ब्यापादो चित्तं परियादाय ठस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। निस्सरणं हेतं, आवुसो, ब्यापादस्स—यदिदं मेत्ता चेतोविमुत्ती’ ति। (१)

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘करुणा हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे विहेसा चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो ‘मा हेवं’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच, मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि, [N.192, B.206] न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं, न हि भगवा एवं वदेय्य। अट्टानमेतं, आवुसो, अनवकासो यं करुणाय चेतोविमुत्तिया भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय, अथ च पनस्स विहेसा चित्तं परियादाय ठस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। निस्सरणं हेतं, आवुसो विहेसाय—यदिदं करुणा चेतोविमुत्ती’ ति। (२)

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘मुदिता हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे अरति चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो ‘मा हेवं’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच, मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि, न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं, न हि भगवा एवं वदेय्य। अट्टानमेतं, आवुसो, अनवकासो [R.249] यं मुदिताय चेतोविमुत्तिया भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय, अथ च पनस्स अरति चित्तं परियादाय ठस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। निस्सरणं हेतं, आवुसो, अरतिया—यदिदं मुदिता चेतोविमुत्ती’ ति। (३)

३१. छह निःसरणीय धातु—“(१) आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु ऐसा कहे—‘मैंने मैत्रीचेतोविमुक्ति को तो भली भाँति भावित कर लिया है, बढ़ा लिया है, दूर तक पहुँचा दिया है, वास्तविकता पर ला दिया है, वह मेरे लिये अनुष्ठित, परिचित एवं सुसमारब्ध है; परन्तु फिर भी मेरा चित्त द्रोह को नहीं छोड़ पा रहा है, वह उसे जकड़े बैठा है’, तो उसे यह उत्तर देना चाहिये—‘आयुष्मान्! ऐसा न बोलो, भगवान् पर मिथ्या आरोप न लगाओ। भगवान् पर आरोप लगाना उचित (साधु) नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। क्यों कि यह सम्भव ही नहीं है कि मैत्रीचेतोविमुक्ति को भली भाँति भावित, बहुलीकृत, यानीकृत, वस्तुकृत, अनुष्ठित, परिचित एवं सुसमारब्ध कर लेने के बाद भी किसी के चित्त को व्यापाद (परद्रोह) जकड़े बैठा रहे। मैत्रीचेतोविमुक्ति तो, आयुष्मन्, व्यापाद को दूर हटाने का ही नाम है!’

(२) “ फिर, आयुष्मानो! कोई भिक्षु ऐसा कहे—‘मैंने करुणाचेतोविमुक्ति को तो भली भाँति पूर्ववत् सुसमारब्ध कर लिया है; परन्तु मेरा चित्त परहिंसा को अब भी नहीं छोड़ पा रहा है’, तो उसे यह उत्तर देना चाहिये—‘आयुष्मन्! ऐसा न बोलो पूर्ववत् आयुष्मन्! हिंसा को दूर हटाने का नाम ही करुणाचेतोविमुक्ति है।

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘उपेक्खा हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे रागो चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो ‘मा हेवं’ तिस्स, वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच, मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि, न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं, न हि भगवा एवं वदेय्य। अट्टानमेतं, आवुसो, अनवकासो यं उपेक्खाय चेतोविमुत्तिया भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय, अथ च पनस्स रागो चित्तं परियादाय ठस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। निस्सरणं हेतं, आवुसो, रागस्स—यदिदं उपेक्खा चेतोविमुत्ती’ ति। (४)

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘अनिमित्ता हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे निमित्तानुसारि विज्जाणं होती’ ति, सो ‘मा हेवं’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच, मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि, न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं, न हि भगवा एवं वदेय्य। अट्टानमेतं, आवुसो, अनवकासो यं अनिमित्ताय चेतोविमुत्तिया भाविताय बहुलीकताय यानीकताय [B.207] वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय, अथ च पनस्स निमित्तानुसारि विज्जाणं भविस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। निस्सरणं हेतं, आवुसो, सब्बनिमित्तानं—यदिदं अनिमित्ता चेतोविमुत्ती’ ति। (५)

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘अस्मी ति खो मे विगतं, अयमहमस्मी [N.193] ति न समनुपस्सामि, अथ च पन मे विचिकिच्छाकथङ्कथासल्लं चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो ‘मा हेवं’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच, मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि, न [R.250] हि साधु भगवतो अब्भक्खानं, न हि भगवा एवं वदेय्य। अट्टानमेतं, आवुसो, अनवकासो यं अस्मी ति विगते अयमहमस्मी ति असमनुपस्सतो, अथ च पनस्स विचिकिच्छाकथङ्कथासल्लं चित्तं परियादाय ठस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। निस्सरणं हेतं, आवुसो, विचिकिच्छा-कथङ्कथासल्लस्स—यदिदं अस्मिमानसमुग्घातो’ ति। (६)

३२. “छ अनुत्तरियानि—दस्सनानुत्तरियं, सवनानुत्तरियं, लाभानुत्तरियं, सिक्खानुत्तरियं, पारिचरियानुत्तरियं, अनुस्सतानुत्तरियं।

(३) “आयुष्मानो! यदि कोई भिक्षु कहे—‘मैंने मुदिताचेतोविमुक्ति तो ...अरति (चित्त न लगना) मेरे चित्त को नहीं छोड़ पा रही है’ तो अरति का निस्सरण ही मुदिताचेतोविमुक्ति है।

(४) “आयुष्मानो! उपेक्षा चेतोविमुक्ति को राग मेरे चित्त को राग का निस्सरण ही उपेक्षाचेतोविमुक्ति है।

(५) “आयुष्मानो! अनिमित्तता चेतोविमुक्ति को तो यह निमित्तानुसारी विज्ञान मेरे चित्त को जकड़े बैठा है सभी निमित्तों का त्याग ही अनिमित्तता चेतोविमुक्ति है।

(६) “आयुष्मानो! यदि कोई भिक्षु यह कहे—‘मेरा अस्मिमान (‘मैं हूँ’—यह भाव) तो चला गया, ‘यह मैं हूँ’—ऐसा मुझे कहीं भान नहीं होता, परन्तु विचिकित्सा (सन्देह) बादविवादरूपी शल्य मेरे चित्त को जकड़े बैठा है’। क्योंकि इस विचिकित्सा कथङ्कथाशल्य (कहा सुनी)को उखाड़ फेंकना ही अस्मिमान का समुद्घात (नाश) है।

“छ अनुस्सतिट्ठानानि—बुद्धानुस्सति, धम्मानुस्सति, सङ्गानुस्सति, सीलानुस्सति, चागानुस्सति, देवतानुस्सति।

३३. “छ सततविहारो। इधवुसो, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा नेव सुमनो होति न दुम्मनो, उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। सोतेन सद्दं सुत्वा....पे०.....मनसा धम्मं विज्जाय नेव सुमनो होति न दुम्मनो, उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो।

[R.251] ३४. “छब्भिजातियो— इधवुसो, एकच्चो कण्हाभिजातिको समानो कण्हं धम्मं अभिजायति; इध पनावुसो, एकच्चो कण्हाभिजातिको समानो सुक्कं धम्मं अभिजायति; इध पनावुसो, एकच्चो कण्हाभिजातिको समानो अकण्हं असुक्कं निब्बानं अभिजायति; इध पनावुसो, एकच्चो सुक्काभिजातिको समानो सुक्कं धम्मं अभिजायति; इध पनावुसो, एकच्चो सुक्काभिजातिको समानो कण्हं धम्मं अभिजायति; इध पनावुसो, एकच्चो सुक्काभिजातिको समानो अकण्हं [B.208] असुक्कं निब्बानं अभिजायति।

“छ निब्बेधभागिया सज्जा—अनिच्चसज्जा, अनिच्चे दुक्खसज्जा, दुक्खे अनत्तसज्जा, पहानसज्जा, विरागसज्जा, निरोधसज्जा।

“इमे खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन छ धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं....पे०....अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।

सत्त धम्मा सम्मदक्खाता

३५. “अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सत्त

३२. छह अनुत्तरीय (उत्तम)— “दर्शनानुत्तरीय, श्रवणानुत्तरीय, लाभानुत्तरीय, शिक्षानुत्तरीय, परिचर्यानुत्तरीय एवं अनुस्मृत्यनुत्तरीय।

छह अनुस्मृतिस्थान—“बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, सङ्गानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति एवं देवतानुस्मृति।

३३. छह सतत विहार— “आयुष्मानो! यहाँ भिक्षु चक्षु से किसी रूप को देख कर न अपने मन में सौमनस्य लाता है, न दौर्मनस्य। वह स्मरण करता हुआ, सर्वत्र उपेक्षापूर्ण होकर साधना करता है। (१) श्रोत्र से शब्द सुन कर (२) घ्राण से गन्ध सूँघ कर (३) जिह्वा से रस चख कर (४) काया से स्प्रष्टव्य का स्पर्श कर (५) मन से धर्मों को जान कर न अपने मन में साधना करता है। (६)

३४. छह अभिजातियाँ (जन्म)— “आयुष्मानो! यहाँ कोई प्राणी कृष्ण अभिजातिक हो कर कृष्ण (पाप) कर्म करता है। (१) कोई कृष्णाभिजातिक होकर भी शुक्ल (पुण्य) कर्म करता है। (२) कोई कृष्णाभिजातिक हो कर भी अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाण को पैदा करता है। (३) कोई शुक्लाभिजातिक होकर शुक्ल कर्म ही करता है। (४) कोई शुक्लाभिजातिक होकर भी कृष्ण कर्म करने में तत्पर हो जाता है। (५) और आयुष्मानो! कोई शुक्लाभिजातिक होकर अकृष्ण अशुक्ल निर्वाण को पैदा करता है। (६)

छह निर्वेधभागीय संज्ञा—“अनित्यसंज्ञा (१), अनित्य में दुःखसंज्ञा (२), दुःख में अनात्मसंज्ञा (३), प्रहाणसंज्ञा (४), विरागसंज्ञा (५) एवं निरोधसंज्ञा (६)।

“आयुष्मानो! तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा ज्ञानी उन भगवान् ने इस तरह धर्मों के षट्कों का भली भाँति व्याख्यान किया है। इन पर हम सबको एकमत रहना चाहिये। इन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये हितकर एवं सुखप्रद है॥

धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं.... पे०.... अत्थाय हिताय सुखाय [N.194]
देवमनुस्सानं। कतमे सत्त ?

“सत्त अरियधनानि—सद्धान्नं, शीलधनं, हिरिधनं, ओत्तप्पधनं, सुतधनं, चागधनं,
पञ्जाधनं।

“सत्त बोञ्जङ्गा—सतिसम्बोज्झङ्गो, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो, विरिय-[R.252]
सम्बोज्झङ्गो, पीतिसम्बोज्झङ्गो, पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो, समाधिसम्बोज्झङ्गो, उपेक्खसम्बोज्झङ्गो।

“सत्त समाधिपरिक्खारा—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो,
सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति।

“सत्त असद्धम्मा—इधावुसो, भिक्खु अस्सद्धो होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी
होति, कुसीतो होति, मुट्ठस्सति होति, दुप्पज्जो होति।

“सत्त सद्धम्मा—इधावुसो, भिक्खु सद्धो होति, हिरिमा होति, ओत्तप्पी होति, बहुस्सुतो
होति, आरद्धविरियो होति, उपट्ठितस्सति होति, पञ्चवा होति।

“सत्त सप्पुरिसधम्मा—इधावुसो, भिक्खु धम्मज्जू च होति, अत्थज्जू च, अत्तज्जू च,
मत्तज्जू च, कालज्जू च, परिसज्जू च, पुगलज्जू च।

३६. “सत्त निहसवत्थूनि—इधावुसो, भिक्खु १. सिक्खासमादाने तिब्बच्छन्दो [B.209]
होति, आयतिं च सिक्खासमादाने अविगतपेमो; २. धम्मनिसन्तिया तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं
च धम्मनिसन्तिया अविगतपेमो; ३. इच्छाविनये तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च इच्छाविनये
अविगतपेमो; ४. पटिसल्लाने तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च पटिसल्लाने अविगतपेमो; ५.

धर्मो के सम्यग्व्याख्यात सप्तक—३५. आयुष्मानो! उन तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा ज्ञानी भगवान् ने धर्मों के सप्तकों
का (भी) भली भाँति (यथार्थ) व्याख्यान किया है। उन पर हम सबको एकमत रहना चाहिये। कोई विवाद
नहीं करना चाहिये। यही देव-मनुष्यों के लिये हितकर सुखप्रद एवं सार्थक होगा।

सात आर्यधन—“(१) श्रद्धाधन, (२) शीलधन, (३) ह्रीधन, (४) अवत्राप्य (पापभीरुता)धन, (५)
श्रुतधन, (६) त्यागधन एवं (७) प्रज्ञाधन।

सात बोध्यङ्ग—“(१) स्मृतिसम्बोध्यङ्ग, (२) धर्मविचय....., (३) वीर्य....., (४) प्रीति....., (५) प्रशब्धि
(शान्ति)....., (६) समाधि....एवं (७) उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग।

सात समाधिपरिष्कार—“(१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक्सङ्कल्प, (३) सम्यग्वाक्, (४) सम्यक्कर्मन्त,
(५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग्व्यायाम, एवं (७) सम्यक्स्मृति।

सात असद्धर्म—“आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु (१) अश्रद्धालु होता है, (२) अहीक, (३) अनपत्रप.....
(४) अल्पश्रुत, (५) कुसीद (अलस), (६) मूढस्मृति, एवं (७) दुष्प्रज्ञ होता है।

सात सद्धर्म—“आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु (१) श्रद्धालु होता है, (२) ह्रीमान्....., (३) अपत्रपी
(पापभीरु)....., (४) बहुश्रुत....., (५) आरब्धवीर्य (आलस्यरहित)....., (६) उपस्थित स्मृतिमान्....., एवं (७)
प्रज्ञावान् होता है।

सात सत्पुरुषधर्म—“आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु (१) धर्मज्ञ होता है, (२) अर्थज्ञ....., (३)
आत्मज्ञ....., (४) मात्रज्ञ....., (५) कालज्ञ....., (६) परिषज्ज्ञ (सभा में बैठने के नियमों का ज्ञाता)....., एवं (७)
पुद्गलज्ञ होता है।

[R.253] विरियारम्भे तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च विरियारम्भे अविगतपेमो; ६. सतिनेपक्के तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च सतिनेपक्के अविगतपेमो; ७. दिट्ठिपटिवेधे तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च दिट्ठिपटिवेधे अविगतपेमो।

“सत्त सज्जा—अनिच्चसज्जा, अनत्तसज्जा, असुभसज्जा, आदीनवसज्जा, विराग-सज्जा, निरोधसज्जा।

“सत्त बलानि—सद्धाबलं, विरियबलं, हिरिबलं, ओत्तप्पबलं, सतिबलं, समाधिबलं, पज्जाबलं।

३७. “सत्त विज्जाणट्ठितियो। सन्तावुसो, सत्ता नानत्तकाया नानत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—[N.195] मनुस्सा, एकच्चे च देवा, एकच्चे च विनिपातिका। अयं पठमा विज्जाणट्ठिति। (१)

“सन्तावुसो, सत्ता नानत्तकाया एकत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा ब्रह्माकायिका पठमाभिनिब्बत्ता। अयं दुतिया विज्जाणट्ठिति। (२)

“सन्तावुसो, सत्ता एकत्तकाया नानत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा आभस्सरा। अयं ततिया विज्जाणट्ठिति। (३)

“सन्तावुसो, सत्ता एकत्तकाया एकत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा सुभकिण्हा। अयं चतुत्थी विज्जाणट्ठिति। (४)

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो रूपसज्जानं समतिक्कमा, पटिघसज्जानं अत्थङ्गमा,

३६. सात निर्दश' वस्तुएँ—“आयुष्मानो! कोई भिक्षु (१) शिक्षा (भिक्षु नियम) के समादान (ग्रहण) में तीव्रच्छन्द (बहुत अनुराग) वाला होता है। भविष्य में भी शिक्षा ग्रहण करने में प्रेमरहित नहीं होता। (२) धर्मनिशान्ति (विपश्यना) में तीव्रच्छन्द होता है। (३) इच्छाविनय (तृष्णात्याग) में तीव्रच्छन्द। (४) प्रतिसत्तयन (एकान्तवास) में। (५) वीर्यारम्भ (उदयोग) में। (६) स्मृति के निष्पाक्य (परिपाक = बुद्धिमत्ता) में। (७) दृष्टि के प्रतिवेध (सन्मार्ग दर्शन) में तीव्रच्छन्द होता है, निष्प्रेम नहीं होता।

सात संज्ञाएँ—“अनित्य संज्ञा, अनात्म....., अशुभ....., आदीनव....., प्रहाण....., विराग..... एवं निरोधसंज्ञा।

सात बल—“श्रद्धाबल, वीर्यबल, हीबल, अपत्राम्यबल, स्मृतिबल, समाधिबल एवं प्रज्ञाबल।

३७. सात विज्ञानस्थितियाँ—“आयुष्मानो! कोई प्राणी नाना शरीर वाले नाना संज्ञा (नाम) वाले होते हैं; जैसे—मनुष्य, कोई—कोई देव, कोई—कोई विनिपातिक (पापयोनि)—यह प्रथम विज्ञानस्थिति है। (१)

“कोई—कोई प्राणी नाना काय किन्तु एक संज्ञा वाले होते हैं; जैसे—प्रथम उत्पन्न ब्रह्माकायिक देवता—यह दूसरी विज्ञानस्थिति है। (२)

“कोई—कोई एक काय तथा नाना संज्ञा वाले प्राणी होते हैं; जैसे—आभास्वर देवता...। (३)

“कोई—कोई एक काय तथा संज्ञा वाले प्राणी होते हैं; जैसे—शुभकृत्स्न देवता....। (४)

१. तीर्थक साधु दश वर्ष के समय में मृत निर्ग्रन्थ (जैन) साधु को 'निर्दश' कहते हैं। वह मृत निर्ग्रन्थ फिर दशवर्ष तक नहीं होता। इसी तरह बीस वर्ष आदि के समय में मृत को निर्विश, निस्त्रिंश, निश्चत्वारिंश, निष्पञ्चाश आदि कहते हैं। आयुष्मान् आनन्द ने ग्राम में विचरण करते हुए यह बात सुन कर विहार में जा कर भगवान् से कहा। भगवान् ने बताया—“आनन्द! यह तीर्थकों की ही मान्यता नहीं है, मेरे शासन (सम्प्रदाय) में भी ये शब्द क्षीणाश्रव के लिये प्रयुक्त होते हैं। क्षीणाश्रव दश वर्ष के समय परिनिर्वाण को प्राप्त होकर पुनः कभी दश वर्ष का नहीं होता। केवल दश वर्ष ही नहीं, वह नौ वर्ष..... एक वर्ष एक मास का भी..... एक दिन का भी। एक मुहूर्त का भी नहीं होता। वह क्यों? वह इस लिये कि क्षीणाश्रव का पुनर्जन्म न होने से उस के दश वर्ष का होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः उसे 'निर्दश' कहा जाता है।— (सु०वि० अ०क०, तृ०भा०, पृ० ३८६)

नानत्तसञ्ज्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनूपगा। अयं पञ्चमी विज्जाणट्ठिति। (५)

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो आकासनञ्चायतनं समतिकम्म 'अनन्तं विज्जाणं' ति विज्जाणञ्चायतनूपगा। अयं छट्ठी विज्जाणट्ठिति। (६)

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो विज्जाणञ्चायतनं समतिकम्म 'नत्थि किञ्ची' [B.210] ति आकिञ्चञ्चायतनूपगा। अयं सत्तमी विज्जाणट्ठिति। (७)

“सत्त पुग्गला दक्खिण्येया—उभतोभागविमुत्तो, पज्जाविमुत्तो, कायसक्खि, [R.254] दिट्ठिप्पत्तो, सद्भावमुत्तो, धम्मानुसारी, सद्धानुसारी।

“सत्त अनुसया—कामरागानुसयो, पटिघानुसयो, दिट्ठानुसयो, विचिकिच्छानुसयो, मानानुसयो, भवरागानुसयो, अविज्जानुसयो।

“सत्त सञ्जोजनानि—अनुनयसञ्जोजनं, पटिघसञ्जोजनं, दिट्ठिसञ्जोजनं, विचिकिच्छासञ्जोजनं, मानसञ्जोजनं, भवरागसञ्जोजनं, अविज्जासञ्जोजनं।

“सत्त अधिकरणसमथा—१. उप्पन्नूपन्नानं अधिकरणानं समथाय वूपसमाय सम्मुखाविनयो दातब्बो, २. सतिविनयो दातब्बो, ३. अमूळ्हविनयो दातब्बो, ४. पटिज्जाय कारेतब्बं, ५. येभ्युसिका, ६. तस्सपापियसिका, ७. तिणवत्थारको।

“इमे खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सत्त धम्मा सम्मादक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं.... पे०.... अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ॥

दुतियभाणवारो निट्ठितो ॥

“(५) कोई—कोई प्राणी रूपसंज्ञात्व का सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघसंज्ञा के अस्त हो जाने से तथा नाना संज्ञात्व को मन में न करने से 'आकाश अनन्त है'—इस आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त होता है—यह पाँचवीं विज्ञानस्थिति है।

“(६) कोई आकाशानन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त करता है—यह छठी विज्ञानस्थिति है।

“(७) कोई ...विज्ञानानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है'—इस आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त करता है—यह सातवीं विज्ञानस्थिति है।

सात दक्षिणा (दान) योग्य पुद्गल—“(१) उभतोभागविमुक्त (रूपकाय एवं नामकाय—दोनों से विमुक्त), (२) प्रज्ञाविमुक्त, (३) कायसाक्षी, (४) दृष्टिप्राप्त, (५) श्रद्धाविमुक्त, (६) धर्मानुसारी एवं (७) श्रद्धानुसारी पुद्गल।

सात अनुशय (चित्त की प्रवृत्ति)—“१. कामरागानुशय, २. प्रतिघानुशय, ३. दृष्ट्यनुशय, ४. विचिकित्सानुशय, ५. मानानुशय, ६. भवरागानुशय एवं ७. अविद्यानुशय।

सात संयोजन (बन्धन)—“१. अनुनयसंयोजन, २. प्रतिघसंयोजन, ३. दृष्टिसंयोजन, ४. विचिकित्सासंयोजन, ५. मानसंयोजन, ६. भवरागसंयोजन एवं ७. अविद्यासंयोजन।

सात अधिकरणशमथ (कलहशान्ति के उपाय)—“जब तब उत्पन्न हुए अधिकरणों (कलह, विवाद) की शान्ति के लिये—१. समुखविनय देना चाहिये, २. स्मृतिविनय....., ३. अमूढविनय....., ४. प्रतिज्ञातकरण....., ५. यद्भूयसिक....., ६. तत्पापायसिक..... एवं ७. तृणविस्तारक.....।

अट्ट धम्मा सम्मदक्खाता

[N.196] ३८. “अत्थि खो, आवुसो तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन अट्ट धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं पे०..... अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमे अट्ट ?

“अट्ट मिच्छता—मिच्छादिट्ठि, मिच्छासङ्कप्पो, मिच्छावाचा, मिच्छाकम्मन्तो, मिच्छा-आजीवो, मिच्छावायामो, मिच्छासति, मिच्छासमाधि।

[B.211, R.255] “अट्ट सम्मत्ता—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि।

“अट्ट पुग्गला दक्खिण्येय्या—सोतापन्नो, सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो, सकदागामी, सकदागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो, अनागामी, अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो, अरहा, अरहत्तफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो।

३९. “अट्ट कुसीतवत्थूनि— इधावुसो, भिक्खुना कम्मं कातब्बं होति। तस्स एवं होति—‘कम्मं खो मे कातब्बं भविस्सति, कम्मं खो पन मे करोन्तस्स कायो किलमिस्सति, हन्दाहं निपज्जामी’ ति! सो निपज्जति; न विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। इदं पठमं कुसीतवत्थु। (१)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना कम्मं कतं होति। तस्स एवं होति—‘अहं खो कम्मं

“आयुष्मानो! उन तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मों के ये सप्तक बताये हैं। इन्हें सब को एक होकर ग्रहण (स्वीकार) करना चाहिये। इन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये। यह ऐसा करना ही देवताओं और मनुष्यों के लिये सुखप्रद एवं हितकर होगा।।

द्वितीय भाणवार समाप्त॥

सुव्याख्यात धर्मों के अष्टक— ३८. “आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मों के इन अष्टकों का व्याख्यान भली भाँति कर दिया है, अतः इन सभी को हमें एकतापूर्वक धारण करना चाहिये इन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये। यही कार्य देव-मनुष्यों के लिये हितकर एवं सुखप्रद होगा। कौन से आठ?

आठ मिथ्यात्व—“१. मिथ्यादृष्टि, २. मिथ्यासङ्कल्प, ३. मिथ्यावाक्, ४. मिथ्याकर्मान्त, ५. मिथ्या व्यायाम, ६. मिथ्याआजीव, ७. मिथ्यास्मृति एवं ८. मिथ्यासमाधि।

आठ सम्यक्त्व—“१. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यग्व्यायाम, ६. सम्यगाजीव, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि।

आठ दक्षिणायोग्य पुद्गल—“१. स्रोतआपन्न, २. स्रोतापत्तिफल साक्षात्कार में तत्पर; ३. सकृदागामी, ४. सकृदागामिफल साक्षात्कार में तत्पर; ५. अनागामी, ६. अनागामिफलसाक्षात्कार में तत्पर, ७. अर्हत् एवं ८. अर्हत्फल साक्षात्कार में तत्पर।

३९. आठ कुसीद (आलस्यप्रद) वस्तुएँ—“आयुष्मानो! यहाँ किसी भिक्षु को जब कोई कर्म करना होता है, तब उस के मन में ऐसा होता है—‘यह कर्म मुझे करना है, किन्तु यह कर्म करते हुए मुझे कष्ट होगा, अतः क्यों न मैं कुछ देर लेटा रहूँ।’ और वह लेट जाता है, तथा अप्राप्त की प्राप्ति एवं असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये कोई प्रयास नहीं करता—यह प्रथम कुसीद वस्तु है। (१)

“और फिर आयुष्मानो! भिक्षु कुछ कर्म किये होता है, उसके मन में ऐसा होता है—‘मैंने कार्य

अकासिं । कम्मं खो पन मे करोन्तस्स कायो किलन्तो । हन्दाहं निपज्जामी' ति ! सो निपज्जति; न विरियं आरभति....पे०....इदं दुतियं कुसीतवत्थु । (२)

“पुन च परं, आवुसो भिक्खुना मग्गो गन्तब्बो होति । तस्स एवं होति—‘मग्गो खो मे गन्तब्बो भविस्सति । मग्गं खो पन मे गच्छन्तस्स कायो किलमिस्सति, हन्दाहं निपज्जामी’ ति ! सो निपज्जति; न विरियं आरभति....इदं ततियं कुसीतवत्थु । (३)

“पुन च परं, आवुसो भिक्खुना मग्गो गतो होति । तस्स एवं होति—‘अहं खो मग्गं अगमासिं । मग्गं खो पन मे गच्छन्तस्स कायो किलन्तो । हन्दाहं निपज्जामी’ ति ! सो निपज्जति; न विरियं आरभति....इदं चतुत्थं कुसीतवत्थु । (४)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो न लभति [N.197] लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूर् । तस्स एवं होति—‘अहं खो गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो नालत्थं लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूर् । तस्स मे कायो किलन्तो अकम्मज्जो, हन्दाहं निपज्जामी’ ति ! सो निपज्जति; न [R.256] विरियं आरभति....इदं पञ्चमं कुसीतवत्थु । (५)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो लभति [B.212] लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूर् । तस्स एवं होति—‘अहं खो गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो अलत्थं लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूर् । तस्स मे कायो गरुको अकम्मज्जो मासाचितं मज्जे । हन्दाहं निपज्जामी’ ति ! सो निपज्जति; न विरियं आरभति....इदं छट्ठं कुसीतवत्थु । (६)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो उप्पन्नो होति अप्पमत्तको आबाधो । तस्स एवं होति—‘उप्पन्नो खो मे अयं अप्पमत्तको आबाधो; अत्थि कप्पो निपज्जितुं, हन्दाहं निपज्जामी’ ति ! सो निपज्जति; न विरियं आरभति....इदं सत्तमं कुसीतवत्थु । (७)

कर लिया, कार्य करते-करते शरीर थक गया है, क्यों न मैं कुछ देर लेट जाऊँ । वह लेट जाता है, कोई कार्य नहीं करता यह द्वितीय कुसीद वस्तु है । (२)

“भिक्षु को कहीं जाना होता है, तब उस के मन में यह होता है—‘मुझे जाने में कष्ट होगा, क्यों न मैं यही लेटा रहूँ’ वह लेट जाता है । यह तृतीय कुसीद वस्तु है । (३)

“भिक्षु कहीं जा रहा है । चलते-चलते उसको ऐसा होता है—‘मैंने इतना मार्ग पार कर लिया, अब मैं थक गया हूँ, क्यों न मैं रुक कर कुछ देर स्वस्थ हो लूँ’ वह रुक जाता है और कोई कार्य नहीं कर पाता । यह चतुर्थ कुसीद वस्तु है । (४)

“भिक्षु ग्राम या निगम में भिक्षाहेतु विचरण करते हुए सूखा या अच्छा—कुछ भी भोजन नहीं प्राप्त कर पाता, उस समय उसको होता है—‘मैं भिक्षाहेतु बहुत देर से विचरण कर रहा हूँ, अब मैं थक गया हूँ क्यों न मैं रुक कर यह पञ्चम कुसीद वस्तु है । (५)

“...सूखा या अच्छा भोजन पा जाता है, तब उसे यह होता है—‘मैं सूखा या अच्छा भोजन पा गया हूँ । अब मैं थक गया हूँ, क्यों न मैं अब लेट जाऊँ ।’ यह षष्ठ कुसीद वस्तु है । (६)

“भिक्षु को कोई छोटा-मोटा रोग हो जाय, तब उसको ऐसा विचार हो—‘मुझे तो यह छोटा सा रोग हो गया है, क्यों न मैं थोड़ा रुक कर कुछ समय आराम कर लूँ’ यह सप्तम कुसीद वस्तु है । (७)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गिलाना वुट्ठितो होति, अचिरवुट्ठितो गेलज्जा। तस्स एवं होति—‘अहं खो गिलाना वुट्ठितो अचिरवुट्ठितो गेलज्जा। तस्स मे कायो दुब्बलो अकम्मज्जो, हन्दाहं निपज्जामी’ ति! सो निपज्जति; न विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। इदं अट्ठमं कुसीतवत्थु। (८)

४०. “अट्ठ आरम्भवत्थुनि— इधावुसो, भिक्खुना कम्मं कातब्बं होति। तस्स एवं होति—‘कम्मं खो मे कातब्बं भविस्सति। कम्मं खो पन मे करोन्तेन न सुकरं बुद्धानं सासनं मनसि कातुं; हन्दाहं विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया’ ति! सो विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। इदं पठमं आरम्भवत्थु। (१)

[R.257] “पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना कम्मं कतं होति। तस्स एवं होति—अहं खो कम्मं अकासिं। कम्मं खो पनाहं करोन्तो नासक्खिं बुद्धानं सासनं मनसि कातुं, हन्दाहं विरियं [N.198] आरभामि....पे०....सो विरियं आरभति पे०....इदं दुतियं आरम्भवत्थु। (२)

[B.213] “पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना मग्गो गन्तब्बो होति। तस्स एवं होति—मग्गो खो मे गन्तब्बो भविस्सति। मग्गं खो पन मे गच्छन्तेन न सुकरं बुद्धानं सासनं मनसि कातुं, हन्दाहं विरियं आरभामि....सो विरियं आरभति....इदं ततियं आरम्भवत्थु। (३)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुउना मग्गो गतो होति। तस्स एवं होति—अहं खो मग्गं अगमासिं। मग्गं खो पनाहं गच्छन्तो नासक्खिं बुद्धानं सासनं मनसि कातुं, हन्दाहं विरियं आरभामि....सो विरियं आरभति....इदं चतुत्थं आरम्भवत्थु। (४)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो न लभति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरिं। तस्स एवं होति—अहं खो गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो नालत्थं लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरिं। तस्स मे कायो लहुको कम्मज्जो, हन्दाहं विरियं आरभामि....सो विरियं आरभति....इदं पञ्चमं आरम्भवत्थु। (५)

“भिक्षु रोग से तत्काल मुक्त हो कर स्वस्थ होता है। तब उसको यह विचार होता है—‘मैं रोग से अभी मुक्त हुआ हूँ, रोग मुझे आ कर फिर न घेर ले, अतः कुछ समय लेटा रहूँ।’....यह अष्टम कुसीद वस्तु है। (८)

४०. आठ आरम्भवस्तु—“आयुष्मानो! जब भिक्षु को कार्य करना होता है, उस को मन में यह होता है—‘यह कार्य मुझे करना है, कार्य करते हुए बुद्धों के शासन में मन लगाना सरल नहीं है, क्यों न मैं अप्राप्त की प्राप्ति, एवं असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये उद्योग करूँ।’ फिर वह उद्योग करता है—यह प्रथम आरम्भ वस्तु है। (१)

“भिक्षु कार्य पूर्ण कर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—‘मैं कार्य कर चुका हूँ, कार्य करते हुए मैं बुद्ध के शासन मन में न कर सका तो क्यों न मैं उद्योग करूँ।’....यह द्वितीय आरम्भवस्तु है। (२)

“भिक्षु को मार्ग जाना होता है। उस समय उसको ऐसा होता है....यह तृतीय आरम्भवस्तु है। (३)

“(४) भिक्षु मार्ग चल चुका होता है। उसको ऐसा मन में यह चतुर्थ आरम्भवस्तु है।

“(५) भिक्षु ग्राम या निगम में भिक्षाहेतु विचारण करते सूखा-अच्छा भोजन पूरा नहीं पाता। तब उस के मन में यह पञ्चम आरम्भवस्तु है।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो लभति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि। तस्स एवं होति—अहं खो गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो अलत्थं लूखस्स वा पणीतस्स भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि। तस्स मे कायो बलवा कम्मज्जो। हन्दाहं विरियं आरभामि....सो विरियं आरभति....इदं छट्ठं आरम्भवत्थु। (६)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो उप्पन्नो होति अप्पमत्तको आबाधो। तस्स [R.258] एवं होति—उप्पन्नो खो मे अयं अप्पमत्तको आबाधो। ठानं खो पनेतं विज्जति यं मे आबाधो पवङ्केय्य। हन्दाहं विरियं आरभामि....सो विरियं आरभति....इदं सत्तमं आरम्भवत्थु। (७)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गिलाना वुट्ठितो होति अचिरवुट्ठितो गेलज्जा। तस्स एवं होति—‘अहं खो गिलाना वुट्ठितो अचिरवुट्ठितो गेलज्जा। ठानं खो पनेतं विज्जति यं मे आबाधो पच्चुदावत्तेय्य; हन्दाहं विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स [N.199] अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया’ ति! सो विरियं आरभति अप्पत्तस्स [B.214] पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। इदं अट्ठमं आरम्भवत्थु। (८)

४१. “अट्ठ दानवत्थुनि—१. आसज्ज दानं देति, २. भया दानं देति, ३. ‘अदासि मे’ ति दानं देति, ४. ‘दस्सति मे’ ति दानं देति, ५. ‘साहु दानं’ ति दानं देति, ६. ‘अहं पचामि, इमे न पचन्ति, नारहामि पचन्तो अपचन्तानं दानं च दातुं’ ति दानं देति, ७. ‘इदं मे दानं ददतो कल्याणो कित्सिद्दो अब्भुग्गच्छती’ ति दानं देति, ८. चित्तालङ्कारचित्तपरिक्खारत्थं दानं देति।

४२. “अट्ठ दानूपपत्तियो—इधावुसो, एकच्चो दानं देति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं। सो यं देति तं पच्चासीसति। सो पस्सति खत्तियमहासालं वा ब्राह्मणमहासालं वा गहपतिमहासालं वा पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितं समङ्गीभूतं परिचारयमानं। तस्स एवं होति—‘अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा

“भिक्षु ग्राम या निगम में भोजन पूरा पा जाता है, तब उस के मन में। यह बट आरम्भवस्तु है। (६)

“भिक्षु को अल्पमात्र रोग उत्पन्न हो जाता है। यह सप्तम आरम्भवस्तु है। (७)

“भिक्षु रोग से मुक्त हुआ रहता है। यह अष्टम आरम्भवस्तु है। (८)

४१. आठ दानवस्तु—“किसी में आसक्त हो कर दान देता है। (१) भय से दान देता है। (२) इस ने भी मुझ को दिया था—यह सोच कर दान देता है। (३) ‘सम्भवतः यह भी मुझे कभी दान दे दे’—यह सोच कर दान देता है। (४) ‘दान करना अच्छा है’—यह सोच कर दान देता है। (५) ‘मैंने भोजन बनाया है, उसने नहीं बनाया, न बनाने वाले को देना ठीक रहेगा’—यह सोचकर दान देता है। (६) स्व चित्त के अलङ्कार (प्रसन्नता) तथा चित्त के सन्तोष के लिये दान देता है।

४२. आठ दानोत्पत्तियाँ—“(१) आयुष्मानो! कोई—कोई पुरुष श्रमण या ब्राह्मणों को अन्न—पान वस्त्र, सवारी, माला, गन्धविलेपन (इत्र), शय्या, वासस्थान या प्रकाश की सामग्री दान करता है और प्रदत्त दान की उससे प्रशंसा भी करता है। वह उस दान के देते समय अन्य धनाढ्य पाँचों कामभोगों में व्यासक्त क्षत्रियमहासाल या ब्राह्मणसाल को नौकर—चाकरों द्वारा सेवा—शुश्रूषा किये जाते हुए देखता है। उन्हें देख कर उसके मन में होता है—‘क्या ही अच्छा हो कि मैं भी अपने इस देहपात के बाद, इन्हीं क्षत्रियमहासालों

खत्तियमहासालानं वा ब्राह्मणमहासालानं वा गहर्पातमहासालानं वा सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति ! सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिद्वति, तं चित्तं भावेति । तस्स तं चित्तं हीने विमुत्तं उत्तरि [R.259] अभावितं तत्रूपपत्तिया संवत्तति । तं च खो सीलवतो वदामि, नो दुस्सीलस्स । इज्झतावुसो, सीलवतो चेतोपणिधि विसुद्धता । (१)

“पुन च परं, आवुसो इधेकच्चो दानं देति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं....पे०....सेय्यावसथपदीपेय्यं । सो यं देति तं पच्चासीसति । तस्स सुतं होति—‘चातुमहाराजिका देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला’ ति । तस्स एवं होति—‘अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा चातुमहाराजिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं’ ति ! सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिद्वति, तं चित्तं भावेति । तस्स तं चित्तं हीने विमुत्तं उत्तरि अभावितं तत्रूपपत्तिया संवत्तति । तं च खो सीलवतो वदामि, नो दुस्सीलस्स । इज्झतावुसो, सीलवतो चेतोपणिधि विसुद्धता । (२)

[B.215] “पुन च परं, आवुसो, इधेकच्चो दानं देति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं....पे०....सेय्यावसथपदीपेय्यं । सो यं देति तं पच्चासीसति । तस्स सुतं होति—‘तावत्तिंसा [N.200] देवा....पे०....यामा देवा....पे०....तुसिता देवा.... पे०....निम्मानरती देवा पे०....परनिम्मितवसवत्ती देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला’ ति । तस्स एवं होति—‘अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा परनिम्मितवसवत्तीनं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं’ ति ! सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिद्वति, तं चित्तं भावेति । तस्स तं चित्तं हीने विमुत्तं उत्तरि अभावितं तत्रूपपत्तिया संवत्तति । तं च खो सीलवतो वदामि नो दुस्सीलस्स । इज्झतावुसो, सीलवतो चेतोपणिधि विसुद्धता । (३-७)

“पुन च परं, आवुसो, इधेकच्चो दानं देति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं । सो यं देति तं पच्चासीसति । तस्स सुतं होति—‘ब्रह्मकायिका देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला’ ति । तस्स एवं होति—‘अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं’ ति ! सो तं चित्तं दहति, तं

या ब्राह्मणमहासालों के कुल में जन्म लूँ। वह इस बात को मन में बैठा लेता है। उसी का ध्यान करता रहता है। उस का वह चित्तसङ्कल्प अन्त में उसे उन उच्चकुलों में उत्पन्न होने में सहायक होता है। परन्तु ऐसा सङ्कल्प शीलवान् का ही पूरा होता है, दुःशील का नहीं। आयुष्मानो! विशुद्ध होने से शीलवान् की ही चेतःप्रणिधि (मनःसङ्कल्प) पूर्ण हुआ करती है।

“फिर आयुष्मानो! कोई पुरुष श्रमण ब्राह्मणों को अन्न, पान....प्रकाश सामग्री दान करता है और उस समय वह चातुर्महाराजिक देवताओं के विषय में सुने रहता है और सोचता रहता है कि मैं इस दान के प्रभाव से चातुर्महाराजिक देवताओं के साथ उत्पन्न हूँ। वह इस बात को दृढ़ता से मन में बैठा लेता है। पूर्ववत् शीलवान् की चेतःप्रणिधि ही पूर्ण हुआ करती है। (२)

“....वह सुने रहता है कि त्रायस्त्रिंश देव लोग पूर्ण होती है। (३) वह सुने रहता है कि याम देव। (४) वह सुने रहता है कि तुषित देव। (५) वह सुने रहता है कि निर्माणरति देव। (६) परनिर्मितवशवर्ती देव। (७)

चित्तं अधिद्वैति, तं चित्तं भावति। तस्मै तं चित्तं हीने विमुक्तं उन्नयि अभावितं [R.260]
तत्रूपपत्तिया संवर्तते। तं च खो मीलवतो वदामि नो दुस्मीलस्म; वीतरागस्स नो सरागस्स।
इज्झतावुसो, मीलवतो चेत्तोर्पणधि वीतरागता। (८)

“अट्ट परिमा—खत्तियपरिमा, ब्राह्मणपरिमा, गृहपतिपरिमा, समणपरिमा, चातु-
महाराजिकपरिमा, तावर्तिसपरिमा, मारपरिमा, ब्रह्मपरिमा।

“अट्ट लोकधम्मा—लाभो च, अलाभो च, यसो च, अयसो च, निन्दा च, पसंसा च,
सुखं च, दुक्खं च।

४३. “अट्ट अभिभायतनानि। अज्झत्तं रूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि
सुवण्णदुब्बण्णानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति—एवंसज्जी होति। इदं पठमं
अभिभायतनं। (१)

“अज्झत्तं रूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्ण—[B.216]
दुब्बण्णानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति— एवंसज्जी होति। इदं दुतियं
अभिभायतनं। (२)

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि।
‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति— एवंसज्जी होति। इदं ततियं अभिभायतनं। (३)

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्ण—[N.201]
दुब्बण्णानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति—एवंसज्जी होति। इदं चतुत्थं
अभिभायतनं। (४)

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नील-
निदस्सनानि नीलनिभासानि। सेय्यथापि नाम उमापुप्फे नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं
नीलनिभासं, सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं नीलं नीलवण्णं [R.261]

“..... ब्रह्मकायिक देव.....। चित्तविशुद्धि के कारण शीलवान् की चेतःप्रणिधि पूर्ण होती है। (८)

आठ परिषदें—“क्षत्रिय परिषद्, ब्राह्मणपरिषद्, गृहपतिपरिषद्, श्रमणपरिषद्, चातुर्माहाराजिकदेव-
परिषद्, त्रायस्त्रिंशदेवपरिषद्, मारपरिषद्, एवं ब्रह्मपरिषद्।

आठ लोकधर्म—“१ लाभ, २. अलाभ (हानि), ३, यश, ४. अपयश, ५. निन्दा, ६. प्रशंसा, ७.
सुख एवं ८. दुःख।

४३. आठ अभिभायतन—“यहाँ, आयुष्मानो! कोई पुरुष अध्यात्म में रूपसंज्ञी (अपने अन्दर
रूपसंज्ञा का ध्यान करने वाला) हो कर बाहर थोड़े से सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपों को देखता है, वह न ‘उन
को अभिभूत (लुप्त) कर जानता हूँ, देखता हूँ’—ऐसी संज्ञा वाला होता है। यह प्रथम अभिभायतन है। (१)

“कोई पुरुष अध्यात्म में रूपसंज्ञी हो कर बाहर अप्रमाण सुवर्ण—दुर्वर्ण रूपों को देखता है, वह
‘उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ’—ऐसी संज्ञा वाला होता है। यह द्वितीय अभिभायतन है। (२)

“कोई पुरुष अध्यात्म में अरूप संज्ञी होकर बाहर थोड़े सुवर्ण, दुर्वर्ण रूपों को देखता है.....। (३)

“कोई पुरुष अध्यात्म में अरूपसंज्ञी होकर अप्रमाण (अत्यधिक) सुवर्ण—दुर्वर्ण रूपों को देखता
है.....। (४)

“कोई पुरुष अध्यात्म में अरूपसंज्ञी होकर बाहर नील, नीलवर्ण, नीलनिदर्शन एवं नीलनिर्भास

नीलनिदस्सनं नीलनिभासं, एवमेव अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति— एवंसज्जी होति। इदं पञ्चमं अभिभायतनं। (५)

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। सेय्यथापि नाम कणिकारपुप्फं पीतं पीतवण्णं पीतनिदस्सनं पीतनिभासं, सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं पीतं पीतवण्णं पीतनिदस्सनं पीतनिभासं, एवमेव अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति— एवंसज्जी होति। इदं छट्ठं अभिभायतनं। (६)

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानि लोहितकनिभासानि। सेय्यथापि नाम बन्धुजीवकपुप्फं लोहितकं लोहितकवण्णं लोहितकनिदस्सनं लोहितकनिभासं, सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं लोहितकं लोहितकवण्णं लोहितकनिदस्सनं लोहितकनिभासं, एवमेव अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानि [B.217] लोहितकनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति— एवंसज्जी होति। इदं सप्तमं अभिभायतनं। (७)

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि। सेय्यथापि नाम ओसधितारका ओदाता ओदातवण्णा ओदातनिदस्सना ओदातनिभासा, सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं ओदातं ओदातवण्णं ओदातनिदस्सनं ओदातनिभासं, एवमेव अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा [N.202] रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति— एवंसज्जी होति। इदं अट्ठमं अभिभायतनं। (८)

रूपों को देखता है, जैसे कि नील...नीलनिर्भास अलसी का फूल, या जैसे दोनों और से पालिश (चमकीला) किया गया नीला...काशी का बना वस्त्र हो। (५)

“कोई पुरुष अध्यात्म में अरूपसंज्ञी हो कर बाहर पीत (पीला) पीतवर्ण, पीतनिर्दर्शन एवं पीतनिर्भास रूपों को देखता है जैसे कि पीत कर्णिकार (अमलतास या कनेर) पुष्प हो या पीत...काशी का बना वस्त्र हो....। (६)

“कोई पुरुष अध्यात्म में अरूपसंज्ञी हो कर बाहर लोहित (लाल), लोहितवर्ण रूपों को देखता है; जैसे लोहित बन्धुजीवक (गुलदुपहरिया) का फूल या लोहित काशी का बना हुआ वस्त्र है। (७)

“कोई पुरुष अध्यात्म में अरूपसंज्ञी हो कर बाहर अवदात (श्वेत), अवदातवर्ण....रूपों को देखता है; जैसे, तारा (नक्षत्र) गण अवदात, अवदातवर्ण होते हैं; जैसे काशी का बना हुआ, अवदात दोनों तरफ से चिकना होता है; इसी तरह अध्यात्म में अरूपसंज्ञी होकर बाहर अवदात रूपों को देखता है। 'उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ'—ऐसी संज्ञा वाला होता है। यह अष्टम अभिभायतन है। (८)

४४. "अट्ट विमोक्खा। रूपी रूपानि पस्सति। अयं पठमो विमोक्खो। (१)

"अज्झतं अरूपसज्जी बहिद्धा रूपानि पस्सति। अयं दुतियो विमोक्खो। (२) [R.262]

"सुभं तेव अधिमुत्तो होति। अयं ततियो विमोक्खो। (३)

"सब्बसो रूपसज्जानं समतिक्रमा, पटिघसज्जानं अत्थङ्गमा, नानत्तसज्जानं अमनसिकारा, 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। अयं चतुत्थो विमोक्खो। (४)

"सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्रम्म 'अनन्तं विज्जाणं' ति विज्जाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। अयं पञ्चमो विमोक्खो। (५)

"सब्बसो विज्जाणञ्चायतनं समतिक्रम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति। अयं छट्ठो विमोक्खो। (६)

"सब्बसो आकिञ्चज्जायतनं समतिक्रम्म नेवसज्जानासज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति। अयं सत्तमो विमोक्खो। (७)

"सब्बसो नेवसज्जानासज्जायतनं समतिक्रम्म सज्जावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति। अयं अट्ठमो विमोक्खो। (८)

"इमे खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन अट्ठ [B.218] धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं.... पे०.... अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ॥

नव धम्मा सम्मदक्खाता

४५. "अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन नव

४४. आठ विमोक्ष— "स्वयं रूपवान् होता हुआ रूपों को देखता है—यह प्रथम विमोक्ष है। (१)

"एक पुरुष अध्यात्म में अरूपसंज्ञी हो कर बाहर रूपों को देखता है—यह द्वितीय विमोक्ष है। (२)

"शुभ (शुभ्र) ही से मुक्त (अधिमुक्त) हुआ होता है—यह तृतीय विमोक्ष है। (३)

"सर्वथा रूपसंज्ञा को अतिक्रान्त कर प्रतिघसंज्ञा के अस्त होने से नानात्वसंज्ञा को मन में न करने से 'आकाश अनन्त है' इस आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त कर विहरता है—यह चतुर्थ विमोक्ष है। (४)

"(५) आकाशानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' —इस विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त कर विहरता है। यह पञ्चम विमोक्ष है।

"(६) विज्ञानानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ भी नहीं है'—इस आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त कर साधना करता है—यह षष्ठ विमोक्ष है।

"(७) आकिञ्चन्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर 'न तो संज्ञा है, न असंज्ञा'—ऐसे नैवसंज्ञासंज्ञायतन को प्राप्त कर साधना करता है—यह सप्तम विमोक्ष है।

"(८) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर, संज्ञावेदयितनिरोध (जहाँ संज्ञा ही लुप्त हो जाती है) को प्राप्त कर साधना करता है—यह अष्टम विमोक्ष है।

"आयुष्मानो! उस भगवान् तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मों के इन (उपर्युक्त) धर्मों के अष्टकों का स्वयं भली भाँति व्याख्यान किया है। अतः हम सबको इन का एक होकर, ग्रहण करना चाहिये। तथा इन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये। इसी में देव और मनुष्यों का हित एवं सुख है ॥

धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बहेव सङ्गायितब्बं.... पे०.... अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ।
कतमे नव ?

“नव आघातवत्थूनि—‘अनत्थं मे अचरी’ ति आघातं बन्धति; ‘अनत्थं मे चरती’ ति आघातं बन्धति; ‘अनत्थं मे चरिस्सती’ ति आघातं बन्धति; ‘पियस्स मे मनापस्स अनत्थं अचरी’ ति आघातं बन्धति.... पे०.... ‘अनत्थं चरती’ ति आघातं बन्धति.... पे०.... ‘अनत्थं [N.203] चरिस्सती’ ति आघातं बन्धति; ‘अप्पियस्स मे अमनापस्स अत्थं अचरी’ ति आघातं बन्धति.... पे०.... अत्थं चरती ति आघातं बन्धति.... पे०.... ‘अत्थं चरिस्सती’ ति आघातं बन्धति ।

“नव आघातपटिविनेया—‘अनत्थं मे अचरि, तं कुतेत्थ लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति; [R.263] ‘अनत्थं मे चरति, तं कुतेत्थ लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति; ‘अनत्थं मे चरिस्सति, तं कुतेत्थ लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति; ‘पियस्स मे मनापस्स अनत्थं अचरि.... पे०.... अनत्थं चरति.... पे०.... अनत्थं चरिस्सति, तं कुतेत्थ लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति; ‘अप्पियस्स मे अमनापस्स अत्थं अचरि.... पे०.... अत्थं चरति.... पे०.... अत्थं चरिस्सति, तं कुतेत्थ लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति ।

४६. “नव सत्तावासा—सन्तावुसो, सत्ता नानत्तकाया नानत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—मनुस्सा, एकच्चे च देवा, एकच्चे च विनिपातिका । अयं पठमो सत्तावासो । (१)

“सन्तावुसो, सत्ता नानत्तकाया एकत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा ब्रह्मकायिका पठमाभिनिब्बत्ता । अयं दुतियो सत्तावासो । (२)

सम्यग्वाख्यात धर्मों के नवक— ४५. “आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मों के इन नवकों का भली भाँति व्याख्यान किया है, अतः हम सबको एक होकर इन पर आचरण करना चाहिये तथा इन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये.... हितकर एवं सुखप्रद है ।

नौ आघातवस्तु— “ ‘इस ने मेरा अनर्थ (हानि) किया’, इस लिये इस पर आघात (बदला लेना) करना आवश्यक है—यह मन में करता है; (१); ‘यह मेरा अनर्थ कर रहा है’ (२); ‘यह मेरा अनर्थ करेगा’; (३); ‘इसने मेरे प्रिय (मित्र या सहायक) का अनर्थ किया है’, (४); ‘यह मेरे प्रिय का अनर्थ करता है’; (५); ‘यह मेरे प्रिय का अनर्थ करेगा’; (६); ‘इसने मेरे अप्रिय (शत्रु) का हितसाधन किया’; (७); ‘यह मेरे अप्रिय (शत्रु) का हितसाधन करता है’ (८); ‘यह मेरे अप्रिय का हितसाधन करेगा’—यह सोच कर आघात (बदला लेने) की बात मन में सोचता है । (९)

नौ आघातप्रतिविनय (बदला लेने की भावना को मन से हटाना)— “ ‘भले ही इसने मेरा अनर्थ किया, परन्तु इसका बदला लेने से मुझे क्या मिलेगा’—यह सोच कर बदले की भावना मन से हटा देता है (१); ‘भले ही यह मेरा अनर्थ कर रहा है’ (२); ‘भले ही यह मेरा अनर्थ करेगा’ (३); ‘भले ही उसने मेरे प्रिय का अनर्थ किया है’ (४); ‘भले ही यह मेरे प्रिय का अनर्थ कर रहा है’ (५); ‘भले ही यह मेरे प्रिय का अनर्थ करेगा’ (६); ‘भले ही इसने मेरे अप्रिय का हितसम्पादन किया है’ (७) ‘भले ही यह मेरे अप्रिय का हितसम्पादन कर रहा है’ (८); ‘भले ही यह मेरे अप्रिय का हितसम्पादन करेगा’ । (९)

४६. नौ सत्त्वावास— “आयुष्मानो! यहाँ ऐसे भी कुछ प्राणी हैं, जो नानाकाय एवं नानासंज्ञा वाले हैं; जैसे—सभी मनुष्य, कुछ देवता एवं कुछ हीनयोनि वाले । यह प्रथम सत्त्वावास है । (१)

“सन्तावुसो, सत्ता एकत्तकाया नानत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा आभस्सरा। अयं ततियो सत्तावासो। (३)

“सन्तावुसो, सत्ता एकत्तकाया एकत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा सुभकिण्हा। [B.219] अयं चतुत्थो सत्तावासो। (४)

“सन्तावुसो, सत्ता असज्जिनो अप्पटिसंवेदिनो, सेय्यथापि—देवा असज्जसत्ता। अयं पञ्चमो सत्तावासो। (५)

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो रूपसज्जानं समतिक्रमा, पटिघसज्जानं अत्थङ्गमा, नानत्त-सज्जानं अमनसिकारा ‘अनन्तो आकासो’ ति आकासानञ्जायतनूपगा। अयं छट्ठो सत्तावासो। (६)

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो आकासानञ्जायतनं समतिक्रम्म ‘अनन्तं विज्जाणं’ ति विज्जाणञ्जायतनूपगा। अयं सत्तमो सत्तावासो। (७)

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो विज्जाणञ्जायतनं समतिक्रम्म ‘नत्थि किञ्ची’ ति आकिञ्चज्जायतनूपगा। अयं अट्ठमो सत्तावासो। (८)

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो आकिञ्चज्जायतनं समतिक्रम्म नेवसज्जानासज्जायतनूपगा। अयं नवमो सत्तावासो। (९)

४७. “नव अक्खणा असमया ब्रह्मचरियवासाय—इधावुसो, तथागतो च लोके [R.264] उपपन्नो होति अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च देसियति ओपसमिको परिनिब्बानिको [N.204] सम्बोधगामी सुगतप्पवेदितो, अयं च पुग्गलो निरयं उपपन्नो होति। अयं पठमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय। (१)

“कुछ प्राणी ऐसे हैं जो नानाशरीर वाले होते हुए भी एक ही संज्ञा वाले हैं; जैसे—(सृष्टि के) प्रथम उत्पन्न हुए ब्रह्मकायिक देवता। (२)

“कुछ प्राणी ऐसे भी हैं जो शरीर से एक होते हुए भी नाना संज्ञा वाले हैं; जैसे—आभास्वर देव। यह तृतीय सत्त्वावास है। (३)

“कुछ प्राणी ऐसे हैं जो एक काया और एक ही संज्ञा वाले हैं; जैसे—शुभकृत्स्न देव। यह चतुर्थ सत्त्वावास है। (४)

“और कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनको न कुछ संज्ञा है और न उन्हें कुछ वेदना (अनुभव) ही होती है; जैसे—असंजितत्त्व देव। यह पञ्चम सत्त्वावास है। (५)

“और कुछ ऐसे प्राणी हैं जो समय आने पर रूपसंज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघसंज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नानात्व संज्ञाओं के मन में न करने से ‘आकाश अनन्त है’ ऐसी भावना करते हुए आकाशानन्त्यायतन तक पहुँच जाते हैं।। (६)

“....आकाशानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर ‘विज्ञान अनन्त है’—इस भावना वाले विज्ञानानन्त्यायतन तक पहुँच जाते हैं।। (७)

“...विज्ञानानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर ‘कुछ नहीं’—इस भावना वाले आकिञ्चन्यायतन तक पहुँच जाते हैं।। (८)

“आयुष्मानो! कुछ ऐसे भी प्राणी हैं जो आकिञ्चन्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर ‘संज्ञा है, न असंज्ञा’—इस भावना वाले नैवसज्जानासंज्ञायतन तक पहुँच जाते हैं—इस नवम सत्त्वावास है। (९)

“पुन च परं, आवुसो, तथागतो च लोके उत्पन्नो होति अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च देसियति ओपसमिको परिनिब्बानिको सम्बोधगामी सुगतप्पवेदितो, अयं च पुगगलो तिरच्छानयोनिं उपपन्नो होति। अयं दुतियो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय। (२)

“पुन च परं....पे०.....पेत्तिविसयं उपपन्नो होति। अयं ततियो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय। (३)

[B.220] “पुन च परं....पे०.....असुरकायं उपपन्नो होति। अयं चतुत्थो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासा। (४)

“पुन च परं....पे०.....अञ्जतरं दीघायुकं देवनिकायं उपपन्नो होति। अयं पञ्चमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय। (५)

“पुन च परं....पे०.....पच्चन्तिमेसु जनपदेसु पच्चाजातो होति मिलक्खेसु अविज्जातारेसु यत्थ नत्थि गति भिक्खून् भिक्खुनीन् उपासकानं उपासिकानं। अयं छट्ठो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय। (६)

“पुन च परं....पे०.....मज्झिमेसु जनपदेसु पच्चाजातो होति, सो च होति मिच्छादिट्ठिको विपरीतदस्सन्—‘नत्थि दित्रं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, [R.265] नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्पापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती’ ति। अयं सत्तमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय। (७)

“पुन च परं....पे०.....मज्झिमेसु जनपदेसु पच्चाजातो होति, सो च होति दुप्पज्जो जळो एळमूगो नप्पटिबलो सुभासितदुब्भासितानमत्थमज्जातुं। अयं अट्ठमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय। (८)

४७. नौ अक्षण, असमय ब्रह्मचर्यवास के लिये—“आयुष्मानो! यहाँ लोक में तथागत ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध उत्पन्न होते हैं और सुगत द्वारा प्रतिवेदित (साक्षात्कृत) सम्बोधिगामी धर्म का उपदेश करते हैं। उस समय यह पुद्गल निरय (नरक) में रहता है—यह प्रथम ब्रह्मचर्यवास (धर्मसाधना) के लिये अक्षण है। (१)

“....यह पुद्गल तिर्यक्योनि (पशुयोनि) में रहता है—यह द्वितीय अक्षण है। (२)

“....यह प्रेतयोनि में उत्पन्न हुआ रहता है—यह तृतीय है। (३)

“....यह असुरयोनि में उत्पन्न हुआ रहता है—यह चतुर्थ है। (४)

“....यह दीर्घायु देव-योनि में उत्पन्न हुआ रहता है—यह पञ्चम है। (५)

“....यह प्रत्यन्त (मध्यदेश के बाहर) देशों में अपण्डित (धर्मोपदेशों को न समझने योग्य) म्लेच्छों में उत्पन्न हुआ रहता है— यह षष्ठ अक्षण है। (६)

“....यह मध्यदेश में उत्पन्न हुआ रहता है, परन्तु (वहाँ उत्पन्न हो कर भी) मिथ्या मतवादों से घिरा रहकर सद्धर्मविरुद्ध बातों को मानता रहता है; जैसे—दान क्रिया कुछ नहीं, यज्ञक्रिया....., हवनक्रिया....., सुकृत दुष्कृत कर्मों का फल भी नहीं, यह लोक या परलोक भी नहीं, माता—पिता कुछ नहीं, औपपातिक (देवयोनि) भी नहीं, लोक में सम्यग्—मार्गारूढ एवं सम्यक्प्रतिपन्न कोई श्रमण—ब्राह्मण नहीं, जो इस लोक या परलोक को स्वयं साक्षात्कृत धर्म का उपदेश कर सके— यह सप्तम अक्षण है। (७)

“.... यह पुद्गल मध्य देश में तो उत्पन्न होता है, परन्तु होता है दुष्प्रज्ञ, जड़, एड़ (भेड़) की तरह

“पुन च परं, आवुसो, तथागतो च लोके न उपपन्नो होति अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च न देसियति ओपसमिको परिनिब्बानिको सम्बोधगामी सुगतप्पवेदितो; अयं च पुग्गलो मज्झिमेसु जनपदेसु पच्चाजातो होति, सो च होति पज्जवा अजेळो अनेळमूगो पटिबलो सुभासितदुब्भासितानमत्थमज्जातुं। अयं नवमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय। (९)

४८. नव अनुपुब्बविहारा—इधावुसो, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति; वितक्क-[N.205] विचारानं वूपसमा....पे०....दुतियं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति; पीतिया च विरागा....पे०....[B.221] ततियं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति; सुखस्स च पहाना....पे०....चतुत्थं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति; सब्बसो रूपसज्जाणं समतिक्रमा....पे०....आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति; सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्रम ‘अनन्तं विज्जाणं’ ति विज्जाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज [R.266] विहरति; सब्बसो विज्जाणञ्चायतनं समतिक्रम ‘नत्थि किञ्ची’ ति आकिञ्चज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति; सब्बसो आकिञ्चज्जायतनं समतिक्रम नेवसज्जानासज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सब्बसो नेवसज्जानासज्जायतनं समतिक्रम सज्जावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति।

४९. “नव अनुपुब्बनिरोधा—पठमं ज्ञानं समापन्नस्स कामसज्जा निरुद्धा होति; दुतियं ज्ञानं समापन्नस्स वितक्कविचारा निरुद्धा होन्ति; ततियं ज्ञानं समापन्नस्स पीति निरुद्धा होति; चतुत्थं ज्ञानं समापन्नस्स अस्सासपस्सासा निरुद्धा होन्ति; आकासानञ्चायतनं समापन्नस्स रूपसज्जा निरुद्धा होति; विज्जाणञ्चायतनं समापन्नस्स आकासानञ्चायतनसज्जा निरुद्धा होति; आकिञ्चज्जायतनं समापन्नस्स विज्जाणञ्चायतनसज्जा निरुद्धा होति; नेवसज्जानासज्जायतनं

मूक (अविवेकी) एवं सुभाषित या दुर्भाषित के मार्ग को समझने में असमर्थ रहता है—यह अष्टम अक्षण है। (८)

“तथागत लोक में उत्पन्न न हों, ...धर्मोपदेश करने वाला कोई न हो, परन्तु पुद्गल मध्यदेश में उत्पन्न हो, सत्पन्न, कुशल, विवेकी हो—यह नवम, अक्षण, असमय (ब्रह्मचर्यसाधना के लिये) है। (९)

नौ आनुपूर्वविहार— ४८. “आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षुसाधक कामभोगों या अकुशल धर्मों का त्याग कर वितर्क विचारसहित प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है (१)। वितर्क एवं विचारों को व्युपशम (निरोध) हो जाने के बाद द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर (२)। प्रीति के भी निरुद्ध हो जाने के बाद तृतीय ध्यान (३)। सुख के भी प्रहाण के बाद चतुर्थ ध्यान (४)। सर्वथा रूपसंज्ञाओं का अतिक्रमण कर आकाशानन्त्यायतन को (५)। सर्वथा आकाशानन्त्यायतन का भी अतिक्रमण कर ‘विज्ञान अनन्त है’—ऐसे विज्ञानानन्त्यायतन को (६)। विज्ञानानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर ‘कुछ नहीं है’—ऐसी भावना से आकिञ्चन्यायतन को (७)। आकिञ्चन्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को (८)। (अन्त में) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयित निरोध को प्राप्त कर साधना करता है। (९)

४९. नौ आनुपूर्व निरोध—“प्रथम ध्यान समापन्न की कामसंज्ञा निरुद्ध होती है (१)। द्वितीय ध्यान समापन्न के वितर्क-विचार निरुद्ध होते हैं (२)। तृतीय ध्यान समापन्न की प्रीति निरुद्ध होती है (३)। चतुर्थ ध्यान समापन्न के आश्वास-प्रश्वास निरुद्ध रहते हैं (४)। आकाशानन्त्यायतनसमापन्न की रूपसंज्ञा निरुद्ध रहती है (५)। विज्ञानानन्त्यायतनसमापन्न की आकाश संज्ञा निरुद्ध रहती है (६)। आकिञ्चन्यायतन—

समापन्नस्स आकिञ्चज्जायतनसञ्जा निरुद्धा होति; सञ्जावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्जा च वेदना च निरुद्धा होन्ति ।

“इमे खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन नव धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं....पे०....अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ॥

दस धम्मा सम्मदक्खाता

५०. “अत्थि खो, आवुसो, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन दस धम्मा सम्मदक्खाता, तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं....पे०....अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । कतमे दस ?

“दस नाथकरणा धम्मा । इधावुसो, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवृतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु । [B.222, R.267] यम्पावुसो, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवृतो विहरति, आचार- [N.206] गोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु, अयं पि धम्मो नाथरणो । (१)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो । ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्था सब्बज्जना केवलपरिपुण्णं पुरिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा । यम्पावुसो, भिक्खु बहुस्सुतो होति पे०.... दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा, अयं पि धम्मो नाथकरणो । (२)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु कल्याणमित्तो होति कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को ।

समापन्न की विज्ञानसंज्ञा निरुद्ध रहती है (७) । नैवसंज्ञानासंज्ञायतनप्राप्त की आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा निरुद्ध.... (८) । संज्ञावेदयितनिरोधसमापन्न की संज्ञा और वेदना निरुद्ध.... (९)

“आयुष्मानो! धर्मों के ये नवक उन तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने हमको भली-भाँति समझाये हैं । अतः इन्हें हम सब को एकतापूर्वक ग्रहण करना चाहिये और इन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये । इसी मे देव और मनुष्यों का हित एवं सुख निहित है ॥

५०. सम्यगाख्यात धर्मों के दशक— “आयुष्मानो! उस तत्त्वज्ञ, सर्वद्रष्टा भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने धर्मों के ये दशक भली-भाँति हमें उपदिष्ट किये हैं । इनका हमें एकतापूर्वक संग्रह (धारण) करना चाहिये । हमें इन पर कभी कोई विवाद नहीं करना चाहिये । यही देवताओं और मनुष्यों के लिये हितकर एवं सुखकर होगा ।

दश नाथकरण (रक्षा करने वाला) धर्म— “आयुष्मानो! कोई भिक्षु शीलवान् भिक्षुनियम (प्रातिमोक्ष) रूप कवच से आवृत होता है, यत्किञ्चित् प्रमाद से भी भय खाता है, आचार-गोचर युक्त होकर साधनारत रहता है, शिक्षापदों को ग्रहण कर उन का अभ्यास करता है । आयुष्मानो! ऐसा भिक्षु जो शीलवान् अभ्यास करता है— यह धर्म भी नाथकरण है । (१)

“कोई भिक्षु बहुश्रुत, श्रुतधर एवं श्रुतसञ्चयवान् होता है । ये जो धर्म आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक तथा अन्त में भी कल्याणकारक, सार्थक एवं सव्यञ्जन हैं, जिन्हें केवल, परिपूर्ण एवं परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहते हैं; वैसे धर्म भिक्षु द्वारा बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणी से परिचित, मन से अनुपेक्षित, दृष्टि से सुप्रतिविद्ध (अन्दर तक देखे गये) होते हैं— यह भी नाथकरण धर्म है । (२)

यम्पावुसो, भिक्खु कल्याणमित्तो होति कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को, अयं पि धम्मो नाथकरणो। (३)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सुवचो होति सोवचस्सरणेहि धम्मेहि समन्नागतो, खमो पदक्खिणग्गाही अनुसासनिं। यम्पावुसो, भिक्खु सुवचो होति....पे०.....पदक्खिणग्गाही अनुसासनिं, अयं पि धम्मो नाथकरणो। (४)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु यानि तानि सब्रह्मचारीनं उच्चावचानि किङ्करीणीयानि, तत्थ दक्खो होति अनलसो, तत्तुपायाय वीमंसाय समन्नागतो, अलं कातुं अलं संविधातुं। यम्पावुसो, भिक्खु यानि तानि सब्रह्मचारीनं पे०..... अलं संविधातुं, अयं पि धम्मो नाथकरणो। (५)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु धम्मकामो होति पियसमुदाहारो अभिधम्मे अभिविनये उळ्ळरपामोज्जो। यम्पावुसो, भिक्खु धम्मकामो होति....पे०.....उळ्ळरपामोज्जो, अयं पि धम्मो नाथकरणो। (६)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सन्तुट्ठो होति इतरीतरेहि चीवर-[B.223, R.268] पिण्डपातसेनासनगिलाप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेहि। यम्पावुसो, भिक्खु सन्तुट्ठो होति पे०..... परिक्खारेहि, अयं पि धम्मो नाथकरणो। (७)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्ळपरक्कमो अनिक्खित्तधरो कुसलेसु धम्मेसु। यम्पावुसो, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति....पे०.....अनिक्खित्तधरो कुसलेसु धम्मेसु, अयं पि धम्मो नाथकरणो। (८)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सतिमा होति, परमेन सतिनेपक्केन समान्नागतो, चिरकतं

“कोई भिक्षु कल्याणकारक मित्रों, कल्याणकारक साथियों एवं कल्याणकारक शुद्धियों से घिरा हुआ है, उसका यह धर्म भी.... नाथकरण होता है। (३)

“कोई भिक्षु सुवच होता है, सौवचस्य (मधुरभाषित) युक्त, धर्मों से युक्त एवं धर्मापदेश में समर्थ सम्पन्न होता है, उसका यह धर्म भी नाथकरण होता है। (४)

“....कोई भिक्षु सब्रह्मचारियों द्वारा बताये गये नानाप्रकार के कार्यों में दक्ष एवं आलस्यरहित होता है तथा उन में विमर्शयुक्त, मीमांसायुक्त रहता है तथा उनको पूर्ण करने में समर्थ होता है, उसका यह धर्म भी नाथकरण होता है। (५)

“....कोई भिक्षु अभिधर्म (सूत्र) एवं विनय में धर्मच्छुक, दूसरों के उपदेश को ससम्मान सुनने वाला तथा स्वयं उपदेश करने में उत्साही तथा सूत्र एवं विनय को सुन कर प्रमुदित होने वाला हो, उस भिक्षु का यह धर्म भी नाथ करण होता है। (६)

“....कोई भिक्षु जैसे-तैसे प्राप्त चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं ग्लानप्रत्यय भैषज्य से सन्तुष्ट रहता है, इस का यह धर्म भी नाथकरण होता है। (७)

“फिर आयुष्मानो! कोई भिक्षु अकुशल धर्मों के विनाश के लिये, कुशल धर्मों की प्राप्ति के लिये उद्योगरत एवं दृढ़ पराक्रमशील होता है तथा कुशल धर्मों के पालन से मन नहीं चुराता, इसका यह धर्म भी नाथकरण होता है। (८)

[N.207] पि चिरभासितं पि सरिता अनुस्सरिता । यम्पावुसो, भिक्खु सतिमा होति....पे०....सरिता अनुस्सरिता, अयं पि धम्मो नाथकरणो । (९)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु पज्जवा होति, उदयत्थगामिनिया पज्जाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मादुक्खक्खयगामिनिया । यम्पावुसो, भिक्खु पज्जवा होति....पे०.... सम्मादुक्खक्खयगामिनिया, अयं पि धम्मो नाथकरणो । (१०)

५१. दस कसिणायतनानि—पथवीकसिणमेको सज्जानाति, उद्धं अधो तिरियं अद्वयं अप्पमाणं; आपोकसिणमेको सज्जानाति....पे०....तेजो कसिणमेको सज्जानाति.... वायोकसिणमेको सज्जानाति....नीलकसिणमेको सज्जानाति....पीतकसिणमेको सज्जानाति.... लोहितकसिणमेको सज्जानाति....ओदातकसिणमेको सज्जानाति....आकास कसिणमेको सज्जानाति....विज्जानकसिणमेको सज्जानाति, उद्धं अधो तिरियं अद्वयं अप्पमाणं ।

[R.269] ५२. “दस अकुसलकम्मपथा—पाणातिपातो, अदिन्नादानं, कामेसुमिच्छाचारो, मुसावादो, पिसुणा वाचा, फरुसा वाचा, सम्फप्पलापो, अभिज्झा, ब्यापादो मिच्छादिट्ठि ।

[B.224] “दस कुसलकम्मपथा—पाणातिपाता वेरमणी, अदिन्नादाना वेरमणी, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी, मुसावादा वेरमणी, पिसुणाय वाचाय वेरमणी, फरुसाय वाचाय वेरमणी, सम्फप्पलापा वेरमणी, अनभिज्झा, अब्यापादो, सम्मादिट्ठि ।

“....कोई भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाक से समन्वित होता है, बहुत पहले कही बात को स्मरण रखने वाला, अनुस्मरण करने वाला होता है, इसका यह धर्म भी नाथकरण कहलाता है । (९)

“फिर आयुष्मानो! कोई भिक्षु प्रज्ञावान् होता है एवं उदय-अस्तगामी, आर्य, गहराई तक पहुँचने वाली तथा सम्यक्तया दुःखक्षय की तरफ ले जाने वाली प्रज्ञा से युक्त होता है । भिक्षु का यह धर्म भी ‘नाथकरण’ कहलाता है । (१०)

५१. दश कृत्स्नायतन— “कोई पुरुष ऊपर-नीचे, टेढ़े, एकमात्र, अतिमहान् पृथ्वीकृत्स्न—‘पृथ्वी ही सब कुछ है’—ऐसा जानने वाला होता है । (१)

“....अपृथ्वीकृत्स्न—‘जल ही सब कुछ है’—ऐसा । (२)

“....तेजकृत्स्न—‘तेज ही सब कुछ है’—ऐसा । (३)

“....वायुकृत्स्न—‘वायु ही सब कुछ है’—ऐसा । (४)

“....नीलकृत्स्न—‘नीलवर्ण ही सब कुछ है’—ऐसा । (५)

“....पीतकृत्स्न—‘पीतवर्ण ही सब कुछ है’—ऐसा । (६)

“....लोहितकृत्स्न—‘रक्तवर्ण ही सब कुछ है’—ऐसा । (७)

“....अवदातकृत्स्न—‘श्वेतवर्ण ही सब कुछ है’—ऐसा । (८)

“....आकाशकृत्स्न—‘आकाश ही सब कुछ है’—ऐसा । (९)

“....विज्ञानकृत्स्न—‘विज्ञान ही सब कुछ है’—ऐसा । (१०)

५२. दश अकुशल कर्मपथ (दुष्कर्म)—“प्राणातिपात (जीवहिंसा) (१), अदत्तादान (चौरी) (२), काममिथ्याचार (३), मृषावाद (झूठ) (४), पिशुनवचन (चुगली) (५), परुषवचन (कटुवचन) (६), सम्प्रलाप (बकवाद) (७), अभिघ्ना (लोभ) (८), व्यापाद (द्रोह) (९), मिथ्यादृष्टि (तीर्थिकों के मिथ्यामत) (१०) ।

दश कुशल कर्मपथ (सत्कर्म)—“१. प्राणातिपातविरति, २. अदत्तादानविरति, ३. काममिथ्याचार-

५३. "दस अरियवासा—इधावुसो, भिक्खु १. पञ्चङ्गविप्पहीनो होति, २. छळङ्ग-समन्नागतो, ३. एकारक्खो, ४. चतुरापस्सेनो, ५. पणुन्नपच्चेकसच्चो, ६. समवयसट्टेसनो, ७. अनाविलसङ्कप्पो, ८. पस्सद्धकायसङ्कारो, ९. सुविमुत्तचित्तो, १०. सुविमुत्तपज्जो।

"कथं चावुसो, भिक्खु पञ्चङ्गविप्पहीनो होति? इधावुसो, भिक्खुनो कामच्छन्दो पहीनो होति, ब्यापादो पहीनो होति, धिनमिद्धं पहीनं होति, उद्धच्चकुक्कुच्चं पहीनं होति, विचिकिच्छा पहीना होति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु पञ्चङ्गविप्पहीनो होति। (१)

"कथं चावुसो, भिक्खु छळङ्गसमन्नागतो होति? इधावुसो, भिक्खु चक्खुना [N.208] रूपं दिस्वा नेव सुमनो होति न दुम्मनो, उपेक्खको विहरति सतो सम्मानो। सोतेन सद्दं सुत्वा पे०....मनसा धम्मं विज्जाय नेव सुमनो होति न दुम्मनो, उपेक्खकतो विहरति सतो सम्मानो। एवं खो, आवुसो भिक्खु छळङ्गसमन्नागतो होति। (२)

"कथं चावुसो, भिक्खु एकारक्खो होति? इधावुसो, भिक्खु सतारक्खेन [R.270] चेतसा समन्नागतो होति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु एकारक्खो होति। (३)

"कथं चावुसो, भिक्खु चतुरापस्सेनो होति? इधावुसो, भिक्खु सङ्घायेकं पटिसेवति, सङ्घायेकं अधिवासेति, सङ्घायेकं विनोदेति, सङ्घायेकं परिवज्जेति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु चतुरापस्सेनो होति। (४)

"कथं चावुसो, भिक्खु पणुन्नपच्चेकसच्चो होति? इधावुसो, भिक्खुनो यानि तानि विरति, ४. मृषावादविरति, ५. पिशुनवचनविरति, ६. परुषवचनविरति, ७. सम्प्रलापविरति, ८. अनभिध्या (अलोभ), ९. अव्यापाद (अद्रोह), १०. सम्यग्दृष्टि।

५३. दश आर्यवास— "आयुष्मानो! कोई भिक्षु १. पाँच बातों (अङ्गों) से रहित होता है, २. छह अङ्गों से युक्त होता है, ३. एक रक्षा वाला होता है, ४. चार आश्रयवाला होता है, ५. मर्दों पर आग्रह का सर्वथा त्यागी होता है, ६. सभी एषणाओं का त्याग कर चुका होता है, ७. शुद्धसङ्कल्प होता है, ८. उसके कायसंस्कार प्रशब्ध (शान्त) हो चुके होते हैं, ९. वह सुविमुक्तचित्त होता है एवं १०. सुविमुक्तप्रज्ञ होता है।

"(१) आयुष्मानो! कैसे वह भिक्षु पाँच बातों से हीन होता है? यहाँ आयुष्मानो! उस भिक्षु का कामराग प्रहीण होता है, व्यापाद....स्त्यानमृद्ध....और्द्धत्य-कौकृत्य....एवं विचिकित्सा प्रहीण होती है। यों वह 'पञ्चाङ्गविप्रहीण' कहलाता है।

"(२) ...कैसे वह भिक्षु षडङ्गयुक्त होता है? आयुष्मानो! वह भिक्षु चक्षु से रूप देख कर न प्रसन्न होता है न अप्रसन्न, अपितु स्मृतिसम्प्रजन्ययुक्त हो कर उपेक्षक रहता हुआ साधनारत रहता है। श्रोत्र से शब्द सुन कर....घ्राण से गन्ध सूँघ कर....जिह्वा से रस चख कर....काया से स्पर्शव्य को छू कर....मन से धर्मों को जान कर न प्रसन्न होता है....।

"(३) ...कैसे वह भिक्षु एकारक्ष होता है? वह भिक्षु स्मृति की रक्षा से युक्त चित्त से समन्वित होता है, अतः वह 'एकारक्ष' कहलाता है।

"(४) ...कौन भिक्षु कैसे 'चतुरपाश्रयण' होता है? आयुष्मानो! वह भिक्षु समझ (संख्यान) कर एक का सेवन करता है, समझ कर एक को स्वीकार करता है, समझकर एक को हटाता है और समझ कर एक को वर्जित करता है, यों वह 'चतुरपाश्रयण' कहलाता है।

"(५) ...कोई भिक्षु कैसे 'पणुन्नप्रत्येकसत्य' होता है? वह भिक्षु उन श्रमण-ब्राह्मणों के प्रत्येक

पुथुसमणब्राह्मणानं पुथुपच्चेकसच्चाणि, सब्बानि तानि नुत्रानि होन्ति पणुत्रानि चत्तानि वन्तानि मुत्तानि पहीनानि पटिनिस्सट्ठानि। एवं खो, आवुसो भिक्खु पणुत्रपच्चेकसच्चो होति। (५)

[B.225] “कथं चावुसो, भिक्खु समवयसट्ठेसनो होति? इधावुसो, भिक्खुनो कामेसना पहीना होति, भवेसना पहीना होति, ब्रह्मचरियेसना पटिप्पस्सट्ठा। एवं खो, आवुसो, भिक्खु समवयसट्ठेसनो होति। (६)

“कथं चावुसो, भिक्खु अनाविलसङ्कप्पो होति? इधावुसो, भिक्खुनो कामसङ्कप्पो पहीनो होति, व्यापादसङ्कप्पो पहीनो होति, विहिंसासङ्कप्पो पहीनो होति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु अनाविलसङ्कप्पो होति। (७)

“कथं चावुसो, भिक्खु पस्सट्ठकायसङ्खारो होति? इधावुसो, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खा-सतिपारिसुद्धिं चतुत्थं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु पस्सट्ठकायसङ्खारो होति। (८)

“कथं चावुसो, भिक्खु सुविमुत्तचित्तो होति? इधावुसो, भिक्खुनो रागा चित्तं विमुत्तं होति, दोसा चित्तं विमुत्तं होति, मोहा चित्तं विमुत्तं होति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु सुविमुत्तचित्तो होति। (९)

“कथं चावुसो, भिक्खु सुविमुत्तपज्जो होति? इधावुसो, भिक्खु ‘रागो मे पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो’ ति पजानाति; ‘दोसो मे [N.209, R.271] पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो’ ति पजानाति; ‘मोहो मे पहीनो उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो’ ति पजानाति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु सुविमुत्तपज्जो होति। (१०)

सत्यों को अपने चित्त में से हटा देता है, जो उसके मतविरुद्ध हों उन से मुक्त हो जाता है, उन्हें त्याग देता है; ऐसे वह ‘प्रणुत्रप्रत्येकसत्य’ कहलाता है।

“(६) आयुष्मानो! कैसे कोई भिक्षु ‘सम्यग्विसृष्टैषण’ कहलाता है? वह भिक्षु कामेष्णा का, भवैष्णा का परित्याग किये रहता है, उस की ब्रह्मचर्यैष्णा शान्त रहती है; अतः वह ‘सम्यग्विसृष्टैषण’ कहलाता है।

“(७)....कैसे कोई भिक्षु ‘अनाविलसङ्कल्प’ कहलाता है? आयुष्मानो! उरा भिक्षु का कामसङ्कल्प, व्यापादसङ्कल्प विहिंसासङ्कल्प प्रहीण हो जाता है, अतः वह ‘अनाविलसङ्कल्प’ कहलाता है।

“(८) कैसे कोई भिक्षु ‘प्रश्रद्धकायसंस्कार’ कहलाता है? जो भिक्षु सुख एवं दुःख के प्रहाण से एवं सौमनस्य तथा दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हो जाने से, अदुःख असुखमय उपेक्षास्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है, यही भिक्षु ‘प्रश्रद्धकायसंस्कार’ कहलाता है।

“(९) आयुष्मानो! कैसे भिक्षु ‘विमुक्तचित्त’ कहलाता है? किसी साधनारत भिक्षु का चित्त राग-द्वेष-मोह से विमुक्त होता है तो वह भिक्षु ‘विमुक्तचित्त’ कहलाता है।

“(१०) आयुष्मानो! कैसे कोई भिक्षु ‘विमुक्तप्रज्ञ’ कहलाता है? आयुष्मानो! जब भिक्षु जान लेता है— ‘मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्नमूल एवं मस्तकच्छिन्न तालवृक्ष की तरह अभावप्राप्त हो गया, भविष्य

५४. दस असेक्खा धम्मा—असेक्खा सम्मादिट्ठि, असेक्खो सम्मासङ्कप्पो, असेक्खा सम्मावाचा, असेक्खो सम्माकम्मन्तो, असेक्खो सम्माआजीवो, असेक्खो सम्मावायामो, असेक्खा सम्मासति, असेक्खो सम्मासमाधि, असेक्खं सम्माजाणं, असेक्खा सम्माविमुत्ति।

“इमे खो, आवुसो तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन दस [B.226] धम्मा सम्मदक्खाता; तत्थ सब्बेहेव सङ्गायितब्बं न विवदितब्बं, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं” ति।

५५. अथ खो भगवा उट्ठहित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आमन्तेसि—“साधु साधु सारिपुत्त, साधु खो त्वं, सारिपुत्त, भिक्खून् सङ्गीतिपरियायं अभासी” ति।

इदमवोचायस्मा सारिपुत्तो, समनुज्जो सत्था अहोसि। अत्तमना च ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं अभिनन्दुं ति॥

सङ्गीतिसुत्तं निट्ठितं दसमं॥



में भी वह (राग) उत्पत्ति के अयोग्य हो गया है। मेरा द्वेष....। मेरा मोह प्रहीण हो गया....उत्पत्ति के अयोग्य हो गया है—ऐसा भिक्षु ‘विमुक्तप्रज्ञ’ कहलाता है।

५५. दश अशैक्ष्य धर्म—“(१) अशैक्ष्य सम्यग्दृष्टि, (२) अशैक्ष्य सम्यक्सङ्कल्प, (३) अशैक्ष्य सम्यग्वाक्, (४) अशैक्ष्य सम्यक्कर्मान्त, ५. अशैक्ष्य सम्यगाजीव, ६. अशैक्ष्य सम्यग्व्यायाम, ७. अशैक्ष्य सम्यक्स्मृति, ८. अशैक्ष्य सम्यक्समाधि, ९. अशैक्ष्य सम्यग्ज्ञान एवं १०. अशैक्ष्य सम्यग्विमुक्ति।

“आयुष्मानो! उस भगवान् तत्त्वज्ञ, सर्वदर्शी, ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने ये धर्मों के दशक हम को बताये हैं। इन को हमें एकतापूर्वक ग्रहण किये रखना चाहिये। इन पर किसी प्रकार का विवाद नहीं करना चाहिये। यही देवता और मनुष्यों के हित में सुखकर होगा।”

५५. तब भगवान् ने भी उठ कर आयुष्मान् सारिपुत्र के इस समग्र कथन का अनुमोदन करते हुए कहा—“साधु—साधु. सारिपुत्र! तुमने बहुत ही उचित ढंग से ये एकताबोधक बातें बतायीं।”

आयुष्मान् शारिपुत्र ने यह कहा। शास्ता भी इन से सहमत रहे। उन भिक्षुओं ने भी, यह सब सुन कर सन्तुष्ट होते हुए, आयुष्मान् शारिपुत्र के इस कथन का अभिनन्दन किया॥

दशम सङ्गीतिसुत्त समाप्त॥



११. दसुत्तरसुत्तं

१. आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि

[N.210, B.227, R.272] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा चम्पायं विहरति गगगराय पोक्खरणिगया तीरे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसत्तेहि। तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—“आवुसो भिक्खवे” ति! “आवुसो” ति ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

“दसुत्तरं पवक्खामि, धम्मं निब्बानपत्तिया।

दुक्खस्सन्तकिरियाय, सब्बगन्धप्पमोचनं”॥

एको धम्मो

२. “एको, आवुसो, धम्मो बहुकारो, एको धम्मो भावेतब्बो, एको धम्मो परिज्जेय्यो, एको धम्मो पहातब्बो, एको धम्मो हानभागियो, एको धम्मो विसेसभागियो, एको धम्मो दुप्पटिविज्झो, एको धम्मो उप्पादेतब्बो, एको धम्मो अभिज्जेय्यो, एको धम्मो सच्छिकातब्बो।

“कतमो एको धम्मो बहुकारो? अण्णमादो कुसलेसु धम्मेसु—अयं एको धम्मो बहुकारो। (१)

“कतमो एको धम्मो भावेतब्बो? कायगता सति सातसहगता—अयं एको धम्मो भावेतब्बो। (२)

[R.273] “कतमो एको धम्मो परिज्जेय्यो? फस्सो सासवो उपादानियो—अयं एको धम्मो परिज्जेय्यो। (३)

११. दशोत्तरसूत्र

१. सारिपुत्र द्वारा भिक्षुओं का आह्वान

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) चम्पा नगरी स्थित गगगरा पुष्करिणी के तट पर, विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ, साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को धर्म पर विशेष चर्चा हेतु अपने पास बुलाया। भिक्षु उनकी बात स्वीकार कर उनके पास एकत्र हुए। आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—

“मैं तुम्हें निर्वाण की प्राप्ति और दुःखों का अन्त करने के लिये, समस्त सन्देहों (ग्रन्थियों) को दूर करते हुए दशोत्तर (एक से दश तक) धर्मों के विषय में बताऊँगा।”

एक धर्म—२. “आयुष्मानो! (१) एक धर्म बहुत उपकारक है, (२) एक धर्म भावना (साधना) करने योग्य है, (३) एक धर्म परिज्ञेय (ज्ञातव्य) है, (४) एक धर्म प्रहातव्य (छोड़ने योग्य) है, (५) एक धर्म हानभागीय (त्यागानुकूल) है, (६) एक धर्म विशेषभागीय (विशेषता की तरफ बढ़ाने वाला), (७) एक धर्म दुष्प्रतिवेध (समझने में बहुत कठिन), (८) एक धर्म उत्पादनीय (निष्पादनीय), (९) एक धर्म अभिज्ञेय (विचारपूर्वक ज्ञातव्य) एवं (१०) एक धर्म साक्षात्करणीय (प्रत्यक्षकरणीय) है।

“कौन एक धर्म बहूपकारक है? कुशल धर्मों में अप्रमाद—यही एक धर्म बहुत उपकारक है। (१)

“कौन एक धर्म भावना करने योग्य है? अनुकूल (सात) कायगता स्मृति—इसी एक धर्म की भावना करनी चाहिये। (२)

“कतमो एको धम्मो पहातब्बो ? अस्मिमानो—अयं एको धम्मो पहातब्बो । (४)

“कतमो एको धम्मो हानभागियो ? अयोनिस्सो मनसिकारो—अयं एको धम्मो हानभागियो । (५)

“कतमो एको धम्मो विसेसभागियो ? योनिस्सो मनसिकारो—अयं एको [B.228] धम्मो विसेसभागियो । (६)

“कतमो एको धम्मो दुप्पटिविज्झो ? आनन्तरिको चेतोसमाधि—अयं एको धम्मो दुप्पटिविज्झो । (७)

“कतमो एको धम्मो उप्पादेतब्बो ? अकुप्पं जाणं—अयं एको धम्मो [N.211] उप्पादेतब्बो । (८)

“कतमो एको धम्मो अभिज्जेय्यो ? सब्बे सत्ता आहारद्वितिका—अयं एको धम्मो अभिज्जेय्यो । (९)

“कतमा एको धम्मो सच्छिकातब्बो ? अकुप्पा चेतोविमुत्ति—अयं एको धम्मो सच्छिकातब्बो । (१०)

“इति इमे दस धम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनज्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा ।

द्वे धम्मा

३. “द्वे धम्मा बहुकारा, द्वे धम्मा भावेतब्बा, द्वे धम्मा परिज्जेय्या, द्वे धम्मा पहातब्बा, द्वे धम्मा हानभागिया, द्वे धम्मा विसेसभागिया, द्वे धम्मा दुप्पटिविज्झा, द्वे धम्मा उप्पादेतब्बा, द्वे धम्मा अभिज्जेय्या, द्वे धम्मा सच्छिकातब्बा ।

“कौन एक धर्म परिज्ञेय (परित्याज्य) है ? आश्रवसहित उपादान (ग्रहण) किया जाने वाला स्पर्श—यही एक धर्म परिज्ञेय (ठीक से जानने योग्य) है । (३)

“कौन एक धर्म प्रहातव्य है ? अहम्भाव (अस्मिमान) । (४)

“कौन एक धर्म हानभागीय (अवनति की तरफ ले जाने वाला) है ? अयोनिशः मनस्कार—यह एक धर्म हानभागीय है । (५)

“कौन एक धर्म विशेषभागीय है ? योनिशः मनस्कार.... । (६)

“कौन एक धर्म दुष्प्रतिवेध (समझने में अतिकठिन) है ? आनन्तरिक चित्त समाधि—यह एक धर्म दुष्प्रतिवेध है । (७)

“कौन एक धर्म उत्पादनीय (निष्पादनीय) है ? अकोप (अद्यतन) ज्ञान—यह एक धर्म उत्पादनीय है । (८)

“कौन एक धर्म अभिज्ञेय है ? सभी प्राणी आहार पर आश्रित हैं—यह एक धर्म अभिज्ञेय है । (९)

“कौन एक धर्म साक्षात्करणीय है ? अकोप्य चेतोविमुक्ति—यह एक धर्म साक्षात्करणीय (प्रत्यक्षकरणीय) है । इस तरह ये दश धर्म तथ्य, अवितथ, अनन्यथा (यथार्थ) तथा सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा भली प्रकार से अभिसम्बुद्ध किये गये हैं । (१०)

दो धर्म—३. “आयुष्मानो ! ये दो धर्म बहुत उपकारक (उपयोगी) हैं, दो धर्म भावना करने योग्य हैं ...पूर्ववत्... दो धर्म साक्षात्करणीय हैं ।

“कौन से दो धर्म बहुत उपकारक है ? स्मृति और सम्प्रजन्म—ये दो धर्म बहुत उपकारक हैं । (११)

“कतमे द्वे धम्मा बहुकारा ? सति च सम्पजज्जं च—इमे द्वे धम्मा बहुकारा । (११)

“कतमे द्वे धम्मा भावेतब्बा ? समथो च विपस्सना च—इमे द्वे धम्मा भावेतब्बा । (१२)

“कतमे द्वे धम्मा परिज्जेय्या ? नामं च रूपं च—इमे द्वे धम्मा परिज्जेय्या । (१३)

[R.274] “कतमे द्वे धम्मा पहातब्बा ? अविज्जा च भवतण्हा च—इमे द्वे धम्मा पहातब्बा । (१४)

“कतमे द्वे धम्मा हानभागिया ? दोवचस्सता च पापमित्ता च—इमे द्वे धम्मा हानभागिया । (१५)

“कतमे द्वे धम्मा विसेसभागिया ? सोवचस्सता च कल्याणमित्ता च—इमे द्वे धम्मा विसेसभागिया । (१६)

[B.229] “कतमे द्वे धम्मा दुप्पटिविज्जा ? यो च हेतु यो च पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय, यो च हेतु यो च पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया—इमे द्वे धम्मा दुप्पटिविज्जा । (१७)

“कतमे द्वे धम्मा उप्पादेतब्बा ? द्वे जाणानि : खये जाणं, अनुप्पादे जाणं—इमे द्वे धम्मा उप्पादेतब्बा । (१८)

[N.212] “कतमे द्वे धम्मा अभिज्जेय्या ? द्वे धातुयो : सङ्खता च धातु असङ्खता च धातु—इमे द्वे धम्मा अभिज्जेय्या । (१९)

“कतमे द्वे धम्मा सच्छिकातब्बा ? विज्जा च विमुक्ति च—इमे द्वे धम्मा सच्छिकातब्बा । (२०)

“इति इमे वीसति धम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनज्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा ।

तयो धम्मा

४. “तयो धम्मा बहुकारा, तयो धम्मा भावेतब्बा....पे०....तयो धम्मा सच्छिकातब्बा ।

“कतमे तयो धम्मा बहुकारा ? सप्पुरिससंसेवो, सद्धम्मस्सवनं, धम्मानुधम्म-
पटिपत्ति—इमे तयो धम्मा बहुकारा । (२१)

“कौन दो धर्म भावना करने योग्य हैं? शमथ और विपर्यया। (१२)

“कौन दो धर्म परिज्ञेय हैं? नाम और रूप। (१३)

“कौन दो धर्म प्रहातव्य हैं? अविद्या एवं भवतृष्णा। (१४)

“कौन दो धर्म हानभागीय हैं? दुर्वचन एवं पापी के साथ मित्रता। (१५)

“कौन दो धर्म निशेषभागीय हैं? सुवचन एवं कल्याणमित्रता। (१६)

“कौन दो धर्म दुष्प्रतिवेध्य हैं? सत्त्वों के संक्लेश के हेतु प्रत्यय एवं सत्त्वविशुद्धि के हेतु प्रत्यय....। (१७)

“कौन दो धर्म उत्पादयोग्य हैं? दो ज्ञान : क्षयज्ञान एवं अनुत्पादज्ञान। (१८)

“कौन दो धर्म अभिज्ञेय हैं? दो धातु : संस्कृत (स्कन्ध आदि) एवं असंस्कृत (अकृत निर्वाण)....। (१९)

“कौन दो धर्म साक्षात्करणीय हैं? विद्या एवं विमुक्ति। (२०)

“यों ये बीस धर्म भूत, तथ्य, तथ अवितथ एवं अनन्यथा रूप से तथागत द्वारा अभिसम्बुद्ध हैं।
तीन धर्म—४. “ये तीन धर्म बहूपकारक हैं, तीन धर्म भावनीय हैं पूर्ववत्.... तीन धर्म साक्षात्करणीय हैं।

“कतमे तयो धम्मा भावेतब्बा ? तयो समाधी : सवितक्को सविचारो समाधि, अवितक्को विचारमत्तो समाधि, अवितक्को अविचारो समाधि—इमे तयो धम्मा भावेतब्बा । (२२)

“कतमे तयो धम्मा परिज्जेय्या ? तिस्रो वेदना : सुखा वेदना, दुक्खा [R.275] वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना—इमे तयो धम्मा परिज्जेय्या । (२३)

“कतमे तयो धम्मा पहातब्बा ? तिस्रो तण्हा : कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा—इमे तयो धम्मा पहातब्बा । (२४)

“कतमे तयो धम्मा हानभागिया ? तीणि अकुसलमूलानि : लोभो अकुसलमूलं, दोसो अकुसलमूलं, मोहो अकुसलमूलं—इमे तयो धम्मा हानभागिया । (२५)

“कतमे तयो धम्मा विसेसभागिया ? तीणि कुसलमूलानि : अलोभो [B.230] कुसलमूलं, अदोसो कुसलमूलं, अमोहो कुसलमूलं—इमे तयो धम्मो विसेसभागिया । (२६)

“कतमे तयो धम्मा दुप्पटिविज्जा ? तिस्रो निस्सरणिया धातुयो : कामानमेतं निस्सरणं यदिदं नेक्खम्मं, रूपानमेतं निस्सरणं यदिदं अरूपं, यं खो पन किञ्चि भूतं सङ्खतं पटिच्चसमुप्पन्नं निरोधो तस्स निस्सरणं—इमे तयो धम्मा दुप्पटिविज्जा । (२७)

“कतमे तयो धम्मा उप्पादेतब्बा ? तीणि जाणानि : अतीतंसे जाणं, [N.213] अनागतंसे जाणं, पच्चुप्पन्नंसे जाणं—इमे तयो धम्मा उप्पादेतब्बा । (२८)

“कतमे तयो धम्मा अभिज्जेय्या ? तिस्रो धातुयो : कामधातु, रूपधातु, अरूपधातु—इमे तयो धम्मा अभिज्जेय्या । (२९)

“कतमे तयो धम्मा सच्छिकातब्बा ? तिस्रो विज्जा : पुब्बेनिवासानुस्सतिजाणं विज्जा, सत्तानं चुतूपपाते जाणं विज्जा, आसवानं खये जाणं विज्जा—इमे तयो धम्मा सच्छिकातब्बा । (३०)

“कौन तीन धर्म बहुपकारक हैं ? सज्जनों के साथ सहवास, सद्धर्मश्रवण एवं धर्मानुसार आचरण—ये तीन धर्म बहुपकारक हैं । (२१)

“कौन तीन धर्म भावनीय हैं ? तीन समाधियाँ : सवितर्क सविचार समाधि, वितर्करहित विचारमात्र समाधि, वितर्क—विचार रहित समाधि । (२२)

“कौन तीन धर्म परिज्ञेय हैं ? तीन वेदनाएँ : सुखा, दुःखा, एवं अदुःखासुखा । (२३)

“कौन तीन धर्म प्रहातव्य हैं ? तीन तृष्णाएँ : काम तृष्णा, भव तृष्णा, एवं विभव तृष्णा । (२४)

“कौन तीन धर्म हानभागीय हैं ? तीन अकुशलमूल : लोभ, द्वेष एवं मोह । (२५)

“कौन तीन धर्म विशेषभागीय हैं ? तीन कुशलमूल— अलोभ, अद्वेष एवं अमोह । (२६)

“कौन तीन धर्म दुष्प्रतिवेध्य हैं ? तीन निःसरणीय वस्तु : १. नैष्कर्म्य कामों का निःसरण, २. अरूप, रूपों का निःसरण, ३. जो कुछ भूत (उत्पन्न), संस्कृत, प्रतीत्यसमुत्पन्न तथा निरोध, उसका निःसरण । (२७)

“कौन तीन धर्म उत्पाद्य हैं ? तीन ज्ञान : अतीत, भविष्य एवं वर्तमान अंश में ज्ञान । (२८)

“कौन तीन धर्म अभिज्ञेय हैं ? तीन धातु : कामधातु, रूपधातु एवं अरूपधातु । (२९)

“कौन तीन धर्म साक्षात्करणीय हैं ? तीन विद्या : पूर्वजन्मानुस्मृति ज्ञान, सत्त्वों के जन्म—मरण का ज्ञान एवं आश्रवों का क्षय ज्ञान । (३०)

[R.276] “इति इमे तिस धम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनञ्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा।

चत्तारो धम्मा

५. “चत्तारो धम्मा बहुकारा, चत्तारो धम्मा भावेतब्बा....पे०....चत्तारो धम्मा सच्छिकातब्बा।

“कतमे चत्तारो धम्मा बहुकारा? चत्तारि चक्कानि : पतिरूपदेसवासो, सम्पुरिसूप-निस्सयो, अत्तसम्मापणिधि, पुब्बे च कतपुञ्जता—इमे चत्तारो धम्मा बहुकारा। (३१)

“कतमे चत्तारो धम्मा भावेतब्बा? चत्तारो सत्तिपट्ठाना : इधावुसो, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु [B.231] पे०....चित्ते....पे०....धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा, विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं—इमे चत्तारो धम्मा भावेतब्बा। (३२)

“कतमे चत्तारो धम्मा परिज्जेय्या? चत्तारो आहारः कबळीकारो आहारो ओळारिको वा सुखुमो वा, फस्सो दुतियो, मनोसञ्चेतना ततिया, विज्जाणं चतुत्थं—इमे चत्तारो धम्मा परिज्जेय्या। (३३)

“कतमे चत्तारो धम्मा पहातब्बा? चत्तारो ओघा : कामोघो, भवोघो, दिट्ठोघो, अविज्जोघो—इमे चत्तारो धम्मा पहातब्बा। (३४)

“कतमे चत्तारो धम्मा हानभागिया? चत्तारो योगा : कामयोगो भवयोगो, दिट्ठियोगो, अविज्जायोगो—इमे चत्तारो धम्मा हानभागिया। (३५)

“कतमे चत्तारो धम्मा विसेसभागिया? चत्तारो विसंयोगा : कामयोगविसंयोगो, भवयोगविसंयोगो, दिट्ठियोगविसंयोगो, अविज्जायोगविसंयोगो—इमे चत्तारो धम्मा विसेसभागिया। (३६)

“ये तीस धर्म भूत (उत्पन्न) तथ्य तथा अवितथ एवं अनन्यथा रूप से तथागत द्वारा अभिसम्बुद्ध हैं।

चार धर्म— ५. “चार धर्म अत्यन्त उपकारक चार धर्म भावनीय पूर्ववत् चार धर्म साक्षात्करणीय हैं।

“कौन से चार धर्म अत्यन्त उपकारक हैं? चार चक्र : प्रतिरूप (अनुकूल) देशवास, सज्जन की सङ्गति, अपना शुभ अभिलाष एवं पूर्व जन्मोपार्जित पुण्य। (३१)

“कौन चार धर्म भावना करने योग्य हैं? चार स्मृतिप्रस्थान : १. काया में कायानुपश्यना, २. वेदना में वेदानुपश्यना, ३. चित्त में चित्तानुपश्यना एवं ४. धर्म में धर्मानुपश्यना। (३२)

“कौन चार धर्म परिज्ञेय हैं? चार आहार : १. स्थूल या सूक्ष्म ग्रास—ग्रास कर खाया गया आहार, २. स्पर्शसञ्चेतना, ३. मनःसञ्चेतना एवं ४. विज्ञान। (३३)

“कौन चार धर्म प्रहातव्य हैं? चार ओघ : कामौघ, भवौघ, दृष्ट्यौघ एवं अविद्याौघ। (३४)

“कौन चार धर्म हानभागीय हैं? चार योग (मिलन) : कामयोग, भवयोग, दृष्टियोग एवं अविद्यायोग। (३५)

“कौन चार धर्म विशेषभागीय हैं? चार विसंयोग (वियोग) : १. कामयोगविसंयोग, २. भवयोगविसंयोग, ३. दृष्टियोगविसंयोग एवं ४. अविद्यायोगविसंयोग। (३६)

“कतमे चत्तारो धम्मा दुप्पटिविज्झा ? चत्तारो समाधी : हानभागियो [R.277. N.214] समाधि, ठितिभागियो समाधि, विसेसभागियो समाधि, निब्बेधभागियो समाधि—इमे चत्तारो धम्मा दुप्पटिविज्झा । (३७)

“कतमे चत्तारो धम्मा उप्पादेतब्बा ? चत्तारि जाणानि : धम्मे जाणं, अन्वये जाणं, परिये जाणं, सम्मुत्तिया जाणं—इमे चत्तारो धम्मा उप्पादेतब्बा । (३८)

“कतमे चत्तारो धम्मा अभिज्जेय्या ? चत्तारि अरियसच्चाणि : दुक्खं अरियसच्चं, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं—इमे चत्तारो धम्मा अभिज्जेय्या । (३९)

“कतमे चत्तारो धम्मा सच्छिकातब्बा ? चत्तारि सामञ्जफलानि : सोतापत्तिफलं, सकदागामिफलं, अनागामिफलं, अरहतफलं—इमे चत्तारो धम्मा सच्छिकातब्बा । (४०)

“इति इमे चत्तारीस धम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनञ्जथा सम्मा [B.232] तथागतेन अभिसम्बुद्धा ।

पञ्च धम्मा

६. “पञ्च धम्मा बहुकारा.... पे०.... पञ्च धम्मा सच्छिकातब्बा ।

“कतमे पञ्च धम्मा बहुकारा ? पञ्च पधानियङ्गानि : इधावुसो, भिक्खु सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं—‘इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा’ ति; अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को, समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय; असतो होति अमायावी, यथाभूतमत्तानं आवीकत्ता सत्थरि विज्जूसु वा

“कौन चार धर्म दुष्प्रतिवेध हैं? चार समाधि : १. हानभागीय समाधि, २. स्थितिभागीय समाधि, ३. विशेषभागीय समाधि एवं ४. निर्वेधभागीय समाधि। (३७)

“कौन चार धर्म उत्पादनीय हैं? चार ज्ञान : १. धर्मज्ञान, २. अन्वयज्ञान, परिच्छेदज्ञान एवं ४. सम्मतिज्ञान। (३८)

“कौन चार धर्म अभिज्ञेय हैं? चार आर्यसत्य : दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग। (३९)

“कौन चार धर्म साक्षात्करणीय हैं? चार श्रामण्यफल : १. स्रोतआपत्ति, २. सकृदागामी, ३. अनागामी, ४. अर्हत्। (४०)

“ये चालीस धर्म भूत, तथ्य, तथ, अवितथ एवं अनन्य रूप से भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा अभिसम्बुद्ध हैं।

पाँच धर्म—६. “आयुष्मानो! ये पाँच धर्म बहुत उपकारक हैं, ये पाँच धर्म भावनीय हैं पूर्ववत् ये पाँच धर्म साक्षात्करणीय हैं।

“कौन से पाँच धर्म बहुकारक हैं? पाँच प्रधान अङ्ग : १. भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतज्ञान से श्रद्धा रखता है—वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध। २. नीरोग (स्वस्थ) रहता है, न अतिशीतल न अत्युष्ण, समविपाकवाली एवं योगाभ्यास के योग्य पाचनशक्ति=ग्रहणी होती है। ३. शठ नहीं होता, मायावी नहीं होता, शास्ता विद्वान् या ज्येष्ठ गुरुभाइयों के सम्मुख अपने को यथार्थ (जैसा है वैसा ही)

सब्रह्मचारीसु; आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय थामवा दब्धपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु; पञ्जवा होति, उदयत्थगमिनिया पञ्जाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया—इमे पञ्च धम्मा बहुकारा । (४१)

[R.278] “कतमे पञ्च धम्मा भावेतब्बा ? पञ्चङ्गिको सम्मा समाधि : पीतिफरणता, सुखफरणता, चेतोफरणता, आलोकफरणता, पच्चवेक्खणनिमित्तं—इमे पञ्च धम्मा भावेतब्बा । (४२)

[N.215] “कतमे पञ्च धम्मा परिज्जेय्या ? पञ्चुपादानक्खन्धा : रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्जुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विज्जाणुपादानक्खन्धो—इमे पञ्च धम्मा परिज्जेय्या । (४३)

“कतमे पञ्च धम्मा पहातब्बा ? पञ्च नीवरणानि : कामच्छन्दनीवरणं, व्यापादनीवरणं, थिनिमद्धनीवरणं, उद्धच्चकुक्कुच्चनीवरणं, विचिकिच्छानीवरणं—इमे पञ्च धम्मा पहातब्बा । (४४)

“कतमे पञ्च धम्मा हानभागिया ? पञ्च चेतोखिला : इधवुसो, भिक्खु सत्थरि कङ्कति [B.233] विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति । यो सो, आवुसो, भिक्खु सत्थरि कङ्कति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति, तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय । यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पठमो चेतोखिलो ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु धम्मे कङ्कति विचिकिच्छति....पे०....सङ्खे कङ्कति विचिकिच्छति....पे०....सिक्खाय कङ्कति विचिकिच्छति....पे०....सब्रह्मचारीसु कुपितो होति अनत्तमनो आहतचित्तो खिलजातो । यो सो, आवुसो भिक्खु सब्रह्मचारीसु कुपितो होति अनत्तमनो आहतचित्तो खिलजातो, तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय । यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पञ्चमो चेतोखिलो । इमे पञ्च धम्मा हानभागिया । (४५)

यथाभूत प्रकट करता है । ४. अकुशल धर्मों को दूर करने के लिये कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये साहसी दृढ़ पराक्रम एवं वीर्यवान् होकर साधना करता है । ५. निर्वेधिक (गहराई तक पुँचने वाली), उदयास्तगामिनी तथा सम्यग्दुःखक्षयगामिनी आर्य प्रज्ञा से युक्त होता है । (४९)

“कौन पाँच धर्म भावेतव्य हैं? पञ्चाङ्गिक समाधि : प्रीतिस्फुरणता, (प्रीति से व्याप्त होना), सुखस्फुरणता, चित्तस्फुरणता, आलोकस्फुरणता एवं प्रत्यवेक्षणनिमित्त । (४२)

“कौन पाँच धर्म परिज्ज्ञेय हैं? पाँच उपादानस्कन्ध : १. रूपोपादानस्कन्ध, वेदनोपादानस्कन्ध, संज्ञोपादानस्कन्ध, संस्कारोपादानस्कन्ध एवं विज्ञानोपादानस्कन्ध । (४३)

“कौन पाँच धर्म प्रहाणीय हैं? पाँच नीवरण : १. कामच्छन्दनीवरण, २. व्यापादनीवरण, ३. स्त्यानमृद्द, ४. औद्धत्य कोकृत्य (हिचकिचाहट) एवं ५. विचिकित्सा । (४४)

“कौन पाँच धर्म हानभागीय हैं? पाँच चित्त के कील (काँटे) : १. भिक्षु शास्ता के प्रति सन्देह करता है, उनके प्रति श्रद्धा नहीं रखता, प्रसन्न नहीं रहता । उसका चित्त संयम, अनुयोग और प्रधान (निरन्तर अध्यवसाय) की ओर नहीं झुकता—यह चित्त का पहला कील है । २. फिर भिक्षु धर्म के प्रति सन्देह करता है । ३. सङ्ग के प्रति । ४. शिक्षा के प्रति । ५. सब्रह्मचारियों से कुपित, असन्तुष्ट एवं पृथक् रहता है तथा उनके प्रति दुर्भाव रखता है । उसका चित्त प्रधान की तरफ नहीं झुकता । (४५)

“कतमे पञ्च धम्मा विसेसभागिया ? पञ्चिन्द्रियाणि : सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्जिन्द्रियं—इमे पञ्च धम्मा विसेसभागिया। (४६)

“कतमे पञ्च धम्मा दुप्पटिविज्झा ? पञ्च निस्सरणिया धातुयो : इधावुसो, भिक्खुनो कामे मनसिकरोतो कामेसु चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति, नेक्खम्मं खो पनस्स मनसिकरोतो नेक्खम्मे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति, तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं विसंयुत्तं कामेहि। ये च कामपच्चया [N.216] उप्पज्जन्ति आसवा विघाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि। न सो तं वेदनं वेदेति। इदमक्खातं कामानं निस्सरणं।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो ब्यापादं मनसिकरोतो ब्यापादे चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति, अब्यापादं खो पनस्स मनसिकरोतो अब्यापादे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति, तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं विसंयुत्तं ब्यापादेन। ये च ब्यापादपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघाता, मुत्तो सो तेहि। न सो तं वेदनं वेदेति। इदमक्खातं ब्यापादस्स निस्सरणं।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो विहेसं मनसिकरोतो विहेसाय चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति, अविहेसं खो पनस्स मनसिकरोतो अविहेसाय [B.234] चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति, तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं विसंयुत्तं विहेसाय। ये च विहेसापच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि। न सो तं वेदनं वेदेति। इदमक्खातं विहेसाय निस्सरणं।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो रूपे मनसिकरोतो रूपेसु चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति, अरूपं खो पनस्स मनसिकरोतो अरूपे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति, तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं विसंयुत्तं रूपेहि। ये च रूपपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि। न सो तं वेदनं वेदेति। इदमक्खातं रूपानं निस्सरणं।

“कौन से पाँच धर्म विशेषभागीय हैं? पाँच इन्द्रियाँ : श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृतीन्द्रिय, समाधीन्द्रिय एवं प्रज्ञेन्द्रिय। (४६)

“कौन पाँच धर्म दुष्प्रतिवेध हैं? पाँच निःसरणीयधातु : १. यहाँ आयुष्मानो! कामभोगों में मन लगाते हुए भिक्षु का कामों से चित्त न हटता है, न प्रसन्न होता है, न स्थित होता है, न विमुक्त होता है। निष्कामता में मन करते समय भिक्षु का मन लगता भी है, प्रसन्न भी होता है, स्थित भी होता है एवं विमुक्त भी होता है। उसका वह चित्त सुगत, सुभावित, सुव्यवस्थित सुवियुक्त एवं कामभोगों से वियुक्त रहता है। कामों के कारण उत्पन्न होने वाले आश्रवों से, विघातों से, परिदाहों से मुक्त हो जाता है। यही कामभोगों का निःसरण कहलाता है।

“२. विरोधी के व्यापाद में मन लगाते हुए भिक्षु का....।

“३. विहिंसा में मन लगाते हुए भिक्षु का....।

“४. रूप में मन लगाते हुए भिक्षु का....।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो सक्कायं मनसिकरोतो सक्काये चित्तं न पक्खन्दति न पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति, सक्कायनिरोधं खो पनस्स मनसिकरोतो सक्कायनिरोधे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति, तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं विसंयुत्तं सक्कायेन। ये च सक्कायपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विधाता परिळाहा, मुत्तो सो तेहि। न सो तं वेदनं वेदेति। इदमक्खातं सक्कायस्स निस्सरणं। इमे पञ्च धम्मा दुप्पटिविज्झा। (४७)

“कतमे पञ्च धम्मा उप्पादेतब्बा? पञ्चजाणिको सम्मासमाधि : ‘अयं समाधि पच्चुप्पन्नसुखो चेव आयतिं च सुखविपाको’ ति पच्चत्तं येव जाणं उप्पज्जति; ‘अयं समाधि [N.217] अरियो निरामिसो’ ति पच्चत्तं येव जाणं उप्पज्जति; ‘अयं समाधि अकापुरिससेवितो ति’ पच्चत्तं येव जाणं उप्पज्जति; ‘अयं समाधि सन्तो पणीतो पटिप्पस्सद्धलद्धो एकोदिभावाधिगतो, न ससङ्खारनिग्गहवारितगतो’ ति पच्चत्तं येव जाणं उप्पज्जति; ‘सो खो पनाहं इमं समाधिं सतो व समापज्जामि सतो वुट्ठहामी’ ति पच्चत्तं येव जाणं उप्पज्जति—इमे पञ्च धम्मा उप्पादेतब्बा। (४८)

“कतमे पञ्च धम्मा अभिज्जेय्या? पञ्च विमुत्तायतनानि : इधावुसो, भिक्खुनो सत्था [B.235] धम्मं देसेति अज्जतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी। यथा, यथा, आवुसो, भिक्खुनो सत्था धम्मं देसेति अज्जतरो वा गरुट्ठानियो ब्रह्मचारी तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। तस्स अत्थप्पटिसंवेदिनो धम्मप्पटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्धकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं पठमं विमुत्तायतनं।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति अज्जतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी, अपि च खो यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति। यथा यथा, आवुसो भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। तस्स अत्थप्पटिसंवेदिनो धम्मप्पटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्धकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं दुतियं विमुत्तायतनं।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति अज्जतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी, ना पि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति; अपि च खो,

“५. सत्कायदृष्टिं मे मन लगार्तं हुए भिक्षु का। (४७)

“कौन पाँच धर्म उत्पादनीय हैं? पाँच ज्ञानसम्बन्धी सम्यक्समाधि। १. ‘यह समाधि प्रत्युत्पन्न सुख वाली एवं भविष्य में भी सुखदायी है’—ऐसा प्रत्यात्म (पृथक्-पृथक्) ज्ञान उत्पन्न होता है। २. ‘यह समाधि आर्यजनसेवित और निरामिष (निर्विषय) है’। ३. ‘यह समाधि अकापुरुषों (उत्साही जनों) द्वारा सेवित है’। ४. ‘यह समाधि शान्त, प्रणीत, एकाग्रताप्राप्त, और संस्कारों से अबाधित है’। ५. ‘अतः मैं इस समाधि को स्मृति सहित रहता हुआ प्राप्त करता हूँ’—यह प्रत्यात्म ज्ञान उत्पन्न होता है। (४८)

“कौन पाँच धर्म अभिज्ञेय हैं? पाँच विमुक्त्यायतन। [इस पाठ का हिन्दी रूपान्तर पीछे सङ्गीतिसुत्त में ‘पञ्च विमुत्तायतनानि’ शीर्षक सं० २७ में विस्तरशः किया गया है, कृपया वही देखें] (४९)

यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति। यथा यथा, आवुसो, भिक्खु यथाभूतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति तथा तथा सो तस्मिं धम्मं अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। तस्स अत्थप्पटिसंवेदिनो धम्मप्पटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्दकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं ततियं विमुत्तायतनं।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति अज्जतरो [N.218] वा गरुट्टानियो सब्रह्मचारी, ना पि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति; अपि च खो, यथासुतं [B.236] यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति। यथा यथा, आवुसो, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति तथा तथा सो तस्मिं धम्मं अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। तस्स अत्थप्पटिसंवेदिनो धम्मप्पटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्दकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं चतुत्थं विमुत्तायतनं।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति अज्जतरो वा गरुट्टानियो सब्रह्मचारी, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति; अपि च ख्वस्स अज्जतरं समाधिनिमित्तं सुगगहितं होति सुमनसिकत्तं सूपधारितं सुप्पटिविद्धं पज्जाय। यथा यथा, आवुसो, भिक्खुनो अज्जतरं समाधिनिमित्तं सुगगहितं होति सुमनसिकत्तं सूपधारितं सुप्पटिविद्धं पज्जाय तथा तथा सो तस्मिं धम्मं अत्थप्पटिसंवेदी च होति धम्मप्पटिसंवेदी च। तस्स अत्थप्पटिसंवेदिनो धम्मप्पटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्दकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं पञ्चमं विमुत्तायतनं। इमे पञ्च धम्मा अभिज्जेय्या। (४९)

“कतमे पञ्च धम्मा सच्छिकातब्बा? पञ्च धम्मक्खन्धोः सीलक्खन्धो, समाधिक्खन्धो, पज्जाक्खन्धो, विमुत्तिक्खन्धो, विमुत्तिजाणदस्सनक्खन्धो—इमे पञ्च धम्मा सच्छिकातब्बा। (५०)

“इति इमे पज्जास धम्मा भूता तच्छा तथा अचित्ता अनज्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा।

छ धम्मा

७. “छ धम्मा बहुकारा....पे०....छ धम्मा सच्छिकातब्बा।

“कौन पाँच धर्म साक्षात्करणीय हैं? पाँच धर्मस्कन्धः शीलस्कन्ध, समाधिस्कन्ध, प्रज्ञास्कन्ध, विमुक्तिस्कन्ध एवं विमुक्तिज्ञानदर्शन स्कन्ध— ये पाँच धर्म साक्षात्करणीय हैं। (५०)

इस तरह ये पाँच, धर्म भूत, तथ्य, तथ, अचित्त एवं अनन्यथा रूप में तथागत ने अभिसम्बुद्ध किये हैं।

“कतमे छ धम्मा बहुकारा ? छ सारणीया धम्मा । इधवुसो, भिक्खुनो मेत्तं कायकम्मं [R.280, B.237] पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च । अयं पि धम्मो सारणीयो [N.219] पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामगिया एकीभावाय संवत्तति ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो मेत्तं वचीकम्मं पे०.....एकीभावाय संवत्तति ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो मेत्तं मनोकम्मं.....पे०.....एकीभावाय संवत्तति ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो ये ते लाभा धम्मिका धम्मलद्धा अन्तमसो पत्तपरियापन्नमतं पि, तथारूपेहि लाभेहि अप्पटिविभत्तभोगी होति सीलवन्तेहि सब्रह्मचारीहि साधारणभोगी । अयं पि धम्मो सारणीयो.....पे०.....एकीभावाय संवत्तति ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु यानि तानि सीलानि अखण्डानि अच्छिद्धानि असबलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्जुप्पसत्थानि अपरामट्टानि समाधिसंवत्तनिकानि, तथारूपेसु सीलेसु सीलसामञ्जगतो विहरति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च । अयं पि धम्मो सारणीयो.....पे०.....एकीभावाय संवत्तति ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु यायं दिट्ठि अरिया निय्यानिका निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाय, तथारूपाय दिट्ठिया दिट्ठिसामञ्जगतो विहरति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च । अयं पि धम्मो सारणीयो पियकरणो गरुकरणो, सङ्गहाय अविवादाय सामगिया एकीभावाय संवत्तति । इमे छ धम्मा बहुकारा । (५१)

“कतमे छ धम्मा भावेतब्बा ? छ अनुस्सतिट्ठानानि : बुद्धानुस्सति, धम्मानुस्सति, सङ्गानुस्सति, सीलानुस्सति, चागानुस्सति, देवतानुस्सति—इमे छ धम्मा भावेतब्बा । (५२)

छह धर्म— ७. “ये छह धर्म बहूपकारक हैं....। ये छह धर्म साक्षात्करणीय हैं ।

“कौन छह धर्म बहुत उपकारक हैं ? छह सारणीय (स्मरणीय) धर्म । १. जब आयुष्मानो ! किसी भिक्षु को सब्रह्मचारियों में गुप्त या प्रकट मैत्रीयुक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है तो यह धर्म सारणीय, प्रिय कारक एवं गौरव कारक है....।

२. मैत्रीयुक्त वाचिक कर्म।

३. मैत्रीयुक्त मानसिक कर्म।

४. कोई भिक्षु जिसको धार्मिक धर्मलब्ध लाभ हो—जैसे पात्र चुपड़ने योग्य थोड़ा सा तैल या घी, ऐसे लाभों को बाँट कर भोगता है, शीलवान् सब्रह्मचारियों सहित भोगता है—यह भी सारणीय है । ५. भिक्षु के जो अखण्ड अच्छिद्द, अशबल, निष्कलङ्क, उचित, विद्वत्प्रशंसित, अनिन्दित समाधि की तरफ बढ़ाने वाले शील हैं, वैसे शीलों में सब्रह्मचारियों के साथ प्रकट या गुप्त रूप से शीलश्रामण्य को प्राप्त कर आचरण करता है....। ६. जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है, जो कि वैसा करने वालों को भली—भाँति दुःखक्षय की तरफ ले जाती है, वैसी दृष्टि से सब्रह्मचारियों के साथ गुप्त या प्रकट रूप से दृष्टिश्रामण्य को प्राप्त कर साधना करता है तो यह धर्म सारणीय (स्मरणीय) प्रियकारक एवं गौरवकारक है । यह भिक्षुओं में एकता के लिये, अविवाद के लिये, समग्रता के लिये, एकता के लिये भी होता है । ये छह धर्म बहुत से कार्यों के साधक हैं । (५१)

“कौन छह धर्म भावयितव्य हैं ? छह अनुस्मृतिस्थान : बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, सङ्गानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति एवं देवतानुस्मृति— ये छह धर्म भावयितव्य (अभ्यास करने योग्य) हैं । (५२)

“कतमे छ धम्मा परिज्जेय्या ? छ अज्झत्तिकानि आयतनानि : चक्खायतनं, सोतायतनं, घानायतनं, जिह्वायतनं, कायातनं, मनायतनं—इमे छ धम्मा परिज्जेय्या। (५३)

“कतमे छ धम्मा पहातब्बा ? छ तण्हाकाया : रूपतण्हा, सद्दतण्हा, गन्धतण्हा, रसतण्हा, फोट्ठब्बतण्हा, धम्मतण्हा—इमे छ धम्मा पहातब्बा। (५४)

“कतमे छ धम्मा हानभागिया ? छ अगारवा : इधवुसो, भिक्खु सत्थरि [B.238] अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे....पे०....सङ्गे....सिक्खाय.... अप्पमादे....पटिसन्थारे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो—इमे छ धम्मा हानभागिया। (५५)

“कतमे छ धम्मा विसेसभागिया ? छ गारवा : इधवुसो, भिक्खु सत्थरि [N.220] सगारवो विहरति सप्पतिस्सो, धम्मे....पे०....सङ्गे....सिक्खाय....अप्पमादे....पटिसन्थारे सगारवो विहरति सप्पतिस्सो—इमे छ धम्मा विसेसभागिया। (५६)

“कतमे छ धम्मा दुप्पटिविज्झा ? छ निस्सरणिया धातुयो : इधवुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘मेत्ता हि खो मे, आवुसो, चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे ब्यापादो चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो—‘मा हेवं,’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच। मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि। न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं। न हि भगवा एवं वदेय्य। अट्ठानमेतं, आवुसो, अनवकासो यं मेत्ताय चेतोविमुत्तिया भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय, अथ च पनस्स ब्यापादो चित्तं परियादाय ठस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। निस्सरणज्हेतं, आवुसो, ब्यापादस्स यदिदं मेत्ताचेतोविमुत्ती’ ति।

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘करुणा हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे विहेसा चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो—‘मा हेवं,’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि पे०....निस्सरणं हेतं, आवुसो, विहेसाय यदिदं करुणाचेतोविमुत्ती’ ति।

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘मुदिता हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता....

“कौन से छह धर्म परिज्जेय हैं? छह आध्यात्मिक आयतन। जैसे चक्षुरायतन, श्रोत्रायतन, घ्राणायतन, जिह्वायतन, कायायतन एवं मनआयतन। ये छह धर्म परिज्जेय हैं। (५३)

“कौन छह धर्म पहातव्य हैं? छह तृष्णाकाय। जैसे—रूपतृष्णा, शब्दतृष्णा, गन्धतृष्णा, रसतृष्णा, स्प्रष्टव्यतृष्णा, धर्मतृष्णा। (५४)

“कौन छह धर्म हानभागीय (त्यागानुकूल) हैं? छह अगौरव (असम्मान)। जैसे कोई भिक्षु अपने शास्ता में असम्मान रखता है, श्रद्धा नहीं रखता; धर्म में सङ्घ में शिक्षा (भिक्षुनियमपालन) में, अप्रमाद में दूसरों के स्वागत (प्रतिसंस्तार) में सम्मान तथा श्रद्धा नहीं रखता। (५५)

“कौन छह धर्म विशेषभागीय हैं? छह गौरव (सम्मान)। १. जैसे शास्ता में सम्मान....धर्म में सङ्घ में शिक्षा में अप्रमाद में स्वागत में सम्मान तथा श्रद्धा रखना। (५६)

“कौन से छह धर्म दुष्प्रतिवेध हैं? छह निःसरणीय धातु। [छह निःसरणीय धातुओं का पीछे सङ्गीतिसूत्र में यही विशद व्याख्यान आ चुका है। अतः कृपया इसका हिन्दी रूपान्तर वहीं देखें।] (५७)

“कतमे छ धम्मा परिज्जेय्या ? छ अञ्जत्तिकानि आयतनानि : चक्खायतनं, सोतायतनं, घानायतनं, जिह्वायतनं, कायायतनं, मनायतनं—इमे छ धम्मा परिज्जेय्या । (५३)

“कतमे छ धम्मा पहातब्बा ? छ तण्हाकाया : रूपतण्हा, सद्दतण्हा, गन्धतण्हा, रसतण्हा, फोड्डब्बतण्हा, धम्मतण्हा—इमे छ धम्मा पहातब्बा । (५४)

“कतमे छ धम्मा हानभागिया ? छ अगारवा : इधवुसो, भिक्खु सत्थरि [B.238] अगारवो विहरति अप्पत्तिस्सो, धम्मे....पे०....सङ्खे....सिक्खाय.... अप्पमादे....पटिसन्थारे अगारवो विहरति अप्पत्तिस्सो—इमे छ धम्मा हानभागिया । (५५)

“कतमे छ धम्मा विसेसभागिया ? छ गारवा : इधवुसो, भिक्खु सत्थरि [N.220] सगारवो विहरति सप्पत्तिस्सो, धम्मे....पे०....सङ्खे....सिक्खाय....अप्पमादे....पटिसन्थारे सगारवो विहरति सप्पत्तिस्सो—इमे छ धम्मा विसेसभागिया । (५६)

“कतमे छ धम्मा दुप्पटिविज्झा ? छ निस्सरणिया धातुयो : इधवुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘मेत्ता हि खो मे, आवुसो, चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे ब्यापादो चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो—‘मा हेवं,’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच । मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि । न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं । न हि भगवा एवं वदेय्य । अट्टानमेतं, आवुसो, अनवकासो यं मेत्ताय चेतोविमुत्तिया भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय, अथ च पनस्स ब्यापादो चित्तं परियादाय ठस्सती ति नेतं ठानं विज्जति । निस्सरणज्हेतं, आवुसो, ब्यापादस्स यदिदं मेत्ताचेतोविमुत्ती’ ति ।

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘करुणा हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, अथ च पन मे विहेसा चित्तं परियादाय तिट्ठती’ ति, सो—‘मा हेवं,’ तिस्स वचनीयो, ‘मायस्मा एवं अवच मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि पे०....निस्सरणं हेतं, आवुसो, विहेसाय यदिदं करुणाचेतोविमुत्ती’ ति ।

“इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—‘मुदिता हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता....

“कौन से छह धर्म परिज्जेय हैं? छह आध्यात्मिक आयतन। जैसे चक्षुरायतन, श्रोत्रायतन, घ्राणायतन, जिह्वायतन, कायायतन एवं मनआयतन। ये छह धर्म परिज्जेय हैं। (५३)

“कौन छह धर्म पहातव्य हैं? छह तृष्णाकाय। जैसे—रूपतृष्णा, शब्दतृष्णा, गन्धतृष्णा, रसतृष्णा, स्प्रष्टव्यतृष्णा, धर्मतृष्णा। (५४)

“कौन छह धर्म हानभागीय (त्यागानुकूल) हैं? छह अगौरव (असम्मान)। जैसे कोई भिक्षु अपने शास्ता में असम्मान रखता है, श्रद्धा नहीं रखता; धर्म में सङ्घ में शिक्षा (भिक्षुनियमपालन) में, अप्रमाद में दूसरों के स्वागत (प्रतिस्स्तार) में सम्मान तथा श्रद्धा नहीं रखता। (५५)

“कौन छह धर्म विशेषभागीय हैं? छह गौरव (सम्मान)। १. जैसे शास्ता में सम्मान....धर्म में सङ्घ में शिक्षा में अप्रमाद में स्वागत में सम्मान तथा श्रद्धा रखना। (५६)

“कौन से छह धर्म दुष्प्रतिवेध हैं? छह निःसरणीय धातु। [छ निःसरणीय धातुओं का पीछे सङ्गीतिसूत्र में यही विशद व्याख्यान आ चुका है। अतः कृपया इसका हिन्दी रूपान्तर वहीं देखें।] (५७)

पे०....अथ च पन मे अरति चित्तं परियादाय तिट्ठती' ति, सो—'मा हेवं' तिस्स वचनीयो, 'मायस्मा एवं अवच....पे०....निस्सरणज्हेतं, आवुसो, यदिदं मुदिता चेतोविमुत्ती' ति।

[B.239] "इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—'उपेक्खा हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता पे०....अथ च पन मे रागो चित्तं परियादाय तिट्ठती' ति, सो—'मा हेवं' तिस्स वचनीयो, 'मायस्मा एवं अवच....पे०....निस्सरणज्हेतं, आवुसो रागस्स यदिदं उपेक्खा-चेतोविमुत्ती' ति।

[N.221] "इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—'अनिमित्ता हि खो मे चेतोविमुत्ति भाविता पे०....अथ च पन निमित्तानुसारि विज्जाणं होती' ति, सो—'मा हेवं' तिस्स वचनीयो, 'मायस्मा एवं अवच....पे०....निस्सरणज्हेतं, आवुसो, सब्बनिमित्तानं यदिदं अनिमित्ता चेतोविमुत्ती' ति।

"इध पनावुसो, भिक्खु एवं वदेय्य—'अस्मी ति खो मे विगतं अयमहमस्मी ति न समनुपस्सामि, अथ च पन मे विचिकिच्छाकथङ्कथासल्लं चित्तं परियादाय तिट्ठती' ति, सो—'मा हेवं' तिस्स वचनीयो, 'मायस्मा एवं अवच। मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि। न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं। न हि भगवा एवं वदेय्य। अट्टानमेतं, आवुसो, अनवकासो यं अस्मी ति विगते अयमहमस्मी ति असमनुपस्सतो, अथ च पनस्स विचिकिच्छाकथङ्कथासल्लं चित्तं परियादाय ठस्सती ति नेतं ठानं विज्जति। निस्सरणज्हेतं, आवुसो, विचिकिच्छाकथङ्कथासल्लस्स यदिदं अस्मिमानसमुग्घाटो' ति। इमे छ धम्मा दुप्पटिविज्झा। (५७)

[R.281] "कतमे छ धम्मा उप्पादेतब्बा? छ सततविहारा : इधावुसो, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा नेव सुमनो होति न दुम्मनो, उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो; सोतेन सद्दं सुत्वा....पे०....घानेन गन्धं घायित्वा....पे०....जिह्वाय रसं सायित्वा....पे०....कायेन फोटुब्बं फुसित्वा....पे०....मनसा धम्मं विज्जाय नेव सुमनो होति न दुम्मनो, उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो—इमे छ धम्मा उप्पादेतब्बा। (५८)

"कतमे छ धम्मा अभिज्जेय्या? छ अनुत्तरियानि : दस्सनानुत्तरियं, सवनानुत्तरियं, लाभानुत्तरियं, सिक्खानुत्तरियं, पारिचरियानुत्तरियं, अनुस्सतानुत्तरियं—इमे छ धम्मा अभिज्जेय्या। (५९)

"कतमे छ धम्मा सच्छिकातब्बा? छ अभिज्जा : इधावुसो, भिक्खु अनेकविहितं

"कौन छह धर्म उत्पादनीय हैं? छह सततविहार। १. आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु चक्षु से रूप देख कर न सौमनस्ययुक्त होता है न दौर्मनस्ययुक्त, अपितु वहाँ उपेक्षा करता हुआ स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक साधनारत रहता है। २. श्रोत्र से शब्द सुन कर। ३. घ्राण से गन्ध सूँघ कर। ४. जिह्वा से रस चख कर। ५. काया से स्पष्टव्य विषय का स्पर्श कर। ६. मन से धर्मों को जान कर साधनारत रहता है—ये छह धर्म उत्पादनीय हैं। (५८)

"कौन से छह धर्म अभिज्ञेय हैं? छह अनुत्तरीय (श्रेष्ठ)। जैसे— १. दर्शनानुत्तरीय, २. श्रवणानुत्तरीय, ३. लाभानुत्तरीय, ४. शिक्षानुत्तरीय, ५. परिचर्यानुत्तरीय, एवं ६. अनुश्रुतानुत्तरीय। (५९)

"कौन छह धर्म साक्षात्करणीय हैं? छह अभिज्ञेय : १. भिक्षु नानाविध ऋद्धियाँ प्राप्त करता है :

इद्धिविधं पच्चनुभोति—एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति; [B.240] आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुटुं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि आकासे; पठविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोति, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छति सेय्यथापि पठवियं; आकासे पि पल्लङ्गेन चङ्कमति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परामसति परिमज्जति; याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति।

“दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्रन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणाति—[N.222] दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च।

“परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाति—सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानाति....पे०....अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानाति।

“सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि जातिं....पे०....इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

“दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्रन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे; सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति....पे०....।

“आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पज्जाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इमे छ धम्मा सच्छिकातब्बा। (६०)

“इति इमे सट्ठि धम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनज्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा।

सत्त धम्मा

८. “सत्त धम्मा बहुकारा....पे०....सत्त धम्मा सच्छिकातब्बा। [R.282]

“कतमे सत्त धम्मा बहुकारा? सत्त अरियधनानि : सद्भाधनं, सीलधनं, हिरिधनं, ओत्तप्पधनं, सुतधनं, चागधनं, पज्जाधनं—इमे सत्त धम्मा बहुकारा। (६१)

जैसे—एक होते हुए भी बहुत हो जाना, या बहुत होते हुए एक हो जाना, आविर्भाव, तिरोभाव, आकाश के समान कुड्य (दीवार) से या प्राकार पर्वत के बीच से प्रकट होना; पृथ्वी में जल की तरह डूबना—उतराना; जल में विना भीगे हुई चलना; आकाश में पक्षी के समान आसन लगा कर चलना, चन्द्रमा और सूर्य को हाथ से छूना, ब्रह्मलोक तक इसी शरीर से पहुँचना। २. दिव्य श्रोत्रधातु से मनुष्यों की पहुँच से दूर के शब्दों को सुनना। ३. दूसरे प्राणियों या पुरुषों के चित्त को स्वचित्त से जानना। ४. अपने अनेक पूर्वजन्मों का स्मरण करना। ५. मनुष्यों की पहुँच से दूर तक विशुद्ध दिव्य चक्षु से जन्मते—मरते, सुरूप—कुरूप, मोटे—पतले मनुष्यों को जानना। ६. आश्रवों के क्षीण हो जाने से आश्रवरहित चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं साक्षात् कर साधनारत रहना। ये छह धर्म साक्षात्करणीय हैं। (६०)

“यों ये साठ (६०) धर्म भूत, तथ्य, तथ एवं अनन्यथा रूप से तथागत ने भली—भाँति अभिसम्बुद्ध किये हैं।

सात धर्म— ८. “(१) सात धर्म बहूपकारक होते हैं। (२) सात धर्म भावनीय होते हैं, ...१०. सात धर्म साक्षात्करणीय होते हैं।

[B.241] “कतमे सत्त धम्मा भावेतब्बा ? सत्त सम्बोज्झङ्गो : सतिसम्बोज्झङ्गो, धम्मविचय-सम्बोज्झङ्गो, विरियसम्बोज्झङ्गो, पीतिसम्बोज्झङ्गो, पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो, समाधिसम्बोज्झङ्गो, उपेक्खासम्बोज्झङ्गो—इमे सत्त धम्मा भावेतब्बा। (६२)

“कतमे सत्त धम्मा परिज्जेय्या ? सत्त विज्जाणट्ठितियो : सन्तावुसो, सत्ता नानत्तकाया नानत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—मनुस्सा, एकच्चे च देवा, एकच्चे च विनिपातिका। अयं पठमा विज्जाणट्ठिति।

“सन्तावुसो, सत्ता नानत्तकाया एकत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा ब्रह्मकायिका पठमाभिनिब्बत्ता। अयं दुतिया विज्जाणट्ठिति।

[N.223] “सन्तावुसो, सत्ता एकत्तकाया नानत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा आभस्सरा। अयं ततिया विज्जाणट्ठिति।

“सन्तावुसो, सत्ता एकत्तकाया एकत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा सुभकिण्हा। अयं चतुत्थी विज्जाणट्ठिति।

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो रूपसज्जानं समतिक्रमा.... पे०.... ‘अनन्तो आकासो’ ति आकासानञ्चायतनूपगा। अयं पञ्चमी विज्जाणट्ठिति।

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्रम्म ‘अनन्तं विज्जाणं’ ति विज्जाणञ्चायतनूपगा। अयं छट्ठी विज्जाणट्ठिति।

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो विज्जाणञ्चायतनं समतिक्रम्म ‘नत्थि किञ्ची’ ति आकिञ्चज्जायतनूपगा। अयं सत्तमी विज्जाणट्ठिति। इमे सत्त धम्मा परिज्जेय्या। (६३)

“कतमे सत्त धम्मा पहातब्बा ? सत्तानुसया : कामरागानुसयो, पटिघानुसयो, दिट्ठानुसयो, विचिकिच्छानुसयो, मानानुसयो, भवरागानुसयो, अविज्जानुसयो—इमे सत्त धम्मा पहातब्बा। (६४)

“कतमे सत्त धम्मा हानभागिया ? सत्त असद्धम्मा : इधावुसो, भिक्खु अस्सद्धो [B.242] होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी होति, अप्पस्सुतो होति, कुसीतो होति, मुट्ठस्सति होति, दुप्पज्जो होति—इमे सत्त धम्मा हानभागिया। (६५)

“कतमे सत्त धम्मा विसेसभागिया ? सत्त सद्धम्मा : इधावुसो, भिक्खु सद्धो होति,

“कौन से सात धर्म बहुत उपकारक होते हैं ? सात आर्यधन। श्रद्धा, शील, ही (लज्जा), आत्मसंयम, ज्ञान, पुण्य एवं प्रज्ञा। (६१)

“कौन सात धर्म भावनीय होते हैं ? सात बोध्यङ्ग : १. स्मृतिसम्बोध्यङ्ग, २. धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग, ३. वीर्यसम्बोध्यङ्ग, ४. प्रीति....., ५. प्रश्रद्धि....., ६. समाधि....., एवं ७. उपेक्षासम्बोध्यङ्ग। (६२)

“कौन सात धर्म परिज्ञेय हैं ? सात विज्ञानस्थितियाँ। [इन सातों विज्ञानस्थितियों का विस्तृत निरूपण पीछे सङ्गीतिसुत्त में आ चुका है, अतः इसका हिन्दी रूपान्तर वहीं देखें] (६३)

“कौन सात धर्म प्रहातव्य हैं ? सात अनुशय। १. कामरागानुशय, २. प्रतिघानुशय, ३. दृष्ट्यनुशय, ४. विचिकित्सानुशय, ५. मानानुशय, ६. भवरागानुशय एवं ७. अविद्यानुशय।.....। (६४)

“कौन सात धर्म हानभागीय हैं। सात असद्धर्म : जैसे—यहाँ १. कोई भिक्षु अश्रद्ध होता है, २.

हिरिमा होति, ओत्तप्पी होति, बहुस्सुतो होति, आरद्धविरियो होति, उपट्ठितस्सति होति, पज्जवा होति—इमे सत्त धम्मा विसेसभागिया। (६६)

“कतमे सत्त धम्मा दुप्पटिविज्झा ? सत्त सप्पुरिसधम्मा : इधावुसो, भिक्खु [R.283] धम्मज्जू च होति अत्थज्जू च अत्तज्जू च मत्तज्जू च कालज्जू च परिसज्जू च पुगगलज्जू च—इमे सत्त धम्मा दुप्पटिविज्झा। (६७)

“कतमे सत्त धम्मा उप्पादेतब्बा ? सत्त सज्जा : अनिच्चसज्जा, अनत्तसज्जा, असुभसज्जा, आदीनवसज्जा, पहानसज्जा, विरागसज्जा, निरोधसज्जा—इमे सत्त धम्मा उप्पादेतब्बा। (६८)

“कतमे सत्त धम्मा अभिज्जेय्या ? सत्त निहसवत्थूनि : इधावुसो, भिक्खु सिक्खासमादाने दिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च सिक्खासमादाने अविगतपेमो; [N.224] धम्मनिसन्तिया तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च धम्मनिसन्तिया अविगतपेमो; इच्छाविनये तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च इच्छाविनये अविगतपेमो; पटिसल्लाने तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च पटिसल्लाने अविगतपेमो; विरियारब्भे तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च विरियारब्भे अविगतपेमो; सतिनेपक्के तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च सतिनेपक्के अविगतपेमो; ; दिट्ठिपटिवेधे तिब्बच्छन्दो होति, आयतिं च दिट्ठिपटिवेधे अविगतपेमो—इमे सत्त धम्मा अभिज्जेय्या। (६९)

“कतमे सत्त धम्मा सच्छिकातब्बा ? सत्त खीणासवबलानि : इधावुसो, खीणासवस्स भिक्खुनो अनिच्चतो सब्बे सङ्खारा यथाभूतं सम्मप्यज्जाय सुदिट्ठा होन्ति। यम्पावुसो, खीणासवस्स भिक्खुनो अनिच्चतो सब्बे सङ्खारा यथाभूतं सम्मप्यज्जाय सुदिट्ठा होन्ति, इदं पि खीणासवस्स भिक्खुनो बलं होति, यं बलं आगम्म खीणासवो भिक्खु आसवानं खयं पटिजानाति—‘खीणा मे आसवा’ ति।

“पुन च परं, आवुसो खीणासवस्स भिक्खुनो अङ्गारकासूपमा कामा यथाभूतं [B.243] सम्मप्यज्जाय सुदिट्ठा होन्ति। यम्पावुसो....पे०....‘खीणा मे आसवा’ ति।

कोई अहीक, ३. कोई अनपत्रप, ४. कोई अल्पश्रुत होता है, ५. कोई कुसीद, ६. कोई मूढस्मृति एवं ७. कोई दुष्प्रज्ञ।। (६५)

“कौन सात धर्म विशेषभागीय हैं ? सात सद्धर्म : १. श्रद्धा ही, अपत्रपा, बहुश्रुत, आरब्ध वीर्य, उपस्थित स्मृति एवं सत्प्रज्ञा। (६६)

“कौन सात धर्म दुष्प्रतिवेध हैं ? सात सत्पुरुष-धर्म : १. भिक्षु धर्मज्ञ, २. अर्थज्ञ, ३. आत्मज्ञ, ४. मात्रज्ञ, ५. कालज्ञ, ६. परिषज्ज्ञ एवं ७. पुद्गलज्ञ। (६७)

“कौन सात धर्म उत्पादनीय हैं ? सात संज्ञाएँ : १. अनित्य संज्ञा, २. अनात्म, ३. अशुभ, ४. आदीनव, ५. प्रहाण, ६. विराग एवं ७. निरोधसंज्ञा। (६८)

“कौन सात धर्म अभिज्ञेय हैं ? सात निर्दश वस्तु। [इन सात निर्दश वस्तुओं की विस्तृत विवरण पीछे सङ्गीतिसूत्र में आ चुका है, कृपया हिन्दी रूपान्तर वहीं देखें]। (६९)

“कौन से सात धर्म साक्षात्करणीय हैं ? सात क्षीणाश्रव बल। १. “आयुष्मानो! यहाँ किसी १. क्षीणाश्रव भिक्षु का चित्त विवेक की तरफ झुका हुआ, उसी में लगा हुआ, उसी के बोझ से दबा हुआ सा

“पुन च परं, आवुसो, खीणासवस्स भिक्खुनो विवेकनित्रं चित्तं होति विवेकपोणं विवेकपब्भारं विवेकट्ठं नेक्खम्माभिरतं व्यन्तीभूतं सब्बसो आसवट्ठानियेहि धम्मोहि। यम्पावुसो....पे०....‘खीणा मे आसवा’ ति।

[R.284] “पुन च परं, आवुसो, खीणासवस्स भिक्खुनो चत्तारो सतिपट्ठाना भाविता होन्ति सुभाविता। यम्पावुसो....पे०....‘खीणा मे आसवा’ ति।

“पुन च परं, आवुसो, खीणासवस्स भिक्खुनो पञ्चिन्द्रियानि भावितानि होन्ति सुभावितानि। यम्पावुसो....पे०....‘खीणा मे आसवा’ ति।

“पुन च परं, आवुसो, खीणासवस्स भिक्खुनो सत्त बोज्झङ्गा भाविता होन्ति सुभाविता। यम्पावुसो....पे०....‘खीणा मे आसवा’ ति।

“पुन च परं, आवुसो, खीणासवस्स भिक्खुनो अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो भावितो होति सुभावितो। यम्पावुसो, खीणासवस्स भिक्खुनो अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो भावितो होति सुभावितो, इदं पि खीणासवस्स भिक्खुनो बलं होति, यं बलं आगम्म खीणासवो भिक्खु आसवानं खयं पटिजानाति—‘खीणा मे आसवा’ ति। इमे सत्त धम्मा सच्छिकातब्बा। (७०) [N.225] “इतीमे सत्तति धम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनज्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा ॥

पठमभागवारो निद्वितो ॥

अट्ठ धम्मा

१. “अट्ठ धम्मा बहुकारा....पे०....अट्ठ धम्मा सच्छिकातब्बा।

“कतमे अट्ठ धम्मा बहुकारा? अट्ठ हेतू अट्ठ पच्चया आदिब्रह्मचरियिकाय पज्जाय [B.244] अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय पटिलद्धाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तन्ति। कतमे अट्ठ?

इधावुसो, भिक्खु सत्थारं उपनिस्साय विहरति अज्जरं वा गरुट्ठानियं सब्रह्मचारि यत्थस्स तिब्बं हिरोत्तप्पं पच्चुपट्ठितं होति पेमं च गारवो च। अयं पठमो हेतु पठमो पच्चयो

रहता है। २. विवेक में स्थित होता है, ३. निष्कामता में लगा रहता है, ४. आश्रवों के उत्पादक सभी धर्मों से रहित रहता है, ५. उसे चारों प्रस्थान सिद्ध किये रहते हैं, ६. पाँचों इन्द्रियों संयत एवं सुभावित होती हैं, तथा ७. उसे आर्य अष्टाङ्गमार्ग भी सुभावित होते हैं। यह भी उस क्षीणाश्रव का बल होता है, जिसके सहारे से वह जान लेता है कि ‘मेरे सभी आश्रवक्षीण हो चुके हैं’। ये सात धर्म साक्षात् करणीय हैं। (७०)

“यों ये सत्तर (७०) धर्म भगवान् तथागत द्वारा भली-भाँति अभिसम्बुद्ध हैं ॥

प्रथम भागवार समाप्त ॥

आठ धर्म— १. “आठ धर्म बहुकारक हैं पूर्ववत्.... आठ धर्म साक्षात्करणीय हैं।

“कौन से आठ धर्म बहुकारक हैं? आठ हेतु एवं आठ प्रत्यय। (ये आठों हेतु एवं प्रत्यय) आदिब्रह्मचर्य धर्म—साधनासम्बन्धीनी प्रज्ञा की प्राप्ति और प्राप्त की वृद्धि, विपुलता तथा भावना की पूर्णता के लिये हैं। कौन से आठ?

(१) “कोई भिक्षु अपने शास्ता या गुरुस्थानीय ज्येष्ठ सब्रह्मचारी के आश्रय से साधना करता है,

आदिब्रह्मचरियिकाय पञ्जाय अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय पटिलद्धाय भिय्योभावाय [R.285] वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तति। (१)

“तं खो पन सत्थारं उपनिस्साय विहरति अज्जरं वा गरुट्टानियं सब्रह्मचारिं, यत्थस्स तिब्बं हिरोत्तपं पच्चुपट्टितं होति पेमं च गारवो च। ते कालने कालं उपसङ्गमित्वा परिपुच्छति परिपज्जति—‘इदं, भन्ते, कथं? इमस्स को अत्थो’ ति? तस्स ते आयस्मन्तो अविवटञ्चेव विवरन्ति, अनुत्तानीकतं च उत्तानीकरोन्ति, अनेकविहितेसु च कङ्खाट्टानियेसु धम्मेषु कङ्खं पटिविनोदेन्ति। अयं दुतियो हेतु दुतियो पच्चयो आदिब्रह्मचरियिकाय पञ्जाय अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय पटिलद्धाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तति। (२)

“तं खो पन धम्मं सुत्वा द्वयेन वूपकासेन सम्पादेति—कायवूपकासेन चित्तवूपकासेन च। अयं ततियो हेतु ततियो पच्चयो आदिब्रह्मचरियिकाय पञ्जाय अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय पटिलद्धाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तति। (३)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सीलवा होति पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। अयं चतुत्थो हेतु चतुत्थो पच्चयो आदिब्रह्मचरियिकाय पञ्जाय अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय [N.226] पटिलद्धाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तति। (४)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो। ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्था सब्बज्झना केवलपरिपुण्णं [B.245] परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। अयं पञ्चमो हेतु पञ्चमो पच्चयो आदिब्रह्मचरियिकाय पञ्जाय अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय पटिलद्धाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तति। (५)

जिससे उनके प्रति उसकी ही, अपत्रपा, प्रेम और सम्मान बना रहता है। यह प्रथम हेतु तथा प्रथम प्रत्यय है, जो भावना में बहुकारक हैं।

(२) “....आश्रय से साधना करता है और समय समय पर उनके पास जा कर उन से प्रश्न पूछता है—‘भन्ते! यह कैसे? या इसका क्या अर्थ है?’ उसे वे आयुष्मान् अस्पष्ट को स्पष्ट एवं कठिन को सरल करते हैं। अनेक तरह से सन्देहास्पद बातों को ठीक ढंग से समझाते हैं। वह दूसरा हेतु एवं प्रत्यय....।

(३) “....उस धर्म को सुन कर शरीर और मन—दोनों से उसका पालन करता है। यह तीसरा हेतु एवं प्रत्यय।

(४) “....भिक्षु शीलवान् होता है, भिक्षुनियमों से संयत होकर साधना करता है, आचार-विचारसम्पन्न रहता है, स्वल्प दोषों से भी भय मानता है, शिक्षापदों को मन लगा कर सीखता है। यह चौथा हेतु।

(५) “....भिक्षु उन आदिकल्याण, मध्येकल्याण एवं पर्यवसानकल्याणकारक धर्मों का बहुश्रुत, श्रुतसंश्रयी (पढ़े-सुने का स्मरण रखने वाला) होता है। उस प्रकार के धर्म उसने बहुत सुने एवं धारण किये हैं। वचन से परिचित एवं मन से आलोचित दर्शन उसके द्वारा भली-भाँति जाने होते हैं। यह पाँचवाँ हेतु एवं पाँचवाँ प्रत्यय....।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, [R.286] कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधरो कुसलेसु धम्मेसु। अयं छट्ठो हेतु छट्ठो पच्चयो आदिब्रह्मचरियिकाय पज्जाय अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय पटिलद्धाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तति। (६)

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सतिमा होति, परमेन सतिनेपक्केन समन्नागतो, चिरकतं पि चिरभासितं पि सरिता अनुस्सरिता। अयं सत्तमो हेतु सत्तमो पच्चयो आदिब्रह्मचरियिकाय पज्जाय अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय पटिलद्धाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तति। (७)

पुन च परं, आवुसो, भिक्खु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु, उदयब्बयानुपस्सी विहरति—‘इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति वेदना, इति वेदनाय समुदयो, इति वेदनाय अत्थङ्गमो; इति सज्जा, इति सज्जाय समुदयो, इति सज्जाय अत्थङ्गमो; इति सङ्खारा, इति सङ्खारानं समुदयो, इति सङ्खारानं अत्थङ्गमो; इति विज्जाणं, इति विज्जाणस्स समुदयो, इति विज्जाणस्स अत्थङ्गमो’ति। अयं अट्ठमो हेतु अट्ठमो पच्चयो आदिब्रह्मचरियिकाय पज्जाय अप्पटिलद्धाय पटिलाभाय पटिलद्धाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया संवत्तति। इमे अट्ठ धम्मा बहुकारा। (८) (७१)

“कतमे अट्ठ धम्मा भावेतब्बा? अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथिदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। इमे अट्ठ धम्मा भावेतब्बा। (७२)

[N.227] “कतमे अट्ठ धम्मा परिज्जेय्या? अट्ठ लोकधम्मा : लाभो च अलाभो च यसो च अयसो च निन्दा च पसंसा च सुखं च दुक्खं च—इमे अट्ठ धम्मा परिज्जेय्या। (७३)

[B.246, R.287] “कतमे अट्ठ धम्मा पहातब्बा? अट्ठ मिच्छन्ता : मिच्छादिट्ठि, मिच्छा-सङ्कप्पो, मिच्छावाचा, मिच्छाकम्मन्तो, मिच्छाआजीवो, मिच्छावायामो, मिच्छासति, मिच्छासमाधि—इमे अट्ठ धम्मा पहातब्बा। (७४)

(६) “...अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों की उत्पत्ति हेतु भिक्षु प्रयत्नशील रहता है—यह षष्ठ हेतु तथा प्रत्यय....।

(७) “...भिक्षु स्मृतिमान् हो कर परम स्मृति एवं प्रज्ञा से युक्त होता है। बहुत समय पूर्व स्वकृत कर्म का स्मरण करता है—यह सप्तम हेतु तथा प्रत्यय....।

(८) ...भिक्षु पञ्च उपादानस्कन्धों के उत्पाद एवं विनाश को देखते हुए साधनारत रहता है—‘यह संज्ञा है’....‘यह संस्कार है’ भावना पूर्ण करने के लिये हैं। (७१)

“कौन से आठ धर्मों की भावना करनी चाहिये? आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की : जैसे—१. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मन्त, ५. सम्यग्आजीव, ६. सम्यग्वायाम, ७. सम्यक्समृति एवं ८. सम्यक्समाधि। (७२)

“कौन आठ धर्म परिज्ञेय हैं। आठ लोकधर्म। लाभ, हानि, यश, अपयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख एवं दुःख। (७३)

“कौन आठ धर्म प्रहातव्य हैं। आठ मिथ्यादृष्टियाँ : १. मिथ्यादृष्टि, २. मिथ्यासङ्कल्प, ३. मिथ्यावाक्,

“कतमे अट्ठ धम्मा हानभागिया ? अट्ठ कुसीतवत्थूनि । इधावुसो, भिक्खुना कम्मं कातब्बं होति । तस्स एवं होति—‘कम्मं खो मे कातब्बं भविस्सति, कम्मं खो पन मे करोन्तस्स कायो किलमिस्सति, हन्दाहं निपज्जामी’ ति । सो निपज्जति, न विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकरियाय । इदं पठमं कुसीतवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना कम्मं कतं होति । तस्स एवं होति—‘अहं खो कम्मं अकासिं, कम्मं खो पन मे करोन्तस्स कायो किलन्तो, हन्दाहं निपज्जामी’ ति । सो निपज्जति, न विरियं आरभति....पे०..... इदं दुतियं कुसीतवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना मग्गो गन्तब्बो होति । तस्स एवं होति—‘मग्गो खो मे गन्तब्बो भविस्सति, मग्गं खो पन मे गच्छन्तस्स कायो किलमिस्सति, हन्दाहं निपज्जामी’ ति । सो निपज्जति, न विरियं आरभति....पे०..... इदं ततियं कुसीतवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना मग्गो गतो होति । तस्स एवं होति—‘अहं खो मग्गं अगमासिं, मग्गं खो पन मे गच्छन्तस्स कायो किलन्तो, हन्दाहं निपज्जामी’ ति । सो निपज्जति, न विरियं आरभति....पे०..... इदं चतुत्थं कुसीतवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो न लभति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि । तस्स एवं होति—‘अहं खो गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो नालत्थं लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि । तस्स मे कायो किलन्तो अकम्मज्जो । हन्दाहं निपज्जामी’ ति....पे०..... इदं पञ्चमं कुसीतवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो लभति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि । तस्स एवं होति—‘अहं खो गामं वा [N.228] निगमं वा पिण्डाय चरन्तो अलत्थं लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं [B.247] पारिपूरि । तस्स मे कायो गरुको अकम्मज्जो मासाचितं मज्जे । हन्दाहं निपज्जामी’ ति । सो निपज्जति पे०..... इदं छट्ठं कुसीतवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो उप्पन्नो होति अप्पमत्तको आबाधो । तस्स एवं होति—‘उप्पन्नो खो मे अयं अप्पमत्तको आबाधो; अत्थि कप्पो निपज्जितुं । हन्दाहं निपज्जामी’ ति । सो निपज्जति....पे०..... इदं सत्तमं कुसीतवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गिलानवुट्ठितो होति अचिरवुट्ठितो गेलज्जा । तस्स एवं होति—‘अहं खो गिलानवुट्ठितो अचिरवुट्ठितो गेलज्जा । तस्स मे कायो दुब्बलो अकम्मज्जो । अत्थि कप्पो निपज्जितुं । हन्दाहं निपज्जामी’ ति । सो निपज्जति....पे०..... इदं अट्ठमं कुसीतवत्थु । इमे अट्ठ धम्मा हानभागिया । (७५)

४. मिथ्याकर्मात्त, ५. मिथ्याआजीव, ६. मिथ्याव्यायाम, ७. मिथ्यास्मृति एवं ८. मिथ्यासमाधि—ये आठ धर्म प्रहातव्य हैं । (७४)

“कौन आठ धर्म हानभागीय हैं? आठ कुसीदवस्तु : [इन आठों कुसीद-वस्तुओं का यही व्याख्यान पीछे सङ्गीतिसूत्र में आ चुका है, अतः वहीं देखें ।] (७५)

“कतमे अट्ट धम्मा विसेसभागिया ? अट्ट आरम्भवत्थूनि । इधवुसो, भिक्खुना कम्म कातब्बं होति । तस्स एवं होति—‘कम्मं खो मे कातब्बं भविस्सति । कम्मं खो पन मे करोन्तेन न सुकरं बुद्धानं सासनं मनसिकातुं । हन्दाहं विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय’ ति । सो विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय । इदं पठमं आरम्भवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना कम्मं कतं होति । तस्स एवं होति—अहं खो कम्मं अकासिं । कम्मं खो पनाहं करोन्तो नासक्खिं बुद्धानं सासनं मनसिकातुं । हन्दाहं विरियं आरभामि....पे०....इदं दुतियं आरम्भवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना मग्गो गन्तब्बो होति । तस्स एवं होति—मग्गो खो मे गन्तब्बो भविस्सति । मग्गं खो पन मे गच्छन्तेन न सुकरं बुद्धानं सासनं मनसिकातुं । हन्दाहं विरियं आरभामि....पे०....इदं ततियं आरम्भवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुना मग्गो गतो होति । तस्स एवं होति—अहं खो मग्गं [N.229] अगमासिं । मग्गं खो पनाहं गच्छन्तो नासक्खिं बुद्धानं सासनं मनसिकातुं । हन्दाहं विरियं आरभामि....पे०....इदं चतुत्थं आरम्भवत्थु ।

[B.248] “पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो न लभति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि । तस्स एवं होति—अहं खो गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो नालत्थं लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि । तस्स मे कायो लहुको कम्मज्जो । हन्दाहं विरियं आरभामि....पे०....इदं पञ्चमं आरम्भवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो लभति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि । तस्स एवं होति—अहं खो गामं वा निगमं वा पिण्डाय चरन्तो लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरि । तस्स मे कायो बलवा कम्मज्जो । हन्दाहं विरियं आरभामि....पे०....इदं छट्ठं आरम्भवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो उप्पन्नो होति अप्पमत्तको आबाधो । तस्स एवं होति—उप्पन्नो खो मे अयं अप्पमत्तको आबाधो । ठानं खो पनेतं विज्जति यं मे आबाधो पवड्ढेय्य । हन्दाहं विरियं आरभामि....पे०....इदं सत्तमं आरम्भवत्थु ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु गिलाना वुट्ठितो होति अचिरवुट्ठितो गेलज्जा । तस्स एवं होति—‘अहं खो गिलाना वुट्ठितो अचिरवुट्ठितो गेलज्जा । ठानं खो पनेतं विज्जति यं मे आबाधो पच्चुदावत्तेय्य । हन्दाहं विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय’ ति । सो विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय । इदं अट्ठमं आरम्भवत्थु । इमे अट्ट धम्मा विसेसभागिया । (७६)

“कौन आठ धर्म विशेषभागीय हैं? आठ आरम्भ वस्तु : [इन आठ आरम्भ वस्तुओं का यही वर्णन पीछे सङ्गीतिसूत्र में आ चुका है, अतः हिन्दी रूपान्तर वहीं देखें।] (७६)

“कतमे अट्ट धम्मा दुप्पटिविज्झा ? अट्ट अक्खणा असमया ब्रह्मचरियवासाय । इधावुसो, तथागतो च लोके उप्पन्नो होति अरहं सम्मासम्बुद्धो, धम्मो च देसियति ओपसमिको परिनिब्बानिको सम्बोधगामी सुगतप्पवेदितो, अयं च पुग्गलो निरयं उपपन्नो होति । अयं पठमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय ।

“पुन च परं, आवुसो, तथागतो च लोके उप्पन्नो होति अरहं सम्मासम्बुद्धो, [B.249] धम्मो च देसियति ओपसमिको परिनिब्बानिको सम्बोधगामी सुगतप्पवेदितो, अयं च [N.230] पुग्गलो तिरच्छानयोनिं उप्पन्नो होति । अयं दुतियो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय ।

“पुन च परं.....पे०.....पेत्तिविसयं उपपन्नो होति । अयं ततियो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय ।

“पुन च परं....पे०.....अज्जरं दीघायुकं देवनिकायं उपपन्नो होति । अयं चतुत्थो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय ।

“पुन च परं.....पे०.....पच्चन्तिमेसु जनपदेसु पच्चाजातो होति मिलक्खेसु अविज्जातारेसु, यत्थ नत्थि गति भिक्खून् भिक्खुनीन् उपासकान् उपासिकान् । अयं पञ्चमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय ।

“पुन च परं.....पे०.....अयं च पुग्गलो मज्झिमेसु जनपदेसु पच्चाजातो होति, सो च होति मिच्छादिट्ठिको विपरीतदस्सो—‘नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मनं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिज्जा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती’ति । अयं छट्ठो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय ।

“पुन च परं.....पे०.....अयं च पुग्गलो मज्झिमेसु जनपदेसु पच्चाजातो होति, सो च होति दुप्पज्जो जळो एळमूगो नप्पटिबलो सुभासितदुब्भासितानमत्थमज्जातुं । अयं सत्तमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय ।

“पुन च परं.....पे०.....अयं च पुग्गलो मज्झिमेसु जनपदेसु पच्चाजातो होति, सो च होति पज्जवा अजळो अनेळमूगो पटिबलो सुभासितदुब्भासितानमत्थमज्जातुं । अयं अट्ठमो अक्खणो असमयो ब्रह्मचरियवासाय । इमे अट्ठ धम्मा दुप्पटिविज्झा । (७७)

“कतमे अट्ट धम्मा उत्पादेतब्बा ? अट्ट महापुरिसवितक्का : अप्पिच्छस्सायं धम्मो, नायं धम्मो महिच्छस्स; सन्तुट्ठस्सायं धम्मो, नायं धम्मो असन्तुट्ठस्स; पविवित्तस्सायं धम्मो, नायं धम्मो सङ्गणिकारामस्स; आरद्धविरियस्सायं धम्मो, नायं धम्मो कुसीतस्स; [B.250]

“कौन से आठ धर्म दुष्प्रतिवेध (समझने में दुरुह) हैं? ब्रह्मचर्यवास के आठ अक्षण ।’ [इन आठ अक्षणों का विशद वर्णन पीछे सङ्गीतिसूत्र में हो चुका है, हिन्दी रूपान्तर वहीं देखें ।] (७७)

“कौन आठ धर्म उत्पादनीय हैं? आठ महापुरुष वितर्क : १. यह धर्म अल्पेच्छों (त्यागियों) के ही अनुकूल है, महेच्छों (परिग्रहियों) के लिये नहीं; २. सन्तुष्टों के असन्तुष्टों के लिये नहीं; ३. एकान्तवासियों के ही अनुकूल है, जनसम्मर्दप्रियों के लिये नहीं; ४. उत्साही के आलसी के नहीं; ५. उपस्थितस्मृति

उपट्टितसतिस्सायं धम्मो, नायं धम्मो मुट्ठस्सतिस्स; समाहितस्सायं धम्मो, नायं धम्मो [N.231] असमाहितस्स; पज्जवतो अयं धम्मो, नायं धम्मो दुप्पज्जस्स; निप्पपज्जस्सायं धम्मो, नायं धम्मो पपञ्चारामस्सा ति—इमे अट्ठ धम्मा उप्पादेतब्बा। (७८)

“कतमे अट्ठ धम्मा अभिज्जेय्या? अट्ठ अभिभायतनानि : अज्झत्तं रूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति—एवंसज्जी होति। इदं पठमं अभिभायतनं।

“अज्झत्तं रूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्णदुब्बण्णानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति—एवंसज्जी होति। इदं दुतियं अभिभायतनं।

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति—एवंसज्जी होति। इदं ततियं अभिभायतनं।

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमणानि सुवण्णदुब्बण्णानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति—एवंसज्जी होति। इदं चतुत्थं अभिभायतनं।

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। सेय्यथापि नाम उमापुप्फं नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं नीलनिभासं, सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं नीलनिभासं, एवमेव अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति—एवंसज्जी होति। इधं पञ्चमं अभिभायतनं।

अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। सेय्यथापि नाम कणिकारपुप्फं पीतं पीतवण्णं पीतनिदस्सनं पीतनिभासं, [B.251] सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभोतभागविमट्ठं पीतं पीतवण्णं पीतनिदस्सनं पीतनिभासं, एवमेव अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। ‘तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी’ ति—एवंसज्जी होति। इदं छट्ठं अभिभायतनं।

[N.232] “अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानि लोहितकनिभासानि। सेय्यथापि नाम बन्धुजीवकपुप्फं लोहितकं लोहितकवण्णं लोहितकनिदस्सनं लोहितकनिभासं, सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभोतभागविमट्ठं लोहितकं लोहितकवण्णं लोहितकनिदस्सनं लोहितकनिभासं, एवमेव अज्झत्तं

वालों के ही अनुकूल है, अनुपस्थितस्मृति (मूढस्मृति) वालों के लिये नहीं; ६. एकाग्रचित्त के अनुकूल है, असमाहितचित्त के लिये नहीं; ७. प्रज्ञावान् के अनुकूल है, मूर्ख (दुष्प्रज्ञ) के लिये नहीं; ८. निष्प्रपञ्च पुरुषों के अनुकूल है, प्रपञ्चियों के लिये नहीं— ये आठ धर्म उत्पादनीय हैं। (७८)

“कौन आठ धर्म अभिज्ञेय हैं? आठ अभिभायतन। [इन आठ अभिभायतनों का वर्णन भी अक्षरशः सङ्गीतिसूत्र में किया जा चुका है, कृपया इसका हिन्दिरूपान्तर वहीं देखें।] (७९)

अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानि लोहितकनिभासानि । 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति—एवंसज्जी होति । इदं सत्तमं अभिभायतनं ।

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि । सेय्यथापि नाम ओसधितारका ओदाता ओदातवण्णा ओदातनिदस्सना ओदातनिभासा, सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभोतोभागविमट्ठं ओदातं ओदातवण्णं ओदातनिदस्सनं ओदातनिभासं, एवमेव अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि । 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति—एवंसज्जी होति । इदं अट्ठमं अभिभायतनं । इमे अट्ठ धम्मा अभिज्जेय्या । (७९)

“कतमे अट्ठ धम्मा सच्छिकातब्बा । अट्ठं विमोक्खा : रूपी रूपानि पस्सति । [R.288] अयं पठमो विमोक्खो ।

“अज्झत्तं अरूपसज्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति । अयं दुतियो विमोक्खो ।

“सुभन्तेव अधिमुत्तो होति । अयं ततियो विमोक्खो ।

“सब्बसो रूपसज्जानं समतिक्रमा पटिघसज्जानं अत्थङ्गमा नानत्तसज्जानं अमन-सिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति । अयं चतुत्थो विमोक्खो ।

“सब्बसो आकासानञ्जायतनं समतिक्रम्म 'अनन्तं विज्जाणं' ति विज्जाण-[B.252] ज्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति । अयं पञ्चमो विमोक्खो ।

“सब्बसो विज्जाणञ्जायतनं समतिक्रम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति । अयं छट्ठो विमोक्खो ।

“सब्बसो विज्जाणञ्जायतनं समतिक्रम्म नेवसज्जानासज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति । अयं सत्तमो विमोक्खो ।

“सब्बसो नेवसज्जानासज्जायतनं समतिक्रम्म सज्जावेदयितनिरोधं [N.233] उपसम्पज्ज विहरति । अयं अट्ठमो विमोक्खो । इमे अट्ठ धम्मा सच्छिकातब्बा । (८०)

“इति इमे असीति धम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनज्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा ।

नव धम्मा

१०. 'नव धम्मा बहुकारा....पे०....नव धम्मा सच्छिकातब्बा ।

“कौन आठ धर्म साक्षात्करणीय हैं? आठ विमोक्षा । [इन विमोक्षां का यही व्याख्यान अक्षरशः पीछे सङ्गीतिसूत्र में आ चुका है. अतः हिन्दी रूपान्तर भी वहीं देखें ।] (८०)

“यों ये अस्सी (८०) धर्म, भूत, तथ्य, तथ, अवितथ एवं अनज्जथा के रूप में भगवान् ने अभिसम्बुद्ध किये हैं ।

नौ धर्म— १०. नौ (९) धर्म बहूपकारक (उपयोगी) हैं, ...नौ (९) धर्म साक्षात्करणीय हैं ।

“कतमे नव धम्मा बहुकारा ? नव योनिःसोमनसिकारमूलका धम्मा : योनिःसोमनसिकरोतो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्दकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति, समाहिते चित्ते यथाभूतं जानाति पस्सति, यथाभूतं जानं पस्सं निब्बिन्दति, निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमुच्चति—इमे नव धम्मा बहुकारा। (८१)

“कतमे नव धम्मा भावेतब्बा ? नव पारिसुद्धिपधानियङ्गानि : सीलविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं, चित्तविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं, दिट्ठिविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं, कङ्कवावितरणविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं, मग्गामग्गजाणदस्सनविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं, पटिपदाजाणदस्सनविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं, जाणदस्सनविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं, पञ्चाविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं, विमुक्तिविसुद्धि पारिसुद्धिपधानियङ्गं—इमे नव धम्मा भावेतब्बा। (८२)

“कतमे नव धम्मा परिज्जेय्या ? नव सत्तावासा : सन्तावुसो, सत्ता नानत्तकाया नानत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—मनुस्सा, एकच्चे च देवा, एकच्चे च विनिपातिका। अयं पठमो सत्तावासो।

[B.253] “सन्तावुसो, सत्ता नानत्तकाया एकत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा ब्रह्मकायिका पठमाभिनिब्बत्ता। अयं दुतियो सत्तावासो।

“सन्तावुसो, सत्ता एकत्तकाया नानत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा आभस्सरा। अयं ततियो सत्तावासो।

“सन्तावुसो, सत्ता एकत्तकाया एकत्तसज्जिनो, सेय्यथापि—देवा सुभकिण्हा। अयं चतुत्थो सत्तावासो।

“सन्तावुसो, सत्ता असज्जिनो अप्पटिसंवेदिनो, सेय्यथापि—देवा असज्जसत्ता। अयं पञ्चमो सत्तावासो।

[N.234] “सन्तावुसो, सत्ता सव्वसो रूपसज्जानं समतिक्कमा पटिघसज्जानं अत्थङ्गमा नानत्तसज्जा अमनसिकारा’ अनन्तो आकासो’ ति आकासानज्वायतनूपगा। अयं छट्ठो सत्तावासो।

“कौन नौ धर्म बहुत उपयोगी हैं ? नौ योनिशः मनस्कारमूलक धर्म : जैसे—१. योनिशः मनस्कार (सूक्ष्म प्रत्यवेक्षण) करने से प्रमोद (हर्ष) उत्पन्न होता है; २. प्रमोद से प्रीति, प्रीति से कायप्रश्रब्धि; ४. कायप्रश्रब्धि से सुखानुभूति; ५. सुखानुभूति से चित्त की एकाग्रता; ६. चित्त की एकाग्रता से भली भाँति जानता, देखता है; ७. भली भाँति जानने, देखने से संसार के प्रति चित्त में उदासीनता आती है; ८. उस उदासीनता से वैराग्य उत्पन्न होता है; तथा ९. वैराग्य से साधक दुःखविमुक्त हो जाता है। यों, ये नौ धर्म बहु उपकारक हैं। (८१)

“कौन से नौ धर्म भावनीय हैं ? नौ परिशुद्धि प्रधान अङ्ग : १. शीलविशुद्धि परिशुद्धिप्रधान अङ्ग, २. चित्तविशुद्धि, ३. दृष्टिविशुद्धि, ४. कांक्षावितरण (सन्देहनाश) विशुद्धि, ५. मार्ग-अमार्गज्ञानदर्शनविशुद्धि, ६. प्रतिपज्ज्ञानदर्शनविशुद्धि, ७. ज्ञानदर्शनविशुद्धि, ८. प्रज्ञाविशुद्धि एवं ९. विमुक्तिविशुद्धि परिशुद्धिप्रधान अङ्ग— ये नौ धर्म भावना करने योग्य हैं। (८२)

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो आकासानज्जायतनं समतिकम्म ‘अनन्तं विज्जाणं’ ति विज्जाणञ्जायतनूपगा। अयं सत्तमो सत्तावासो।

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो विज्जाणञ्जायतनं समतिकम्म ‘नत्थि किञ्ची’ ति आकिञ्च-ज्जायतनूपगा। अयं अट्ठमो सत्तावासो।

“सन्तावुसो, सत्ता सब्बसो आकिञ्चज्जायतनं समतिकम्म नेवसज्जानासज्जायतनूपगा। अयं नवमो सत्तावासो। इमे नव धम्मा परिज्जेय्या। (८३)

“कतमे नव धम्मा पहातब्बा? नव तण्हामूलका धम्मा : १. तण्हं पटिच्च [R.289] परियेसना, २. परियेसनं पटिच्च लाभो, ३. लाभं पटिच्च विनिच्छयो, ४. विनिच्छयं पटिच्च छन्दरागो, ५. छन्दरागं पटिच्च अज्झोसानं, ६. अज्झोसानं पटिच्च परिग्गहो, ७. परिग्गहं पटिच्च मच्छरियं, ८. मच्छरियं पटिच्च आरक्खो, ९. आरक्खाधिकरणं दण्डादान-सत्थादान-कलह-विग्गह-विवाद-तुवंतुवं-पेसुज्जमुसावादा अनेके पापका अकुसला धम्मा संवत्तन्ति। इमे नव धम्मा पहातब्बा। (८४)

“कतमे नव धम्मा हानभागिया? नव आघातवत्थूनि : ‘अनत्थं मे अचरी’ ति [B.254] आघातं बन्धति, ‘अनत्थं मे चरती’ ति आघातं बन्धति, ‘अनत्थं मे चरिस्सती’ ति आघातं बन्धति; ‘पियस्स मे मनापस्स अनत्थं अचरी’ ति आघातं बन्धति....पे०.....अनत्थं चरती ति आघातं बन्धति....पे०.....अनत्थं चरिस्सती ति आघातं बन्धति; ‘अप्पियस्स मे अमनापस्स अत्थं अचरी’ ति आघातं बन्धति,.... अत्थं चरती ति आघातं बन्धति....पे०.....अत्थं चरिस्सती ति आघातं बन्धति। इमे नव धम्मा हानभागिया। (८५)

“कतमे नव धम्मा विसेसभागिया? नव आघातपटिविनया : ‘अनत्थं मे अचरि, तं कुतेत्थ लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति; ‘अनत्थं मे चरति, तं कुतेत्थ लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति; ‘अनत्थं मे चरिस्सति, तं कुतेत्थ लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति; पियस्स मे मनापस्स अनत्थं अचरि....पे०.....अनत्थं चरति....पे०.....अनत्थं चरिस्सति, तं कुतेत्थ [N.235] लब्भा’ ति आघातं पटिविनेति; ‘अप्पियस्स मे अमनापस्स अत्थं अचरि पे०.....अत्थं

“कौन से नौ धर्म परिज्ञेय हैं? नौ सत्त्वावास। [इन नौ सत्त्वावासों का यही वर्णन पीछे सङ्गीतिसूत्र में ‘धर्मों के नवक’ के व्याख्यान-प्रसङ्ग में आ चुका है, अतः इस का हिन्दी रूपान्तर उसी स्थान से ग्रहण करने का कष्ट करें।] (८३)

“कौन नौ धर्म परिज्ञेय हैं? नौ तृष्णामूलक धर्म : १. तृष्णा की सापेक्षिक गवेषणा; २. गवेषणा से लाभ की प्राप्ति; ३. लाभ की प्राप्ति से विनिश्चय, ४. विनिश्चय से छन्दराग, ५. छन्दराग से अध्यवसान (आसक्ति), ६. अध्यवसान से परिग्रह, ७. परिग्रह से मात्सर्य (कजूसी= बचा कर रखने का स्वभाव); ८. मात्सर्य से आरक्षा; एवं ९. आरक्षा के कारण नाना प्रकार के दण्ड या शस्त्रों का संग्रह, कलह, विग्रह, विवाद, “तूँ-तूँ, मैं-मैं”, चुगली, असत्य-भाषण आदि पापमय अकुशल धर्मों की उत्पत्ति होती है। यों ये नौ धर्म प्रहातव्य हैं। (८४)

“कौन से नौ धर्म हानभागीय (त्यागनुकूल) हैं? नौ आघात वस्तुएँ : [इन नौ आघातवस्तुओं का वर्णन भी सङ्गीतिसूत्र में हो चुका है।] (८५)

चरति.... अत्थं चरिस्सति, तं कुतेत्थं लब्भा' ति आघातं पटिविनेति—इमे नव धम्मा विसेसभागिया । (८६)

“कतमे नव धम्मा दुप्पटिविज्झा ? नव नानत्ता : १. धातुनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति फस्सनानत्तं, २. फस्सनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति वेदनानानत्तं, ३. वेदनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सज्जानानत्तं, ४. सज्जानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति सङ्कप्पनानत्तं, ५. सङ्कप्पनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति छन्दनानत्तं, ६. छन्दनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परिळाहनानत्तं, ७. परिळाहनानत्तं पटिच्च उप्पज्जति परियेसनानानत्तं, ८. परियेसनानानत्तं पटिच्च उप्पज्जति लाभनानत्तं—इमे नव धम्मा दुप्पटिविज्झा । (८७)

“कतमे नव धम्मा उप्पादेतब्बा ? नव सज्जा : असुभसज्जा, मरणसज्जा, आहारेपटिकूलसज्जा, सब्बलोकेअनभिरतिसज्जा, अनिच्चसज्जा, अनिच्चे दुक्खसज्जा, दुक्खे [R.290] अनत्तसज्जा, पहानसज्जा, विरागसज्जा—इमे नव धम्मा उप्पादेतब्बा । (८८)

“कतमे नव धम्मा अभिज्जेय्या ? नव अनुपुब्बविहारा : इधावुसो, भिक्खु विविच्चेव [B.255] कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति; वितक्कविचारानं वूपसमा....पे०....दुतियं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति; पीतिया च विरागा....पे०....ततियं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति; सुखस्स च पहाना....पे०....चतुत्थं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति; सब्बसो रूपसज्जानं समतिक्रमा....पे०....आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति; सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्रम्म 'अनन्तं विज्जाणं' ति विज्जाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति; सब्बो विज्जाणञ्चायतनं समतिक्रम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति; सब्बसो आकिञ्चज्जायतनं समतिक्रम्म नेवसज्जानासज्जायतनं उपसम्पज्ज विहरति; सब्बसो नेवसज्जानासज्जायतनं समतिक्रम्म सज्जावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति—इमे नव धम्मा अभिज्जेय्या । (८९)

“कतमे नव धम्मा सच्छिकातब्बा ? नव अनुपुब्बनिरोधा : पठमं ज्ञानं समापन्नस्स कामसज्जा निरुद्धा होति, दुतियं ज्ञानं समापन्नस्स वितक्कविचारा निरुद्धा होन्ति, ततियं ज्ञानं समापन्नस्स पीति निरुद्धा होति, चतुत्थं ज्ञानं समापन्नस्स अस्सासपस्सासा निरुद्धा होन्ति,

“कौन से नौ विशेषभागीय धर्म हैं ? नौ आघातप्रतिविनय । [इन नौ आघातप्रतिविनयों का भी पीछे सङ्गीतिसूत्र में वर्णन हो चुका है ।] (८६)

“कौन से नौ धर्म दुष्प्रतिवेध हैं ? नौ नानात्व : १. धातुनानात्व, २. धातुओं के नानात्व से स्पर्शनानात्व, ३. स्पर्शनानात्व से वेदानानात्व, ४. वेदानानात्व से संज्ञानानात्व, ५. संज्ञानानात्व से संकल्पनानात्व, ६. संकल्पनानात्व से छन्दनानात्व, ७. छन्दनानात्व से परिदाहनानात्व, ८. परिदाहनानात्व से पर्येषणानात्व, ९. पर्येषणानात्व से लाभनानात्व उत्पन्न होता है—ये नौ धर्म दुष्प्रतिवेध (दुरुह) हैं । (८७)

“कौन से नौ धर्म उत्पादनीय हैं ? नौ संज्ञाएँ : १. अशुभ संज्ञा, २. मरण संज्ञा, ३. आहार में प्रतिकूल संज्ञा, ४. समग्र संसार में अनासक्ति, ५. अनित्यसंज्ञा, ६. अनित्य में दुःखसंज्ञा, ७. दुःख में अनात्मसंज्ञा, ८. प्रहाणसंज्ञा एवं ९. विरागसंज्ञा— ये नौ धर्म उत्पादनीय हैं । (८८)

“कौन से नौ धर्म अभिज्ञेय हैं ? नौ अनुपूर्वविहार । [द्र०— पीछे सङ्गीतिसूत्रस्थ धर्मों का नवक ।] (८९)

आकासानञ्चायतनं समापन्नस्स रूपसञ्जा निरुद्धा होति, विज्जाणञ्चायनं समापन्नस्स [N.236] आकासानञ्चायतनसञ्जा निरुद्धा होति, आकिञ्चज्जायतनं समापन्नस्स विज्जाणञ्चायतनसञ्जा निरुद्धा होति, नेवसञ्जानासञ्जायतनं समापन्नस्स आकिञ्चज्जायतनसञ्जा निरुद्धा होति, सञ्जावेदयितनिरोधं समापन्नस्स सञ्जा च वेदना च निरुद्धा होन्ति— इमे नव धम्मा सच्छिकातब्बा । (९०)

“इति इमे नवुति धम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनञ्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा ।

दस धम्मा

११. “दस धम्मा बहुकारा....पे०....दस धम्मा सच्छिकातब्बा ।

“कतमे दस धम्मा बहुकारा? दस नाथकरणधम्मा : इधावुसो, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवृतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु । यम्पावुसो, भिक्खु सीलवा होति....पे०....सिक्खति सिक्खापदेसु, अयं पि धम्मो नाथकरणो ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु बहुस्सुतो....पे०....दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा । [B.256] यम्पावुसो, भिक्खु बहुस्सुतो....पे०....अयं पि धम्मो नाथकरणो ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु कल्याणमित्तो होति कल्याणसहायो कल्याण-सम्पवङ्को । यम्पावुसो, भिक्खु....पे०....कल्याणसम्पवङ्को, अयं पि धम्मो नाथकरणो ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सुवचो होति सोवचस्सकरणेहि धम्मेहि समन्नागतो खमो पदक्खिणग्गाही अनुसासनिं । यम्पावुसो, भिक्खु....पे०....अनुसासनिं, अयं पि धम्मो नाथकरणो ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु यानि तानि सन्नह्यचारीनं उच्चावचानि किङ्करणीयानि तत्थ दक्खो होति अनलसो, तनुपायाय वीमंसाय समन्नागतो, अलं कातुं, अलं संविधातुं । यम्पावुसो, भिक्खु....पे०....अलं संविधातुं, अयं पि धम्मो नाथकरणो ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु धम्मकामो होति पियसमुदाहारो, अभिधम्मे अभिविनये उळारपामोज्जो । यम्पावुसो, भिक्खु....पे०....उळारपामोज्जो, अयं पि धम्मो नाथकरणो ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सन्तुट्ठो होति इतरीतरचीवरपिण्डपातसेनासन-[N.237] गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेहि । यम्पावुसो, भिक्खु....पे०....अयं पि धम्मो नाथकरणो ।

“कौन से नौ धर्म साक्षात्करणीय है? नौ अनुपूर्वनिरोध । [इन का वर्णन भी पीछे सङ्गीतिसूत्र में हो चुका है, वही देखें] (९०)

“यों ये अस्सी (९०) धर्म, भूत, तथ्य, तथ, अवितथ एवं अनञ्जथा के रूप में भगवान् ने अभिसम्बुद्ध किये हैं ।

दश धर्म— “११. कुछ दश धर्म ऐसे हैं जो बहूपकारक है पूर्ववत् कुछ दस धर्म ऐसे हैं जो साक्षात्करणीय हैं ।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति....पे०.....कुसलेसु धम्मेसु। यम्पावुसो, भिक्खु....पे०.....अयं पि धम्मो नाथकरणो।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सतिमा होति, परमेन सतिनेपक्केन समन्नागतो, चिरकतं पि चिरभासितं पि सरिता अनुस्सरिता। यम्पावुसो, भिक्खु....पे०.....अयं पि धम्मो नाथकरणो।

“पुन च परं, आवुसो, भिक्खु पञ्जवा होति उदयत्थगामिनिया पञ्जाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया। यम्पावुसो, भिक्खु....पे०.....अयं पि धम्मो नाथकरणो। इमे दस धम्मा बहुकारा। (९१)

[B.257] “कतमे दस धम्मा भावेतब्बा? दस कसिणायतनानि: पठवीकसिणमेको सज्झानाति उद्धं अधो तिरियं अद्वयं अप्पमाणं, आपोकसिणमेको सज्झानाति....पे०.....तेजोकसिणमेको सज्झानाति....वायोकसिणमेको सज्झानाति....नीलकसिणमेको सज्झानाति....पीतकसिणमेको सज्झानाति....लोहितकसिणमेको सज्झानाति....ओदातकसिणमेको सज्झानाति....आकास-कसिणमेको सज्झानाति....विज्झाणकसिणमेको सज्झानाति उद्धं अधो तिरियं अद्वयं अप्पमाणं—इमे दस धम्मा भावेतब्बा। (९२)

“कतमे दस धम्मा परिज्जेय्या? दसायतनानि: चक्खायतनं, रूपायतनं, सोतायतनं, सद्दायतनं, घानायतनं, गन्धायतनं, जिह्वायतनं, रसायतनं, कायायतनं फोटुब्बायतनं—इमे दस धम्मा परिज्जेय्या। (९३)

“कतमे दस धम्मा पहातब्बा? दस मिच्छन्ता: मिच्छादिट्ठि, मिच्छासङ्कप्पो, मिच्छावाचा, मिच्छाकम्पन्तो, मिच्छाआजीवो, मिच्छावायामो, मिच्छासति, मिच्छासमाधि, मिच्छाजाणं मिच्छाविमुत्ति—इमे दस धम्मा पहातब्बा। (९४)

“कतमे दस धम्मा हानभागिया? दस अकुसलकम्मपथा: पाणातिपातो, अदिन्नादानं, [N.238] कामेसुमिच्चाचारो, मुसावादो, पिसुणा वाचा, फरुसा वाचा, सम्पप्पलापो, अभिज्झा, व्यापादो, मिच्छादिट्ठि—इमे दस धम्मा हानभागिया। (९५)

“कौन दश धर्म बहुत उपकारक हैं? दश नाथकरण धर्म। [इन धर्मों का वर्णन भी सङ्गीतिसूत्र में आ चुका है, कृपया वहीं देखें।] (९१)

“कौन दश धर्म भावनाकरणीय हैं? दश कृत्त्रायतन। [वि० २० सङ्गीतिसूत्र।] (९२)

“कौन दश धर्म परिज्जेय हैं? दश आयतन: १. चक्षुरायतन, २. रूपायतन, ३. श्रोत्रायतन, ४. शब्दायतन, ५. घ्राणायतन, ६. गन्धायतन, ७. जिह्वायतन, ८. रसायतन, ९. कायायतन एवं १०. स्पष्टव्यायतन। ये दश धर्म परिज्जेय हैं। (९३)

“कौन दश धर्म प्रहातव्य हैं? दश मिथ्यात्व: १. मिथ्यादृष्टि, २. मिथ्यासङ्कल्प, ३. मिथ्यावाक्, ४. मिथ्याकर्मन्त, ५. मिथ्याआजीव, ६. मिथ्याव्यायाम, ७. मिथ्या स्मृति, ८. मिथ्यासमाधि, ९. मिथ्याज्ञान एवं १०. मिथ्याविमुक्ति—ये दश (मिथ्यात्व) धर्म प्रहातव्य हैं। (९४)

“कौन दश धर्म हानभागीय हैं? दश अकुशल कर्मपथ: १. प्राणातिपात, २. अदत्तादान, ३. कामों में मिथ्याचार, ४. मृषावाद, ५. पिशुनावाक्, ६. परुषवाक्, ७. सम्प्रलाप, ८. अभिघ्ना, ९. व्यापाद एवं १०. मिथ्यादृष्टि—ये दश धर्म हानभागीय हैं। (९५)

“कतमे दस धम्मा विसेसभागिया ? दस कुसलकम्मपथा : पाणातिपाता [R.291] वेरमणी, अदिन्नादाना वेरमणी, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी, मुसावादा वेरमणी, पिसुणाय वाचाय वेरमणी, फरुसाय वाचाय वेरमणी, सम्फप्पलापा वेरमणी, अनभिज्झा, अब्यापादो, सम्मादिट्ठि—इमे दस धम्मा विसेसभागिया। (९६)

“कतमे दस धम्मा दुप्पटिविज्झा ? दस अरियवासा : इधवुसो, भिक्खु पञ्चङ्ग-विप्पहीनो होति छळङ्गसमन्नागतो एकारक्खो चतुरापस्सेनो पणुन्नपच्चेकसच्चो समवयसट्टेसनो अनाविलसङ्कप्पो पस्सद्दकायसङ्खारो सुविमुत्तचित्तो सुविमुत्तपज्जो।

“कथं चावुसो, भिक्खु पञ्चङ्गविप्पहीनो होति ? इधवुसो, भिक्खुनो [B.258] कामच्छन्दो पहीनो होति, ब्यापादो पहीनो होति, थिनमिद्धं पहीनं होति, उद्धच्चकुक्कुच्चं पहीनं होति, विचिकिच्छा पहीना होति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु पञ्चङ्गविप्पहीनो होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु छळङ्गसमन्नागतो होति ? इधवुसो, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा नेव सुमनो होति न दुम्मनो, उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। सोतेन सदं सुत्वा....घानेन गन्धं घायित्वा....जिह्वाय रसं सायित्वा....कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा....मनसा धम्मं विज्जाय नेव सुमनो होति न दुम्मनो, उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। एवं खो, आवुसो, भिक्खु छळङ्गसमन्नागतो होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु एकारक्खो होति ? इधवुसो, भिक्खु सतारक्खेन चेतसा समन्नागतो होति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु एकारक्खो होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु चतुरापस्सेनो होति ? इधवुसो, भिक्खु सङ्खायेकं पटिसेवति, सङ्खायेकं अधिवासेति, सङ्खायेकं परिवज्जति, सङ्खायेकं विनोदेति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु चतुरापस्सेनो होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु पणुन्नपच्चेकसच्चो होति ? इधवुसो, भिक्खुनो यानि [N.239] तानि पुथुसमणब्राह्मणानं पुथुपच्चेकसच्चानि सब्बानि तानि नुन्नानि होन्ति पणुन्नानि चत्तानि वन्तानि मुत्तानि पहीनानि पटिनिस्सट्ठानि। एवं खो, आवुसो, भिक्खु पणुन्नपच्चेकसच्चो होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु समवयसट्टेसनो होति ? इधवुसो, भिक्खुनो कामेसना पहीना होति, भवेसना पहीना होति, ब्रह्मचरियेसना पटिप्पस्सद्दा। एवं खो, आवुसो, भिक्खु समवयसट्टेसनो होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु अनाविलसङ्कप्पो होति ? भिक्खुनो कामसङ्कप्पो [B.259] पहीनो होति, ब्यापादसङ्कप्पो पहीनो होति, विहिंसासङ्कप्पो पहीनो होति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु अनाविलसङ्कप्पो होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु पस्सद्दकायसङ्खारो होति ? इधवुसो, भिक्खु सुखस्स च

“कौन दश धर्म विशेषभागीय हैं ? दश कुशल कर्मपथ (पुण्यकर्म) : १. हिंसा का त्याग, २. चोरी, ३. व्यभिचार, ४. असत्यभाषण, ५. चुगली, ६. कटुभाषण, ७. सम्प्रलाप, ८. लोभ, ९. द्रोह एवं १०. मिथ्यावृष्टि का त्याग— ये दश धर्म विशेषभागीय हैं। (९६)

पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासति-
पारिसुद्धिं चतुत्थं ज्ञानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु पस्सद्धकायसङ्खारो
होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु सुविमुत्तचित्तो होति? इधावुसो, भिक्खुनो रागा चित्तं विमुत्तं
होति, दोसा चित्तं विमुत्तं होति, मोहा चित्तं विमुत्तं होति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु सुविमुत्तचित्तो
होति।

“कथं चावुसो, भिक्खु सुविमुत्तपज्जो होति? इधावुसो, भिक्खु ‘रागो मे पहीनो
उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो’ ति पजानाति। ‘दोसो मे
पहीनो पे०.....आयतिं अनुप्पादधम्मो’ ति पजानाति..... ‘मोहो मे पहीनो.....पे०.....आयतिं
अनुप्पादधम्मो’ ति पजानाति। एवं खो, आवुसो, भिक्खु सुविमुत्तपज्जो होति। इमे दस धम्मा
दुप्पटिविज्झा। (९७)

“कतमे दस धम्मा उप्पादेतब्बा? दस सज्जा : असुभसज्जा, मरणसज्जा,
आहारेपटिकूलसज्जा, सब्बलोके अनभिरतिसज्जा, अनिच्चसज्जा, अनिच्चे दुक्खसज्जा, दुक्खे
अनत्तसज्जा, पहानसज्जा, विरागसज्जा, निरोधसज्जा—इमे दस धम्मा उप्पादेतब्बा। (९८)

“कतमे दस धम्मा अभिज्जेय्या? दस निज्जरवत्थूनि : सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठि
निज्जिण्णा होति, ये च मिच्छादिट्ठिपच्चया अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति ते चस्स
[N.240] निज्जिण्णा होन्ति। सम्मासङ्कप्पस्स मिच्छासङ्कप्पो.....पे०.....सम्मावाचस्स मिच्छा-
वाचा.....पे०.....सम्माकम्मन्तस्स मिच्छाकम्मन्तो.....पे०.....सम्माआजीवस्स मिच्छाआजीवो.....
पे०.....सम्मावायामस्स मिच्छावायामो.....पे०.....सम्मासतिसस्स मिच्छासति..... पे०.....सम्मा-
[B.260] समाधिस्स मिच्छासमाधि पे०..... सम्माजाणस्स मिच्छाजाणं निज्जिण्णं होति
.....पे०..... सम्माविमुत्तिस्स मिच्छाविमुत्ति निज्जिण्णा होति, ये च मिच्छाविमुत्तिपच्चया अनेके

“कौन दश धर्म दुष्प्रतिवेध हैं? दश आर्यवासा। [इसका भी विस्तृत व्याख्यान सङ्गीतिसूत्र में देखें।]
(९७)

“कौन से दश धर्म उत्पादनीय हैं? दश संज्ञाएँ (भावनाएँ) : १. अशुभसंज्ञा, २. मरणसंज्ञा, ३.
आहार में प्रतिकूलसंज्ञा, ४. समग्र संसार में अनासक्ति संज्ञा, ५. अनित्यसंज्ञा, ६. अनित्य में दुःखसंज्ञा,
७. दुःख में अनात्मसंज्ञा, ८. प्रहाणसंज्ञा, ९. विरागसंज्ञा एवं १०. निरोध संज्ञा। ये दश धर्म उत्पादयितव्य
हैं। (९८)

“कौन से दश धर्म अभिज्ञेय हैं? दश—निर्जर (ह्लासरहित) वस्तुएँ : १. निर्जर सम्यग्दृष्टि से
साधक की मिथ्यादृष्टि जीर्ण होती है, तथा उस मिथ्यादृष्टि के कारण उत्पन्न हुए अनेक पापमय अकुशल
धर्म भी जीर्ण हो जाते हैं। तथा सम्यग्दृष्टि के कारण अनेक पुण्यमय कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं। २.
..... सम्यक्सङ्कल्प से मिथ्यासङ्कल्प ३. सम्यग्वाणी से मिथ्यावचन ४. सम्यक्कर्म से मिथ्याकर्म
..... ५. सम्यग्आजीव से मिथ्या आजीव ६. सम्यग्व्यायाम से मिथ्या व्यायाम ७. सम्यक्समृति से
मिथ्यासमृति ८. सम्यक्समाधि से मिथ्यासमाधि ९. सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान १०.सम्यग्विमुक्ति
से मिथ्याविमुक्ति जीर्ण हो जाती है। तथा उस मिथ्याविमुक्ति से उत्पन्न हुए पापमय अकुशल धर्म भी जीर्ण

पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति ते चस्स निज्जिण्णा होन्ति । इमे दस धम्मा अभिज्जेय्या । (९९)

“कतमे दस धम्मा सच्छिकातब्बा ? दस असेक्खा धम्मा : असेक्खा सम्मादिट्ठि, असेक्खो सम्मासङ्कप्पो, असेक्खा सम्मावाचा, असेक्खो सम्माकम्मन्तो, असेक्खो सम्माआजीवो, असेक्खो सम्मावायामो, असेक्खा सम्मासति, असेक्खो सम्मासमाधि, असेक्खं सम्माजाणं, असेक्खा सम्माविमुत्ति—इमे दस धम्मा सच्छिकातब्बा । (१००)

“इति इमे सतधम्मा भूता तच्छा तथा अवितथा अनज्जथा सम्मा तथागतेन अभिसम्बुद्धा” ति ।

इदमवोचायस्मा सारिपुत्तो । अत्तमना ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं अभिनन्दुं ति ॥

दसुत्तरसुत्तं निद्रितं एकादसमं ॥

पाथिकवग्गो निद्रितो ॥

हो जाते हैं । सम्यग्विमुक्ति के कारण अनेक पुण्यमय कुशल धर्म उत्पन्न होने लगते हैं । (ये दश धर्म अभिज्ञेय हैं) । (९९)

“कौन दश धर्म साक्षात्करणीय हैं ? दश अशैक्ष्य (अर्हत्सम्बन्धी) धर्म : १. अशैक्ष्य (अर्हत् की) सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मन्त, ५. सम्यग्आजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्समृति, ८. सम्यक्समाधि, ९. सम्यग्ज्ञान एवं १०. अशैक्ष्य सम्यग्विमुक्ति—ये दश धर्म साक्षात्करणीय हैं । (१००)

“इस प्रकार ये सौ धर्म तथ्य, (सत्य) तथ, अवितथ (यथार्थ) अनन्यथा (अनुकूल) तथा सम्यग् रूप से तथागत (भगवान् बुद्ध) ने अभिसम्बुद्ध किये हैं ।”

आयुष्मान् सारिपुत्र ने यह कहा । (यह सुन कर) भिक्षुओं ने सन्तुष्ट हो कर आयुष्मान् सारिपुत्र के कथन का अभिनन्दन किया ॥

ग्यारहवें दशोत्तरसूत्र समाप्त ॥

पाथिकवर्ग भी पूर्ण हुआ ॥

तस्सुद्धानं

पाथिको च उदुम्बरं, चक्रवत्ति अगगञ्जकं ।

सम्पसादनपासादं, महापुरिसलक्खणं ॥

[N.241]

सिङ्गालाटानाटियं, सङ्गीति च दसुत्तरं ।

एकादसहि सुत्तेहि, पाथिकवग्गो ति वुच्चति ॥

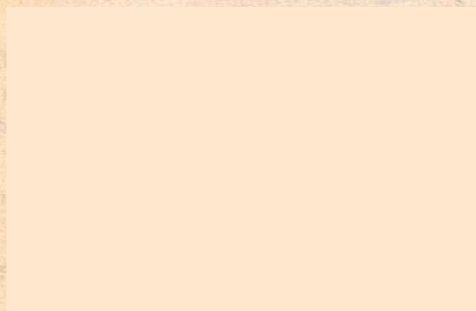
दीर्घनिकायपालि निड्डिता ॥

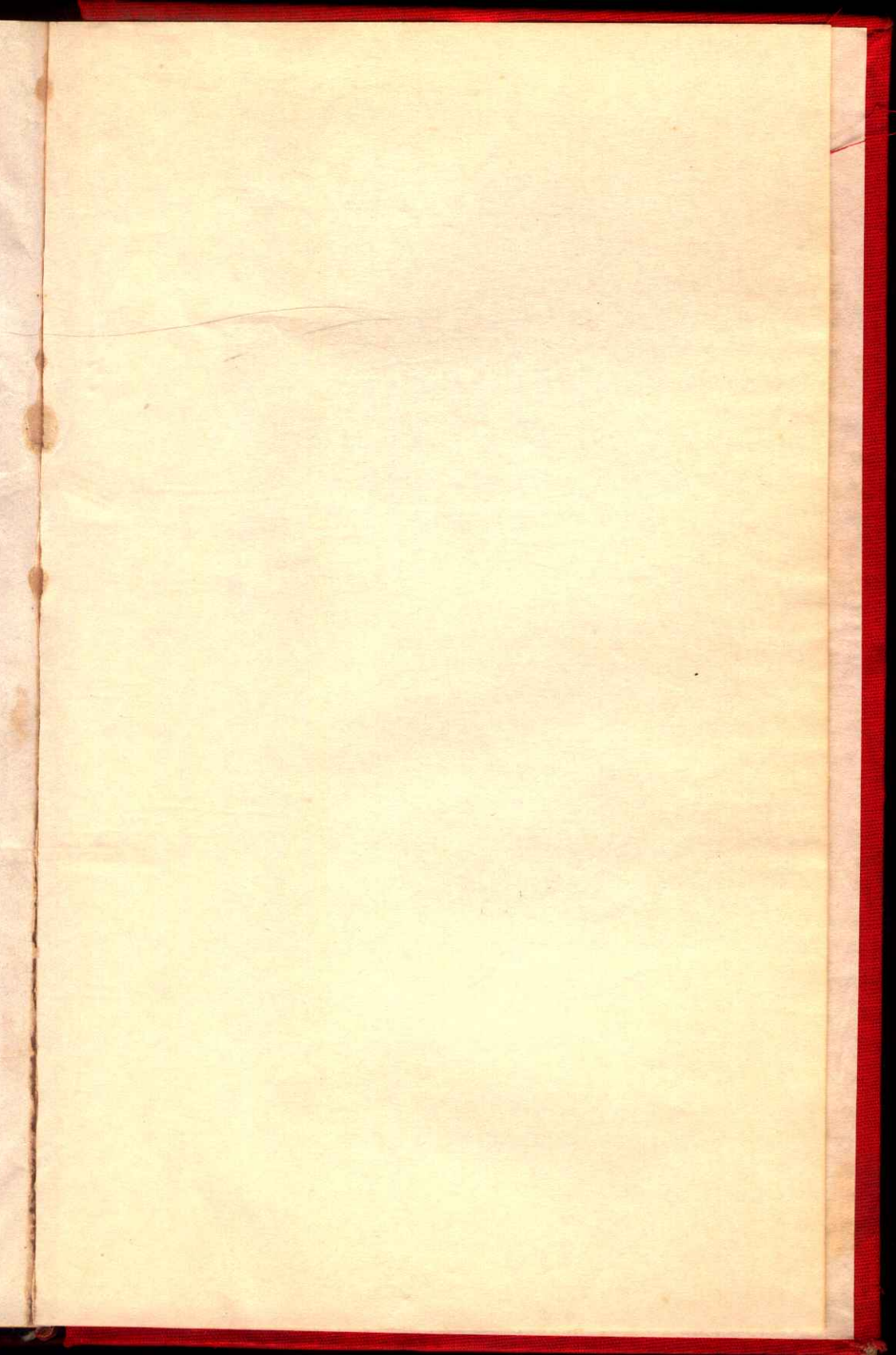


इस पाथिकवर्ग का उदान (विवरण)

१. पाथिक, २. उदुम्बर, ३. चक्रवत्ती, ४. अगगञ्ज, ५. सम्पसादनीय, ६. पासादिक, ७. लक्खण, ८. सिङ्गाल, ९. आटानाटीय, १०. सङ्गीति एवं ११. दशोत्तर सूत्र—इन एकादश (११) सूत्रों से इस पाथिकवर्ग का संग्रह किया गया है ॥

दीर्घनिकायपालि सम्पूर्ण ॥







बौद्धभारती

पो० बॉ० नं० 1049, वाराणसी-1